

वीर सेवा मन्दिर  
दिल्ली

★

क्रम संख्या ५६७

काल नं० ०३०.८ श्रीमन्

खण्ड ३९॥२





नमोऽनेकान्ताय ।  
श्रीश्रीधरसेनाचार्यविरचित  
**विश्वलोचनकोश ।**

---

अपरनाम  
( मुक्तावलीकोश )

---

भाषाटीकासमेत ।

---

जिसे

आकलूजनिवासी नाथारंगजी गांधीने  
मुहम्मदपुर-भाजरा जिला रोहतक  
निवासी पंडित नन्दलाल-शर्मासे भाषाटीका कराकर  
बम्बई निर्णयसागर प्रेसमें बालकृष्ण रामचन्द्र धाणेकरके  
प्रबंधसे छपाकर प्रकाशित किया ।

---

श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४३८

---

जून १९१२ ईस्वी

---

प्रथमावृत्तिः ]

[ मूल्य एक रु० सात आना.



Published by Gandhi Natha Rangaj  
Dabaragalli, Bombay.

Printed by B. R. Ghanekar at the "Nirnaya-Sagar"  
Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay.

**विश्वलोचनकोश.**

अपरनाम

**मुक्तावलीकोश.**

**पुस्तक मिलनेका पता—**

**श्रीजैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय**

**हीराबाग, पो० गिरगांव-बंबई ।**

## प्रस्तावना ।



पाठक महाशय, एक विद्वान्ने कहा है कि—

**कोशश्चैव महीपानां कोशश्च विदुषामपि ।**

**उपयोगो महानिष क्लेशस्तेन विना भवेत् ॥**

अर्थात् जिस प्रकार राजाओंके लिये कोश (खजाना) आवश्यक है, उसके विना उनका काम नहीं चल सकता है—उन्हें क्लेश होता है, उसी प्रकारसे विद्वानोंके लिये कोश (शब्दभांडार) आवश्यक है । कोशके विना विद्वानोंका काम नहीं चल सकता है वे अपने हृदयके भाव दूसरोंपर सुचारुरूपसे प्रगट नहीं कर सकते हैं । इससे आप समझ सकते हैं कि, कोशकी कितनी उपयोगता है ।

संस्कृतका शब्दभांडार यद्यपि अब भी कम नहीं है, तो भी पुरातत्त्वज्ञ विद्वानोंका अनुमान है कि, वह पूर्व समयमें इससे भी बहुत था—अपार था । संस्कृतका प्रचार धीरे २ कम हो जानेसे और विविध विषयके सैकड़ों ग्रन्थोंके लुप्त हो जानेसे वह बहुत मामूली रह गया है ।

इस समय संस्कृतभाषामें जो शब्दसमूह पाया जाता है, उसके रक्षण और पोषणमें कोश ग्रन्थकारोंने प्रधान सहायता पहुंचाई है और आज जब कि संस्कृत बोलचाल की भाषा नहीं है, इन्हीं कोशकारोंकी कृपासे हम संस्कृत ग्रन्थोंका अध्ययन तथा परिशीलन कर सकते हैं ।

संस्कृतमें काव्यसाहित्य अलंकारादि ग्रन्थोंके समान कोश ग्रन्थ भी बहुत हैं । डा० भांडारकर महाशयने अमरकोषकी भूमिकामें कोश ग्रन्थोंकी एक विस्तृत सूची प्रकाशित की है । परन्तु खेद है कि, अभी तक उनमेंसे बहुत ही थोड़े ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं । कई वर्ष पहिले बम्बईके निर्णय-सागर प्रेससे एक अभिधानसंग्रह नामका सेरीज छपना प्रारंभ हुआ था और उससे आशा हुई थी कि, संस्कृतका कोशसमूह धीरे २ प्रकाशित हो जायगा, परन्तु दुर्भाग्यसे दो ही भाग प्रकाशित हुए, और कोई भाग

प्रकाशित नहीं हुआ और तबसे अब तक इस विषयमें कहींसे कोई प्रयत्न हुआ सुनाई नहीं पड़ा । हमारी समझमें संस्कृत साहित्यको सुपुष्ट सुस्पष्ट और विभवशाली बनानेके लिये कोशग्रन्थोंके प्रकाशित होनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता है, इसलिये संस्कृत साहित्यके उपासकोंको इस विषयमें फिर प्रयत्न करना चाहिये ।

यह विश्वलोचन वा मुक्तावली कोश उक्त आवश्यकताकी ही यत्किञ्चित् पूर्ति करनेके लिये प्रकाश किया जाता है । इसकी एक प्रति ईडर ( महीकांठा ) के सुप्रसिद्ध सरस्वती भवनसे प्राप्त हुई थी । इसकी उत्तमता और अन्य कोशग्रन्थोंसे जो इसमें विलक्षणता है, उसे देखकर प्रसिद्ध विद्याप्रचारक सेठ रामचन्द्र नाथाजी ( नाथारंगजीवाले ) ने इसके प्रकाशित करनेकी इच्छा प्रगट की और साथ ही श्रीयुक्त पं० धन्नालालजी काशलीवाल, पं० पन्नालालजी वाकलीवाल और नाथूराम प्रेमी आदिकी सम्मतिसे आपने यह भी चाहा कि, इसकी भाषा-टीका भी हो जाय, तो भाषा जाननेवालोंको भी इससे लाभ पहुंचे । तदनुसार सेठजीने इस ग्रन्थके संशोधनका तथा भाषाटीकाका कार्य मुझे सौंपा और मैंने अपनी शक्तिके अनुसार इसे सम्पादन करके आपके सम्मुख उपस्थित किया है । जब ईडरकी एक प्रतिसे इसके संशोधनका कार्य न चल सका, नानाप्रकारकी कठिनाइयां उपस्थित होने लगीं, तब एक प्रति सरस्वतीभवन आरासे, और दो प्रतियां पं० जवाहिरलालजी शास्त्रीके द्वारा जयपुरके किन्हीं दो भंडारोंसे मंगाई गईं । इस तरह इन चार प्रतियोंसे इस ग्रन्थका सम्पादन किया गया है । इनमें जयपुरकी एक प्रति औरोंकी अपेक्षा विशेष शुद्ध थी । इसके संशोधन कार्यमें मुझे जो परिश्रम पड़ा है, उसका अनुभव वे पाठक अच्छी तरहसे कर सकेंगे, जो इसको ध्यानपूर्वक देखेंगे और इस बातसे परिचित होंगे कि, एक अप्रकाशित अपरिचित ग्रन्थका सम्पादन करना और ऐसे प्रतियोंपरसे जो कि बहुत ही अशुद्ध हों, कितना कठिन कार्य है । मैं यह स्वीकार करता हूं कि, मेरी बुद्धिके प्रमादसे अब भी इसमें बहुतसी अशुद्धियां रह गई होंगी और

उनके लिये मैं पाठकोंसे क्षमा भी चाहता हूँ, तो भी इतना कहे बिना नहीं रहूंगा कि, मैंने इसमें परिश्रम करनेमें कमी नहीं की है।

इस ग्रन्थके रचयिता श्रीधरसेन नामके जैन विद्वान हैं। इनके गुरुका नाम श्रीमुनिसेन था, जो कि सेनसंघके आचार्य थे और बड़े भारी कवि तथा नैयायिक थे। दिगम्बर सम्प्रदायके मुनियोंके जो चार संघ हैं, सेन उनमेंसे एक है। श्रीधरसेन नानाशास्त्रोंके पारगामी विद्वान् थे और बड़े २ राजा लोग उनपर श्रद्धा रखते थे। वे काव्यशास्त्रके मर्मज्ञ तथा कवि भी थे। उन्होंने नाना कवियोंके रचे हुए कोशोंसे तथा ग्रन्थोंसे संग्रह करके इस यथार्थतया विश्वलोचन कोशकी रचना की है। इन सब बातोंका परिचय इस कोशकी प्रशस्तिके निम्न लिखित श्लोकोंसे मिलता है:-

सेनान्वये सकलसत्त्वसमर्पितश्रीः  
 श्रीमानजायत कविर्मुनिसेननामा ।  
 आन्वीक्षिकी सकलशास्त्रमयी च विद्या  
 यस्यास वादपदवी न दवीयसी स्यात् ॥ १ ॥  
 तस्मादभूदखिलवाङ्मयपारदृश्व  
 विश्वासपात्रमवनीतलनायकानाम् ।  
 श्रीश्रीधरः सकलसत्कविगुम्फितत्त्व-  
 पीयूषपानकृतनिर्जरभारतीकः ॥ २ ॥  
 तस्यातिशायिनि कवेः पथि जागरूक-  
 धीलोचनस्य गुरुशासनलोचनस्य ।  
 नानाकवीन्द्ररचितानभिधानकोशा-  
 नाकृष्य लोचनमिवायमदीपि कोशः ॥ ३ ॥  
 साहित्यकर्मकवितागमजागरूकै-  
 रालोकितः पदविदां च पुरे निवासी ।

वर्त्मन्यधीत्य मिलितः प्रतिभान्वितानां  
चेदस्ति दुर्जनवच्चो रहितं तदानीम् ॥ ४ ॥

यत्नो मयायमनपायमशेषविद्या  
विद्याधरीपरिवृढस्य मतौ नियोक्तुम् ।  
त्यक्त्वा पुनर्विमलकौस्तुभरत्नमन्यो  
लक्ष्मीविनोदरसिको रसिकोस्ति धन्यः ॥ ५ ॥

नागेन्द्रसंग्रथितकोशसमुद्रमध्ये  
नानाकवीन्द्रमुखशुक्तिसमुद्भवेयम् ।  
विद्वद्ब्रह्मादमरनिर्मितपट्टसूत्रे  
मुक्तावली विरचिता हृदि संनिधातुम् ॥ ६ ॥

वीतरागस्य सुरभेर्यशःकुसुमशालिनः ।  
श्रितोस्मि चरणस्थानं यः पुंनागत्वमागतः ॥ ७ ॥

श्रीधरसेनाचार्य किस समयमें हुए हैं, इस बातका पता न तो इस प्रशस्तिसे लगता है और न किसी अन्य ग्रन्थसे । हमने इस विषयमें जो सामान्य प्रयत्न किया था, उसमें हमें सफलता प्राप्त नहीं हुई । परन्तु यदि कोई ऐतिहासिक पंडित इन महानुभाव कोशकारका समयनिर्णय करनेका तथा इनके अन्यान्य ग्रन्थोंके पता लगानेका परिश्रम उठावेंगे, तो उन्हें अवश्य सफलता होगी ।

‘दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ’ नामक पुस्तकसे मालूम होता है कि, जैनियोंमें श्रीधर, श्रीधरसेन आदि नामके कई विद्वान् हो गये हैं और उनके बनाये हुए श्रुतावतार, मविष्यदसत्तचरित्र, नागकुमार कथा आदि कई ग्रन्थ हैं, परन्तु उक्त ग्रन्थोंके देखे बिना यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि, वे इन श्रीधरसेनसे पृथक् हैं अथवा यही हैं ।

यह नानार्थकोश है । संस्कृतमें कई नानार्थकोश हैं, परन्तु जहां तक हम जानते हैं, कोई भी इतना बड़ा और इतने अधिक अर्थोंको बतलानेवाला नहीं है । इसमें एक २ शब्दको जितने अर्थोंका बाचक बतलाया है, दूसरोंमें इससे प्रायः कम ही बतलाया है । उदाहरणके लिये एक 'रुचक' शब्दको ही लीजिये । जहां अमरमें चार, मेदिनीमें दश इसके अर्थ बतलाये हैं, तहां इसमें १२ अर्थ बतलाये हैं । यही इस कोशमें विशेषता है ।

यथा—

**परण्ड उरुवूकश्च रुचकश्चित्रकश्च सः ।**

अमरकोश द्वितीयकाण्ड वनौषधिवर्ग श्लोकांक ५१.

**फलपूरो बीजपूरो रुचको मातुलुङ्गके ।**

अमरकोश द्वितीयकाण्ड वनौषधिवर्ग श्लोकांक ७८.

**सौवर्चलेक्षरुचके ।** अमरकोश द्वितीयकाण्ड वैश्यवर्ग श्लोकांक ४३.

**सौवर्चलं स्याद्रुचकम् ।** अमरकोश द्वितीयकाण्ड वैश्यवर्ग श्लोकांक १०९.

**रुचको बीजपूरे च निष्के दन्तकपोतयोः ।**

**न द्वयोः सर्जिकाक्षारे पश्वाभरणमाल्ययोः ।**

**सौवर्चलेऽपि माङ्गल्यद्रव्ये चाप्युत्कटेपि च ।**

मेदिनीकोश कत्रिक श्लोकांक १४६-१४७.

**रुचकं मातुलुङ्गव्ये वन्ते सौवर्चले स्त्रजि ।**

**उत्कटे चाश्वभूषायां विडङ्गे कण्ठभूषणे ॥**

**बीजपूरेऽपि दीनारे रोचनादेववृक्षयोः ।**

विश्वलोचनकोश कतृतीय श्लोकांक १४६-४७.



( ६ )

आशा है कि, विद्वज्जन निष्पक्षदृष्टिसे इस ग्रन्थके महत्त्वको समझकर लाभ उठावेंगे और इसके प्रचार करनेका प्रयत्न कर मेरे और प्रकाशक-महाशयके परिश्रम तथा अर्थव्ययको सफल करेंगे। अलमतिविस्तरेण प्राज्ञेषु ।

बम्बई  
ता० १५ मई १९१२. }

नन्दलाल शर्मा ।



श्रापरमात्मने नमः ।

कविपण्डित-श्रीश्रीधरसेन-विरचितः

विश्वलोचनकोशः ।

( मुक्तावली )



मंगलाचरणम् ।

जयति भगवानास्तां धर्मः प्रसीदतु भारती  
बहतु जगती प्रेमोद्धारं तरन्त्वशुभं जनाः ।  
अयमपि मम श्रेयान्गुम्फस्तनोतु मनोमुदं  
किमधिकमितस्त्यक्तावेगा भवन्तु विपश्चितः ॥ १ ॥

परिभाषा ।

स्वरकादिक्रमादादिनिर्णीतोऽन्तश्च कादिभिः ।  
द्वितीयेऽप्यत्र वर्णेऽपि नियमः काद्यनुक्रमात् ॥ २ ॥

---

ग्रन्थकर्ताका मंगलाचरण ।

भगवान् जिनेन्द्रदेव जयवन्त बर्तते हैं, धर्म स्थित रहे, सरस्वती प्रसन्न हो, पृथ्वी प्रसन्नताको धारण करे, जन अशुभ ( पाप ) रहित हों, और यह मेरा प्रर्थ सबको आनन्द देनेवाला हो, और यहां अधिक क्या कहूँ विद्वान् बेगोंके त्यागनेवाले अर्थात् निराकुल हों ॥ १ ॥

अथ कान्तवर्गः ।

कैकम् ।

को ब्रह्मानिलसूर्याग्निमात्मघोतवर्हिषु ।

कं सुखे वारि शीर्षे च कुः शब्दे ना भुवि स्त्रियाम् ॥ ३ ॥

कद्वितीयम् ।

अकं दुःखाघयोरङ्को रेखायां चिह्नलक्ष्मणोः ।

नाटकादिपरिच्छेदोत्सङ्गयोरपि रूपके ॥ ४ ॥

चित्रयुद्धेऽन्तिके मन्तौ स्थानभूषणयोरपि ।

अर्कः सूर्येऽर्कपणेऽपि शक्रे स्फटिकताम्रयोः ॥ ५ ॥

एकस्तु स्यात्त्रिषु श्रेष्ठे केवलेतरयोरपि ।

कंकः खगे लोहपृष्ठे कृतान्ते कपटद्विजे ॥ ६ ॥

परिभाषार्थः ।

इस ग्रन्थमें स्वर वर्ण और ककार आदि वर्णके क्रमसे आदि (शब्दोंकी आदि) निर्णय की गई है और अंत भी ककार आदिसे निर्णय किया गया है जैसे कि—“को ब्रह्माऽनिलसूर्याग्नि—” और दूसरे वर्णविषै भी ककार आदिके क्रमका नियम किया गया है जैसे कि—“अकं दुःखाऽघयोरङ्को रेखायां चिह्नलक्ष्मणोः” ॥२॥

**कैक ।**

क—ब्रह्मा, वायु, सूर्य, अग्नि, धर्मराज,  
आत्मा, प्रकाश, मयूरपक्षी (पुंलिंग)

क—सुख, जल, मस्तक, ( नपुंसक )

कु—शब्द, ( पुं० ) कु—पृथ्वी,  
( स्त्रीलिंग ) ॥ ३ ॥

**कद्वितीय ।**

अक—दुःख, पाप, ( न० ) ॥ ४ ॥

अंक—रेखा, चिह्न, लक्षण, नाटक

आदि ग्रंथका विश्रामस्थल, गोद,  
रूपक, सङ्ख्या, चित्रयुद्ध, समीप,  
अपराध, स्थान, भूषण, ( पुं० )

अर्क—सूर्य, आकका पत्ता, इंद्र, स्फटि-  
कमणि, तांबा, ( पुं० ) ॥ ५ ॥

एक—श्रेष्ठ, केवल ( अद्वितीय ),  
इतर ( दूसरा ), ( त्रिलिङ्गी )

कंक—काकविशेष, धर्मराज, कपट-  
से बना हुआ ब्राह्मण, ( पुं० ) ॥६॥

कर्कः कर्केतने वह्नौ श्वेताश्वे मुकुरे घटे ।  
 कल्कोऽस्त्री पापविद्रुकिद्रुदोषदम्भविभीतके ॥ ७ ॥  
 पापाश्रयेऽपि काकस्तु वायसे पीठसर्पिणि ।  
 शिरोवक्षालने धृष्टे मानद्वीपद्रुमान्तरे ॥ ८ ॥  
 काका स्यात्काकजंघायां काकोलीकाकनासयोः ।  
 काकमाचीकाकतुण्डीमलपूरक्तिकासु च ॥ ९ ॥  
 काकं काकसमूहे स्यात्स्त्रीणां च रतबन्धने ।  
 किष्कुर्वितस्तौ हस्ते च प्रकोष्ठे कुत्सिते पुमान् ॥ १० ॥  
 कोकश्चके वृके ज्यैष्ठ्यां खर्जूरीभेकविष्णुषु ।  
 छेकस्तु गृहसंसक्तविश्वस्तमृगपक्षिणोः ॥ ११ ॥  
 नागरे त्रिषु वक्त्रे च टङ्कोऽस्त्री प्रावदारणे ।  
 टङ्कर्णे प्रावभित्तौ च मानभेदाऽभिधानयोः ॥ १२ ॥

कर्क-रत्नविशेष, अग्नि, श्वेतअश्व,  
 दर्पण, घट, ( पुं० )

कल्क-पाप, विष्टा, किद्रु (खलीआदि)  
 दोष, दम्भ, बहेडा ॥ ७ ॥ पापी,  
 ( पुं० न० )

काक-काक, पीठसर्पिन् (खंजता लंगडा)  
 शिरका धोना, धृष्टपुरुष, प्रमाण  
 (तोल), द्वीप, वृक्षविशेष (पुं०) ॥ ८ ॥

काका-गुंजावृक्ष, काकोली, विकटक-  
 वृक्ष, मकोय, काकादनी, कटूमरवृक्ष  
 गुंजा, ( स्त्री० ) ॥ ९ ॥

काक-काकसमूह, स्त्रियोंका रतबंधन,  
 ( न० )

किष्कु-बालिस्तप्रमाण, हस्तप्रमाण,  
 पहुँचा, निन्दित, (पुं०) ॥ १० ॥

कोक-चकवा, भेडिया, मुलहटी,  
 खजूरवृक्ष, मेंढक, विष्णु, ( पुं० )

छेक-घरमें पालाहुआ मृग, और  
 पक्षी, ( पुं० ) ॥ ११ ॥

नगरमें होनेवाला विदग्ध पुरुष, टेढा  
 पुरुषआदि, ( त्रि० ) ।

टंक-पत्थरको फोड़नेवाला औजार,  
 सुहागा, पत्थरकी भीत, प्रमाण  
 तोलविशेष, नाम ॥ १२ ॥

कपित्थान्तरजङ्घाऽसिकोषकोपखनित्रके ।  
 तर्कः काङ्क्षावितर्कोहे कर्मशास्त्रप्रभेदयोः ॥ १३ ॥  
 तोकं त्वपत्ये पुत्रे च तोका दुहितरि स्त्रियाम् ।  
 त्रिका कूपस्य नेमौ स्यात्त्रिकं पृष्ठधरे त्रये ॥ १४ ॥  
 द्विकः स्याच्चक्रवाकेऽपि नाङ्के काकेऽपि संमतः ।  
 नाकुः पुंसि मुनेर्भेदे नाकुर्वल्मीकशैलयोः ॥ १५ ॥  
 नाकः स्वर्गेऽन्तरिक्षे च निष्कोऽस्त्री हेमकर्षयोः ।  
 अष्टाधिकस्वर्णशते वक्षोऽलङ्करणे पले ॥ १६ ॥  
 हेमः पलेऽपि दीनारे न्यङ्कुर्ज्ञेये मुनौ मृगे ।  
 पङ्कोऽस्त्री कर्दमे पापे पाकस्तु पवने शिशौ ॥ १७ ॥  
 पाको जरापरीपाके स्थाल्यादौ क्लेदनिष्ठयोः ।  
 बकः कङ्के शिवमह्यां रक्षोभेदकुबेरयोः ॥ १८ ॥

नीला कैथवृक्ष, ( पुं० न० ) पिंडुली,  
 ( स्त्री० ) खड्ग, खजाना, खोद-  
 नेका औजार, ( पुं० न० ) ।  
 तर्क—इच्छा, विशेषतर्ककरना, खंडन-  
 मंडन, कर्म, न्यायशास्त्र, ( पुं० ) ॥ १३ ॥  
 तोक—संतानमात्र, पुत्र, ( न० )  
 तोका पुत्री ( स्त्री० )  
 त्रिका—कूएका चाक, ( स्त्री० ) पीठमें  
 नीचेका अस्थि, ३ संख्या ( न० ) १४  
 द्विक—चक्रवा, २ संख्या, काकपक्षी, ( पुं० )  
 नाकु—मुनिविशेष, सर्पकी बाँबी, पर्वत,  
 ( पुं० ) ॥ १५ ॥  
 नाक—स्वर्ग, आकाश, ( पुं० )  
 निष्क—सुवर्ण, दोतोले परिमाण,

एकसौ आठ स्वर्ण ( दोस्रो सोलह  
 तोलापरिमाण ) सुवर्णका सिक्का, हृद-  
 यका आभूषण, चारतोलापरिमाण  
 ( पुं० न० ) ॥ १६ ॥  
 न्यङ्कु—मत्स्यविशेष, एकमुनि, मृग,  
 ( पुं० )  
 पंक—कीच, पाप, ( पुं० न० )  
 पाक—वायु, शिशु ( बालक ) ॥ १७ ॥  
 वृद्धपना, बरतनमें अन्नकी खुरचन,  
 स्थिति, ( पुं० ) ।  
 बक—काकविशेष पक्षी, गूमा—औषध,  
 बकनामक राक्षस, कुबेर, ( पुं० )  
 ॥ १८ ॥

बङ्कस्तु पुंसि नद्यादिभङ्गपर्याणभागयोः ।

भङ्गुरे वाच्यवद्वङ्को बल्कं वल्कलखण्डयोः ॥ १९ ॥

भूकश्छिद्रेऽवकाशे च भेको मण्डूकमेघयोः ।

मुष्कोऽण्डकोशे वृन्दे च मुष्को मोक्षकशाखिनि ॥ २० ॥

मूकस्त्ववाङ्मतो दीने रङ्कः कृपणमन्दयोः ।

अथ राका दृष्टरजःकन्यायां सरिदन्तरे ॥ २१ ॥

पूर्णेन्दुपूर्णमायां च कच्छुरोगेऽपि दृश्यते ।

रेको विरेके शङ्कायामधमे त्वभिधेयवत् ॥ २२ ॥

रोकं दत्त्वा क्रये रन्ध्रे नावि रोकस्तु रोचिषि ।

लङ्का रक्षःपुरे शाखाकुलटाशाकिनीष्वपि ॥ २३ ॥

लोको जनेऽपि भुवने स्यादवात्तु विलोकने ।

शङ्कुः कीले शिवे सङ्ख्यायादोऽस्त्रभिदि किलिषे ॥ २४ ॥

बङ्क-नदीआदिका बांकापना, अश्वके	पूर्णचंद्रमावाली पूर्णिमा, खजूं रोग,
जीनका भाग, ( पुं० ) नष्टहोने-	( स्त्री० )
वालीवस्तु ( त्रि० )	रेक-दस्तलगना, शंका, ( पुं० )
बल्क-वृक्षका छिलका, टुकड़ा ( न० )	नीच ( त्रि० ) ॥ २२ ॥
॥ १९ ॥	रोक-द्रव्यदेकर खरीदना, छिद्र, नौका
भूक-छिद्र, पोल, ( पुं० )	( न० ) दीप्ति-प्रकाश ( पुं० )
भेक-मेंढक, मेघ, ( पुं० )	लंका-राक्षसपुरी, वृक्षशाखा, कुलटा
मुष्क-अंडकोश, समूह, मोखा	स्त्री, शाकिनी, ( स्त्री० ) ॥ २३ ॥
( कठपाडर ) वृक्ष ( पुं० ) ॥ २० ॥	लोक-जन, भुवन, अवलोक.
मूक-गूँगा, दीन, ( पुं० )	देखना ( पुं० ) ।
रङ्क-कृपण, मन्द, ( पुं० )	शङ्कु-काष्ठआदिका कीला, महादेव,
राका-रजस्वलां कन्या, नदीका मध्य-	एक गिन्ती, जलजन्तु, अस्त्रविशेष,
भाग, ॥ २१ ॥	पाप, ( पुं० ) ॥ २४ ॥

शङ्का त्रासे वितर्के च शल्कं शकलबल्कयोः ।  
 चूर्णे शाकस्तु शक्तौ स्याद्रक्षद्वीपनृपान्तरे ॥ २५ ॥  
 शाकं हरितके क्लीबे पत्रपुष्पफलादिके ।  
 शुकः कीरे व्यासपुत्रे रावणस्य च मन्त्रिणि ॥ २६ ॥  
 शुकं तु ग्रन्थिपर्णे स्याच्छिरीषे शोणकेऽपि च ।  
 शुल्कं घट्टादिदेयेऽस्त्री जामातुरपि बन्धके ॥ २७ ॥  
 शूकः स्यादनुकम्पायां शूकः शुक्लेऽपि पुंस्ययम् ।  
 शोकः स्याच्छुभसङ्घाते स्त्रीणां च करणान्तरे ॥ २८ ॥  
 श्लोको यशसि पथे स्यादुपहास्य उपात्परः ।  
 सूको वातोत्पलशरे स्तोकः स्याच्चातकाल्पयोः ॥ २९ ॥

कतृतीयम् ।

अणुको निपुणेऽल्पेऽस्त्री त्वनीकं रणसैन्ययोः ।  
 अनूकं शीलकुलयोरनूकं गतजन्मनि ॥ ३० ॥

शंका—त्रास, विशेषतर्क, ( स्त्री० )  
 शल्क—डुकड़ा, वृक्षका छिलका, चूना,  
 ( न० )

शाक—शक्ति, एकप्रकारका वृक्ष, एक  
 द्वीप, एक राजा, ( पुं० ) ॥ २५ ॥  
 हरितशाक, पत्र, पुष्प, फल आदि ( न० )  
 शुक—सूवा पक्षी, व्यासपुत्र, रावणका  
 मंत्री, ( पुं० ) ॥ २६ ॥

शुक—गठिवन नामक वृक्ष, सिरस  
 वृक्ष, सोनापाठा—वृक्ष ( न० )

शुल्क—घाटआदिपर देनेका कर, जामा  
 ताको देनेका दायजा ( न० ) ॥ २७ ॥

शूक—दया, बडकावृक्ष, ( पुं० ) ।

शोक किसीवस्तुकी हानिआदिसे दुःख,  
 स्त्रियोंके चित्तका व्यापार विशेष २८

श्लोक—यश, उन्दोबद्धकविता, और  
 उपउपसर्गसेपरे उपश्लोक—उप-  
 हास अर्थात् ठट्ठा ( पुं० )

सूक—वायु, कमल, बाण, ( पुं० )  
 स्तोक—पपीहा—पक्षी, ( पुं० ) अल्प  
 ( त्रि० ) ॥ २९ ॥

कतृतीय ।

अणुक—निपुण, अल्प, ( पुं० न० )

अनीक—रण, सेना, ( न० )

अनूक—शील, कुल, बदीतहुवा जन्म  
 ( न० ) ॥ ३० ॥

अन्तिकं निकटे चुल्लयामन्तिका शातलौघधौ ।  
 नाट्योक्तौ चांतिका ज्येष्ठभगिन्यां परिकीर्तिता ॥ ३१ ॥  
 अन्धिका कैतवे सिद्धे शर्वर्यामन्धयोषिति ।  
 अभीको निर्भयकूरकविकामिषु वाच्यवत् ॥ ३२ ॥  
 अम्बिका पार्वती पाण्डुजननीजननीष्वपि ।  
 तित्तिडीकाचुक्रिकयोरम्लोद्गारेपि चाऽम्लिका ॥ ३३ ॥  
 अर्भकस्तु मतो डिम्भे मूर्खे भ्रूणे कृशेपि च ।  
 कुबेरस्यालका पुर्यामलकश्चूर्णकुन्तले ॥ ३४ ॥  
 अलर्को धवलर्के स्याद्योगोन्मत्तककुक्षुरे ।  
 अलीकं त्रिदिवे क्लीबं मिथ्यायामाप्रिये त्रिषु ॥ ३५ ॥  
 अशोको वञ्जुले माने द्रुमेऽशोकं तु पारदे ।  
 अशोका कटुरोहिण्यां शोकशून्ये तु वाच्यवत् ॥ ३६ ॥

अन्तिक (का)—समीप, चूल्हा,  
 ( न० ) थूहरवृक्षका भेद, नाट्यमें,  
 बडी बहन ( स्त्री० ) ॥ ३१ ॥

अन्धिका—कपट, सिद्ध, रात्रि,  
 अन्धी स्त्री, ( स्त्री० )

अभीक—भयरहित, कूर, कवि, कामी-  
 पुरुष ( त्रि० ) ॥ ३२ ॥

अम्बिका—पार्वती, पांडुराजाकी  
 माता, माता, ( स्त्री० )

अम्लिका—अमली, चूका शाक, खट्टी  
 डकार, ( स्त्री० ) ॥ ३३ ॥

अर्भक—बालक, मूर्ख, गर्भ, दुबला,  
 ( पुं० )

अलका—कुबेरकी पुरी, ( स्त्री० )  
 अलक—डेढे केश-जुल्फे ( पुं० )  
 ॥ ३४ ॥

अलर्क—सफेद आकका वृक्ष, प्रयोगसे  
 किया बावला कुत्ता, ( पुं० )

अलीक—स्वर्ग, ( न० ) असत्य,  
 लंबाई, अप्रिय, ( त्रि० ) ॥ ३५ ॥

अशोक—अशोक-वृक्ष, परिमाणभेद,  
 तिनिश ( तिवस ) वृक्ष, ( पुं० )  
 पारा ( न० )

अशोका—कटुरोहिणी, ( स्त्री० )  
 शोकरहित ( त्रि० ) ॥ ३६ ॥



आढको मानभेदेऽस्त्री तुवर्यामाढकी स्मृता ।  
 आतङ्को रोगसन्तापशङ्कासु मुरजध्वनौ ॥ ३७ ॥  
 आनकः पटहे भेर्या मृदङ्गे ध्वनदम्बुदे ।  
 आलोको दर्शनेऽपि स्यादुद्योते बंदिभाषणे ॥ ३८ ॥  
 आह्निकं दिननिर्वर्त्ये भोजने नित्यकर्मणि ।  
 इक्ष्वाकुः कटुतुव्यां स्त्री सूर्यान्वयनृपे पुमान् ॥ ३९ ॥  
 उदर्क एष्यत्कालीयफले मदनकण्टके ।  
 उलूकः पेचके शक्रे कुरयोधेऽपि सम्मतः ॥ ४० ॥  
 उष्णकस्त्वातुरे तप्ते क्षिप्रकारिनिदाघयोः ।  
 उष्ट्रिका मृत्तिकाभाण्डभेदे करभयोषिति ॥ ४१ ॥  
 ऊर्मिका त्वङ्गुलीये स्यात्तरङ्गे मधुपध्वनौ ।  
 ऊर्मिका वस्त्रभङ्गेऽपि तथोद्वाहुलकेऽपि च ॥ ४२ ॥

आढक—२५६ तोलेका परिमाण, (पुं०)

आढकी—अरहर ( स्त्री० ) ।

आतङ्क—रोग, सन्ताप, शंका, मृदङ्गका शब्द ( पुं० ) ॥ ३७ ॥

आनक—ढोल, भेरी, मृदङ्ग, गर्जता-हुवा मेघ ( पुं० )

आलोक—दर्शन, देखना, प्रकाश, बंदिजनोत्तरके विरद कहना, ( पुं० ) ॥ ३८ ॥

आह्निक—दिनभरका किया कर्म, भोजन, नित्यकर्म, ( न० )

इक्ष्वाकु—कडवी तूवी, ( स्त्री ) सूर्य

वंशमें होनेवाला एकराजा ( पुं० ) ॥ ३९ ॥

उदर्क—अगाडी होनेवाला फल, औषधि विशेष, ( पुं० )

उलूक—उलू-पक्षी, इन्द्र, कुरुदलमें होनेवाला एक योधा ( पुं० ) ॥ ४० ॥

उष्णक—आतुर, तप्तहुवा, शीघ्रता करनेवाला, ग्रीष्म ऋतु, ( पुं० )

उष्ट्रिका—मृत्तिकापात्रविशेष, ऊँटनी, ( स्त्री० ) ॥ ४१ ॥

ऊर्मिका—अंगूठी, तरंग, भौरोका शब्द, वस्त्रखंड, वस्त्ररचनाविशेष, भुजा उठानेवाला, ( स्त्री ) ॥ ४२ ॥

अंशुकं सूक्ष्मवसने वस्त्रमात्रोत्तरीययोः ।  
 कञ्चुकः कवचे बाणवारे निर्मोक्तचोलके ॥ ४३ ॥  
 हर्षादात्ताङ्गवस्त्रे च कञ्चुकी त्वौषधान्तरे ।  
 कटकोल्ली राजधान्यां सानौ सेनानितम्बयोः ॥ ४४ ॥  
 वलये सिन्धुलवणे दन्तिदन्तविभूषणे ।  
 कटुकं कटुरोहिण्यां व्योषेऽपि कटुमात्रके ॥ ४५ ॥  
 कटाकुस्तु दुराधर्षे दुःशीले ना विलेशये ।  
 गोधूमचूर्णे कणिकः स्त्रियां सूक्ष्माऽग्निमन्थयोः ॥ ४६ ॥  
 कण्टकोऽल्ली द्रुमाङ्गेऽथ दूषके कर्णिदूषके ।  
 रोमाञ्चे क्षुद्रशत्रौ च मारौ मीनादिकीकसे ॥ ४७ ॥  
 कनकं हेम्नि धतूरे चम्पके नागकेसरे ।  
 किंशुके काञ्चनारे च कालीयेऽपि कचिन्मतः ॥ ४८ ॥

अंशुक-बारीक वस्त्र,  
 डुपट्टा, ( न० )

कञ्चुक-कवच, बाणोंको निवारणकरने-  
 वाला द्रव्य, सर्पकी कांचली, अंग-  
 रखा ( वस्त्र ) की हर्षसे प्राप्तहुए  
 वस्त्रवाला, ( पुं० ) ॥ ४३ ॥

कञ्चुकि-न औषधिविशेष ( पुं० ) ४४

कटक-राजधानी, पर्वतशिखर, सेना,  
 नितम्ब ( चूतङ्ग ), कंगन, समुद्रन-  
 मक, हाथीदौतका आभूषण ( पुं० )

कटुक-कटुरोहिणी, सूँठ-भिरच-पी-  
 पल, कडवी ओषधी मात्र ( न० ) ४५

कुटाकु-तेजस्वी, दुःशील, सर्प, ( पुं० )

कणिक-गेहूँका आटा, ( पुं० ) सूक्ष्म-  
 मात्र, अरणी ( अगेधू ) वृक्ष,  
 ( पुं० ) ॥ ४६ ॥

कण्टक-वृक्षका कांटा, दूषक पुरुष,  
 कर्णिदूषक रोग, रोमांच, तुच्छ शत्रु,  
 मारीरोग, मच्छी आदिकी हड्डी,  
 ( न० ) ॥ ४७ ॥

कनक-सुवर्ण, धतूरा, चम्पा, नाग-  
 केसर, केसू पुष्प, कचनार, और  
 यकृत रोग, यह कहीं कहीं, माना है  
 ( न० ) ॥ ४८ ॥

करकोऽस्त्री करङ्गे स्वात्कुण्ड्यां चाथ पुमान्स्वगे ।  
 कुसुम्भे दाडिमे हस्ते करका तु घनोपले ॥ ४९ ॥  
 करङ्कः सस्यसन्त्यक्तनालिकेराऽस्थिमस्तके ।  
 कर्णिका कर्णभूषायां गुवाकादिच्छटांशके ॥ ५० ॥  
 करिहस्ताग्रभागे च करमध्याङ्गुलावपि ।  
 नलिनीबीजकोशे च कुट्टिन्यामपि कुत्रचित् ॥ ५१ ॥  
 कलङ्कोऽङ्गे कालायसमले दोषाऽपवादयोः ।  
 कावृकः कृकवाकौ स्यात्पीतमस्तककोकयोः ॥ ५२ ॥  
 कामुकः कामिनि ख्यातोऽशोकवृक्षाऽतिमुक्तयोः ।  
 कारकः कर्तरि ज्ञेयः कर्मदौ कारकं मतम् ॥ ५३ ॥  
 कारिका विवृतिश्लोके यातनायां कृतावपि ।  
 नटस्त्रियां नापितादिशिल्पे कर्त्र्या च कारिका ॥ ५४ ॥

करक—माथेकी खोपरी, कूँडी या  
 कमंडलु, ( पुं० न० ) पक्षिविशेष,  
 कसुंभा अनार, हाथ, ( पुं० )

करका—ओला ( स्त्री० ) ॥ ४९ ॥

करंक—कड़व डांठला, नालीरकी डो-  
 हरी, मस्तककी खोपरी ( पुं० )

कर्णिका—कर्णका आभूषण, मुपारी  
 आदिका टुकड़ा ॥ ५० ॥

हाथीकीसूँडका अग्रभाग, मध्यमा-  
 अंगुली, कुम्भोदनीका बीजकोश,  
 कुट्टिनी स्त्री ( स्त्री० ) ॥ ५१ ॥

कलङ्क—चिह्न, लोहेका मल, दोष,  
 निन्दा, ( पुं० )

कावृक—मुरगा पक्षी, पीतमस्तक पक्षी  
 ( कावरी ), चकवा पक्षी ( पुं० )  
 ॥ ५२ ॥

कामुक—कामी पुरुष, अशोक वृक्ष,  
 माधवीलता, ( पुं० )

कारक—कुछभी करनेवाला पुरुष, ( पुं० )  
 कर्मआदि कारक ( न० ) ६ ॥ ५३ ॥

कारिका—व्याख्याकरनेवाला—श्लोक,  
 पीडा, कृति, नटकी स्त्री, नाईआ-  
 दिकी कारीगरी, कुछभी करनेवाली  
 स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ ५४ ॥

वंशे ना कार्मुकं चापे कर्मशक्ते तु वाच्यवत् ।

कालिका चण्डिकायां स्याद्योगिनीभेदकाण्ययोः ॥ ५५ ॥

पश्चाद्वातव्यमूल्ये च पटोलकलतान्तरे ।

रोमालीधूमरीमांसीकाकीवृश्चिकपत्रके ॥ ५६ ॥

घनावलावलं धूमप्रभेदे नवनीरदे ।

किम्पाकस्तु महाकालफले मूर्खे च कीचकः ॥ ५७ ॥

दैत्येवातध्वनिध्वंसे शुष्कवंशे द्रुमान्तरे ।

कीटकः कृमिजातौ स्यान्निष्ठुरेऽपि च कीटकः ॥ ५८ ॥

कुलकस्तु कुलश्रेष्ठे वल्मीके काकतिन्दुके ।

कुलकं श्लोकसम्बद्धगुच्छकेऽपि पटोलके ॥ ५९ ॥

कुलिको नागभेदे स्यात्कुलश्रेष्ठे द्रुमान्तरे ।

कुशिकस्तु मुनौ तैलशेषे सर्जे कलिद्रुमे ॥ ६० ॥

कार्मुक-बाँसका वृक्ष, धनुष ( पुं० )  
कर्ममें समर्थ, ( त्रि० )

कालिका-चण्डिका देवी, योगिनी  
विशेष, कालापना ॥ ५५ ॥

पीछे दियाजानेवाला वस्तुका मूल्य,  
परवली बेल, रोमावली, एक  
किन्नरी, जटामांसी-औषधी, कागन  
पक्षी, बीछूका डंक, ॥ ५६ ॥  
मेघावली, धूमविशेष, नवीनमेघ,  
( स्त्री० ),

किम्पाक-बडेकालका फल, मूर्ख, ।  
( पुं० ) ॥ ५७ ॥

कीचक-दैत्यविशेष, वायुसे उखा-  
डाहुवा और बाजताहुवा सूखा वांस,  
वृक्षविशेष, ( पुं० ) ।

कीटक-कृमिजाति, कठोर, ( पुं० ) ५८  
कुलक-कुलमें श्रेष्ठ पुरुष, बाँबा,  
मकरतैदुवानामक वृक्षविशेष, ( पुं० )  
श्लोकसंबद्धगुच्छा, परवल, ( न० )  
॥ ५९ ॥

कुलिक-नागविशेष, कुलमें श्रेष्ठ,  
वृक्षभेद ( तालमखाना ) ( पुं० )

कुशिक-मुनि, तेलकी बँची खलीआदि  
शालवृक्ष, बहेडावृक्ष, ( पुं० ) ॥ ६० ॥

कुषाकु मर्कटे भानौ बृहन्नानौ पुमांलिषु ।  
 परोत्तापिन्यपि मतं कूर्चिका सूचिकान्तरे ॥ ६१ ॥  
 तूलिका क्षीरविकृतिकुञ्चिकाकुञ्जलेषु च ।  
 कूपको गुणवृक्षे स्यात्तैलपात्रे कुकुन्दरे ॥ ६२ ॥  
 कूपे जलस्थग्रावादौ स्याच्च तुर्यां तु कूपिका ।  
 कूलकः पुंसि बल्मीके स्तूपेऽस्त्री कूलकं तटे ॥ ६३ ॥  
 कृषकः कर्षके पुंसि फालेऽपि कृषके पुमान् ।  
 पारदारकरक्तेऽपि निःस्त्रेऽपि त्रिषु कञ्चुकः ॥ ६४ ॥  
 कोरकः कुञ्जले न स्त्री कङ्कोलकमृणालयोः ।  
 कोशाङ्गस्तु करीरे स्यादिक्षौ कीटान्तरेऽपि च ॥ ६५ ॥  
 कौतुकं त्वभिलाषेऽपि कुसुमे नर्महर्षयोः ।  
 परम्परासमायाते मङ्गले चातिशायिनि ॥ ६६ ॥

कुषाकु—चन्दर, सूर्य, अग्नि, (पुं०)	(पुं० न०) नदीआदिका तट
दूसरोको कष्टदेनेवाला (त्रि०)	(न०) ॥ ६३ ॥
कूर्चिका—सूईभेद ॥ ६१ ॥ चित्र- खेंचनेकी कलम, दुग्धविकार(मलाई), चाबी, कुङ्जल (फूलकली) (स्त्री०)	कृषक—खेंचनेवाला पुरुष, खेतीकर- नेवाला, हलकी फाल, परस्त्रीमें आसक्त (पुं०)
कूपक—नावका खंभा, तेलका पात्र (कूपा), नितंबों (चूतबों) में पड़ाहुवा खड़ा, कूवाँ, जलमें स्थित पत्थरआदि, (पुं०)	कञ्चुक—द्रव्यरहित (त्रि०) ॥ ६४ ॥ कोरक—बिनाखिली फूलकी कली, कङ्कोलवृक्ष, कमल (पुं० न०)
कूपिका—कपड़ा बुननेका औजार (स्त्री०) ॥ ६२ ॥	कोशाङ्ग—कैरका वृक्ष, ईँख, कीटविशेष, (पुं०) ॥ ६५ ॥
कूलकः—बैंबी (पुं०) मिट्टीका समूह,	कौतुक—अभिलाषा, पुष्प, ठट्ठाके वचन, आनंद, परंपरासे प्राप्तहुवा मंगल, अतिशय ॥ ६६ ॥

विवाहसूत्रे विषयाभोगकाले समुत्सवे ।  
 कौशिको गुग्गुलुवृक्षकुलेष्वहितुण्डिके ॥ ६७ ॥  
 इन्द्रे च विश्वामित्रे च कोशज्ञे चाथ कौशिकी ।  
 चण्डिकायां नदीभेदे क्रमुको भद्रमुस्तके ॥ ६८ ॥  
 गुवाकपट्टिकालोध्रकूर्पासब्रह्मदारुषु ।  
 खट्टिकः सौनिकेऽपि स्यान्माहिषक्षीरफेनके ॥ ६९ ॥  
 खनकश्चित्ततत्त्वज्ञे सन्धिचौरेऽवदारके ।  
 मूषके खुलुकस्तु स्यात्स्वल्पे नीचे कनीयसि ॥ ७० ॥  
 खोलकः पाकवल्मीकपूगकोशे शिरस्त्रके ।  
 गणिका यूथिकावेश्यातर्कारीकरिणीष्वपि ॥ ७१ ॥  
 अग्निमन्थेऽपि गणिका दैवज्ञे गणकः पुमान् ।  
 गण्डकः खड्गिनि ख्यातः सङ्ख्याविद्याप्रभेदयोः ॥ ७२ ॥

विवाहसूत्र, विषयोंके भोगनेका काल,  
 उत्सव, ( न० )  
 कौशिक-गुग्गुलुवृक्ष, उल्लूषक्षी, नौला,  
 सर्पपकड़नेवाला, ॥ ६७ ॥ इन्द्र,  
 विश्वामित्रऋषि, कोश ( खजाना )  
 का जाननेवाला ( पुं० )  
 कौशिकी-चण्डिका ( देवी ), नदी-  
 भेद, ( स्त्री० )  
 क्रमुक-भद्रमोथा-वृक्ष ( पुं० ) ॥ ६८ ॥  
 सुपारी वृक्ष, लाललोध, साधारण-  
 लोध, स्त्रियोंकी कञ्चुकी, तूलवृक्ष, ( पुं० )  
 खट्टिक-कसाई, भैंसका दूधके झाग,  
 ( पुं० ) ॥ ६९ ॥

खनक-चित्तके तत्त्वको जाननेवाला,  
 सन्धि ( मुरंग ) लगानेवाला चोर,  
 खोदनेका औजार, मूँसा, ( पुं० )  
 खुलुक-स्वल्प, नीच, बहुतछोटा,  
 ( पुं० ) ॥ ७० ॥  
 खोलक-पाक, बाँबी, सुपारीफल,  
 शिरस्त्र, ( पुं० )  
 गणिका-जूही झाड़, वेश्या, खांसन-  
 टाहाकल वृक्ष, हथिनी, ॥ ७१ ॥  
 अरणीवृक्ष, ( स्त्री )  
 गणक-ज्योतिषी ( पुं० )  
 गण्डक-गैडा, सङ्ख्याविशेष, विद्या-  
 विशेष, ( पुं० ) ॥ ७२ ॥

गृह्यको गोपिते यक्षे गृह्यकरुण्येकनिम्नयोः ।  
 गैरिकं धातुभेदे स्याद्धातुमात्रे च काञ्चने ॥ ७३ ॥  
 गोरङ्कुः पक्षिजातौ च नम्रके श्रुतिपाठके ।  
 गोलको मणिके जाराद्विधवातनये गुडे ॥ ७४ ॥  
 ग्रन्थिकस्तु करीरे स्याद्वैवज्ञे गुग्गुलुदुमे ।  
 माद्रेयेप्यद्वयोर्ग्रन्थिपर्णीपिप्पलिमूलयोः ॥ ७५ ॥  
 ग्राहको घातिविहगे ग्रहीतरि तु वाच्यवत् ।  
 चटकः कलबिकः स्यात्तत्पुत्रीयोषितोः स्त्रियाम् ॥ ७६ ॥  
 चतुष्की मशकहर्ष्या यष्टिकावेशमभेदयोः ।  
 चुलुकः प्रसृतौ च स्याच्चुलुका भाजनान्तरे ॥ ७७ ॥  
 चषकोऽस्त्री पानपात्रे मधुमद्यप्रभेदयोः ।  
 चारकः पालकेऽश्वादेः स्यात्सञ्चारकबन्धयोः ॥ ७८ ॥

गृह्यक—रक्षाकियाहुवा, यक्ष—देव- योनि, ( पुं० )	ग्राहक—पक्षी मारनेवाला पक्षी, ( पुं० ) सर्प आदिकोंका पकडनेवाला ( त्रि० )
गृह्यक—पालाहुवा पक्षीआदि, अधीन पुरुषआदि ( पुं० )	चटक—चिडापक्षी, ( पुं० )
गैरिक—धातुभेद ( गेरू ), धातुमात्र, सुवर्ण, ( न० ) ॥ ७३ ॥	चटिका चिडाकी पुत्री और स्त्री ( स्त्री० ) ॥ ७६ ॥
गोरङ्क—पक्षिविशेष, नंगापुरुष, बंदी- जनका पटना, ( पुं० )	चतुष्की—ससैरी—फलंगपरताननेकी, छडी, एकप्रकारका पत्थर ( स्त्री० )
गोलक—गोला, जारसे उत्पन्नहुवा विधवाका पुत्र, गुड, ( पुं० ) ॥ ७४ ॥	चुलुक—प्रसृति ( पस्तो ) ( पुं० )
ग्रन्थिक—कैरवृक्ष, ज्योतिषी, गूल- वृक्ष, माद्रीका पुत्र, ( पुं० ) ग्रन्थि- पर्णी. ( गांडरद्व ), पीपलामूल, ( न० ) ॥ ७५ ॥	चुलुका—पात्रविशेष ( स्त्री० ) ॥ ७७ ॥
	चषक—जलआदिपीनेका पात्र ( प्याला ), चाहद, मदिराभेद, ( पुं० )
	चारक—घोडा आदिका चरानेवाला, राजाका गुप्तदूत,—संचारकरनेवाला, बन्ध, ( पुं० ) ॥ ७८ ॥

चित्रकं तिलके क्लीबं वहिसंज्ञेतु चित्रकः ।  
 एरण्डे चालवाले च चित्रकः श्वापदान्तरे ॥ ७९ ॥  
 चीरको विक्रियालेखे शिलिकायां तु चीरिका ।  
 चुम्बकः कामुके धूर्ते बहुविद्योपजीवने ॥ ८० ॥  
 मतः पुंस्येव चुलुकः प्रसृते भाजनान्तरे ।  
 चुलुकी शिशुमारे स्यात्कुण्डीभेदे कुलान्तरे ॥ ८१ ॥  
 चूतकोऽन्धौ रसाले च कपिपूर्वः कपीतने ।  
 चूलिका नाटकके स्यात्कर्णमूले च हस्तिनाम् ॥ ८२ ॥  
 जतुकाऽजिनपत्रायां जतुकं हिङ्गुलाक्षयोः ।  
 जनकः स्नातराजर्षौ जनकः करणान्तरे ॥ ८३ ॥  
 जम्बुकः फेरवेऽपि स्यान्नीचे पश्चिमदिक्पतौ ।  
 जालकः कोरके दम्भप्रभेदे जालिनीफले ॥ ८४ ॥  
 गिरिसारे जलौकायां जालिका विधिवत्स्त्रियाम् ।  
 भटानामश्मरचिताङ्गरक्षिण्यां च जालिका ॥ ८५ ॥

चित्रक-तिलकविशेष, ( न० ) चीता ( ओषधि ), अरंडवृक्ष, थाँवला, चीता ( सिंहभेद ) ( पुं० ) ॥ ७९ ॥	स्तियोंका कर्णमूल ( स्त्री० ) ॥ ८२ ॥
चीरक-विकारलेखन ( पुं० )	जतुका-चमगीदड पक्षी ( बाघल ), ( स्त्री० )
चीरिका भंभीरी-प्राणी ( स्त्री० )	जतुक-हींग, लाख, ( न० )
चुम्बक-कामीपुरुष, धूर्त, बहुविद्यो- पजीवी, ( पुं० ) ॥ ८० ॥	जनक-ज्ञानक्रियापुरुष, एकराजा, करण, ( पुं० ) ॥ ८३ ॥
चुलुक-पस्सो, पात्रविशेष, ( पुं० )	जम्बुक-गीदड, नीचपुरुष, वरुण, ( पुं० )
चुलुकी-शिशुमार-जलजन्तु, कुण्डी- भेद, कुलविशेष ( स्त्री० ) ॥ ८१ ॥	जालक-पुष्पकी बिनाखिलीहुई कली, दम्भविशेष, छोटी तोरईके बीज, ॥ ८४ ॥ लोहा या राँग, जोक, ( पुं )
चूतक-कूवां, आम कपि शब्दसे परे कपिचूतक-अँबाडा ( पुं० )	जालिका-पत्थरकी बनाई हुई जोधा- ओंकी अंगरक्षिणी, ( स्त्री० ) ॥ ८५ ॥
चूलिका-नाटकका एक अंग, ह-	



जाहको घोङ्गमार्जारखजाकातुण्डिकासु च ।

जीवको वृक्षभेदे स्यात्प्राणकेऽप्यहितुण्डिके ॥ ८६ ॥

पीतशाले क्षपणके वृद्धिजीविनि सेवके ।

जीविकामाहुराजीवे जीवन्त्यामपि जीविका ॥ ८७ ॥

झिलीका झिल्लिकाऽप्येव विलेपनमले स्मृतः ।

चीरिकायामपि भवेदातपस्य च रोचिषि ॥ ८८ ॥

दुच्छको गन्धकुट्यां स्याद्यवहाराऽभ्यवकाशके ।

दुण्डुकः शोणकेऽल्पे च क्रूरके त्वभिधेयवत् ॥ ८९ ॥

डिण्डिको नम्रके दार्ये स्त्रीचोरे तु रतात्परः ।

डिम्बिका जलबिम्बे स्यात्कोणके कामुकस्त्रियाम् ॥ ९० ॥

तण्डकोऽस्त्री तरुस्कन्धे समासप्रायवाचिके ।

गृहदारौ पुमांस्तु स्या त्फेनखंजनमायिषु ॥ ९१ ॥

जाहक—घोंख (जाहा), मार्जार, (पुं०)  
कडछी, कन्दूरी—औषधि, ( स्त्री )

जीवक—जीवक—वृक्ष, जिवानेवाला,  
सर्प पकड़नेवाला, ( पुं० ) ॥ ८६ ॥  
पीला सालका वृक्ष, जैनमुनि, बडी  
आयुवाला, सेवक, ( पुं० )

जीविका—आजीवन, गिलोय-बेल,  
( स्त्री० ) ॥ ८७ ॥

झिल्लि ( स्त्री ) का—भँभीरी-प्राणी-  
विशेष, विलेपनमल, धूपकी दीप्ति,  
( स्त्री० ) ॥ ८८ ॥

दुच्छक—मुरानामक गंधद्रव्य, व्यव-  
हार, अवकाश, ( पुं० )

दुण्डुक—सोना—वृक्ष, अल्प, ( पुं० )  
क्रूर, ( त्रि० ) ॥ ८९ ॥

डिण्डिक—बंदीजन, स्त्रीरत,  
रतडिण्डिक—स्त्रीचोर ( पुं० )

डिम्बिका—जलबिंब, वीणाआदिबाजा  
बजानेका गज, रति इच्छावाली स्त्री,  
( स्त्री० ) ॥ ९० ॥

तण्डक—वृक्षस्कन्ध, समासप्रायवाची,  
घरका वृक्ष, झाग, खंजन-पक्षी,  
मायावी—पुरुष, ( पुं० ) ॥ ९१ ॥

तर्ककः काङ्क्षिणि ख्यातस्तर्केऽर्के गृध्रपक्षिणि ।  
 तक्षको नागभेदे स्याद्वर्द्धकिद्रुमभेदयोः ॥ ९२ ॥  
 तारको दैत्यभित्कर्णधारयोर्दश तारकम् ।  
 ऋक्षे कनीनिकायां च तारकं तारिकाऽपि च ॥ ९३ ॥  
 तिलकं द्रुमभेदे च रोगे च तिलकालके ।  
 क्लीबं सौवर्चले क्लोमि ललामेऽस्त्री तु चित्रके ॥ ९४ ॥  
 तुलकः तुलकायां स्यात्तथा दधिकपक्षिणि ।  
 तुरुष्कः सिहके म्लेच्छभेदस्त्रीवासयोरपि ॥ ९५ ॥  
 तूलिका चित्रविन्यासलेखन्यां तूलतल्पयोः ।  
 त्रिशंकुर्नृपभेदेऽपि शलभे वृषदंशके ॥ ९६ ॥  
 दर्शकस्तु प्रतीहारे दर्शयितृप्रवीणयोः ।  
 दारको भेदकेऽपत्ये कूपके तु विपूर्वकः ॥ ९७ ॥

तर्कक-इच्छावाला, तर्क, सूर्य, गृध्र-  
 पक्षी, ( पुं० )

तक्षक-नागभेद, बढई, वृक्षभेद  
 ( पुं० ) ॥ ९२ ॥

ता ( रिका ) रक-एकदैत्य, नावको  
 चलानेवाला ( पुं० ) नेत्र, ( न० ) नक्षत्र,  
 नेत्रतारा, ( न० स्त्री० ) ॥ ९३ ॥

तिलक-वृक्षभेद ( तिल ), रोग,  
 शरीरपर तिलका श्यामचिह्न, ( न० )  
 कालानोन, फुफ्फुस, श्रेष्ठ, स्त्रियों-  
 का तिलकविशेष ( पुं० न० ) ९४

तुलक-तुली, दधिक ( पक्षिवि-  
 शेष ) ( पुं० )

२

तुरुष्क-हींग, म्लेच्छजाति, स्त्रियों-  
 का निवासस्थान, ( पुं० ) ॥ ९५ ॥

तूलिका-चित्रखेंचनेकी कलम, रुई,  
 शय्या, ( स्त्री० )

त्रिशंकु-एकराजा, टीडी, बिलाव  
 ( पुं० ) ॥ ९६ ॥

दर्शक-पौलिया मनुष्य, कुछभी दिखा-  
 नेवाला, चतुर, ( पुं० )

दारक-फाडनेवाला, सन्तान,

विदारक-नदीसूखनेपर जलकेलिये  
 खोदाहुवा खड्डा, ( पुं० ) ॥ ९७ ॥

दीपको वागलङ्कारे प्रदीपे दीप्तिकारके ।  
 दीप्यकं त्वजमोदे स्याद्यवानीबर्हिचूडयोः ॥ ९८ ॥  
 दूषिका लोचनमले तूलिकायां च दूषिका ।  
 द्रावकस्तु शिलाभेदे विदग्धे घोषकेऽपि च ॥ ९९ ॥  
 धनिकः साधुधान्याकधवेषु धनिका स्त्रियाम् ।  
 धावको जवके राजगतिकर्मणि योगिनि ॥ १०० ॥  
 धेनुका तु भवेद्वेनौ करिपत्नीप्रसूतयोः ।  
 धेनुकं करणे स्त्रीणां धेनुवृन्देऽपि धेनुकम् ॥ १०१ ॥  
 नग्नको बन्दिनि ग्रन्थे नग्ने गौर्यौ तु नग्निका ।  
 नन्दको हरिखड्गेऽपि हर्षके कुलपालके ॥ १०२ ॥  
 नरको निरयेऽपि स्यान्नरको दानवान्तरे ।  
 नर्तकः पोटगलके चारणे केलके नटे ॥ १०३ ॥

दीपक—वाणीका अलंकार ( दीपक नामक ), दीपक, प्रकाश करनेवाला ( पुं० )	धेनुका—गौ, हथिनी, प्रभूतिका स्त्री, ( स्त्री० )
दीप्यक—अजमोद—औषधि, अजवायन, मोरकी चोटी ( न० ) ॥ ९८ ॥	धेनुक—स्त्रियोंका उपस्करण, गौबोंका समूह, ( न० ) ॥ १०१ ॥
दूषिका—नेत्रमल, शय्यासाधन, ( स्त्री० )	नग्नक—बंदीजन, ग्रन्थ, नंगापुरुष, ( पुं० )
द्रावक—शिलाभेद, चतुर, तोरई ( पुं० ) ॥ ९९ ॥	नग्निका—कन्या ( स्त्री० )
धनि ( का ) क—साधुजन, धनियां, स्वामी, ( पुं० ) धनिका स्त्री, ( स्त्री० )	नन्दक—विष्णुका खड्ग, आनंददाता, कुलकी रक्षाकरनेवाला ( पुं० ) ॥ १०२ ॥
धावक—शीघ्रचलनेवाला, राजाकी गति कर्मवाला, योगी, ( पुं० ) १००	नरक—नरक—लोक, नरकनामक दानव, ( पुं० )
	नर्तक—नड या देवनल, चारण—जाति, केला—वृक्ष, नट, ( पुं० ) ॥ १०३ ॥

नर्तकी लासिकायां स्यात्करिण्यामपि नर्तकी ।  
 नायको नेतरि श्रेष्ठे हारमध्यमणावपि ॥ १०४ ॥  
 नालीकः पिण्डजेऽप्यज्ञे नालीकः शरशल्ययोः ।  
 नालीकं पद्मखण्डेऽपि नाडीकं सरसीरुहे ॥ १०५ ॥  
 निपाकः पवने स्वेदेऽप्यसत्कर्मफलेऽपि च ।  
 निर्मोको व्योम्नि सन्नाहे मोचने सर्पकञ्चुके ॥ १०६ ॥  
 वारकोऽश्वे महामात्ये हस्तिसङ्घेऽपि नीटकः ।  
 नीलिका नीलिकीक्षुद्ररोगसेफालिकासु च ॥ १०७ ॥  
 पताका स्याद्वैजयन्त्यां सौभाग्येऽप्यध्वजेऽपि च ।  
 पद्मकं पद्मकोशेऽपि करिबिन्दुषु पङ्कजे ॥ १०८ ॥  
 पराको व्रतमात्रेऽपि पराकः शयकेऽपि च ।  
 उभौ पर्यङ्कपल्यङ्कौ वृष्यां पर्यस्तिखण्डयोः ॥ १०९ ॥

नर्तकी—नृत्यकरनेवाली-स्त्री, हस्तिनी, ( स्त्री० )	सर्पकी काँचुली ॥ १०६ ॥ रोकनेवाला अश्व, बडामंत्री, ( पुं )
नायक—प्रेरणाकरनेवाला-पुरुष, श्रेष्ठ पुरुष, हारकेबीचकी मणि ( पुं० ) ॥ १०४ ॥	नीटक हस्तियुद्ध ( पुं० )
नालीक—पिण्डसे उत्पन्न होनेवाला, मूर्ख, नालीक—बाण, शल्य ( भाला ) ( पुं० )	नीलिका—नीलबडी—वृक्ष, क्षुद्ररोग, निर्गुण्डीवृक्ष, ( स्त्री० ) ॥ १०७ ॥
नालीक—कमलसमूह, ( न० )	पताका—इंद्रकी ध्वजा, सौभाग्य, नाट- कका अंग, ध्वजा—मात्र, ( स्त्री० )
नाडीक—कमल, ( न० ) ॥ १०५ ॥	पद्मक—कमलकोश, हस्तीका शरीरके बिन्दु, कमल, ( न० ) ॥ १०८ ॥
निपाक—वायु, पसीना, खोटाकर्मका फल ( पुं० )	पराक—व्रतमात्र, सोनेवाला ( पुं० )
निर्मोक—आकाश, कवच, छोडना,	पर्यङ्क—पल्यङ्क—शय्या, चटाई, बिछौना, टुकड़ा ( पुं० ) ॥ १०९ ॥

पार्श्वद्वारि सपक्षे च पक्षे पार्श्वे च पक्षकः ।

पाटकस्तु महाकिष्कौ वाद्येऽपि कटकान्तरे ॥ ११० ॥

अक्षादिचालने मूलद्रव्यापचयकूलयोः ।

पातुकः पतयालौ स्यात्प्रपाते जलहस्तिनि ॥ १११ ॥

पालंकः शाकभेदेऽपि शल्लकीवाजिपक्षिणि ।

पावकोऽग्नौ सदाचारे भल्लातकवितङ्कयोः ॥ ११२ ॥

चित्रकेऽप्यग्निमन्थेऽपि त्रिषु पाचनकारिणि ।

पिण्याकः शिहके हिङ्गौ तिलकल्केऽपि कुङ्कुमे ॥ ११३ ॥

पिनाको हरकोदण्डे शूलेऽस्त्री पांसुवर्षणे ।

पिष्टको यवधान्यादिचमसे चक्षुषो रुजि ॥ ११४ ॥

पुत्रकः शरभे पुत्रे धूर्ते वृक्षनगान्तरे ।

पुत्रिका पुत्तलीपुत्र्योस्तथा यावकतूलिके ॥ ११५ ॥

**पक्षक**—पसवाडाका दरवाजा, पक्षवाला,  
पक्ष, पसवाडा, ( पुं० )

**पाटक**—हस्तप्रमाण, वाजा, कंकणभेद  
॥ ११० ॥ पाशा आदिका डालना,  
मूलद्रव्यका खर्च, नदीके किनारे ( पुं० )

**पातुक**—पड़नेके स्वभाववाला, पर्वतमें  
गिरनेका स्थान, जलहस्ती, ( पुं० )  
॥ १११ ॥

**पालंक**—पालक नामका शाक, सेह-  
प्राणी, वाज पक्षी, ( पुं० )

**पावक**—अग्नि, सदाचार, भिलावा,  
वितंक वृक्ष, ॥ ११२ ॥ चीता  
औषधि, अरहं या अगेथु-वृक्ष,  
( पुं० ) पाचक औषधि ( त्रि० )

**पिण्याक**—गंधद्रव्यविशेष (शिलारस),  
हींग, तिलोंकी खली, केसर,  
( पुं० ) ॥ ११३ ॥

**पिनाक**—महादेवका धनुष, त्रिशूल,  
( पुं० न० ) धूलिउडानेवाला ( त्रि० )

**पिष्टक**—यवधान्यआदिका चमस ( अ-  
ग्निमें होमनेका द्रव्य ), नेत्ररोग,  
( पुं० ) ॥ ११४ ॥

**पुत्रक**—रोक्ष-पशु, पुत्र, धूर्त, वृ-  
क्षविशेष, पर्वतविशेष, ( पुं० )

**पुत्रिका**—पुतली-काष्ठआदिकी, पुत्री,  
जौकी तुली ( नाली ), ( स्त्री० )  
॥ ११५ ॥

**पुलकः** कृमिभेदे स्यान्मणिदोषे शिलान्तरे ।

गजान्नपिण्डे रोमाञ्चे गल्बर्कहरितालयोः ॥ ११६ ॥

**पुलाकस्तुच्छधान्ये** स्यात्संक्षेपे भक्तशिवथके ।

**पुष्पकं** तु कुबेरस्य विमाने रत्नकङ्कणे ॥ ११७ ॥

नेत्ररोगे च कासीसे चीरिकायां रसाञ्जने ।

मृदङ्गारशकट्यां च लोहकांस्ये च **पुष्पकम्** ॥ ११८ ॥

**पूर्णकः** स्वर्णचूडे स्यान्नासच्छिद्यं च **पूर्णिका** ।

**पृथुकश्चिपिटे** बाले **पृदाकुस्तु** सरीसृपे ॥ ११९ ॥

**पृदाकुर्वृश्चिकेऽपि** स्याद्याघ्रचित्रकयोरपि ।

उल्लके गजलाङ्गूलमूलप्रान्तेऽपि **पेचकः** ॥ १२० ॥

**पेटकोऽस्त्री** पुस्तकादेर्मञ्जूषायां कदम्बके ।

**प्रतीकः** प्रतिकूले त्रिष्वेकदेशविलोमयोः ॥ १२१ ॥

प्रमादेऽवयवे चाथ **प्रसेकः** सेचने च्युतौ ।

**प्राणकः** सत्त्वजातीये बोलके जीवकटुमे ॥ १२२ ॥

**पुलक**-कृमिविशेष, मणिदोष, एकप्रकारका पत्थर, हस्तीके अक्षका पिण्ड, रोमांच, मद्यपानपात्र, हरिताल (पुं०) ॥ ११६ ॥

**पुलाक**-तुच्छधान्य, संक्षेप, भानका मांड, (पुं०)

**पुष्पक** कुबेरका विमान, रत्नजटितकङ्कण, (न०) ॥ ११७ ॥ नेत्ररोग, कासीस, भंभीरी-प्राणी, रसोत, मिट्टीकी सिगडी, लोहा, कांसी-धातु (न०) ॥ ११८ ॥

**पूर्णक**-काबरी-पक्षी, (पुं०)

**पूर्णिका**-नाकछिदावाली, (स्त्री०)

**पृथुक**-चूडा-धानका, बालक, (पुं०)  
**पृदाकु**-सर्प, ॥ ११९ ॥ बीछ, बंधेरा, चीता, (पुं०) ।

**पेचक**-उल्ल-पक्षी, हस्तीकी पूँछका मूलभाग, (पुं०) ॥ १२० ॥

**पेटक**-पुस्तकआदिकोंकी सन्दूक, समूह, (पुं० न०)

**प्रतीक**-प्रतिकूल, एकदेश, विलोम (उलटा) ॥ १२१ ॥ प्रमाद, अवयव (अंग) (त्रि०)

**प्रसेक**-सेचन करना, गिरना, (पुं०)

**प्राणक**-प्राणीमात्र, बोलनामक द्रव्य, जीयापोता-वृक्ष (पुं०) ॥ १२२ ॥

प्रियकस्तु कदम्बे स्यादलिचित्रकुरङ्गयोः ।

प्रियङ्गौ पीतशाले च कुङ्कुमप्रिययोरपि ॥ १२३ ॥

फलकं चित्रविन्यासे पट्टिकाव्रणभेदयोः ।

वराको वाच्यवच्छोच्येऽनुकम्प्ये सङ्गरे पुमान् ॥ १२४ ॥

वसुकः शिवमह्यां स्यादर्कपर्णेऽपि रौमके ।

बहुकोऽर्के कर्कटके दात्यूहे जलखादके ॥ १२५ ॥

वारकोऽश्वविशेषे च गतावपि निषेधके ।

वार्द्धकं वृद्धसंघाते वृद्धत्वे वृद्धकर्मणि ॥ १२६ ॥

बालकोऽग्नौ शिशौ केशे वाजिवारणवालधौ ।

स्याद्बालकं तु ह्रीरे पारिहार्यागुलीयके ॥ १२७ ॥

बालिका बालुका बाला पिंछोलाकर्णभूषणे ।

बालुका सिकताऽपि स्याद्बालुकं त्वेलवालुके ॥ १२८ ॥

प्रियक—कदंब-वृक्ष भौरा, चित्रमृग,  
कंगुनीधान, विजयसार वृक्ष, केसर,  
प्रियवस्तु ( स्त्री० ) ॥ १२३ ॥

फलक—मुखादिपर चित्रविन्यास, पट्टी-  
काष्ठआदिकी, व्रणभेद, ( न० )

वराक—शोचकरनेयोग्य ( त्रि० ) द-  
याकरनेयोग्य, युद्ध ( पुं० ) ॥ १२४ ॥

वसुक—बडीमौलसिरी, आकके पत्ते,  
साँभरनमक, ( पुं० )

बहुक—आक, कर्कट—प्राणी, जलकाक,  
जलखादक—पक्षी ( पुं० ) ॥ १२५ ॥

वारक—अश्वविशेष, अश्वकी गतिवि-  
शेष, ( पुं० ) रोकनेवाला, ( त्रि० )

वार्द्धक—वृद्धसमूह, वृद्धपना, वृद्धका  
कर्म, ( न० ) ॥ १२६ ॥

बालक—मिलावाका वृक्ष, बालक, केश,  
अश्व हस्तीकी पूंछमें मोटाभाग, ( पुं० )

बालक—नेत्रबाला—औषध, पहुँचेका  
आभूषण, उँगलीका आभूषण, ( न० )  
॥ १२७ ॥

बालिका—बालुका, स्त्री १६ वर्ष-  
की, कडा, कर्णभूषण, ( स्त्री० )

बालुका—बाल—मिट्टी, ( स्त्री० )

बालुक—एलवा—ओषधी, ( न० )  
॥ १२८ ॥

वृश्चिकः शूककीटेऽपि दुणे राशयोषधीभिदोः ।

भस्मकं भस्मरोगे स्याद्विडङ्गकलघौतयोः ॥ १२९ ॥

भालाङ्को रोहिते शाकप्रभेदे कच्छपे हरे ।

महालक्षणसम्पूर्णपुरुषे करपत्रके ॥ १३० ॥

स्याद्भूतीकं तु भूनिम्बमालातृणककतृणे ।

यवान्यामपि कर्पूरे भूतीकं कद्रफलेऽद्वयोः ॥ १३१ ॥

भूमिका रचनायां स्यान्मूर्त्यन्तरपरिग्रहे ।

आमकः फेरवे धूर्ते सूर्यावर्तशिलान्तरे ॥ १३२ ॥

मण्डूको दर्दुरे बन्धप्रभेदे शोणकेऽप्यथ ।

मण्डूकपर्ण्या मण्डूकी मधुको यष्टिकाह्वये ॥ १३३ ॥

बन्दिपक्षिप्रभेदे च मधुपर्ण्या स्त्रियामपि ।

मल्लिको मल्लिका चैव राजहंसान्तरे द्वयम् ॥ १३४ ॥

वृश्चिक-केंचुवा ( कसर ), बीछ, वृधिकराशि, ओषधी विशेष, ( पुं० )

भस्मक-भस्मरोग, बायबिडंग, सुवर्ण ( न० ) ॥ १२९ ॥

भालाङ्क-हरीडा-वृक्ष, शाकभेद, कलुवा, महादेव, बडेलक्षणांसे पूर्णमनुष्य, करोत ( बढईका औजार ) ( पुं० ) ॥ १३० ॥

भूनिम्ब-चिरायता, बचकेसमान जलतृण, सुगन्ध-रैहिसतृण, अजवान, कपूर, कायफल, ( न० ) ॥ १३१ ॥

भूमिका रचना, खाँगबनाना, ( स्त्री० )

आमक-गीदड, धूर्त, सूर्यावर्त-मणि, शिलाभेद, ( पुं० ) ॥ १३२ ॥

मण्डूक-मैंडक, बन्धविशेष, सोनापाठा, ( पुं० )

मण्डूकी-मंडूकपर्णी, मुलहटी, ( स्त्री० )

मधु( का ) क-मुलहटी, ॥ १३३ ॥ बंदीजन, पक्षिविशेष, गिलोय, ( पुं० स्त्री० )

मल्लि( का ) क-राजहंस, ( पुं० स्त्री० ) ॥ १३४ ॥



मल्लिका तृणशून्येऽपि मीनमृत्पात्रभेदयोः ।

मशकः क्षुद्रजन्तूनां प्रभेदेऽपि गदान्तरे ॥ १३५ ॥

मातृका धात्रिकायां स्यात्करणे मातरि स्त्रे ।

मामकं ममतायुक्तं मातृभ्रातरि मामकः ॥ १३६ ॥

मालिका पुष्पमालायां मालिका सरिदन्तरे ।

मालिको गरुडेऽपि स्यान्मालिका कण्ठभूषणे ॥ १३७ ॥

मेचकः श्यामले बर्हिचन्द्रे ध्वान्तेऽथ मेचकम् ।

वाच्यवत्कृष्णवर्णे स्यान्मोचकः कदलीतरौ ॥ १३८ ॥

तत्प्रसूनेऽपि शिग्रौ च निर्मोचकविरागिणोः ।

मोदको न स्त्रियां खाद्यप्रभेदे हर्षकेऽन्यवत् ॥ १३९ ॥

यमकं संयमे शब्दाऽलङ्कारे यमजे त्रिषु ।

याजको यागशीले स्यात्पूजके राजकुञ्जरे ॥ १४० ॥

मल्लिका—मल्लिका ( मोगरा ) पुष्प,  
मच्छी, मिट्टीका पात्रविशेष, ( स्त्री० )

मशक—मच्छर, रोगविशेष ( पुं० )  
॥ १३५ ॥

मातृका—धाय ( दूधप्यानेवाली ),  
करण (साधक), माता, वर्णमाला,  
( स्त्री० )

मामक—ममतायुक्त द्रव्य, ( त्रि० )  
माताका भाई ( मामा ) ( पुं० )  
॥ १३६ ॥

मालिका—पुष्पमाला, नदीविशेष,  
( स्त्री० )

मालिक—गरुड ( पुं० ) मालिका  
कंठभूषण (माला) (स्त्री०) ॥ १३७ ॥

मेचक—श्यामवर्ण, मोरका चन्दा,  
( पुं० ) अन्धकार, ( न० )  
कालारंगवाला द्रव्य, ( त्रि० )

मोचक—केला—वृक्ष, ॥ १३८ ॥  
केलाका—पुष्प, सहजना—वृक्ष,  
छुडानेवाला, विरागी—पुरुष ( पुं० )

मोदक—खाद्यविशेष ( लङ् ) ( पुं० न० )  
आनन्ददेनेवाला ( त्रि० ) ॥ १३९ ॥

यमक—शब्दालंकार, ( पुं० ) किसी-  
द्रव्यका जोडा ( त्रि० )

याजक—यागशील—पुरुष, पूजाकरने-  
वाला, राजाओंमें श्रेष्ठ, ( पुं० )  
॥ १४० ॥

याज्ञिको याजके दमें यज्ञकार्योपजीविनि ।  
 युतकं यौतके युग्मे चलनाग्रेऽपि संशये ॥ १४१ ॥  
 वस्त्रान्तरे वधूवस्त्राञ्चले युक्ते तु वाच्यवत् ।  
 यूथिका तु मता यूथ्यामम्लानकुसुमे कचित् ॥ १४२ ॥  
 रक्तकोऽम्लानबन्धूकरक्तवस्त्रे तु रागिणि ।  
 रजको धावके पुंसि कीरेऽपि रजकः पुमान् ॥ १४३ ॥  
 रसिका तु रसालायां काञ्चीरसनयोरपि ।  
 लेखाकेदारयो राजसर्षपेऽपि च राजिका ॥ १४४ ॥  
 रात्रकस्तत्र यो वेद्यागृहे गमितवत्सरः ।  
 रात्रकं पञ्चरात्रेऽथ रुचको मातुलङ्गके ॥ १४५ ॥  
 रुचकं मातुलद्रव्ये दन्ते सौवर्चलसजि ।  
 उत्कटे चाश्वभूषायां विडङ्गेकण्ठभूषणे ॥ १४६ ॥

याज्ञिक-यज्ञकरानेवाला, कुशा, यज्ञ-  
 कार्यसे आजीवन करनेवाला, ( पुं )  
 युतक-वरवधूके देनेको वस्त्रादि,  
 दो वस्तु ( जोडा ),  
 स्त्रियोंके उत्तम जंघावस्त्रका अग्र-  
 भाग संदेह, ॥ १४१ ॥  
 वस्त्रविशेष, वधूवस्त्रका अंचल, युक्त  
 ( संयुक्त ) ( स्त्री० )  
 यूथिका-जूही-वृक्ष, अच्छाखिलाहु  
 वा-पुष्प, ( स्त्री० ) ॥ १४२ ॥  
 रक्तक-कांटेदारसेवती, दुपहरिया पुष्प,  
 रक्तवस्त्र, लेहकरनेवाला, ( पुं० )  
 रजक-धोबी, सूवा-( तोता ) पक्षी,  
 ( पुं० ) ॥ १४३ ॥

रसिका-शिखरन, ऊस-( गन्ना ),  
 करधनी ( कटिभूषण ), जिह्वा,  
 ( स्त्री० )  
 राजिका-रेखा ( लकीर ), श्वेत स-  
 रसौ, राई. ( स्त्री० ) ॥ १४४ ॥  
 रात्रक-जो वेद्याके घरमें एक वर्ष  
 रहे वह पुरुष ( पुं० )  
 रात्रक-पञ्चरात्रके ग्रंथविशेष ( पु० )  
 रुचक-विजोरा-वृक्ष, ॥ १४५ ॥  
 धतूरा-झाड़, दाँत, कालानमक,  
 सज्जीखार, उत्कट, रक्तका अग्रभूषण,  
 बायविडंग, कटिभूषण, ॥ १४६ ॥

बीजपूरेऽपि दीनारे रोचनादेववृक्षयोः ।  
 रुण्डिका रणभूर्द्वारपिण्डिकादृतिकार्थिका ॥ १४७ ॥  
 जमदग्निप्रियायां च हरेण्वामपि रेणुका ।  
 लम्पाकः पुंसि देशे स्याल्लम्पको लम्पटे त्रिषु ॥ १४८ ॥  
 लासको लसके लास्यकारकेऽपि मयूरके ।  
 लूनकः स्यात्पशौ भिन्ने लोचको नेत्रतारके ॥ १४९ ॥  
 मांसपिण्डे च पिण्डे च योषिद्भालविभूषणे ।  
 कज्जले नीलचोले च मौर्व्या भ्रूक्षथचर्मणि ॥ १५० ॥  
 कदल्यां कर्णपूरे च निर्बुद्धिन्तृषु लोचकः ।  
 चञ्चकस्तु खले धूर्ते गृहवभ्रौ च फेरवे ॥ १५१ ॥  
 बन्धकः स्याद्विनिमये वसासत्योस्तु बन्धकी ।  
 बन्धूकं बन्धुजीवे स्याद्बन्धूकः पीतशालके ॥ १५२ ॥

सुवर्णसिका, कुंकुम-केसरआदि, देवदार-वृक्ष ( न० )	नुषकी प्रत्यंचा, भृकुटीकी ढीली च- मडो, ॥ १५० ॥
रुण्डिका-रणभूमि, द्वारपिंडी(देहली), दूती, मागनेवाली, (स्त्री०) ॥१४७॥	केला, कर्णका आभूषण, निर्बुद्धि मनुष्य ( पुं० )
रेणुका-जमदग्निऋषिकी स्त्री, मटर- धान्य, ( स्त्री० )	चञ्चक-खल ( खोटामनुष्य ), धूर्त मनुष्य, गृहमें पालाहुवा
लम्पाक-देशविशेष ( पुं० ) लम्पट, ( त्रि० ) ॥ १४८ ॥	नीला ( प्राणी ), गीदड, ( पुं० ) ॥ १५१ ॥
लासक-शोभावान, नृत्यकरनेवाला, मोर, ( पुं० )	बन्धक-दोवस्तुवोका बदलाकरना, ( गिरवी ) ( पुं० )
लूनक-विदारणकिया पशु, ( पुं० )	बन्धकी-वसा, व्यभिचारिणी स्त्री, ( स्त्री० )
लोचक-नेत्रका तारा ॥ १४९ ॥	बन्धूक-दुपहरिया पुष्प, ( न० )
मांसपिण्ड, पिण्ड, स्त्रीकेभालका आभूषण, कज्जल, नीला वस्त्र, ध-	पीला सालका वृक्ष ( पुं० ) ॥१५२॥

वर्तको वर्तिका पक्षिप्रभेदेऽश्वखुरे पुमान् ।  
 वर्णको बन्दिनि कवौ चारणेऽस्त्री तु वर्णके ॥ १५३ ॥  
 विलेपनादौ चित्रादौ लिपिमस्यां च चन्दने ।  
 वर्णिका कठिनीमस्योर्लेखन्यामपि वर्णिका ॥ १५४ ॥  
 वल्मीको वामल्लरे स्यान्मुनिरोगविशेषयोः ।  
 वार्षिकं त्रायमाणायां वर्षाकालभवेन्यवत् ॥ १५५ ॥  
 गोवाहके तु वाहीको वाहीको पृक्देशजे ।  
 वाहीको वाहिकोऽश्वे च देशभेदे ह्ये पुमान् ॥ १५६ ॥  
 वाहीकं वाहिकं द्वे च न द्वयोर्हिर्जुवीरयोः ।  
 वितर्कः संशयेऽप्यूहे विचारे च कचिन्मतः ॥ १५७ ॥  
 विपाकः परिणामेऽपि खेदे खादुनि दुर्गतौ ।  
 विवेकस्तु विचारे स्याज्जलद्रोण्यां रहस्यपि ॥ १५८ ॥

वर्तक-घोडेका मुम्, ( पुं० )  
 वर्तिका-वत्तख पक्षी, ( स्त्री० )  
 वर्णक-बन्दीजन, कवि, चारण, का-  
 लापीलारंग ( पुं० न० ) ॥ १५३ ॥  
 विलेपनआदि, चित्रआदि; लिखने-  
 कीस्याही, चंदन, ( पुं० न० )  
 वर्णिका-लिखनेकी खडिया मिट्टी,  
 लिखनेकी स्याही, कलम ( स्त्री० )  
 ॥ १५४ ॥  
 वल्मीक-बाँबी, मुनि, रोगविशेष,  
 ( पुं० )  
 वार्षिक-त्रायमाण नामक-औषधि,  
 ( न० ) वर्षाकालमें होनेवाला द्रव्य,  
 ( त्रि० ) ॥ १५५ ॥

वाहीक-बैलआदि से बोझा बहने-  
 वाला, पृक्देशमें होनेवाला ( पुं० )  
 वाही ( हि ) क-अश्वभेद, देशभेद,  
 अश्वमात्र, ( पुं० ) ॥ १५६ ॥  
 वाही ( हि ) क-हींग, कालीमिरच,  
 ( न० )  
 वितर्क-संदेह, खंडनमंडन, विचार  
 ( पुं० ) ॥ १५७ ॥  
 विपाक-परिणाम फल, खेद, खा-  
 दिष्ट वस्तु, दुर्गति, ( पुं० )  
 विवेक-विचार, जलका बडा  
 पात्र, एकांत, ( पुं० ) ॥ १५८ ॥

वृषाङ्कः शङ्करे साधौ भलातकमहोक्षयोः ।

वैजिकं शिमुतैलेऽपि हेतौ सद्योऽङ्कुरेऽपि च ॥ १५९ ॥

व्यलीकं विप्रियाकार्यवैलक्ष्येष्वपि पीडने ।

क्लीबमेव व्यलीकस्तु नागरे वाच्यलिङ्गकः ॥ १६० ॥

शंखकं वलये कंबौ शिरोरोगे च शङ्खकः ।

शम्बुको गजकुम्भान्ते शम्बूकः शुक्तिकान्तरे ॥ १६१ ॥

दैत्यभेदेऽपि शम्बूकः शम्बूका जलशुक्तिषु ।

शलाका तु शरे शल्ये चातपत्राणपञ्जरे ॥ १६२ ॥

तर्कुकाष्ट्यां च मदने शारिकाश्वाविदोरपि ।

शलकी श्वाविद्वमयोः शायकः शरखङ्गयोः ॥ १६३ ॥

शार्ककः शर्करापिण्डे दुग्धफेने च शार्ककः ।

शिशुकः शिशुमारे च शिशौ पश्चादुल्लपिनि ॥ १६४ ॥

वृषाङ्कः—महादेव, साधु, भिलावा, शलाका—बाण, शल्य ( भाला ),  
बडावैल ( साँडवैल ) ( पुं० ) छत्र, पिंजरा, ॥ १६२ ॥ चरखा,

वैजिक—सहजनेका तेल, हेतु ( का-  
रण ), तत्कालके वृक्षका अंकुर  
मैनफल-वृक्ष, मैना-पक्षी, सह-  
प्राणी, ( स्त्री० )

( न० ) ॥ १५९ ॥

व्यलीक—अप्रिय, अकार्य, विलक्ष-  
णता, पीडा, ( न० ) नागर ( विद-  
ग्धजन ) ( त्रि० ) ॥ १६० ॥

शंखक—कंकण, शंख, ( न० ) शिर-  
का रोग, ( पुं० )

शम्बूक—हस्तिकुम्भका प्रान्त, शुक्तिका  
जीव ॥ १६१ ॥ दैत्यभेद, ( पुं० )

शम्बूका—जलशुक्ति ( शंखला ) ( स्त्री० )

शलकी—सेह—जीव, वृक्षविशेष  
( साल ) ( स्त्री० )

शायक—बाण, खड्ग ( पुं० ) ॥ १६३ ॥

शार्कक—शकरका पीडा, दूधके  
झाग, ( पुं० )

शिशुक—शिशुमार ( मच्छ ), बालक,  
शिशुमारके आकार मछली ( पुं० )

॥ १६४ ॥

शीतकः सुस्थिते शीतकालेऽनागतदर्शिनि ।

शूककः प्रावटप्रहौ शूककः पारदेऽपि च ॥ १६५ ॥

कृतमालस्तु शम्याकः शम्याकस्तर्कुधृष्टयोः ।

सम्पर्कः स्यान्निधुवने संसर्गे स्पर्शनेऽपि च ॥ १६६ ॥

सरकः स्यादविच्छिन्नपान्थपङ्क्तौ शरे पुमान् ।

अस्त्रियां सीधुपाने च सीधुपात्रे च सीधुनि ॥ १६७ ॥

सस्यको नालिकेरादिसारे खड्गे मणावपि ।

सूचकः खलकाकौतुसूचीषु शुनि बोधके ॥ १६८ ॥

सूतकं जन्मनि क्लीबं सूतकः पारदेऽस्त्रियाम् ।

सृदाकुर्दावकुलिशाऽनिलेषु प्रतिसूर्यके ॥ १६९ ॥

सेचकः सेक्तरि भवे त्रिपु पुंसि तु वारिदे ।

सेवको वलकीभान्तवक्रकाष्ठेऽनुजीविनि ॥ १७० ॥

शीतक-सुस्थित, शीतकाल, आल-  
सी, ( पुं० )

शूकक-गहरा कुंवाँ, पारा, ( पुं० )  
॥ १६५ ॥

शम्याक-अमलतास वृक्ष, ताकू,  
धृष्ट पुरुष ( पुं० )

सम्पर्क-मैथुन, संसर्ग, स्पर्श, ( पुं० )  
॥ १६६ ॥

सरक-चलनेवालोंकी अविच्छिन्न  
पंक्ति, शर, ( पुं० ) सीधु ( म-  
दिरा या आसव ) का पीना,  
सीधुका पात्र, सीधु ( आसव ),  
( पुं० न० ) ॥ १६७ ॥

सस्यक-नारियल आदिका सार, खड्ग,

मणिविशेष ( हरीमणि ) ( पुं० )

सूचक-खल ( चुगलखोर मनुष्य ),  
काग, बिलाव, सूवा ( ई ), कुत्ता,  
सूचना करनेवाला, ( पुं० ) ॥ १६८ ॥

सूतक-जन्म होना ( न० ) पारा  
( पुं० न० )

सृदाकु वनअग्नि, वज्र, वायु, प्रति-  
सूर्य ( वर्षाकालमें सूर्यकेपास कदा-  
चित् दीखनेवाला सूर्य प्रतिबिंबके  
सदृश ) ( पुं० ) ॥ १६९ ॥

सेचक-सेचनकरनेवाला, भव, ( त्रि० )  
मेघ, ( पुं० )

सेवक-वीणाका डेढाकाष्ठ या तूबा,  
नौकर, ( पुं० ) ॥ १७० ॥

स्यमीका नीलिकायां स्यात्स्यमीको नाकुवृक्षयोः ।

स्वस्तिको मङ्गलद्रव्ये चतुष्कगृहभेदयोः ॥ १७१ ॥

स्वस्तिकः पिष्ठकस्याऽपि प्रभेदे रततालिके ।

स्थासको गन्धवज्रायां जलादेरपि बुद्बुदे ॥ १७२ ॥

सेनायां समवेतेऽपि सेनारक्षेऽपि सैनिकः ।

हारकस्तु शठे चैरे गद्यविज्ञानभेदयोः ॥ १७३ ॥

हुडुको वाद्यभेदे स्याद्वात्यूहे च मदोत्कटे ।

हेरुको बुद्धभेदेऽपि महाकालगणे तथा ॥ १७४ ॥

क्षारको जालके पक्षिमत्स्यादिपिटकेऽपि च ।

धुरकः कोकिलाक्षे स्याद्गोक्षुरे तिलकद्रुमे ॥ १७५ ॥

कचतुर्थम् ।

अस्त्री त्वङ्गारकोद्गारे पुंसि भौमे कुरण्टके ।

अङ्गारिका त्विक्षुकाण्डे तथा किंशुककोरके ॥ १७६ ॥

स्यमीका—नीलीका वृक्ष, ( स्त्री० )  
बांवी, वृक्ष, ( पुं० )

स्वस्तिक—मङ्गलद्रव्य, चतुष्क ( आ-  
सन ), गृहभेद, ॥ १७१ ॥ पीठी  
विशेष, रततालिका, ( पुं० )

स्थासक—एक प्रकारका आभूषण,  
जल आदिका बुद्बुदा ( पुं० ) १७२

सैनिक—सेना, मिलाहुवा, सेनाकी  
रक्षाकरनेवाला, ( पुं० )

हारक—शठ, चोर, गद्य ( काव्य )  
विशेष, विज्ञान विशेष, ( पुं० ) १७३

हुडुक—वाद्यविशेष, जलकाक, मदो-  
न्मत्त, ( पुं० )

हेरुक—बुद्धभेद, महाकालका गण,  
( पुं० ) ॥ १७४ ॥

क्षारक—पुष्पकी नवीनकली, पक्षी,  
मच्छा आदिके पकड़नेकी पिटारी  
( पुं० )

धुरक—तालमखानाके बीज, गोखरू,  
तिलक वृक्ष ( पुं० ) ॥ १७५ ॥

कचतुर्थ ।

अङ्गारक—आधा जलाहुवाकाष्ठ आदि,  
चिनगारी, ( पुं० न० ) भौम-  
ग्रह, कोरंटा, ( पुं० )

अङ्गारिका—ऊस-गन्ना, केसूकी कली,  
( स्त्री० ) ॥ १७६ ॥

पुमान्(लि)लमको भेके मधुकेऽम्बुजके खरे ।  
 पिकेऽप्यलिपकस्तु स्यात्पिकालिरतहिण्डके ॥ १७७ ॥  
 अथाऽश्मन्तकमुद्धाने मल्लिकाच्छदनेऽपि च ।  
 आकालिकं क्षणध्वंस्यन्यकालकृतसम्भवे ॥ १७८ ॥  
 आकल्पकस्तमोमोहग्रन्थावत्कलिकामुदोः ।  
 विशेष्याखनिकस्तु स्याच्चोरमूषकदंष्ट्रिषु ॥ १७९ ॥  
 आक्षेपकस्तु पवनव्याधौ व्याधे च निन्दके ।  
 भवेदुत्कलिका हेलोत्कण्ठासलिलबीचिषु ॥ १८० ॥  
 एडमूकस्त्रिषु ख्यातः शठे वाक्श्रुतिवर्जिते ।  
 पुनर्नवाकारवेलपर्णासेषु कठिलुकः ॥ १८१ ॥  
 कनिष्ठाऽङ्गुलिकानेत्रतारयोस्तु कनीनिका ।  
 कपर्दकस्तु भूतेश जटाजूटे वराटके ॥ १८२ ॥

अ(लि)लमक-मेंडक, महुवा-वृक्ष,  
कमल केसर, (पुं०)

अलिपक-कोयल-पक्षी, भौरा, खी-  
चोर (पुं०) ॥ १७७ ॥

अश्मन्तक-चूल्हा, मल्लिकाका पत्ता,  
(न०)

आकालिक-क्षणमात्रमें नष्ट होने-  
वाला, विनासमय होनेवाला  
(पुं०) ॥ १७८ ॥

आकल्पक-तमोगुण, मोह, ग्रन्थि,  
उत्कंठा (उत्सेर) (पुं०)

आखनिक-मिसा, खोदनेवाला मनुष्य,  
चोर, मूसा (चूहा), सूकर (पुं०)

आक्षेपक-वायु, व्याधि, व्याधा  
(हिंसक), निदाकरनेवाला ॥ १७९ ॥

उत्कलिका-क्रीडा, उत्कण्ठा, जलके  
तरंग, (स्त्री०) ॥ १८० ॥

एडमूक-शठ, वाणी और कर्णेन्द्रि-  
यसे रहित (गूंगा) (पुं०)

कठिलुक-साँठी, करेला, एकशाक  
या तुलसी (पुं०) ॥ १८१ ॥

कानीनिका-कनिष्ठा (सबसे छोटी)  
उँगली, नेत्रतारा, (स्त्री०)

कपर्दक-शिवका जटाजूट, कौडी,  
(पुं०) ॥ १८२ ॥



कर्कोटकः काद्रवेयप्रभेदे श्रीफलेऽपि च ।  
 कलबिङ्गो भवेद्ग्रामचटकेऽपि कलिङ्गके ॥ १८३ ॥  
 काकरूक उल्लकेऽश्वे स्त्रीजि तेऽपि दिगम्बरे ।  
 दम्मेऽपि काकरूकस्तु त्रिषु भीरुदरिद्रयोः ॥ १८४ ॥  
 कार्पटिकोऽन्यमर्मज्ञे छात्रे स्यात्कालदेशिनि ।  
 कुरबकः पुंसि शोणञ्जिण्टिकाऽम्लानभेदयोः ॥ १८५ ॥  
 कृकवाकुस्ताम्रचूडे कृकलासे च केकिनि ।  
 कोशातकः कचे ज्योत्स्नीपटोल्यां घोषकेऽस्त्रियाम् ॥ १८६ ॥  
 कौकुट्टिको दाम्भिके स्याददूरप्रेरितेक्षणे ।  
 कौलेयको भवेदिन्द्रे महाकामिकुलीनयोः ॥ १८७ ॥  
 ग्रामणीभण्डिनाराचोपधाने तु खरालिकः ।  
 भवेद्गुणनिकाऽभ्यासे शून्याङ्के पाठनिश्चये ॥ १८८ ॥

कर्कोटक—नागविक्रोष, विल्वका  
 वृक्ष, (पुं०)

कलबिङ्ग—घरमें रहनेवाला चिडा  
 (चिडिया) इन्द्रजव, (पुं०) ॥ १८३ ॥

काकरूक—उल्लू-पक्षी, अश्व, स्त्रीसे  
 जीताहुवा मनुष्य, नम्र-मनुष्य, दर्म,  
 (पुं०) डरपोरजन, दरिद्र-जन (त्रि०)  
 ॥ १८४ ॥

कार्पटिक—अन्यके मर्मको जानने-  
 वाला, विद्यार्थी, समयको बताने-  
 वाला, (पुं०)

कुरबक—भींडी, सोनापाठा, कटसरैया  
 और सेवतीका भेद, (पुं०)  
 ॥ १८५ ॥

कृकवाकु—मुर्गा, किरलकांट (गिर-  
 घट), मीर, (पुं०)

कोशातक—केश, (पुं०) कोशातकी  
 परवल, झिमगोलता या तोरई,  
 (स्त्री०) ॥ १८६ ॥

कौकुट्टिक—नजदीकसे देखनेवाला  
 मनुष्य, दंभी-मनुष्य, (पुं०)

कौलेयक—इन्द्र, महाकामी-पुरुष,  
 उत्तम कुलमें होनेवाला, (पुं०) १८७

खरालिक—ग्राममें मुख्य-मनुष्य,  
 सिरस-वृक्ष, बाण, तकिया, (पुं०)

गुणनिका—अभ्यासकरना, शून्यअंक,  
 पाठका निश्चय, नृत्यकरना, (स्त्री०)  
 ॥ १८८ ॥

नृत्यान्तरे त्वप्यथो गोकण्टको गोकुरे पुमान् ।  
 गवां गमनसम्भूतशुष्कस्थपुटकेऽपि च ॥ १८९ ॥  
 गोकुणिकः केकरे स्यात्पङ्कस्यगव्यपक्षके ।  
 गोमेदकः पीतमणौ काकोले पत्रकेऽपि च ॥ १९० ॥  
 स्मृता घर्घरिका क्षुद्रघण्टिकावाद्यभेदयोः ।  
 मृष्टधान्ये सरिद्धेदे तथा वादित्रदण्डके ॥ १९१ ॥  
 चांडालिकौषधीभेदे गौरीकिंदिरयोरपि ॥  
 जटारुको जलानूके नागयष्टिपटीरयोः ॥ १९२ ॥  
 जटारुकस्तथाशाखाहरिणेऽपि तुलाधरे ।  
 जर्जरीकस्त्रिषु भवेद्बहुच्छिद्रे जरातुरे ॥ १९३ ॥  
 जीवन्तिका तु जीवाभ्यशाकवन्दागुडूचिषु ।  
 जैवातृकः शशिन्यायुष्मति दिव्यौषधे कृशे ॥ १९४ ॥

गोकण्टक-गोखरु औषधि, गौर्वोके  
 गमनसे उत्पन्न हुवा और सूखा  
 ऊँचानीचा स्थल, (पुं०) ॥ १८९ ॥

गोकुणिक-काणा-मनुष्य, गौके की  
 चमें धमनेपर नहीं निकालनेवाला,

गोमेदक-पीलीमणि, या स्थावरकाला  
 विष, काकोली, तेजपात, (पुं०)  
 ॥ १९० ॥

घर्घरिका-छोटीघंटा, वाद्यविशेष,  
 भूनाहुवा धान्य, नदीविशेष (घाघर),  
 वाद्यका दंड (दाँडा) (स्त्री०)  
 ॥ १९१ ॥

चंडालिका-औषधिविशेष, गौरी,  
 चंडाल वादित्र (बाजा) (स्त्री०)

जटारुक-जलके स्वभाववाला, नागके  
 आकार एक बेल, खैरका वृक्ष  
 ॥ १९२ ॥ बन्दर, तराजू धारण  
 करनेवाला, (पुं०)

जर्जरीक-बहुत छिद्रोंवाला, बुडा-  
 पासे व्याकुल (पुं०) ॥ १९३ ॥

जीवन्तिका-जीयापोता-शाक, अ-  
 मरबेल, गिलोय, (स्त्री०)

जैवातृक-चंद्रमा, बडी आयुवाला  
 मनुष्य, दिव्य औषध, दुबला-  
 मनुष्य, (पुं०) ॥ १९४ ॥

तर्तरीकः पारगे स्यात्तर्तरीकं बहित्रके ।

तिक्तशाकस्तु वरुणे खदिरे पत्रसुन्दरे ॥ १९५ ॥

त्रिवर्णकं त्रिकटुके त्रिफलायां च गोक्षुरे ।

दन्दशूकस्तु यक्षे स्याद्दन्दशूको भुजङ्गमे ॥ १९६ ॥

दलाढकः स्वयंजाततिले चाम्पेयकुन्दयोः ।

शिरीषपृश्निकावात्याखातकेषु महत्तरे ॥ १९७ ॥

गैरिके करिकर्णे च फेनेऽम्बिकणसंहतौ ।

द्रोणे च कार्यकूटे च क्वचिद्दृष्टो दलाढकः ॥ १९८ ॥

दासेरकस्तु करमे दासीपुत्रेऽपि धीवरे ।

नियामकः पोतवाहे कर्णधारे नियन्तरि ॥ १९९ ॥

निर्ग्रन्थिकस्तु क्षपणे निष्फलेऽप्यपरिच्छदे ।

निश्चारकोऽनिले स्वैरे पुरीषस्य क्षयेऽपि च ॥ २०० ॥

तर्तरीक—पारपहुंचनेवाला, ( पुं० )  
जहाज आदि ( न० )

तिक्तशाक—वर्णा, खैर, पत्रमुदर,  
( शिमा शाक ) ( पुं० ) ॥ १९५ ॥

त्रिवर्णक—सूँठ-मिरच-पीपल, हरड-  
बहेडा-आंवला, गोखरू, ( न० )

दन्दशूक—यक्ष-जाति, सर्प, ( पुं० )  
॥ १९६ ॥

दलाढक—स्वयं उत्पन्न हुये तिल,  
चंपा, कुन्द, सिरस-वृक्ष, पृष्ठिपर्णा,  
वायुसमूह, खोदाहुवा, बहुत बडा,  
॥ १९७ ॥ गेरू, हाथीका कान,  
झाग, अम्बिकर्णोंका समूह, काग-

पक्षां, कार्यमें झूट बोलनेवाला  
( पुं० ) ॥ १९८ ॥

दासेरक—ऊँट, दासीपुत्र, झीमर-  
जाति, ( पुं० )

नियामक—नावसे दुष्टजन्तुओंको ब-  
चानेवाला मछाह, नौका चलाने-  
वाला, प्रेरणाकरनेवाला, ( पुं० )  
॥ १९९ ॥

निर्ग्रन्थिक—क्षपणक-मुनिभेद, नि-  
ष्फल, बख्तादिसे रहित, ( पुं० )

निश्चारक—वायु, यथेच्छ-मनुष्य,  
विष्ठाका नष्ट होना, ( पुं० ) २००

पञ्चालिका भवेद्वस्त्रपुत्रिकागीतभेदयोः ।

पिण्डीतकस्तु तगरे मदनाद्रौ फणिज्जके ॥ २०१ ॥

स्तनवृन्ते पिप्पलकः क्लीवं सीवनसूत्रके ।

पुण्डरीकोऽग्निदीप्ताङ्गे व्याघ्रभेदेक्षुभेदयोः ॥ २०२ ॥

पुण्डरीकं सितच्छत्रे सिताम्भोजेऽपि भेषजे ।

पुष्कलको गन्धमृगे कीलके क्षपणेऽपि च ॥ २०३ ॥

क्लीवं पूर्णानकं पूर्णपात्रे पटहपात्रयोः ।

पोतक्यां विचलत्पोताधाने पोतीनकं मतम् ॥ २०४ ॥

प्रकीर्णकं ग्रन्थभेदे प्रशस्ते चामरे ह्ये ।

प्रवर्तकः शराघाते बर्हे पुष्पभुजङ्गयोः ॥ २०५ ॥

फर्फरीकश्चपेटे स्यात्फर्फरीकं तु मार्दवे ।

बकेरुका बकीभेदे वातावर्जितपल्लवे ॥ २०६ ॥

पञ्चालिका-वस्त्रकीपुतली, गीतभेद, ( स्त्री० )	पूर्णानक-पूर्णपात्र, पटह ( वाजा ), पात्र, ( न० )
पिण्डीतक-तगर-वृक्ष, मैत्र-वृक्ष, जं- भीरीभेद, ( पुं० ) ॥ २०१ ॥	पोतीनक-पोतकी ( शकुनचिडिया ), छोटी मछलियोंवाला कुंड आदि, ( न० ) ॥ २०४ ॥
पिप्पलक-स्तनोंका अग्रभाग, ( पुं० ) सीनेके लिये सूत्र, ( न० )	प्रकीर्णक-ग्रंथविशेष, श्रेष्ठ, चँवर, अश्व, ( न० )
पुण्डरीक-अग्निसे दीप्त अंगवाला, व्याघ्रभेद, इक्षु ( गन्ना ) भेद, ( पुं० ) ॥ २०२ ॥	प्रवर्तक-बाणका घाव, मोरपंख, पुष्प, सर्प, ( पुं० ) ॥ २०५ ॥
पुण्डरीक-सफेदछत्र, सफेदकमल, औषधि, ( न० )	फर्फरीक-थप्पड, ( पुं० ) कोमलता न० )
पुष्कलक-गन्धमृग, कीला, क्षपण ( मुनि ) ( पुं० ) ॥ २०३ ॥	बकेरुका-बकीभेद ( बटेर-पक्षी ), वा- युसे हिलायेहुए पत्र ( स्त्री० ) ॥ २०६ ॥

कपर्दरज्जुराजीवबीजकोशे वराटकः ।  
 बरण्डकस्तु मातङ्गवेद्यां यौवनकण्टके ॥ २०७ ॥  
 तथा संवर्तुले बर्त्तरूकस्तु सरिदन्तरे ।  
 जलावटे काकनीडे दण्डवासिन्यपीप्यते ॥ २०८ ॥  
 बर्बरीको महाकाले केशविन्यासशाकयोः ।  
 बलाहको वारिवाहे नागदैत्यान्तरे गिरौ ॥ २०९ ॥  
 वाणिजिको वणिज्यंके मृगाङ्गे कामिनीरते ।  
 और्वेऽनुरागबाधे च मतो वाणिज्यकः पुमान् ॥ २१० ॥  
 वृन्दारकः सुरे श्रेष्ठे मनोज्ञे यूथघातिनि ।  
 अथो बृहतिका कण्टकारीवस्त्रान्तरुषु ॥ २११ ॥  
 भट्टारकः सुरे पुंसि क्षमापाले च तपोधने ।  
 भयानकस्तु शार्दूले सैहिकेये विभीषणे ॥ २१२ ॥

बराटक—कौडी, रज्जु, कमलका बीज  
 कोश, ( पुं० )

बरण्डक—हस्तीकी वेदी ( बैठनेका  
 ऊँचा स्थान ), जवानीसे मुखपर  
 होनेवाला फोड़ाविशेष, ॥ २०७ ॥  
 गोल आकारवाला, ( पुं० )

बर्त्तरूक—नदीविशेष, जलका खड़ा,  
 कागका धूसला, दंडवासी, ( पुं० )  
 ॥ २०८ ॥

बर्बरीक—बड़ा काल, केशरचना,  
 शाकविशेष, ( पुं० )

बलाहक—मेघ, नागविशेष, दैत्य-  
 विशेष, पर्वत, ( पु० ) ॥ २०९ ॥

वाणिजिक—वणिक चिह्न, चन्द्रमा,  
 स्त्रीमें आसक्त, जलका अग्नि, प्रीतिसे  
 बहने योग्य ( पुं० ) ॥ २१० ॥

वृन्दारक—देवता, श्रेष्ठ, सुंदर, समू-  
 हको मारनेवाला ( पुं० )

बृहतिका—कटेहली, वस्त्रभेद, ऊरु  
 ( जंघा ) ( स्त्री० ) ॥ २११ ॥

भट्टारक—देवता, राजा, मुनि, ( पुं० )

भयानक—व्याघ्र, राहु, भयंकर,  
 ( पुं० ) ॥ २१२ ॥

भार्याटिको भवेद्भार्यानिर्जिते हरिणान्तरे ।  
 अमरकोऽग्रे मधुपे च जाले चूर्णकुन्तले ॥ २१३ ॥  
 मण्डोदकं चित्ररागे भवेदालिम्पनेऽपि च ।  
 मतं मण्डलकं बिम्बे कुष्ठभेदे च दर्पणे ॥ २१४ ॥  
 मयूरकोऽप्यपामार्गे तुत्थके तु मयूरकम् ।  
 मदनद्वौ मरुवकः पुष्पभेदे फणिज्जके ॥ २१५ ॥  
 माणवको हारभेदे बाले कुपुरुषे वटौ ।  
 मृष्टेरुको वदान्ये स्यान्मृष्टाशिन्यतिथिद्विषि ॥ २१६ ॥  
 रतर्द्धिकं सुखस्नानेऽप्यष्टमङ्गलके दिने ।  
 राधरङ्कुन्तु ना सीरे शीकरे जलदोपले ॥ २१७ ॥  
 लतालिकस्तु लाटाग्रे वज्रमुस्तौ च पुंस्ययम् ।  
 लालाटिकः स्यात्करणांतरेऽप्यालिङ्गनान्तरे ॥ २१८ ॥

भार्याटिक-स्त्रीसे जीताहुवा-पुरुष, मृष्टेरु-अतिउदार, शोधित अन्न मृगभेद, ( पुं० )	आदि भोजन करनेवाला, अभ्या-
अमरक-मेघ, भौरा, जाल, जुल्फ-केश, ( पुं० ) ॥ २१३ ॥	गतसे द्वेष करनेवाला, ( पुं० ) ॥ २१६ ॥
मण्डोदक-विचित्ररंग, लीपनेका द्रव्य ( न० )	रतर्द्धिक-सुखस्नान, अष्टमंगलक दिन ( न० )
मण्डलक-प्रतिविम्ब, कुष्ठभेद, दर्पण ( शीशा ) ( न० ) ॥ २१४ ॥	राधरङ्ग-आगेचलनेवाला, जलकी
मयूरक-ऊँगा या चिरचटा, ( पुं० ) नीलाथोथा, ( न० )	कुँवार, ओला, ( पुं० ) ॥ २१७ ॥
मरुवक-मैनवृक्ष, या धतूरा, मरुवा पुष्पभेद, वनतुलसी, ( पुं० ) ॥ २१५ ॥	लतालिक-आम्रभेद, हीरा, नागर-मोथा ( पुं० )
माणवक-हारभेद, बालक, कुपुरुष, वटी ( गोली ) ( पुं० )	लालाटिक-चित्र भेद, आलिङ्गनभेद, ॥ २१८ ॥

कार्याक्षमे प्रभोर्भावदर्शिन्यपि तु वाच्यवत् ।  
 त्रिषु लेखीलको लेखहारे यश्च विलेखयेत् ॥ २१९ ॥  
 स्वहस्तपरहस्तेन लेखे लेखीलकः स च ।  
 वितुन्नकं तु धान्याके मतं ज्ञाटामलेऽपि च ॥ २२० ॥  
 विदूषकश्चाटुवटौ परनिन्दाविधायिनि ।  
 विनायको जिने बुद्धे ताक्ष्ये हेरम्बविघ्नयोः ॥ २२१ ॥  
 गुरौ विमानकं तु स्यान्माने शून्येऽभिधेयवत् ।  
 विमानकं देवयाने सप्तभूमगृहे स्त्रियाम् ॥ २२२ ॥  
 विशेषकोऽस्त्री तिलके विशेषावाहके द्रुमे ।  
 वैतालिको बोधकरे खेडूताले च कीर्तितः ॥ २२३ ॥  
 वैदेहको वाणिजके शूद्राद्वेश्यासुतेऽपि च ।  
 वैनाशिकस्तु क्षणिके परतन्त्रोर्णनाभयोः ॥ २२४ ॥

कार्य करनेमें असमर्थ, ( पुं० )	विमानक—देवयान ( विमान ), सात
खामीका भाव जाननेवाला ( त्रि० )	मंजलका मकान, ( पुं० न० )
लेखीलक—लेखको पहुँचानेवाला,	॥ २२२ ॥
( त्रि० ) अपने तथा दूसरेके हाथसे	विशेषक—तिलक, ( पुं० न० ) वि-
लिखाहुवा लेखपर लिखनेवाला	शेषता करनेवाला, ( तिलक-वृक्ष
( पुं० ) ॥ २१९ ॥	( पुं० )
वितुन्नक—धनियाँ, भुँई आँवला	वैतालिक—बोध करानेवाला, क्रीडा-
( न० ) ॥ २२० ॥	करके तालदेना ( पुं० ) ॥ २२३ ॥
विदूषक—मीठा बोलनेवाला लटका,	वैदेहक—वाणिजक ( वनजी करनेवाला )
दूसरोंकी निंदा करनेवाला-मनुष्य,	शूद्रसे उत्पन्न हुवा वेश्यापुत्र
( पुं० )	( पुं० )
विनायक—जिन-भगवान्, बुद्ध-भग-	वैनाशिक—क्षणमें उत्पन्न और नष्ट
वान्, गरुड, गणेश, विघ्न, गुरु	होनेवाला, पराधीन, मकड़ी-जन्तु,
( पुं० ) ॥ २२१ ॥	( पुं० ) २२४ ॥

शतानीको मुनेर्भेदे वृद्धे शालावृकः शुनि ।

शृगाले वानरे वाऽथ बिले चान्द्रे शिलाटकः ॥ २२५ ॥

शृङ्गाटको भवेद्वारिकण्टके च चतुष्पथे ।

सङ्घाटिका युगे नासाकुट्टिनीजलकण्टके ॥ २२६ ॥

सन्तानिका दधिक्षीरसारे मर्कटजालके ।

संदंशिका तु मुकुटीलोहयन्त्रप्रभेदयोः ॥ २२७ ॥

स्यात्सुप्रतीक ईशानदिग्गजे दिव्यविग्रहे ।

शृगालिका शिवायां स्यान्नासादपि पलायने ॥ २२८ ॥

क्लीबे सैकतिकं मातृयात्रामङ्गलसूत्रयोः ।

त्रिषु संन्यस्तसंदेहजीविक्षपणिकेष्विदम् ॥ २२९ ॥

पुमान् सैकतिको गन्धकुट्ट्यां सिन्धोश्च सैकते ।

स्वभार्या परहस्तस्थां यो न साधयितुं क्षमः ॥ २३० ॥

शतानीक-एकमुनि, वृद्ध, ( पुं० )

शालावृक-कुत्ता, गीदड, वन्दर, ( पुं० )

शिलाटक-बिल, चन्द्रकान्तमणि,

या चंद्रशाला, ( पुं० ॥ २२५ ॥

शृङ्गाटक-मानू जलका कांटा ( सिं-

घाडा ), चोराहा अर्थात् चार तर-

फका रास्ता, ( पुं० )

संघाटिका-जोडा, नासिका, कुट्टिनी-

स्त्री, सिंघाडा, ( स्त्री० ) २२६ ॥

सन्तानिका-दधि दुग्धका सार,

वन्दरका जाल, ( स्त्री० )

संदंशिका-संडासी, लोहका यंत्र

विशेष, ( स्त्री० ) ॥ २२७ ॥

सुप्रतीक ईशानदिशामें होनेवाला

हस्ती, सुंदर अंगवाला मनुष्य

( पुं० )

शृगालिका-गीदडो, भयसे भागना,

( स्त्री० ) ॥ २२८ ॥

सैकतिक-मातृयात्रा, मंगलमूत्र,

( न० ) संन्यासी, संदेहजीवी, मुनि,

( त्रि० ) ॥ २२९ ॥ मुरा नाम औषध,

समुद्रका रेतीला स्थल ( पुं० ) दूस्-

रेके हाथमें गई हुई अपनी स्त्रीको

लेनेमें जो समर्थ न हो वह, भोजन-

केलिये हुवा संन्यासी ॥ २३० ॥



तत्र संन्यासमात्रेण क्षुधा च कृतभोजने ।

सोमवल्कः पुमान् श्वेतखदिरे कट्फलैऽपि च ॥ २३१ ॥

सौगन्धिकं तु कङ्कारे पद्मरागे च कत्तृणे ।

गन्धके गान्धिके पुंसि त्रिषु सौगन्धिकं क्रमात् ॥ २३२ ॥

कपञ्चमम् ।

अनेडमूकः कितवे त्रिषु वाक्श्रुतिवर्जिते ।

स्यादाच्छुरितकं हासनखाघातविशेषयोः ॥ २३३ ॥

मातोपकारिका राजमन्दिरे पिष्टकान्तरे ।

उपकर्त्र्यामपीयं स्यादथ स्यात्कटखादकः ॥ २३४ ॥

खादके काचकलशे बलिपुष्टशृगालयोः ।

स्यात्कक्षावेशको धीरे शुद्धान्तोद्यानपालयोः ॥ २३५ ॥

अपि षिङ्गे कवौ रङ्गाजीविनि द्वारपालके ।

स्यात्कृमीकण्टकं चित्राविडङ्गोदुम्बरेऽपि ॥ २३६ ॥

**सोमघल्क**—सफेद खरै, कायफल ( पुं० ) ॥ २३१ ॥

**उपकारिका**—माता, राजमन्दिर, पिष्टका भेद, उपकारकरनेवाली स्त्री,

**सौगन्धिक**—संन्यासमय खिलनेवाला ( स्त्री० )

कमल, माणिक-रत्न, सौगन्धिक-  
तृण या गंजाण, ( न० ) गन्धक,  
गांधी, ( पुं० ) गंधवाला द्रव्य  
( त्रि० ) ॥ २३२ ॥

**कटखादक**—खानेवाला काचकलश,  
काग, गीदड, ( पुं० ) ॥ २३४ ॥

**कक्षावेशक**—धीर, रनवास और ब-  
गीचाकी रक्षा करनेवाला, ॥ २३५ ॥

**कपञ्चम** ।

**अनेडमूक**—छलकरनेवाला, वाणी और  
कर्णेन्द्रियसे रहित, ( त्रि० )

धूर्त, कवि, कपडा रंगनेवाला  
( रंगरेज ), द्वारपाल ( पुं० )

**आच्छुरितक**—हँसना, नखोंसे आघात  
विशेष, ( न० ) ॥ २३३ ॥

**कृमि(मी)कण्टक**—चीता, वायविडंग,  
गूलर, ( न० ) ॥ २३६ ॥

गोजागरिकमित्याहुर्मङ्गले कन्दुकारके ।  
 कण्ठीविशेषखद्योतविद्युत्सु चिलिमीलिका ॥ २३७ ॥  
 शृङ्गाटके जलगृहे पृश्न्यां च जलकण्टकः ।  
 जलतापिक इलीशकाकोलीमत्स्ययोर्मतः ॥ २३८ ॥  
 भवेज्जलकरङ्कुस्तु नालिकेरफलेऽम्बुदे ।  
 कंजे जललतायां च भवेन्नवफलिका पुनः ॥ २३९ ॥  
 नव्ये भव्ये प्रसूनादौ नवजातरजःस्त्रियाम् ।  
 नागवारिकमिच्छन्ति हस्तिपे राजहस्तिनि ॥ २४० ॥  
 ताक्ष्ये गणस्थराजेऽपि चित्रमेखलके क्वचित् ।  
 शोधन्याभिङ्गुदे लोकयात्रायां व्यवहारिका ॥ २४१ ॥  
 स्याद्ब्रीहिराजिकः पुंसि कामिनीचीनधान्ययोः ।  
 शतपर्विका च दूर्वायां वचायां शतपर्विका ॥ २४२ ॥

गोजागरिक—मंगल, (खिन्नबनानेवाला), (न०)	कन्दुकारक	नवफलिका—नवीन और सुन्दर पुष्प- आदि, प्रथमऋतुधर्मवाली स्त्री (स्त्री०) ॥ २४० ॥
चिलिमीलिका कण्ठीविशेष, पटवी- जना (जुगनु), बिजली, (स्त्री०) ॥ २३७ ॥		नागवारिक—फीलवान, राजहस्ती, गरुड गणराज, चित्रमेखलक (मोर- पक्षी) (पुं०)
जलकण्टक—सिघाड़ा, जलगृह, छोटे अंगवाला, (पुं०)		व्यवहारिका—नीली—औषध, गोंद- नी, लोकाचार, (स्त्री०) ॥ २४१ ॥
जलतापिक—काकोलीभेद, मत्स्य (पुं०) ॥ २३८ ॥		ब्रीहिराजिक—दारुहलदी, चीनाधा- न्य, (पुं०) ॥ २४२ ॥
जलकरङ्क—नारियलकाफल, मेघ, कमल, जललता, (पुं०) ॥ २३९ ॥		शतपर्विका—द्वय, वच—औषध (स्त्री०)

शीतचम्पकशब्दोऽयमातर्पणकदीपयोः ।

सुवसन्तकमिच्छन्ति वासन्त्यां मदनोत्सवे ॥ २४३ ॥

स्याद्धेमपुष्पिका यूथ्यां चम्पके हेमपुष्पकः ।

कषष्ठम् ।

ग्राममद्गरिका शृङ्ग्यां ग्रामयुद्धे च दृश्यते ॥ २४४ ॥

भवेन्मदनशलाका तु सार्या कामोदयौषधौ ।

भवेन्मातुलजे धूर्तफले मातुलपुत्रकः ॥ २४५ ॥

लूतामर्कटिका पुत्र्यां नवमालप्लवङ्गयोः ।

श्लोकच्छायाहरे चोरे भवेद्वर्णविलोडकः ॥ २४६ ॥

सिन्दूरतिलको नागे सिन्दूरतिलकस्त्रियाम् ।

चतुर्मासोपवासी यः स स्यात्स्नानचिकित्सकः ॥ २४७ ॥

शीतचम्पक—आतर्पण ( तृप्तिकरने-  
वाली औषधी ), दीप ( चंपा ) ( पुं० )

सुवसन्तक—कस्तूरमोगरा, मदनउ-  
त्सव, ( पुं० ) ॥ २४३ ॥

हेमपुष्पिका—जूही, ( स्त्री० )

हेमपुष्पक—चम्पा ( पुं० )

कषष्ठम् ।

ग्राममद्गरिका—शृङ्गी-मत्स्य, ग्राम-  
युद्ध, ( स्त्री० ) ॥ २४४ ॥

मदनशलाका—मैना—पक्षी, कामो-  
दीपकऔषधि, ( स्त्री० )

मातुलपुत्रक—मामाकापुत्र, धतूराका  
फल, ( पुं० ) ॥ २४५ ॥

लूतामर्कटिका—पुत्री, ( स्त्री० )

लूतामर्कटक—नवीनमालावाला, व-  
न्दर, ( पुं० )

वर्णविलोडक—श्लोकछायाको हरने-  
वाला, चोर, ( पुं० ) ॥ २४६ ॥

सिन्दूरतिलक—हस्ती, ( पुं० )

सिन्दूरतिलका—सिन्दूरतिलकवाली  
स्त्री, ( स्त्री० )

स्नानचिकित्सक—चातुर्मासका उप-  
वास करनेवाला, ( पुं० ) ॥ २४७ ॥

तपस्विपुष्पयोश्चैव मतं स्नानचिकित्सकम् ॥ २४८ ॥

इति कविपण्डितश्रीश्रीधरसेनविरचिते मुक्तावलीत्यपराभिधाने-  
विश्वलोचने स्वरकाद्यादिकान्तवर्गः ।

### अथ खान्तवर्गः ।

खैकम् ।

खमाकाशे दिवि सुखे बुद्धौ संवेदने पुरे ।

शून्यवदिन्द्रियक्षेत्रे कुशाहलफले क्वचित् ॥ १ ॥

खद्वितीयम् ।

उखा निरुद्धभार्यायामुखा स्थाल्यामपि स्मृता ।

नखस्तु करजे शुक्तौ गन्धद्रव्ये नखी नखम् ॥ २ ॥

न्युङ्क्तः सम्यग्मनोज्ञे च साम्नः षट्प्रणवेष्वापि ।

प्रेङ्क्षाः पर्यटने नृत्ये दोलायां वाजिनां गतौ ॥ ३ ॥

स्नानचिकित्सक-तपस्वी, पुष्प,  
( पुं० न० ) ( ॥ २४८ ॥

इस प्रकार कविपण्डित श्रीश्रीधरसेन-  
विरचित मुक्तावली ऐसा दूसरा-  
नामवाला विश्वलोचनकी  
भाषाटीकामें स्वरकाद्या-  
दिकान्त कांतवर्ग  
समाप्तहुवा ॥

### अथ खान्तवर्गः ।

खैक ।

ख-आकाश, खर्ग, सुख, बुद्धि, पीडा,  
पुर, पोल ( शून्य ) वाला द्रव्य,

इन्द्रिय, क्षेत्र, कुशा, हलकी फाल,  
( न० ) ॥ १ ॥

### खद्वितीय ।

उखा-अनिरुद्धकी स्त्री, स्थाली (तंदुल  
आदि पकानेका वर्तन ) ( स्त्री० )

नख-नख ( नाखून ) सीपी, ( पुं० )  
गन्धद्रव्य, नख ( स्त्री० न० ) ॥ २ ॥

न्युङ्क्त-बहुत सुन्दर, सामवेदके छः  
अङ्कार, ( पुं० )

प्रेङ्क्षा-देशान्तरोंमें जाना, नृत्य, हिं-  
दोला, अश्वोंकी गतिविशेष, ( स्त्री० )

॥ ३ ॥

चिह्ना गत्यन्तरे नृत्ये शूकशिम्ब्यां च दृश्यते ।

मुखं वक्त्रे निःसरणेऽप्युपायाऽऽरम्भयोरपि ॥ ४ ॥

लेखो लेख्ये सुरे लेखा रेखाराजीलिपिष्वपि ।

शङ्खः कम्बुललाटास्थिनखीनिधिषु न स्त्रियाम् ॥ ५ ॥

शाखा स्यात्पल्लवे वेदविभागेऽप्यन्तिके भुजे ।

शाखा पक्षान्तरे चाथ शिखा शाखाम्ररश्मिषु ॥ ६ ॥

शिखा शिखायां चूडायां चूडायां च शिखण्डिनः ।

ज्वालायां लाङ्गलिक्यां च सखा मित्रसहाययोः ॥ ७ ॥

सुखं शर्मण्यपि स्वर्गे सुखा पुर्यां प्रचेतसः ।

खतृतीयम् ।

गोमुखं कुटिलागारे वाद्यभाण्डोपलेपयोः ॥ ८ ॥

चिह्ना—गतिविशेष, नृत्य, कौच,  
( स्त्री० )

मुखे—मुख, गृहद्वार, उपाय, आरंभ,  
( न० ) ॥ ४ ॥

लेख—लिखने योग्य, देवता, ( पुं० )

लेखा—रेखा, पंक्ति, लेख, ( स्त्री० )

शंख—शंख, ललाटका अस्थि, नखी  
( गंधद्रव्य ), खजाना भेद ( पुं०  
न० ) ॥ ५ ॥

शाखा—टहनी या पल्लव, वेदविभाग,  
समीप, भुजा ( बाहु ), पक्षवि-  
शेष, ( स्त्री० )

शिखा—शाखा, अप्रभाग, किरण  
( स्त्री० ) ॥ ६ ॥

शिखा—वृक्षकी जड़, चोटी, मोरकी  
चोटी, अम्रिकी ज्वाला, कल्हारी-  
वृक्ष, ( स्त्री० )

सखा—मित्र, सहायक, ( पुं० ) ॥ ७ ॥

सुख—कल्याण, स्वर्ग, ( न० )

सुखा वरुणकी पुरी ( स्त्री० )

खतृतीय ।

गोमुख—टेडाघर, बाजाका भांडा,  
लेपन, ( न० ) ॥ ८ ॥

त्रिशिखो रक्षसो भेदे क्लीबं भूषात्रिशूलयोः ।  
 दुर्मुखो मुखरे नागराजे शाखामृगाश्वयोः ॥ ९ ॥  
 प्रमुखः प्रथमे श्रेष्ठे मयूखो ज्वालरुक्मे ।  
 स्कन्दे तर्के विशाखः स्याद्विशिखा भे कठिलके ॥ १० ॥  
 विशिखस्तोमरे बाणे विशिखा खनिरध्ययोः ।  
 नलिकायां च विशिखा वैशाखो राधमन्ययोः ॥ ११ ॥  
 सुमुखस्ताक्षर्यतनये पण्डिते भुजगान्तरे ॥ १२ ॥

खचतुर्थम् ।

भवेदग्निमुखो देवे द्विजे पावकसम्भवे ।  
 भल्लातके त्वग्निमुखी कचिदग्निमुखोऽपि च ॥ १३ ॥  
 लाङ्गलिक्यां त्वग्निशिखा कुङ्कुमेऽग्निशिखं स्मृतम् ।  
 इन्दुलेखा शशिकलाऽमृतासोमलताखपि ॥ १४ ॥

त्रिशिख-एकराक्षस, ( पुं० ) आभू- पण, त्रिशूल ( ०न ),	वैशाख-वैशाख मास, दधि मथनेका, दंडा ( रई ) ( पुं० ) ॥ ११ ॥
दुर्मुख-बहुत बोलनेवाला ( त्रि० ) नागराज ( नागभेद ) या अनंत, बन्दर, घोडा, ( पुं० ) ॥ ९ ॥	सुमुख-गरुडका पुत्र, पंडित, सर्पभेद ( पुं० ) ॥ १२ ॥
प्रमुख-पहला, श्रेष्ठ, ( पुं० )	खचतुर्थम् ।
मयूख-ज्वाला, शोभा, किरण, ( पुं० )	अग्निमुख-देवता, ब्राह्मण, कसूँभा, ( पुं० )
विशाख-स्वामिकार्त्तिक, तर्क, ( पुं० )	अग्निमुखी(ख)-भिलावा, ( स्त्री० न० ) ॥ १३ ॥
विशिखा विशाखा नामक नक्षत्र, करेला-शाक, ( स्त्री० ) ॥ १० ॥	अग्निशिखा-कलिहारी, ( स्त्री० ) केसर, ( न० )
विशिखा-तोमर ( गुर्ज ), बाण, ( पुं० ) खान-चांदी आदिकी, गली, नाली, ( स्त्री० )	इन्दुलेखा-चन्द्रकला, गिलोय, सोम- लता, ( स्त्री० ) ॥ १४ ॥

पुंसि पञ्चनखः कूर्मे गजे गोधादिषु क्वचित् ।  
 बद्धशिखोच्चटायाम् स्याद्बाले बद्धशिखस्त्रिषु ॥ १५ ॥  
 महाशङ्खो नरास्थि स्यान्निधिसङ्ख्याप्रभेदयोः ।  
 शिलीमुखो भवेद्भृङ्गे मार्गणे च शिलीमुखः ॥ १६ ॥

खपंचमम् ।

स्यान्मलिनमुखः प्रेते गोलाङ्गुले खलेऽनले ।  
 मतः शीतमयूखोऽपि शशिकर्पूरयोरयम् ॥ १७ ॥  
 सर्वतोमुखमाख्यातं क्लीबमाकाशपाथसोः ।  
 क्षेत्रज्ञविधिरुद्रेषु स पुमान् सर्वतोमुखः ॥ १८ ॥  
 इति विश्वलोचने खान्तवर्गः ॥

### अथ गान्तवर्गः ।

गैकम् ।

गो गन्धर्वे गणेशेऽर्के गं गीते शास्त्रगातरि ।  
 गौः पुमान् वृषभे स्वर्गे खण्डवज्रहिमांशुषु ॥ १ ॥

पंचनख—कछवा, हस्ती, गोधा (गोह)  
 आदि, (पुं० स्त्री०)

बद्धशिखा—गुंजा (चिरमठी) (स्त्री०)  
 बालक, (त्रि०) ॥ १५ ॥

महाशंख—मनुष्यका अस्थि, खजाना-  
 भेद, संख्याभेद, (पुं०)

शिलीमुख—भौरा, बाण, (पुं०) ॥ १६ ॥  
 खपंचम ।

मलिनमुख—प्रेत, गौकी पूंछ, खल-  
 मनुष्य, अग्नि, (पुं०)

शीतमयूख—चंद्रमा, कपूर (पुं०)  
 ॥ १७ ॥

सर्वतोमुख—आकाश, जल, (न०)  
 आत्मा, ब्रह्मा, रुद्र, (पुं०) ॥ १८ ॥  
 इसप्रकार विश्वलोचनकी भाषाटी-  
 कामें खान्तवर्ग समाप्त हुआ ।

### अथ गान्तवर्गः ।

गैक ।

ग—गन्धर्वे, गणेश, सूर्य, (पुं०)  
 गीत, शास्त्रका गानेवाला, (न०)  
 गो—बैल, स्वर्ग, खंड (टुकड़ा), वज्र,  
 चंद्रमा, (पुं०) ॥ १ ॥

स्त्री गवि भूमिदिग्नेत्रवाग्वाणसलिले स्त्रियः ॥ २ ॥

गद्वितीयम् ।

अगः स्यान्नगवद्वृक्षे शैले भानुभुजङ्गयोः ।

अङ्गा नीवृत्पभेदे स्युरङ्गो देशेङ्गमन्तिके ॥ ३ ॥

गात्रोपायाप्रधानेषु प्रतीकेष्वङ्गवत्यपि ।

अङ्ग संबोधनेऽसङ्ख्यं पुनरर्थप्रमोदयोः ॥ ४ ॥

इङ्गः स्यादिङ्गिते ज्ञाने जङ्गमाद्भुतयोरपि ।

खगो विहङ्गे विशिखे खगः सूर्ये सुरे ग्रहे ॥ ५ ॥

खङ्गः खङ्गिनि निखिंशे खङ्गिशृङ्गे जिनान्तरे ।

गाङ्गः षडानने भीष्मे गङ्गाभूते तु वाच्यवत् ॥ ६ ॥

चङ्गस्तु शोभने दक्षे टङ्गोऽस्त्री स्यात्खनित्रके ।

तथैवास्त्रान्तरेऽप्यस्त्री जङ्घायां खङ्गभेदके ॥ ७ ॥

गो-गाँ, भूमि, दिशा, नेत्र, वाणी, इंग-चेष्टित, ज्ञान, जंगम, अद्भुत(पुं०)  
(स्त्री०) जल, ( स्त्री० बहुवचनान्त ) खग-पक्षी, वाण, सूर्य, देवता, ग्रह,  
॥ २ ॥ ( पुं० ) ॥ ५ ॥

गद्वितीय ।

अग-[ नगकेसमान ] वृक्ष, पर्वत, खङ्ग-गँडा, खङ्ग ( तलवार ), गैडाका  
सूर्य सर्प, ( पुं० ) सीग, जिनभेद ( बुद्ध ) ( पुं० )  
अंग-देशभेद ( पुं० बहुवचनान्त ) गांग-खामिकास्तिक, भीष्म, ( पुं० )  
देश ( पुं० ) समीप, ( न० ) ॥ ३ ॥ गंगासे उत्पन्नहुए ( त्रि० ) ॥ ६ ॥  
शरीर, उपाय, अप्रधान, मूर्ति, चंग-सुन्दर, चतुर, ( पुं० )  
अंगवाला, ( त्रि० ) टंग-खोदनेका औजार, अस्त्रभेद,  
अंग-संबोधन, 'पुनः' अव्ययका अर्थ, पिडुली, खङ्गभेद, ( पुं० न० )  
आनंद, ( अव्यय ) ॥ ४ ॥ ॥ ७ ॥



उन्नते वाच्यवत्तुङ्गस्तुङ्गः पुन्नागशैलयोः ।

वर्बरानिशयोस्तुङ्गी त्यागो दाने च वर्जने ॥ ८ ॥

दुर्गः स्यादुर्गमे दुर्गा चण्डीनीलिक्योर्मता ।

नगस्तु पर्वते वृक्षे नगो भानुभुजङ्गयोः ॥ ९ ॥

नागः पन्नगपुन्नागनागकेसरदन्तिषु ।

नागदन्तकजीमूतमुस्तके क्रूरकर्मणि ॥ १० ॥

देहाऽनिलान्तरे श्रेष्ठे श्रेष्ठ एवोत्तरस्थितः ।

नागं तु सीसके रङ्गे स्त्रीबन्धकरणान्तरे ॥ ११ ॥

पिङ्गः पिशङ्गे पिङ्गी तु शम्यां पिङ्गं तु बालके ।

पिङ्गा रामठनील्यां स्यादुमारोचनयोरपि ॥ १२ ॥

पूगस्तु निकुरम्बे स्यात्पूगः क्रमुकपादपे

फलगुर्मलप्वामारुयाता निष्फले फल्गु वाच्यवत् ॥ १३ ॥

तुङ्ग—ऊँचा, ( त्रि० ) चंपा, पर्वत, ( पुं० )  
तुङ्गी—वर्बरी ( तिलवणी ) शाक,  
हलदी, ( स्त्री० )

त्याग—दान वर्जना, ( पुं० ) ॥ ८ ॥

दुर्ग—दुर्गमस्थान ( किला ) ( पुं० )

दुर्गा—चंडी ( देवी ), नीलीका वृक्ष,  
( स्त्री० )

नग—पर्वत, वृक्ष, सूर्य, सर्प, ( पुं० ) ॥ ९ ॥

नाग—सर्प चंपा, नागकेसर, हस्ती,  
हाथी दाँत, मेघ, नागरमोघा, क्रूर-  
कर्म करनेवाला, ॥ १० ॥ शरीरमें  
रहनेवाला एक वायु, श्रेष्ठ, किसी

शब्दके आगे जुडा हुआ श्रेष्ठको ही  
कहनेवाला, ( पुं० ) सीसा, राँग,  
स्त्रियोंके बाँधनेका उपकरण ( न० )  
॥ ११ ॥

पिङ्ग—पिङ्गलवर्ण ( पुं० ) पिङ्गी जाँट-  
वृक्ष, ( स्त्री० ) बालक, ( न० )

पिङ्गा—हींग, नीला—वृक्ष, उमा ( देवी )  
गोरोचन, ( स्त्री० ) ॥ १२ ॥

पूग—समूह, सुपारीका वृक्ष, ( पुं० )

फलगु—कट्फर वृक्ष, ( स्त्री० ) निष्कल  
( निःसार ) ( त्रि० ) ॥ १३ ॥

भगं तु ज्ञानयोनीच्छायशोमाहात्म्यमुक्तिषु ।

ऐश्वर्यवीर्यवैराग्यधर्मश्रीरत्नभानुषु ॥ १४ ॥

भङ्गस्तरङ्गरुभेदे दम्भे जयविपर्यये ।

भङ्गा शणाख्यसस्ये स्याद्भ्रागो रूपार्धकांशयोः ॥ १५ ॥

एकदेशे च भाग्ये च विपूर्वस्तु विभञ्जने ।

भृगुः शुके प्रपाते च जमदग्नी पिनाकिनि ॥ १६ ॥

भृङ्गः पुष्पत्वपे खिङ्गे तथा धूम्याटपक्षिणि ।

नपुंसकं तु भृङ्गं स्यात्केशराजभृगूटयोः ॥ १७ ॥

पुंसि भोगः सुखेऽपि स्यादहेश्च फणकाययोः ।

निवेशे गणिकादीनां भोजने पालने धने ॥ १८ ॥

मार्गोऽग्रहायणे वाटे कस्तूरीविषयोरपि ।

मृगः कुरङ्गेऽपि पशौ मृगयामृगशीर्षयोः ॥ १९ ॥

भग-ज्ञान, योनि, इच्छा, यश,  
माहात्म्य, मुक्ति, ऐश्वर्य, वीर्य,  
वैराग्य, धर्म, श्री ( सम्पत्ति ),  
रत्न, सूर्य, ( पुं० न० ) ॥ १४ ॥

भङ्ग-तरङ्ग, रोगभेद, दम्भ, हारना,  
( पुं० )

भङ्गा-भङ्ग, ( स्त्री० )

भाग-किसी वस्तुका आधाभाग, बाँटा  
( हिस्सा ) ॥ १५ ॥ एकदेश,  
भाग्य, ( पुं० ) और विपूर्वक  
अर्थात् 'विभाग' विभञ्जन ( तोड़ना ),

भृगु-शुक्र-ग्रह, पर्वतमें नहीं ठहरनेकी

जगह, जमदग्नि-ऋषि, महादेव,  
( पुं० ) ॥ १६ ॥

भृङ्ग-भौंरा, कामीपुरुष ( धूर्त ),  
पपीहा-पक्षी, ( पुं० ) भँगरा,  
दालचीनी ( न० ) ॥ १७ ॥

भोग-सुख, सर्पका फण और शरीर,  
वेद्या आदिका भोगना, भोजन,  
पालन, धन, ( पुं० ) ॥ १८ ॥

मार्ग-मार्गशिर-मास, मार्ग, कस्तूरी,  
विष, ( पुं० )

मृग-हरिण, पशु, मृगया ( शिकार ),  
मृगशिर नक्षत्र ॥ १९ ॥

हस्तिभेदेऽपि याच्नायां मृगी स्यान्नायिकान्तरे ।  
प्रशस्तरथसाराङ्गं युग्मेऽपि स्यात्कृतादिषु ॥ २० ॥

युगं हस्तचतुष्केऽपि वृद्धिनामौषधेऽपि च ।  
योगः संनाहसंधानसङ्गतिध्यानकर्मणि ॥ २१ ॥

विष्कम्भादिषु सूत्रे च द्रव्ये विश्वस्तघातिनि ।  
चरे चापूर्वलाभेऽपि भेषजोपाययुक्तिषु ॥ २२ ॥

रागोऽनुरागमात्सर्ये क्लेशादौ लोहितादिषु ।  
गान्धारादौ नृपे नागे रोगः कुष्ठौषधे गदे ॥ २३ ॥

लङ्गः सिङ्गेऽपि सङ्गेऽपि लिङ्गं चिह्नाऽनुमानयोः ।  
मेहने शिवभेदे च साङ्ख्योक्तप्रकृतावपि ॥ २४ ॥

वङ्गो देशान्तरे भण्टातक्रीकार्पासयोः पुमान् ।  
वङ्गं रङ्गे च नागे च वङ्गा पुंभूम्नि नीवृत्ति ॥ २५ ॥

हस्तिभेद, याचना, ( पुं० )  
मृगी—खी—भेद, ( स्त्री० )  
युग—श्रेष्ठ, रथ और हलका अंग (जूवा),  
दो संख्या तथा संख्येय, सत्ययुगा-  
दिजुग, चारहाथके प्रमाणवाला,  
वृद्धि नामक औषध, ( न० ) ॥ २० ॥  
योग—कवच आदिका बाँधना, शर-  
आदिका संधान करना, संगति,  
ध्यानकर्म, ॥ २१ ॥ विष्कम्भ आदि-  
कयोग, सूत्र, द्रव्य, विश्वासघाती,  
फिरनेवाला, अपूर्व लाभ, औषध,  
उपाय, युक्ति, ( पुं० ) ॥ २२ ॥

राग—प्रीति, मत्सरता, क्लेशआदि, लो-  
हितआदि रंग, गान्धार आदि-गानेका  
राग, राजा, नाग, ( पुं० )  
रोग—कूट नाम औषध, व्याधि (रोग)  
( पुं० ) ॥ २३ ॥  
लङ्ग—धूर्त, संग, ( पुं० )  
लिङ्ग—चिह्न, अनुमान, पुरुषकी विषय  
इन्द्रिय, शिवभेद, सांख्यशास्त्रमें कही  
हुई प्रकृति ( माया ) ( न० ) ॥ २४ ॥  
वङ्ग—देशान्तर, बैंगन, कपास ( पुं० )  
रांग, शीशा, ( न० ) वङ्गदेश,  
( पुं० बहुवचनान्त ) ॥ २५ ॥

वर्गोऽध्याये च वृन्दे च वर्गः पञ्चाक्षरीभिदि ।  
 वल्गुर्ना नकुले छागे मनोज्ञे वल्गु वाच्यवत् ॥ २६ ॥  
 वेगो जवे प्रवाहे च महाकालफलेऽपि च ।  
 व्यङ्गस्तु पुंसि मण्डूके हीनाङ्गे व्यङ्गमन्यवत् ॥ २७ ॥  
 क्लीबं शरासने शार्ङ्गं शार्ङ्गं विष्णुशरासने ।  
 शृङ्गं विषाणे शिखरे प्रभुत्वोत्कर्षसानुषु ॥ २८ ॥  
 चिह्ने क्रीडाम्बुयन्त्रे च शृङ्गः स्यात्कूर्चशीर्षके ।  
 शृङ्गी विषायामृषभे मीनस्वर्गविशेषयोः ॥ २९ ॥  
 सर्गः स्वभावनिमोक्षनिश्चयोत्साहसृष्टिषु ।  
 मोहेऽध्याये च शुङ्गी तु न्यग्रोधलक्षपीतने ॥ ३० ॥

गर्तृतीयम् ।

अनङ्गो मन्मथेऽनङ्गमाकाशमनसोर्मतम् ।  
 अङ्गहीनेऽप्यनङ्गः स्यादङ्गभूतविपर्यये ॥ ३१ ॥

वर्ग-अध्याय ( प्रसंगसमाप्ति ), स- मूह, पञ्चाक्षरीभेद, ( पुं० )	( न० ) ॥ २८ ॥ जीवक-औषधि, ( पुं० )
वल्गु-नौला, बकरा, ( पुं० ) सुन्दर, ( त्रि० ) ॥ २६ ॥	शृङ्गी-ऋषभ-औषध, ( स्त्री० ) मीन- भेद, स्वर्गभेद, ( पुं० ) ॥ २९ ॥
वेग-जल्दीकरना, प्रवाह-नदी आ- दिका, महाकालका फल, ( पुं० )	सर्ग-स्वभाव, सर्पकी कांचली, नि- श्चय, उत्साह, सृष्टि, मोह, अध्याय, ( पुं० )
व्यङ्ग-मैडक ( पुं० ) हीनअंगवाला ( त्रि० ) ॥ २७ ॥	शुङ्गी-बड वृक्ष, पाखर-वृक्ष, अंबाडा, ( स्त्री० ) ॥ ३० ॥
शार्ङ्ग-धनुषमात्र, विष्णुका धनुष ( न० )	गर्तृतीय ।
शृङ्ग-सींग, शिखर, प्रभुता, उत्कर्ष ( बडप्पन ), पर्वतकी शिखर, चिह्न, क्रीडाकेलिये जलयन्त्र,	अनङ्ग-कामदेव, ( पुं० ) आकाश, मन, ( न० ) अङ्गहीन, अङ्गोंकी विप- रीतता ( पुं० ) ॥ ३१ ॥

अपाङ्गस्त्वङ्गविकले नेत्रान्ते तिलके पुमान् ।  
 अयोगो विधुरे कूटे विश्लेषे कठिनोद्यमे ॥ ३२ ॥  
 आभोगो वारुणच्छत्रे यत्नपूर्णत्वयोरपि ।  
 आयोगो गन्धमाल्यादिव्यसनेऽपि च दौकने ॥ ३३ ॥  
 व्यापाररोधयोश्चाऽऽय आशुगो बाणवातयोः ।  
 उत्सर्गो वर्जने त्यागे सामान्ये न्यायदानयोः ॥ ३४ ॥  
 उद्वेग उद्धाहुलके पुमानुद्वेजनेऽपि च ।  
 भवेदुद्गमने चायमुद्वेगं क्रमुकीफले ॥ ३५ ॥  
 कलिङ्गः पूतिकरजे धूम्याटे विषयान्तरे ।  
 नीवृद्धेदे कलिङ्गस्तु त्रिषु दग्धविदग्धयोः ॥ ३६ ॥  
 कलिङ्गं कौटजफले कलिङ्गा योषिति स्त्रियाम् ।  
 कलिङ्गो भूमिकूष्माण्डे मतङ्गजभुजङ्गयोः ॥ ३७ ॥

अपाङ्ग—अङ्गविकल पुरुष, नेत्रोंका  
 अंतभाग, तिलक, ( पुं० )

अयोग—वियोगवाला, नहीं हिलने-  
 वाला, अलगपना, कठिन, उद्यम,  
 ( पुं० ) ॥ ३२ ॥

आभोग—वर्णका छत्र, जतन, परि-  
 पूर्णपना, ( पुं० )

आयोग—गंधमाला आदिका व्यसन,  
 किसीको प्रेरणा, व्यापार, रोकना,  
 लाभ, ( पुं० ) ॥ ३३ ॥

आशुग—बाण, वायु, ( पुं० )

उत्सर्ग—वर्जना, त्यागकरना, सामा-  
 न्यविधि, न्याय, दान, ( पुं० ) ॥ ३४ ॥

उद्वेग—उद्धाहुलक ( भुजाउठानेवाला,  
 उद्वेजन ( डराना ), उद्गमन  
 ( ऊपरको गमन ) ( पुं० ) सु-  
 पारी, ( न० ) ॥ ३५ ॥

कलिङ्ग—करंजुवा-वृक्ष, पर्पहा-पक्षी,  
 देशमात्र, मनुष्योंका बसाया देश,  
 ( पुं० ) दग्ध, चतुर, ( त्रि० )  
 ॥ ३६ ॥

कलिङ्ग—इंद्रजव, ( न० )

कलिङ्गा—कलिङ्गदेशमें होनेवाली स्त्री  
 ( स्त्री० )

कलिङ्ग—भूमिकोहला, हस्ती, सर्प,  
 ( पुं० ) ॥ ३७ ॥

कालिङ्गी राजकर्कट्यां कालिङ्गस्त्रिषु तद्भवे ।  
 चक्राङ्गी कटुरोहिण्यां चक्राङ्गश्चक्रपक्षिणि ॥ ३८ ॥  
 जिह्मगो भुजगो पुंसि मन्दगे त्रिषु जिह्मगः ।  
 तडागः सरसि ख्यातस्तडागो यन्नकूटके ॥ ३९ ॥  
 तातगुः क्षुद्रताते स्याज्जने पितृहितेऽपि च ।  
 तुरगी त्वश्वगन्धायां तुरगो ह्यचित्तयोः ॥ ४० ॥  
 त्रिवर्गो धर्मकामार्थसंहतौ च कटुत्रिके ।  
 त्रिफलायां सत्त्वरजस्तमसामपि संहतौ ॥ ४१ ॥  
 वृद्धिस्थानक्षयैकोक्तौ धाराङ्गस्त्वसितीर्थयोः ।  
 नरङ्गं तु वरण्डे च वृत्तिकीलकशेफसोः ॥ ४२ ॥  
 नागरङ्गेऽपि नारङ्गो नारङ्गो यमजेऽपि च ।  
 विटे जन्तौ च नारङ्गो नारङ्गं पिप्पलीरसे ॥ ४३ ॥

कालिङ्गी—बडी ककड़ी, ( स्त्री० ) क-  
 कडीमें होनेवाले बीजआदि, ( त्रि० )  
 चक्राङ्गी—कुटकी, ( स्त्री० )  
 चक्राङ्ग—चक्रवा-पक्षी, ( पुं० ) ॥ ३८ ॥  
 जिह्मग—सर्प, ( पुं० ) मन्दचलने-  
 वाला, ( त्रि० )  
 तडाग—सरोवर, यंत्रोंका समुदाय  
 ( पुं० ) ॥ ३९ ॥  
 तातगु—वचा पिताका हितकारी जन,  
 ( पुं० )  
 तुरगी—आसगंध, ( स्त्री० )  
 तुरग—अश्व, चित्त, ( पुं० ) ॥ ४० ॥

त्रिवर्ग—धर्म अर्थ और काम, सूंठ  
 मिरच और पीपल, हरड बहेडा  
 और आंवला, सत्त्व रजस् और  
 तमस्, ॥ ४१ ॥ वृद्धि स्थान  
 और क्षय, ( पुं० )  
 धाराङ्ग—तलवार, तीर्थ, ( पुं० )  
 नरङ्ग—मुखरोग, चारोंतरफका कीला,  
 शिश्रुइंद्रियचिह्न, ( न० ) ॥ ४२ ॥  
 नारङ्ग—नारंगी-वृक्ष, जोड़ला पुरुष,  
 कामी पुरुष, प्राणी, पीपलका रस,  
 ( पुं० न० ) ॥ ४३ ॥

निषङ्गो बाणधौ सङ्गे निसर्गः शीलसर्गयोः ।  
 नीलङ्गुः कृमिकीटे स्याद् भंभराल्यामुशीरके ॥ ४४ ॥  
 पतङ्गः शलभे सूर्ये खगे शाल्यन्तरेऽपि च ।  
 रसे पतङ्गे पत्राङ्गं रक्तचन्दनभूर्जयोः ॥ ४५ ॥  
 पद्मके चाथ सर्पेऽपि पद्मकाष्ठेऽपि पद्मगः ।  
 परागः पुष्परजसि स्नानीयादौ रजस्यपि ॥ ४६ ॥  
 विख्यातावुपरागेऽपि चन्दने पर्वतान्तरे ।  
 पुन्नागः पुरुषश्रेष्ठे वृक्षभेदे सितोत्पले ॥ ४७ ॥  
 जातीफलेऽपि पुन्नागः पाण्डुनागे च दृश्यते ।  
 प्रयागस्तीर्थभेदे स्याद्यज्ञे वाहे विडौजसि ॥ ४८ ॥  
 प्रयोगः कर्मणे पुंसि प्रयुक्तौ च निदर्शने ।  
 प्रियङ्गुः फलिनीकङ्कुराजिकापिप्पलीष्वियम् ॥ ४९ ॥

निषङ्ग—तरकस, संग, ( पु० )

निसर्ग—स्वभाव, सर्ग (रचना) ( पु० )

नीलङ्गु—छोटाकीड़ा, मक्षिका, खस,  
( पु० ) ॥ ४४ ॥

पतङ्ग—शलभ-टीडी सूर्य, पक्षी,  
शालिभेद, रस, पतंग काष्ठ,

पत्राङ्ग—रक्तचन्दन, भोजपत्र, ( न० )  
॥ ४५ ॥

पद्मग—कूट-औषधि, सर्प, पद्माख,  
( पु० )

पराग—पुष्पकी रज, स्नानमें लगानेकी  
रज, ॥ ४६ ॥ विख्याति, ग्रहण,  
चन्दन, पर्वतभेद, ( पु० )

पुन्नाग—पुरुषोमें श्रेष्ठ, वृक्षभेद, सफेद-  
कमल, ॥ ४७ ॥ जायफल, पुन्ना-  
गवृक्ष, सफेद हस्ती तथा सर्प  
( पु० )

प्रयाग—प्रयाग नाम तीर्थ, यज्ञ, अश्व,  
इन्द्र, ( पु० ) ॥ ४८ ॥

प्रयोग—औषधियोंके योगसे उच्चाटन  
आदिकर्म, युक्त करना, दिखाना,  
( पु० )

प्रियङ्गु—प्रियङ्गु-वृक्ष या वाघांटी, माल-  
कांगनी, राई, पीपल, ( पु० )  
॥ ४९ ॥

सुवगो वानरे भेके तीक्ष्णदीधितिसारथौ ।  
 भुजङ्गो भुजगे पिङ्गे मातङ्गः श्वपचे गजे ॥ ५० ॥  
 मृदङ्गः पटहे घोषे रक्ताङ्गा जीविकौषधौ ।  
 रक्ताङ्गो मङ्गले क्लीबं धीरकाम्पिल्यविद्रुमे ॥ ५१ ॥  
 रथाङ्गमद्वयोश्चके रथाङ्गश्चक्रपक्षिणि ।  
 वराङ्गं मस्तके योनौ गुडत्वचि गजे स्त्रियाम् ॥ ५२ ॥  
 वातिगस्तु दशापाके वार्ताकीधातुवादिनोः ।  
 विडङ्गोऽस्त्री कृमिघ्ने स्याद् विडङ्गो नागरेऽन्यवत् ॥ ५३ ॥  
 विहगस्तु विहङ्गे स्यादग्रगे विहगस्त्रिषु ।  
 विसर्गस्तु भवे दाने त्यागे च मलनिर्गमे ॥ ५४ ॥  
 विसर्जनीये मुक्तौ च भास्वतश्चायनान्तरे ।  
 रते भोगे च सम्भोगः सम्भोगो जिनशासने ॥ ५५ ॥

सुवग-बन्दर, मेंडक, सूर्यका सारथि ( अरुण ), ( पुं० )	तेजपात या दालचीनी, हाथीसूँझ वृक्ष, ( न० ) ॥ ५२ ॥
भुजंग-सर्प, धूर्त, ( पुं० )	वातिग-दशाफल, बैंगन, धातुवादी, ( पुं० )
मातंग-चाण्डाल, हस्ती, ( पुं० ) ॥ ५० ॥	विडङ्ग-बायविडङ्ग, ( पुं० न० ) चतुर, ( त्रि० ) ॥ ५३ ॥
मृदंग-पटह ( ढोल ), अहीरोंका ग्राम, ( पुं० )	विहग-पक्षी, ( पुं० ) शीघ्र चलने- वाला ( त्रि० )
रक्तांगा-जीवन्ती या डोडी औषधि ( स्त्री० )	विसर्ग-जन्महोना, दान, त्याग, मलका ( विष्टाका ) त्यागना, ॥ ५४ ॥
रक्तांग-मंगल-ग्रह, ( केसर या जाफ- रान, ( न० ) कबीला-औषधि, मूँगा, ( न० ) ॥ ५१ ॥	विसर्जनीय ( वर्णके आगे दो बिंदु ), मुक्ति, सूर्यका अयनभेद, ( पुं० )
रथांग-गाडी रथ आदिके पहियां, ( न० ) चक्रवा-पक्षी ( पुं० )	सम्भोग-स्त्रीसंग, वस्तुओंका भो- गना, जिनशिक्षा ( पुं० ) ॥ ५५ ॥
वरांग-मस्तक, भग ( स्त्रीकी योनि )	



सर्वगं सलिले क्लीबं सर्वगः शङ्करे विभौ ।  
 सारङ्गो मृगमातङ्गचातकेषु खगान्तरे ॥ ५६ ॥  
 भृङ्गे त्रिषु तु किमीरे हेमाङ्गस्ताक्ष्यवेधसोः ।  
 गचतुर्थम् ।

अनुषङ्गस्तु नाऽऽरब्धे कारुण्येऽपि कचिन्मतः ॥ ५७ ॥  
 त्यागे मोक्षेऽपवर्गः स्यात्साफल्ये कृतकृत्यतः ।  
 अभिषङ्गस्तु संसर्गशपथाक्रोशगङ्गने ॥ ५८ ॥  
 ईहामृगो वृके जन्तौ प्रभेदे चंपकस्य च ।  
 अथोपरागः स्वर्भानुप्रस्तयोः पुष्पवन्तयोः ॥ ५९ ॥  
 दुर्नयग्रहकल्लोले परीवापे तु पुंस्ययम् ।  
 उपसर्गः स्मृतो रोगभेदे चोपप्लवेपि च ॥ ६० ॥  
 कटभङ्गस्तु शस्यानां नखच्छेदे नृपात्यये ।  
 छत्रभङ्गस्तु वैधव्येऽस्त्रातत्रयनृपनाशयोः ॥ ६१ ॥

सर्वग—जल ( न० ) महादेव, स-  
 मर्थ, ( पुं० )

सारङ्ग—मृग, हस्ती, पपीहा-पक्षी,  
 पक्षीभेद, ॥ ५६ ॥ भौरा, ( पुं० )  
 चितकबरा ( त्रि० )

हेमाङ्ग—गरुड, ब्रह्मा ( पुं० )

गचतुर्थम् ।

अनुषङ्ग—आरंभ, 'एक जगहके  
 पदको दूसरे स्थानमें अन्वयमें  
 लेना', दयालुपना, ( पुं० ) ॥ ५७ ॥

अपवर्ग—त्याग, मोक्ष, करेहुए कृ-  
 त्यकी सफलता, ( पुं० )

अभिषङ्ग—संसर्ग, शपथ ( सौगन ),  
 गाली, तिरस्कार, ( पुं० ) ॥ ५८ ॥

ईहामृग—भेडिया, जन्तु, चंपाका  
 भेद, ( पुं० )

उपराग—राहुसे चंद्रसूर्यका ग्रसना  
 ( ग्रहण ) ॥ ५९ ॥ दुर्नय ( खो-  
 टीनीति ), ग्रहोंका युद्ध, केशमूडना,  
 ( पुं० )

उपसर्ग—रोगभेद, उल्कापात आदि  
 उपद्रव, ( पुं० ) ॥ ६० ॥

कटभंग—छोटे और हरित तृण आदि-  
 कोंका नखसे छेदन, राजाका  
 नाश, ( पुं० )

छत्रभंग—विधवापना, पराधीनता,  
 राजाका नाश, ( पुं० ) ॥ ६१ ॥

दीर्घाध्वगस्तु करमे लेखहारे तु वाच्यवत् ।  
 मल्लनागोऽभ्रमातङ्गे वात्स्यायनमुनावपि ॥ ६२ ॥  
 राजशृङ्गस्तु कनकदण्डमुद्ररयोः पुमान् ।  
 समायोगस्तु संयोगे समवाये प्रयोजने ॥ ६३ ॥  
 सम्प्रयोगस्तु सुरते कर्मणेष्वन्वयेऽपि च ॥ ६४ ॥

गपञ्चमम् ।

कथाप्रसङ्गो वातूले विषवैद्ये च वाच्यवत् ।  
 नाडीतरङ्गः काकोले हिंडके रतहिण्डके ॥ ६५ ॥  
 इति विश्वलोचने गान्तवर्गः ॥

### अथ घान्तवर्गः ।

घैकम् ।

घो घण्टायां च घा घाते किङ्किण्यां स्त्री ध्वनौ तु घः ।

दीर्घाध्वग-ऊँट, ( पुं० ) परवाना  
 पहुँचानेवाला, ( त्रि० )

मल्लनाग-इंद्रका हस्ती, वात्स्यायन  
 मुनि, ( पुं० ) ॥ ६२ ॥

राजशृंग-सुवर्णका दंड ( छड़ी ),  
 मुद्रर, ( पुं० )

समायोग-संयोग, समवाय-संबंध,  
 अभिप्राय, ( पुं० ) ॥ ६३ ॥

सम्प्रयोग-स्त्रीसंग, औषधियोंके यो-  
 गसे उच्चाटन आदि कर्म, अन्वय  
 ( श्लोकके पदोंका संबंध ) ( पुं० )  
 ॥ ६४ ॥

गपञ्चम ।

कथाप्रसङ्ग-वातून या वायुको न  
 सहनेवाला, विषका वैद्य, ( त्रि० )  
 नाडीतरङ्ग-कंकोल, लम्पका आ-  
 चार्य, स्त्रीचोर ( पुं० ) ॥ ६५ ॥  
 इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषा-  
 टीकामें गान्तवर्ग समाप्त हुआ ।

अथ घान्तवर्गः ।

घैक ।

घ-घंटा, ( पुं० )  
 घा-घात, करधनी ( स्त्री० )  
 घ-शब्द ( पुं० )

घट्टितीयम् ।

पापेऽर्त्तौ व्यसने चाऽघं स्यादर्घोऽर्चनमूल्ययोः ॥ १ ॥

अङ्घ्रिः स्याज्जानुचरणे मूले चापि महीरुहाम् ।

उद्धो हस्तपुटे देहपवने पावके पुमान् ॥ २ ॥

ओघः परम्परायां स्याद्भुतनृत्योपदेशयोः ।

ओघः पाथःप्रवाहे च समूहे च पुमानयम् ॥ ३ ॥

मघा दशमनक्षत्रे मघा स्याद्भुतजान्तरे ।

वारिवाहेऽपि मेघः स्यान्मेघः स्यान्मुक्तकेऽपि च ॥ ४ ॥

मोघस्तु निष्फले दीने मोघा पाटलिपादपे ।

लघुर्मनोज्ञनिस्सारागुरुलघुषु वाच्यवत् ॥ ५ ॥

पृक्कायां स्त्री लघु क्लीबं कृष्णागुरुणि सत्त्वरे ।

श्लाघा तु स्यात्प्रशंसायां परिचर्याऽभिलाषयोः ॥ ६ ॥

घट्टितीय ।

अघ—पाप, पीडा, व्यसन, ( न० )

अर्घ—पूजाविधि, मूल्य ( मोल )

( पुं० ) ॥ १ ॥

अङ्घ्रि—घोंह ( गोडा ), चरण ( पाँव ),

वृक्षोक्ती जड़ ( पुं० )

उद्ध—हाथका पुट, शरीरका पवन,

अग्नि, ( पुं० ) ॥ २ ॥

ओघ—परंपरा, शीघ्र नृत्य, शीघ्र उपदेश,

जलका प्रवाह, समूह, ( पुं० ) ॥ ३ ॥

मघा—दशवां नक्षत्र ( मघा ), शब्दसे

उत्पन्न हुए ग्राम आदि ( स्त्री० )

मेघ—बदल, नागरमोथा औषधि,

( पुं० ) ॥ ४ ॥

मोघ—निष्फल, दीन, ( पुं० )

मोघा—मोखानाम—वृक्ष, ( स्त्री० )

लघु—सुंदर, निस्सार, अगुरु ( छोटा ),

हलका, ॥ ५ ॥ ( त्रि० ) असव-

रग—औषधि ( स्त्री० )

लघु—काला अगर, शीघ्रता ( न० )

श्लाघा—प्रशंसा ( बडाई ), शुश्रूषा,

अभिलाषा ( इच्छा ), ( स्त्री० ) ॥ ६ ॥

घटृतीयम् ।

अमोघः सफलेऽमोघा ख्याता पथ्याविडङ्गयोः ।

उल्लाघो नीरुजे दक्षे शुचौ हर्षयुते त्रिषु ॥ ७ ॥

काचिघः काञ्चने पुंसि मूषके स्वच्छमण्डपे ।

निदाघ उष्णकाले स्यात्तापेऽपि स्वेदवारिणि ॥ ८ ॥

परिघो मुद्गरे योगभेदे स्वकुलघातयोः ।

पलिघः काचकलशे घटप्राकारगोपुरे ॥ ९ ॥

प्रतिघस्तु भवेत्क्रोधे प्रतिघातेऽप्यथ त्रिषु ।

महार्घः स्यान्महामूल्याऽनर्घयोर्लावके पुमान् ।

सर्वौघो गुरुवेगार्थसर्वसन्नहनार्थयोः ॥ १० ॥

इति विश्वलोचने धान्तवर्गः ॥

घटृतीय ।

अमोघ-सफल, ( त्रि० )

अमोघा-हरड़, बायविडंग, ( स्त्री० )

उल्लाघ-रोगसे छुटाहुवा, चतुर, पवित्र,  
आनंदवाला, ( त्रि० ) ॥ ७ ॥

काचिघ-सुवर्ण, ( पुं० ) मूँसा  
( चूहा ), स्वच्छमंडप ( पुं० )

निदाघ-ग्रीष्म-ऋतु, ताप ( गरमी ),  
पसीनाका पानी, ( पुं० ) ॥ ८ ॥

परिघ-लोहेका मुद्गर, विष्कंभ आदि  
योगोंमें एक योग, अपना या कुलका  
नाश, ( पुं० )

पलिघ-काचकलश, घट, किला,  
पुरका दरवाजा, ( पुं० ) ॥ ९ ॥

प्रतिघ-क्रोध, प्रतिघात ( बदलेसे-  
मारना ) ( पुं० )

महार्घ-बहुतमोलवाली वस्तु, अमूल्य  
( जिसकी कीमत न होसके ),  
( त्रि० ) लावा-पक्षी, ( पुं० )

सर्वौघ-बहुत बेग, सबतरफसे कवच  
धारण, ( पुं० ॥ १० ॥

इसप्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें  
धान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

## अथ ङान्तवर्गः ।

ङैकम् ।

भैरवे विषये ङः स्यात् ॥

इति विश्वलोचने ङान्तवर्गः ॥

## अथ चान्तवर्गः ।

चैकम् ।

चस्तु तस्करचन्द्रयोः ॥

चद्वितीयम् ।

अर्चा पूजाप्रतिमयोरुच्चो महति चोन्नते ।

कचः केशेऽपि ह्रीवरे कचो गीष्पतिनन्दने ॥ १ ॥

कचः शुष्कव्रणे बन्धे करिण्यां तु कचा स्त्रियाम् ।

काचस्तु स्यान्मणौ शिख्ये नेत्ररोगे मृदन्तरे ॥ २ ॥

काञ्ची तु मेखलादाम्नि नीवृदन्तरगुञ्जयोः ।

कूर्चमस्त्री भ्रुवोर्मध्ये शोथश्मश्रुविकत्थने ॥ ३ ॥

## अथ ङान्तवर्गः ।

ङैक ।

ङ-भैरव, विषय, ( भोग ) ( पुं० )

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटी-  
कामें ङान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

## अथ चान्तवर्गः ।

चैक ।

च-चोर, चन्द्रमा, ( पुं० )

चद्वितीय ।

अर्चा-पूजा, प्रतिमा ( मूर्ति ) ( स्त्री० )

उच्च-बड़ा, ऊँचा, ( पुं० )

कच-केश ( बाल ), नेत्रबाला-औं-

षधि, बृहस्पतिका पुत्र, ॥ १ ॥

सूखा व्रण ( घाव ), बंध, ( पुं० )

कचा-हथनी, ( स्त्री० )

काच-मणि, छीका, नेत्ररोग, मि-  
ट्टीका भेद, ( पुं० ) ॥ २ ॥कांची-करधनीकी लड़ी, कांची-पुरी,  
गुंजा ( चिरमटी ) ( स्त्री० )कूर्च-भ्रुकुटियोंके बीचका भाग,  
सोजा, दाढी मूछ, बकवाद,  
( न० ) ॥ ३ ॥

क्रौञ्चस्तु पक्षिभेदे स्यान्नगद्वीपप्रभेदयोः ।

चञ्चो नालादिनिर्माणे चञ्चा तु तृण पूरुषे ॥ ४ ॥

चञ्चुः पञ्चाङ्गुले त्रोट्यां गोनाडीचकलिञ्चयोः ।

चर्चा तु स्यासके तर्के चर्चिकाचिन्तयोस्तले ॥ ५ ॥

त्वक् स्त्रियां वल्कलेऽपि स्याच्चर्ममात्रे गुडत्वचि ।

नीचस्तु पामरे निम्ने वामनेऽप्यभिधेयवत् ॥ ६ ॥

न्यग् निम्ने पामरे कात्वर्ये पिचुः स्यात्पुंसि तूलके ।

कृष्णे दैत्यान्तरे कर्षे भैरवस्याननान्तरे ॥ ७ ॥

कू प्राच्ये वाच्यवत् काले दिग्देशे त्वच्ययं मतम् ।

चः सौभाज्जने पुंसि मोचा शालमलिरम्भयोः ॥ ८ ॥

रुचिरिच्छा रुचा रुक्ता शोभाभिष्वङ्गयोरपि ।

रुकू शोभायां च किरणे स्त्रियामपि मनोरथे ॥ ९ ॥

क्रौञ्च-कूज-पक्षी, एकपर्वत, एक द्वीप, ( पुं० )

चञ्च-नालआदिका बनाना ( सांचामें ढालना ) ( पुं० )

चञ्चा-तृणोंसे बनाया पुरुष ( डरावा ) ( स्त्री० ) ॥ ४ ॥

चञ्चु-अरंड, छोटी इलायची, शाक-भेद, सूक्ष्मकाष्ठ, ( पुं० )

चर्चा-शरीरके चंदन आदिका लपेटना, तर्क, देवीविशेष, चिन्ता, तलभाग, ( स्त्री० ) ॥ ५ ॥

त्वक्( च् ) वृक्षका-वल्कल, चर्म, दालचीनी या जावित्री, ( स्त्री० )

नीच-पामर ( नीचपुरुष ), नीचा-स्थल, बौना, ( त्रि० ) ॥ ६ ॥

न्यक्( च् )-नीचा-स्थल, पामर-पुरुष, सम्पूर्णता ( त्रि० )

पिचु-भिगोया हुआ फोया, काला-वर्णवाला, दैत्यभेद, सोलहमासा-प्रमाण, भैरवका मुख, ( पुं० ) ॥ ७ ॥

प्राक्( च् ) पहले होनेवाला, ( त्रि० ) पूर्व काल, पूर्व देश, ( अ० )

मोच-सहजना-वृक्ष, ( पुं० )

मोचा-शालमलि ( साल ) वृक्ष, केलावृक्ष, ( स्त्री० ॥ ८ ॥

रुचि-रुचा-इच्छा, दीप्ति, शोभा, मिलाप, ( स्त्री० )

रुकू-शोभा, किरण, मनोरथ, ( स्त्री० ) ॥ ९ ॥

वचः शुके वचा तूष्णगन्धासारिकयोः स्त्रियाम् ।  
 वाग्भारतीगिरोर्वीचिर्द्वयोः स्वल्पतरङ्गयोः ॥ १० ॥  
 अवकाशे सुखे चाथ शचीन्द्राणी शतावरी ।  
 शुचिः पुंस्युपधाशुद्धमन्त्रिण्याषाढबर्हिषोः ॥ ११ ॥  
 शृङ्गारग्रीष्मयोः श्वेतमेध्यानुपहते त्रिषु ।  
 सूची कराद्यभिनये वेधनीशिखयोरपि ॥ १२ ॥  
 सूची सीमन्तिनीनां च कथिता करणान्तरे ॥ १३ ॥

चतुतीयम् ।

अवीचिर्नरके धूर्मिविरहे धूर्मिवर्जिते ।  
 भवेदुदक् त्रिषूदीच्ये दिग्देशकालतोऽव्ययम् ॥ १४ ॥  
 कणीचिः पुष्पितलतागुञ्जयोः शकटेऽपि च ।  
 कवचो वारवाणे स्यात्पटहे गर्दभाण्डके ॥ १५ ॥

वच—सूवा (तोता) पक्षी, ( पुं० )  
 वचा बच-औषधि, मैना-पक्षी, ( स्त्री० )  
 वाक्(चा)—सरस्वती, बाणी (वचन)  
 ( स्त्री० )

वीचि—स्वल्प ( थोड़ा ) तरङ्ग, ॥ १० ॥  
 अवकाश, सुख, ( पुं० स्त्री० )  
 शचि—इन्द्राणी, शतावरी, ( स्त्री० )  
 शुचि—मंत्रियोंके शीलकी परीक्षा,  
 शुद्धमन्त्री, आषाढ-मास, कुशा, शृ-  
 ङ्गार, ग्रीष्म-ऋतु, श्वेत-रंग, पवित्र,  
 अच्छा, ( त्रि० ) ॥ ११ ॥

सूची—हाथ आदिसे भाव बताना, सूई,  
 शिखा ( चोटी ) ॥ १२ ॥ स्त्रि-

योंका करण ( हावभेद ) ( स्त्री० )  
 ॥ १३ ॥

चतुतीय ।

अवीचि—नरक, तरंगोंका वियोग, तरं-  
 गवर्जित तडाग आदि, ( त्रि० )  
 उदक्—उत्तरमें होनेवाला ( त्रि० )  
 उत्तरदिशा, उत्तरदेश, उत्तरका-  
 ल ( अ० ) ॥ १४ ॥  
 कणीचि—फूलीहुई बेल, चिरमठी,  
 गाडी, ( स्त्री० )  
 कवच—कवच, ढोल, बडीहरद,  
 ( पुं० ) ॥ १५ ॥

क्रकचः करपत्रेऽपि ग्रन्थिलाख्यमहीरुहे ।  
 नमुचिर्मदने दैत्ये नाराचो जलहस्तिनि ॥ १६ ॥  
 लोहबाणेऽपि नाराचो नाराची स्यातुलान्तरे ।  
 प्रत्यक् प्रतीच्ये दिग्देशकाले तु मतमव्ययम् ॥ १७ ॥  
 स्यात्प्रपञ्चस्तु विस्तारे सञ्चये च प्रतारणे ।  
 मरीचिर्नाद्ययोर्दीप्तौ मुनौ ना कृपणेऽपि च ॥ १८ ॥  
 मारीचो याजकद्विजे ककौले राक्षसान्तरे ।  
 मरीचो देवताभेदे प्रफुल्ले विकचस्त्रिषु ॥ १९ ॥  
 केशशून्ये च ह्रीके तु पुंसि केतुग्रहेऽपि च ।  
 विपञ्ची वलकीकेल्योः सङ्कोचं कुङ्कुमे मतम् ॥ २० ॥  
 सङ्कोचो मत्स्यभेदेऽपि सङ्कोचो बन्धनेऽपि च ।  
 सत्यवत्सत्ययोः सम्यक् सम्यक् सङ्गतद्वययोः ॥ २१ ॥

क्रकच-करौत, कैर-वृक्ष, ( पुं० )

नमुचि-कामदेव, एक दैत्य, ( पुं० )

नाराच-जलहस्ती ( हाथीकेस्वरूपका  
जलचर जीव ) ॥ १६ ॥ लोह-  
बाण, ( पुं० ) तोलनेका छोटा  
कांटा, ( स्त्री० )

प्रत्यक्-पश्चिममें होनेवाला ( त्रि० )  
पश्चिमदिशा पश्चिमदेश, पश्चिम-  
काल, ( अ० ) ॥ १७ ॥

प्रपञ्च-विस्तार; सञ्चय ( संप्रह ),  
ठगना, ( पुं )

मरीचि-दीप्ति किरण ( पुं० स्त्री० )

मुनि, कृपण, ( पुं० ) ॥ १८ ॥

मारीच-यज्ञकरानेवाला ब्राह्मण, कं-  
कोल, एक राक्षस, ( पुं० )

मरीच-देवताभेद, ( पुं० ) ॥ १९ ॥

विकच-प्रफुल्लित, ( त्रि० ) केशर-  
हित, मुनि, ध्वजा, केतु ग्रह, ( पुं० )

विपञ्ची-वीणा, क्रीडा, ( स्त्री० )

संकोच-केसर ( न० ) ॥ २० ॥  
मत्स्यभेद, बन्धन, ( पुं० )

सम्यक्-सत्य बोलनेवाला, सत्य,  
संगत ( यथार्थ ), सुंदर, ( त्रि० )

॥ २१ ॥



चचतुर्थम् ।

काकचिञ्ची तुलाबीजे वारिक्रिमिदिलीरयोः ।

जलसूचिर्जलौकायां शृङ्गाटे शिशुमारके ॥ २२ ॥

कङ्कत्रोटौ झपे चाथ चोरे वहौ मलिम्लुचः ।

अमावास्याद्वयं यत्र सोऽपि मासो मलिम्लुचः ॥ २३ ॥

चपंचमम् ।

रतनारीच-शब्दोऽयं कुङ्कुरे रतिवल्लभे ।

परीरम्भे समुद्भूतशीत्कारे च वरस्त्रियाः ॥ २४ ॥

इति विश्वलोचने चान्तवर्गः ॥

## अथ छान्तवर्गः ।

छैकम् ।

छश्छेदकार्कयोश्छा च च्छिदि छं लाच्छनाऽच्छयोः ।

चचतुर्थ ।

काकचिञ्ची—पुंषुची, जलकी क्रिमि,  
मुईफोड, ( स्त्री० )जलसूचि—जोक, सिंघाडा, मच्छ-  
भेद ( शिशुमार ) ॥ २२ ॥ स-  
फेदचीलकी चोंच, मत्स्य-मात्र,  
( पुं० स्त्री० )मलिम्लुच—चोर, अग्नि, जिसमासमें  
दो अमावास्या हों वह मास,  
( पुं० ) ॥ २३ ॥

चपंचम ।

रतनारीच—कुत्ता, कामी पुरुष,

शीत्कार शब्दवाला श्रेष्ठस्त्रीका स-  
म्भोग ( पुं० ) ॥ २४ ॥इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें  
चान्तवर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ छान्तवर्गः ।

छैक ।

छ—छेदनकरनेवाला, सूर्य, ( पुं० )

छा—छेदनकरना, ( स्त्री० )

छ—कलंक, खच्छ, ( न० ) ।

छद्वितीयम् ।

अच्छाव्ययमाभिमुख्ये अच्छस्फटिकयोः पुमान् ।

अच्छः स्वच्छेऽन्यलिङ्गः स्यात्कच्छः शैलादिसीमनि ॥ १ ॥

नौकाङ्गे तुल्यकेऽनूपे परिधानाञ्चलान्तरे ।

कच्छा तु चीरिकायां स्याद् वाराह्यामपि दृश्यते ॥ २ ॥

गुच्छः स्तवके हारभेदे गुच्छः स्तम्बकलापयोः ।

स्यात्पिच्छमस्त्रियां पुच्छे पिच्छा शास्त्रमलिवेष्टके ॥ ३ ॥

पङ्क्तौ पूगच्छटाकोशेमण्डेष्वश्वपदामये ।

विज्जुलेऽप्यथ पुच्छः स्यात्पिच्छपश्चात्प्रदेशयोः ॥ ४ ॥

म्लेच्छोऽपभाषणे जातिभेदे पापरतेऽपि च ।

छचतुर्थम् ।

अथ पुंसि महाकच्छः सरिन्नाथप्रचेतसि ॥ ५ ॥

इति विश्वलोचने छान्तवर्गः ॥

छद्वितीय ।

अच्छा(च्छ)-सम्मुख करना, (अ०)

रीछ ( भालू ), स्फटिक-मणि, (पुं०)

स्वच्छपदार्थमें उसके लिंगवाला,

( त्रि० )

कच्छ-पर्वत आदिकी सीमा, ॥ १ ॥

नौकाका भाग, तूल-वृक्ष, बहुत-

जलवाला देश, धोती आदि वस्त्रका

एक भाग, ( पुं० )

कच्छा-चीरिका ( ची ची शब्दकरने-

वाला कीट ), वाराहीकंद ( स्त्री० )

॥ २ ॥

गुच्छ-पुष्पआदिकोंका गुच्छा, हार-

भेद, झाड़, मोरकी पूछ आदि (पुं०)

पिच्छ-बैल आदिकी पूछ, (पुं० न०)

पिच्छा-शालका गोंद ॥ ३ ॥

पंक्ति, सुपारी, छबि, कोश, मांड,

घोडेके पैरका रोग, दालचीनी,

( स्त्री० )

पुच्छ-मोरकी पुच्छ, पिछलाभाग,

( पुं० ) ॥ ४ ॥

म्लेच्छ-बुरा बोलना, जातिभेद,

पापी मनुष्य ( पुं० )

छचतुर्थ ।

महाकच्छ-समुद्र, वरुण, (पुं०) ॥ ५ ॥

इसप्रकार विश्वलोचनकी भाषा-

टीकामें छान्तवर्ग समाप्त हुआ ॥

## अथ ज्ञान्तवर्गः ।

जैकम् ।

जः स्याज्जविनि जोद्भूतौ जयने जिः प्रकीर्तितः ।

जूराकाशे सरस्वत्यां पिशाच्यां जविने त्रिषु ॥ १ ॥

जद्वितीयम् ।

अजः कृष्णे स्मरहरे विधौ छागे रघोः सुते ।

अब्जो धन्वन्तरौ चन्द्रे निचुले क्लीबमम्बुजे ॥ २ ॥

अस्त्री कम्बुन्यथाऽऽजिः स्यात्सङ्ग्रामेऽपि समक्षितौ ।

उत्साहे कार्तिकेऽप्यूर्जस्तूर्जा वीर्ये बले द्वयोः ॥ ३ ॥

कञ्जः केशे विरिञ्चेऽपि कञ्जं पीयूषपद्मयोः ।

कुजस्तु नरकेऽङ्गारे द्रुमे कुञ्जं तु न स्त्रियाम् ॥ ४ ॥

## अथ ज्ञान्तवर्गः ।

जैक ।

ज-वेगवाला, ( पुं० )

जा-उत्पत्ति, ( स्त्री० )

जि-जीतना ( स्त्री० )

जू-आकाश, सरस्वती, पिशाची, वेग-  
वाला, ( त्रि० ) ॥ १ ॥

## जद्वितीय ।

अज-कृष्ण, महादेव, ब्रह्मा, बकरा,  
रघुराजाका पुत्र, ( पुं० )अब्ज-धन्वंतरि, चन्द्रमा, वेतस-वृक्ष,  
( पुं० ) कमल, ( न० ) शंख,  
( पुं० न० ) ॥ २ ॥आजि-संग्राम, सम ( बराबर ) पृथ्वी,  
( स्त्री० )ऊर्ज(र्जा)-उत्साह ( हर्ष ), कार्तिक-  
मास, ( पुं० ) वीर्य, बल, ( पुं०  
स्त्री० ) ॥ ३ ॥

कंज-केश, ब्रह्मा, ( पुं० )

कञ्ज-अमृत, कमल, ( न० )

कुज-भौमासुर, मंगल-ग्रह, वृक्षमात्र,  
( पुं० ) ॥ ४ ॥कुंज-ठोड़ी, वत्स ( छाती ), कुंज  
( लता आदिका घर ) ( पुं०  
न० )

हनौ वत्से निकुञ्जेऽपि कुब्जो न्युब्जे द्रुमान्तरे ।  
 स्त्रियां तु खर्जूः खर्जूरवृक्षे कण्डूतिकीटयोः ॥ ५ ॥  
 खनौ सुरागृहे गञ्जा भाण्डागारे तु न स्त्रियाम् ।  
 गज्जने पुंसि खजा तु मन्थे दर्वीप्रहस्तयोः ॥ ६ ॥  
 गुञ्जा तु काकचिह्न्यां स्यात्पटहे च कलध्वनौ ।  
 द्विजो विप्रेऽण्डजे दन्ते भार्ग्वीरेणुकयोर्द्विजा ॥ ७ ॥  
 ध्वजोऽस्त्री लिङ्गखट्वाङ्गपताकाचिह्नशौण्डिके ।  
 निजस्त्रिषु स्त्रके नित्ये न्युब्जो दर्भसुचि स्मृतः ॥ ८ ॥  
 न्युब्जं तु कर्मरङ्गे स्यात् कुब्जाधोमुखयोस्त्रिषु ।  
 पिञ्जो वधे बले पिञ्जं पिञ्जा तूलहरिद्रयोः ॥ ९ ॥  
 व्याकुले वाच्यवत्पिञ्जः प्रजा सन्तानलोकयोः ।  
 भुजो भुजा च बाहौ स्यात् पाणिमात्रेऽपि तावुभौ ॥ १० ॥

कुब्ज—कूबड़ा, वृक्षभेद, (पुं०)  
 खर्जू—खजूर-वृक्ष, खुजली, कीटवि-  
 शेष, (स्त्री०) ॥ ५ ॥  
 गंजा—खान—चांदी आदिकी, मदिराका-  
 घर, (स्त्री०) भांडागार (पुं०  
 न०) तिरस्कार, (पुं०)  
 खजा—दधिआदि मथनेका डाँडा,  
 कड़खी, चपेटा (स्त्री०) ॥ ६ ॥  
 गुंजा—घुँघुनी, ढोल, सूक्ष्मध्वनि(स्त्री०)  
 द्विज—ब्राह्मणआदिवर्ण, पक्षी, दाँत,  
 (पुं०)  
 द्विजा—भारंगी—औषधि,  
 मटर—अन्न (स्त्री०) ॥ ७ ॥  
 ध्वज—लिंग, शिवका भस्त्र, पताका

(ध्वजामेद), चिह्न, मदिरा बेचने-  
 वाला, (पुं० न०)  
 निज—अपना, नित्य, (त्रि०)  
 न्युब्ज—दर्भका (कुशाका) सुक् (य-  
 ज्ञपात्र, (पुं०) ॥ ८ ॥ कमरख  
 वृक्ष या फल, (पुं० न०) कूबड़ा,  
 नीचेको मुखवाला, (त्रि०)  
 पिंज—मारना (पुं०) बल, (न०)  
 पिंजा—रई, हलदी, (स्त्री०) ॥ ९ ॥  
 पिंज—व्याकुल, (त्रि०)  
 प्रजा—संतान, स्त्रीपुरुषमात्र जन,  
 (स्त्री०)  
 भुज—भुजा—बाहु, हस्तमात्र, (पुं०  
 स्त्री०) ॥ १० ॥

मर्जुस्तु रजके पुंसि मर्जूः शुद्धावपि स्त्रियाम् ।  
 रज्जुर्वेण्यां गुणेऽपि स्याद् राजिः स्त्री पङ्क्तिरेखयोः ॥ ११ ॥  
 रुजा रोगेऽपि भङ्गेऽपि लङ्गः स्यात्पट्टकच्छयोः ।  
 लाजाः स्युर्भृष्टधान्येषु लाजः स्याद्द्रवतण्डुले ॥ १२ ॥  
 उशीरे लाजमुद्दिष्टं वाजः पक्षे स्यदेऽपि च ।  
 मुनिभेदे खने वाजं त्वाज्ये यज्ञान्नपाथसोः ॥ १३ ॥  
 बीजं हेतावुपादानेऽप्यङ्कुरेऽपि च रेतसि ।  
 बीजमल्पेऽपि तत्त्वेऽपि व्याजः साध्याऽपदेशयोः ॥ १४ ॥  
 सर्जूर्वणिजि पुंसि स्यात्सर्जूः स्याद्विश्रुति स्त्रियाम् ।  
 सन्नद्धे संभृते सज्जः सञ्जः शम्भुविरिञ्चयोः ॥ १५ ॥  
 स्वजः खेदे स्वजं रक्तेऽपत्ये च स्वजमन्यवत् ।

जवृतीयम् ।

अङ्गजः केशकन्दर्पे पदे पुत्रे गदे स्वजे ॥ १६ ॥

मर्जु—धोबी, ( पुं० )	बीज—हेतु, उपादानकारण, आधान,
मर्जू—शुद्धि, ( स्त्री० )	अङ्कुर, वीर्य, अल्प, तत्त्व, ( न० )
रज्जु—वेणी ( गुंथी हुई बालोंकी लटी),	व्याज—निशाना, अपदेश, ( बहाना )
रस्सी, ( स्त्री० )	( पुं० ) ॥ १४ ॥
राजि—पंक्ति, रेखा, ( स्त्री० ) ॥ ११ ॥	सर्जू—वणिक, ( पुं० )
रुजा—रोग, द्रटना, ( स्त्री० )	सर्जू—बिजली ( स्त्री० )
लङ्ग—पट्टा, धोती टांकनेका भाग, ( पुं० )	सज्ज—कवचधारी पुरुष, भराहुवा,
लाज—भूना हुवा धान, ( पुं० बहुव-	( पुं० )
चनान्त ) गीले तंडुल ( पुं० एक-	सज्ज—महादेव, ब्रह्मा, ( पुं० ) ॥ १५ ॥
वचनांत ) ॥ १२ ॥	स्वज—पसीना ( पुं० ) रक्त, ( न० )
लाज—खस, ( न० )	अपत्य ( संतान ) ( त्रि० )
वाज—पंख, वेग, मुनिभेद, शब्द,	जवृतीय ।
( पु० ) घृत, यज्ञका अन्न, जल,	अङ्गज—केश, कामदेव, चिह्न, पुत्र,
( न० ) ॥ १३ ॥	रोग, पसीना, ( पुं० ) ॥ १६ ॥

अङ्गजं रुधिरेश्च स्यादण्डजः पक्षिमीनयोः ।  
 कृकलासे भुजङ्गे च कस्तूर्यामण्डजाऽपि च ॥ १७ ॥  
 अम्बुजो नितुले पुंसि क्लीबं तु सरसीरुहे ।  
 काम्बोजो देशमातङ्गशंखभेदेषु देशितः ॥ १८ ॥  
 करजस्तु करङ्गे स्यादपि व्याघ्रनखे नखे ।  
 काम्बोजः सोमवल्के स्याच्छङ्खपुन्नागवाजिषु ॥ १९ ॥  
 माषपर्णीहिङ्गुपर्ण्योः काम्बोजी तद्भवे त्रिषु ।  
 कारुजः शिल्पिनां चित्रे खयञ्जाततिलेऽपि च ॥ २० ॥  
 वल्मीके गैरिके फेने कलभे नागकेशरे ।  
 कुटजः शाखिनाम्भेदे स्याद्द्रोणे कुम्भसम्भवे ॥ २१ ॥  
 गिरिजा शैलतनयामातुलिङ्गचोरुदाहता ।  
 गिरिजं त्वअके लौहे शिलाजतुसुगन्धयोः ॥ २२ ॥

रुधिर, ( न० )	पत्री, या वंशपत्री ( स्त्री० ) इनसे
अण्डज—पक्षी, मच्छी, गिरगट, सर्प,	उत्पन्न होनेवाला ( त्रि० )
( पुं० )	
अण्डजा—कस्तूरी, ( स्त्री० ) ॥ १७ ॥	कारुज—शिल्पियोंका चित्र, खयं
अम्बुज—बेतसवृक्ष, ( पुं० ) कमल	उत्पन्नहुवा तिल ॥ २० ॥ बांभी,
( न० )	गेरू, झाग, हाथीका बच्चा, नाग-
कम्बोज—देशभेद, हस्तीभेद, शंखभेद,	केसर, ( पुं० )
( पुं० ) ॥ १८ ॥	कुटज—कूडा-वृक्ष, बनकाक, अगस्त्य-
करज—करंजुवा-वृक्ष, बघेराका नख,	मुनि, ( पुं० ) ॥ २१ ॥
नख, ( पुं० )	गिरिजा—पार्वती, बनबीजपूर या बि-
काम्बोज—कायफल, शंख, चंपा, अश्व,	जोरनीबू, ( स्त्री० )
( पुं० ) ॥ १९ ॥	गिरिज—भोडल, लोहा, शिलाजीत,
काम्बोजी—वनमाष या मशवन, हींग-	गन्धक, ( न० ) ॥ २२ ॥

जलजं पङ्कजे शङ्खे नीरजं पद्मकुष्ठयोः ।  
 परञ्जलैल्यन्नासिफेनेषु छुरिकाफले ॥ २३ ॥  
 वणिक् पुंस्येव वाणिज्यजीवके करणान्तरे ।  
 वाणिज्ये तु वणिक् स्त्रीत्वे बलजा बलगयोषिति ॥ २४ ॥  
 क्षितौ तु बलजं तु स्यात्क्षेत्रसस्यादिगोपुरे ।  
 स्याद्भूमिजा तु जानक्यां भूमिजो नरके कुजे ॥ २५ ॥  
 वनजा मुद्गपर्ण्या स्याद् वनजो गजमुस्तयोः ।  
 वनजं पङ्कजे क्लीबं वाच्यवद्वनसम्भवे ॥ २६ ॥  
 बाहुजः क्षत्रिये ख्यातः स्वयञ्जाततिले शुके ।  
 सहजस्तु निसर्गे स्यात्सहजातेऽन्यलिङ्गकः ॥ २७ ॥  
 सामजः सामसम्भूते वाच्यलिङ्गः पुमान् गजे ।  
 हिमजा पार्वतीशच्योमैनाके हिमजः पुमान् ॥ २८ ॥

जलज—कमल, शंख, ( न० )	वनजा—वनमुद्ग, ( स्त्री० )
नीरज—कमल, कूट-औषधि, ( न० )	वनज—हस्ती नागरमोथा, ( पुं० )
परंज—तेलनिकालनेका यंत्र, तलवार, झाग, छुरिका अग्रभाग, ( पुं० )	कमल ( न० ) वनमें होनेवाला द्रव्य ( त्रि० ) ॥ २६ ॥
॥ २३ ॥	बाहुज—क्षत्रिय, स्वयं उत्पन्न हुवा- तिल, सूवा ( तोता ) पक्षी, ( पुं० )
वणिज्(क्)—वाणिज्यसे जीनेवाला, करणभेद, ( पुं० )	सहज—स्वभाव, ( पुं० ) साथ उत्प- न्नहुवा, ( त्रि० ) ॥ २७ ॥
वणिज्(क्)—वाणिज्य, ( स्त्री० )	सामज—सामसे उत्पन्नहुवा, ( त्रि० )
बलजा—श्रेष्ठस्त्री, पृथ्वी, ( स्त्री० ) ॥ २४ ॥	हस्ती, ( पुं० )
बलजा—क्षेत्र, सस्य ( खेती ) आदि, पुरदरवाजा, ( न० )	हिमजा—पार्वती, इन्द्राणी, ( स्त्री० )
भूमिजा—सीता, ( स्त्री० )	हिमज—मैनाक नाम पर्वत, ( पुं० )
भूमिज—भौमासुर-दैत्य, मंगलग्रह ( पुं० ) ॥ २५ ॥	॥ २८ ॥

जचतुर्थम् ।

अहिभुग् विनतापुत्रे मेघनादानुलासिनि ।  
 काश्मीरजा चाऽतिविषाकुष्ठकुङ्कुमपुष्करे ॥ २९ ॥  
 ग्रहराजः शशिन्यर्केऽनुजे शूद्रे जघन्यजः ।  
 द्विजराजो निशानाथे विनतात्मजशेषयोः ॥ ३० ॥  
 धर्मराज्यमराजौ द्वौ यमे बुद्धे युधिष्ठिरे ।  
 भरद्वाजो गुरुसुते व्याघ्राटाभिरुपक्षिणि ॥ ३१ ॥  
 भारद्वाजो मुनौ चोग्रे स्त्रियां कार्ष्णसिकान्तरे ।  
 भृङ्गराजस्तु मधुपे मार्कवे विहगान्तरे ॥ ३२ ॥  
 यक्षराट् व्यंबकसखे मल्लानां रङ्गचत्वरे ।  
 राजराजस्तु धनदे सार्वभौममृगाङ्कयोः ॥ ३३ ॥  
 क्षीराब्धिजः शशधरे श्रियां क्षीराब्धिजा स्त्रियाम् ।  
 क्षीराब्धिजं तु सामुद्रलवणे मौक्तिकेऽपि च ॥ ३४ ॥

जचतुर्थम् ।

अहिभुज् (क्) गरुड, मोर ( पुं० )  
 काश्मीरजा-अतीस, ( स्त्री० )  
 काश्मीरज-कूट, केसर, कमल,  
 ( न० ) ॥ २९ ॥  
 ग्रहराज-चंद्रमा, सूर्य, ( पुं० )  
 जघन्यज-छोटाभ्राता, शूद्र, ( पुं० )  
 द्विजराज-चंद्रमा, गरुड, शेष नामसर्प  
 ( पुं० ) ॥ ३० ॥  
 धर्मराज् ( ट् )-यमराज-धर्मराज,  
 बुद्ध, युधिष्ठिर, ( पुं० )  
 भरद्वाज-बृहस्पतिका पुत्र, व्याघ्रट  
 ( कुकडकोंवा ) पक्षी ( पुं० ) ॥ ३१ ॥

भारद्वाज-मुनि, उग्र, ( पुं० )  
 भारद्वाजी-वनकपास ( स्त्री० )  
 भृङ्गराज-भौरा, भंगरा-औषधि, प-  
 क्षीविशेष, ( पुं० ) ॥ ३२ ॥  
 यक्षराट् ( ज् ) कुबेर, मल्लोका अखाडा,  
 ( पुं० )  
 राजराज-कुबेर, चक्रवर्ती राजा,  
 चंद्रमा, ( पुं० ) ॥ ३३ ॥  
 क्षीराब्धिज-चंद्रमा, ( पुं० )  
 क्षीराब्धिजा-लक्ष्मी ( स्त्री० )  
 क्षीराब्धिज-समुद्रनमक, मोती,  
 ( न० ) ॥ ३४ ॥



जपञ्चमम् ।

ऋषभध्वजशब्दोऽसौ शङ्करेऽप्यर्हदन्तरे ।

अगस्तौ च हरीतक्यां लङ्घने मुनिभेषजम् ॥ ३५ ॥

इति विश्वलोचने ज्ञान्तवर्गः ॥

अथ ज्ञान्तवर्गः ।

जैकम् ।

झकारस्त्वारवायौ स्यान्नष्टेऽपि कचिदिष्यते ।

झद्वितीयम् ।

झञ्झा ध्वनिविशेषे स्याज्झञ्झाणुजलवर्षणे ॥ १ ॥

इति विश्वलोचने ज्ञान्तवर्गः ।

अथ ज्ञान्तवर्गः ।

जैकम् ।

जकारस्तु कचित्ख्यातो गायने घर्घरध्वनौ ।

ज्ञः पण्डिते बुधे वेधस्यज्ञो मूढे जडे त्रिषु ॥ १ ॥

जपञ्चमम् ।

ऋषभध्वज—महादेव, प्रथमजिनेन्द्र  
( पुं० )

मुनिभेषज—हथिया वृक्ष, हरड, लं-  
घन, ( न० ) ॥ ३५ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें  
ज्ञान्तवर्ग समाप्त हुवा ।

अथ ज्ञान्तवर्गः ।

जैक ।

झ—तीव्रवायु, नष्ट, ( पुं० )

झद्वितीयम् ।

झञ्झा—ध्वनिविशेष, अल्प जलकी  
वर्षा, ( स्त्री० ) ॥ १ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषा टीकामें  
ज्ञान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

अथ ज्ञान्तवर्गम् ।

जैक ।

ज—गाना, घर्घर ध्वनि, ( पुं० )

ज्ञ—पण्डित, बुध ग्रह, ब्रह्मा, ( पुं० )

झद्वितीयम् ।

झञ्झा—मूढ, जड, ( त्रि० ) ॥ १ ॥

अद्वितीयम् ।

प्रज्ञा तु बुद्धौ प्राज्ञस्तु पण्डिते वाच्यलिङ्गकः ।

प्रबुधप्रज्ञश्च तथा ख्यातः प्रगतजानुके ॥ २ ॥

संज्ञा नामनि गायत्र्यां चेतनारवियोषितोः ।

अर्थस्य सूचनायां च हस्तमस्तकलोचनैः ॥ ३ ॥

अतृतीयम् ।

कृतज्ञः सारमेयेपि वाच्यवत्कृतवेदिनि ।

स्त्रियामीक्षणिकायां स्यादैवज्ञो गणके पुमान् ॥ ४ ॥

सर्वज्ञः सुगते शम्भौ क्षेत्रज्ञो नागरात्मनोः ।

इति विश्वलोचने ज्ञान्तवर्गः ।

अथ टान्तवर्गः ।

टैकम् ।

टा पृथिव्यां ध्वनौ टः स्यात्करक्रे टं नपुंसकम् ॥ १ ॥

प्रज्ञा-बुद्धि ( स्त्री० )

प्राज्ञ-पण्डित, ( त्रि० )

प्रबुध-प्रज्ञ-जिसके घोटुवोंमें बहुत फासला हो वह, ( पुं० ) ॥ २ ॥

संज्ञा-नाम, गायत्री, बुद्धि, सूर्यकी स्त्री, हाथ मस्तक नेत्र आदिकोंसे अभिप्रायका बताना, ( स्त्री० )

॥ ३ ॥

अतृतीय ।

कृतज्ञ-कृता, ( पुं० ) कियेहुए उपकारको जाननेवाला, ( त्रि० )

दैवज्ञा-शुभाशुभलक्षण बतानेवाली ( स्त्री० )

दैवज्ञ-ज्योतिषिक, ( पुं० ) ॥ ४ ॥

सर्वज्ञ-बुद्ध, महादेव, ( पुं० )

क्षेत्रज्ञ-चतुर, आत्मा, ( पुं० )

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें ज्ञान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

अथ टान्तवर्ग ।

टैक ।

टा-पृथ्वी, ( स्त्री० ) ट ध्वनि, ( पुं० )

ट-करक ( अस्थिपंजर ) ( न० ) ॥ १ ॥

टद्वितीयम्

अट्टं गृहान्तरे क्षौमे शुष्के चात्यल्पभक्तयोः ।

इष्टो ना यागसंस्कारयोगयोः क्रतुकर्मणि ॥ २ ॥

क्लीवं त्रिषु प्रियतमे पूज्येऽप्याशंसितेऽपि च ।

इष्टिर्यागार्चनेच्छासु संग्रहश्लोकसूर्ययोः ॥ ३ ॥

कटुः पुंसि रसे क्लीवं कटु कार्येऽपि दूषणे ।

प्रियङ्गुराजिकाऽशोकरोहिणीकटुकासु च ॥ ४ ॥

स्त्रियां कटु त्रिष्वप्रिये ना सुगन्धौ मत्सरेऽपि च ।

कटः श्रोणौ शवेत्यल्पे किलिञ्जगजगण्डयोः ॥ ५ ॥

श्मशानेऽपि क्रियाकारेऽप्यद्भुतेऽपि कटाऽव्ययम् ।

कटी स्यात्कटिभागधयोः कष्टं गहनकृच्छ्रयोः ॥ ६ ॥

कुटो घटे शिलाकुट्टे कुटी वेश्मनि तु द्वयोः ।

कुटी तु स्यात्पयोदास्यां सुरायां चित्रगुच्छके ॥ ७ ॥

टद्वितीय ।

अट्ट-अटारी, रेसमी वस्त्र, सूखाहुवा  
द्रव्य, अत्यल्प, भात, ( त्रि० )इष्ट-यज्ञसंस्कार, योग, ( पुं० ) यज्ञ-  
कर्म, ( न० ) ॥ २ ॥ अति प्रिय,  
पूज्य, वाञ्छित, ( त्रि० )इष्टि-यज्ञ, पूजन, इच्छा, संग्रहश्लोक,  
सूर्य, ( स्त्री० पुं० ) ॥ ३ ॥कटु-कटुरस, ( पुं० ) दूषित-कार्य,  
कंगनी धान्य, राई, अशोकवृक्ष,  
एकप्रकारकी हरड, कुटकी ( स्त्री० ) ॥ ४ ॥  
अप्रिय ( त्रि० ) सुगन्धवाला द्रव्य,  
मत्सरीपुरुष ( पुं० )कट-कटि-भाग, मुर्दा, अति अल्प,  
बांसका बोराट, हस्तीका गंडस्थल,  
॥ ५ ॥ श्मशान ( जहां मुर्दे फूकते  
हैं ) क्रियाकरानेवाला, ( पुं० )

कटा-अद्भुत ( अ० )

कटी-कटि-भाग, छोटीपीपल, ( स्त्री० )

कष्ट-वन, कष्ट ( दुःख ) ( न० )  
॥ ६ ॥

कुट-घडा-मिट्टीका, हथौडा, ( पुं० )

कुटी-घर ( मकान ) ( पुं० स्त्री० )

जललानेवाली दासी, मदिरा,  
चित्रगुच्छा, ( स्त्री० ) ॥ ७ ॥

कूटोऽस्त्री राशिपूर्वार्दम्भमायाऽनृतेष्वपि ।  
 तुच्छेऽद्रिशृङ्गेसीराज्ञे यन्त्रायोधननिश्चले ॥ ८ ॥  
 कृष्टिर्बुधे ना कर्षेऽस्त्री कोटिः संज्ञयान्तराग्रयोः ।  
 अत्युत्कर्षप्रकर्षाश्रिकार्मुकाग्रेषु च स्त्रियाम् ॥ ९ ॥  
 क्रुष्टं तु रोदने रावे कृष्टिः स्यात्कृशसेवयोः ।  
 खटोऽन्धकूपे टक्के च खटः श्लेष्मचपेटयोः ॥ १० ॥  
 खाटिः स्त्रियां शवरथे खाटिरेकग्रहे किणे ।  
 खेटस्तु निन्दिते ग्रामभेदेऽपि वसुनन्दके ॥ ११ ॥  
 गृष्टिरेकप्रसवगोवराहक्रान्तयोः स्त्रियाम् ।  
 विष्णुकान्तौषधौ घृष्टिर्घोण्टा बदरपूगयोः ॥ १२ ॥  
 चटुश्चाटौ पिचिण्डे च व्रतिनामासने चटुः ।  
 चाटश्चाटे च धूर्ते च मूलमांसिकयोर्जटा ॥ १३ ॥

कूट-राशि (ढेर), पुरदरवाजा, दंभ ( पाखंड ), माया, असत्य, तुच्छ, पर्वतशिखर, हलका एक अंग, यंत्र, लोहमुद्गर, निश्चल, ( पुं० ) ॥ ८ ॥	टन ( जोकस्सी आदिके डांडके रगडनेसे हाथमें होजाताहै ) ( स्त्री० )
कृष्टि-पंडित, ( पुं० ) आकर्ष ( खैं- चना ) ( पुं० न० )	खेट-निंदित, ग्रामभेद, वसुभेद, विष्णुखड्ग ( पुं० ) ॥ ११ ॥
कोटि-कोटि-संख्या, अग्र-भाग, अति उत्कर्ष, प्रकर्ष ( उन्नति ), कोण, धनुषका अग्रभाग ( स्त्री० ) ॥ ९ ॥	गृष्टि-एकबार व्याईहुई गौ, वराह क्रान्ता नाम औषधि, ( स्त्री० )
क्रुष्ट-रोना, शब्द, ( न० )	घृष्टि-विष्णुकान्ता औषधि, ( स्त्री० )
कृष्टि-दुबला, सेवा, ( स्त्री० )	घोण्टा-बेर-झाडीफल, सुपारी, ( स्त्री० ) ॥ १२ ॥
खट-अन्धाकूबा, पत्थरफोडनेकी टांकी, कफ, चपेटा ( थप्पड ) लगाना, ( पुं० ) ॥ १० ॥	चटु-प्रियवाक्य, पेट, ( उदर ), व्रति- योंका आसन, ( पुं० )
खाटि-सुर्देकी तखती, एकग्रह, आं-	चाट-चाट ( विश्वासदेकर धनठगने- वाला ), धूर्त, ( पुं० )
	जटा-मूल ( जड़ ), जटामांसी, ( स्त्री० ) ॥ १३ ॥

झाटो निकुञ्जे कान्तारे व्रणसंमार्जने बने ।  
 त्रुटिस्त्वपचये लेशे सूक्ष्मैलायां च संशये ॥ १४ ॥  
 कालमानेऽप्यथ त्रोटिः स्त्री चञ्चुमीनकट्फले ।  
 त्वष्टा वर्द्धकिगीर्वाणशिल्पिनोस्तिग्मधामनि ॥ १५ ॥  
 दिष्टिर्मुदि परीमाणे दिष्टः कालोपदिष्टयोः ।  
 दिष्टं भाग्येय दृष्टिः स्यान्नेत्रदर्शनबुद्धिषु ॥ १६ ॥  
 धटः शुद्धितुलायां स्याद् धटी खण्डे च वाससः ।  
 नटी हट्टविलासिन्यां नटः शैल्लषशोणयोः ॥ १७ ॥  
 पटः शोभनचले स्यात्पुरस्कारपियालयोः ।  
 पटुर्वाग्मिनि नीरोगे तीक्ष्णे दक्षे स्फुटे त्रिषु ॥ १८ ॥  
 पटुः पुंसि पटोले स्त्री छत्रायां लवणे पटु ।  
 पट्टः पेषणपाषाणे फलकेऽपि चतुष्पथे ॥ १९ ॥

झाट—कुंज (लता आदिकोंकी (कुटी),  
 दुर्गमस्थान, व्रण (घाव)का झारना,  
 वन, ( पुं० )

त्रुटि—अपचय ( घटना ), खल्प,  
 छोटी इलायची, संदेह, ॥ १४ ॥  
 कालप्रमाण, ( स्त्री० )

त्रोटि—पक्षीकी चोंच, मच्छी, कायफल-  
 औषधि, ( स्त्री० )

त्वष्टा—बढई, देवताओंका कारीगर,  
 सूर्य ( पुं० ) ॥ १५ ॥

दिष्टि—आनंद, परिमाण, ( स्त्री० )

दिष्ट—काल, उपदेशकियाहुवा, ( पुं० )

दिष्ट—भाग्य, ( न० )

दृष्टि—नेत्र, दर्शन, बुद्धि ( स्त्री० ) १६

धट—शुद्धि ( सौगन आदिसे ) वि-  
 श्वास, तराजू, ( पुं० )

धटी—वस्त्रका खंड, ( स्त्री० )

नटी—नखी-गंधद्रव्य, या हलदी, ( स्त्री० )

नट—नाटककरनेवाला, अशोक वृक्ष  
 ( पुं० ) ॥ १७ ॥

पट—सुंदरवस्त्र, पुरस्कार ( सँवारना ),  
 चिरोंजी-वृक्ष, ( पुं० )

पटु—बहुतबोलनेवाला, नीरोग, तीक्ष्ण,  
 चतुर, स्पष्ट, ( त्रि० ) ॥ १८ ॥

पटु—परबल-शाक ( पुं० ) सोआ-  
 शाक या सोंफ, ( स्त्री० ) नमक ( न० )

पट्ट—पीसनेका पत्थर, ढाल, चौराहा,  
 ॥ १९ ॥

त्रणादिबन्धराजादिशासनासनभेदयोः ।

पट्टी भालविभूषायां पट्टी लाक्षाप्रसादने ॥ २० ॥

पट्टिः पटविभेदे स्याद् वल्गुलौ कुम्भिकाद्रुमे ।

पुष्टिः स्यात्पोषणे वृद्धौ फटा तु फणदम्भयोः ॥ २१ ॥

तटेऽश्रमकृते फाण्टं वटस्तु स्याद्रुणे त्रिषु ।

वटो वराटन्यग्रोधे वर्तिकायां वटी मता ॥ २२ ॥

वीरे पामरभेदे ना भटः स्त्री प्रगमे भटिः ।

भृष्टिस्तु भर्जने शून्यवाटिकायामपि स्त्रियाम् ॥ २३ ॥

मुष्टिर्बद्धकरे पुंसि स्त्रियामपि तथा पले ।

म्लिष्टं स्याद्वाच्यवन्म्लाने म्लिष्टमव्यक्तभाषणे ॥ २४ ॥

यष्टिः शस्त्रान्तरे हारे हारे हारात्परेऽपि च ।

भाङ्गर्चा च मधुपर्ण्या च ध्वजदण्डे तु पुंस्ययम् ॥ २५ ॥

घावके बांधनेका वस्त्र, राजा	वटी-वत्ती दीपककी ( स्त्री० ) ॥ २२ ॥
आदिका हुकुम ( पट्टा ), आसनभेद	भट-वीर-नीचभेद ( पुं० )
( तखत या सिंहासन ), ( पु० )	भटि-वेगसे गमन करना ( स्त्री० )
पट्टी-मस्तकका भूषण, लोच-वृक्ष,	भृष्टि-धानआदिका भूनना, सूनी
( स्त्री० ) ॥ २० ॥	बाडी, ( स्त्री० ) ॥ २३ ॥
पट्टि-वस्त्रभेद, वायुल-पक्षी, पांडर-	मुष्टि-हाथकी मुट्टी, ( पुं० ) चारतोला
वृक्ष, ( स्त्री० )	प्रमाण, ( स्त्री० )
पुष्टि-पोषण, वृद्धि, ( स्त्री० )	म्लिष्ट-मलिन, ( त्रि० )
फटा-सर्पका फण, दम्भ ( पाखंड )	म्लिष्ट-अप्रकट वाणी, ( न० ) ॥ २४ ॥
( स्त्री० ) ॥ २१ ॥	
फांट-तट, विनापरिश्रमकियाहुवा,	यष्टि-शस्त्रभेद, हार, 'हारयष्टि' हार,
( न० )	भारंगी, ( ब्रह्मनेटि ), मुलहटी,
वट-रस्सी आदि, ( त्रि० ) कौडी,	( स्त्री० ) ध्वजाका डंडा, ( पुं० )
वट-वृक्ष, ( पुं० )	॥ २५ ॥

रिष्टं क्षेमे मृत्युचिह्ने विनाशे ना तु सायके ।  
 रिष्टस्तु रिष्टिवत्खड्गे समृद्धौ पुंस्त्रियोः क्रमात् ॥ २६ ॥  
 लटो दोषेपि वाग्दोषे लाटस्त्वंशुकदेशयोः ।  
 वाटस्तु वर्त्तनि वृत्तौ वाटी साद्रूहनिष्कुटे ॥ २७ ॥  
 विटस्तु खिन्नलवणशङ्खाखुखदिराद्रिषु ।  
 विष्टिः कर्मकरे भद्रे वेतने प्रेषणे स्त्रियाम् ॥ २८ ॥  
 व्युष्टं दिने प्रभाते च फले पर्युषिते त्रिषु ।  
 व्युष्टिः समृद्धौ विहिता नियमादिफलेऽपि च ॥ २९ ॥  
 सटा जटाकेसरयोः सृष्टिर्निर्म्माणसर्गयोः ।  
 सृष्टं तु निर्मिते त्यक्ते त्रिषु प्राज्येऽपि निश्चिते ॥ ३० ॥  
 स्फुटो व्यक्ते प्रफुल्ले च व्याप्तवत्त्रिष्वपि त्रिषु ।  
 स्फुटिः स्फुटिकर्कट्यां पादस्फोटेऽपि च स्फुटिः ॥ ३१ ॥

रिष्ट—कल्याण, मृत्युचिह्न, विनाश, ( न० ) बाण, ( पुं० )	भद्रा, नौकरी, प्रेरणाकरना ( स्त्री० ) ॥ २८ ॥
रिष्ट(ष्टि)—खड्ग, ( पुं० ) समृद्धि, ( स्त्री० ) ॥ २६ ॥	व्युष्ट—दिन, प्रभात, फल, बासी-भो- जन आदि, ( त्रि० )
लट—दोष, वाणी दोष, ( पुं० )	व्युष्टि—समृद्धि, नियमआदिकोंका फल, ( स्त्री० ) ॥ २९ ॥
लाट—वल्गु, देशभेद, ( पुं० )	सटा—जटा-तपस्वीकी, केसर, ( स्त्री० )
वाट—मार्ग, वृत्ति ( काटोंवाली लकड़ि- योंसे बाडा ( घेर ) करना ) ( पुं० )	सृष्टि—रचना-साधारण, रचना-जग- तकी, ( स्त्री० )
वाटी—घरकेपासका बगीचा, ( स्त्री० ) ॥ २७ ॥	सृष्ट—रचाहुवा, दानकिया हुवा, प्राज्य ( बहुत ), निश्चित, ( त्रि० ) ॥ ३० ॥
विट—धूर्त, लवण, शंख, मूसा, ख- दिर ( खैर ) वृक्ष, पनैत, ( पुं० )	स्फुट—प्रकट, फूलाहुवा, व्याप्त, ( त्रि० )
विष्टि—नौकरीलेकर कामकरनेवाला,	स्फुटि—खिलीहुई ककड़ी, पादफोट ( बिबाई ) ( स्त्री० ) ॥ ३१ ॥

हृष्टो रोमाञ्चिते जातहर्षे प्रहसिते स्मृते ।

टटृतीयम् ।

अवटः कुहके कूपे खिले गर्तेऽप्यथाऽवटुः ॥ ३२ ॥

गर्ते कूपे च घाटायामर्गदौर्गतले गले ।

अरिष्टः फेनिले निम्बे लशुने काककङ्कयोः ॥ ३३ ॥

अरिष्टं सूतिकागारे तत्रे चिह्ने शुभेऽशुभे ।

उत्कटस्तीव्रे मत्ते च करटो निन्द्यजीविते ॥ ३४ ॥

एकादशाहश्राद्धे च काकवाद्यान्तरेऽपि च ।

कुब्राह्मणे कुसुम्भेऽपि दुर्दान्तगजगण्डयोः ॥ ३५ ॥

कर्कटः करणे स्त्रीणां राशिभेदकुलीरयोः ।

खगे तु कर्कटी तु स्याद्वालुङ्क्यां शाल्मलीफले ॥ ३६ ॥

हृष्ट-रोमांचवाला, आनंदवाला, हंसा-  
हुवा, स्मरण कियाहुवा ।

टटृतीय ।

अवट-कपटी, कूवा, अधूरा, खड्डा,  
( पुं० )

अवटु-खड्डा, कूवा, ग्रीवा और शि-  
रकी संधिका पिछला भाग, ( पुं० )

अर्गट-गलका अंतर्भाग, गल, ( पुं० )  
॥ ३२ ॥

अरिष्ट-रीठा, नीब-वृक्ष, लहसुन,  
काग-पक्षी, श्वेत चील-पक्षी, ( पुं० )  
॥ ३३ ॥

अरिष्ट-प्रसूतिका ( जच्चाका ) स्थान,  
छाछ चिह्न-शुभ अशुभ, ( न० )

उत्कट-तीव्र, मदोन्मत्त, ( पुं० )

करट-निंद्य आजीविका करनेवाला  
॥ ३४ ॥ मरनेसे ग्यारहवें दिनका  
श्राद्ध, काग-पक्षी, बाजाका भेद,  
निन्दितब्राह्मण, कसूंभा, कठिनतासे  
दमनकियाहुवा, हस्तीका गंडस्थल,  
( पुं० ) ॥ ३५ ॥

कर्कट-स्त्रियोंका करण ( हावभेद ), रा-  
शिभेद, कुलीर-जन्तु, पक्षी, ( पुं० )

कर्कटी-ककड़ी, सेमलका फल,  
( स्त्री० ) ॥ ३६ ॥



कर्दटः पङ्कपङ्कारकरहाटेषु कीर्तितः ।  
 कर्कटलिषु कार्यज्ञे पुमाञ्जतुनि कर्कटः ॥ ३७ ॥  
 कीकटो मगधेऽपि स्यान्निःस्वे चाश्वे मितंपचे ।  
 कुक्कुटस्ताम्रचूडे स्यात्कुक्कुभे वामिकुक्कुटे ॥ ३८ ॥  
 निषादशूद्रयोश्चैव तनये त्रिषु कुक्कुटः ।  
 रसोनभेदोच्चटयोस्तालमध्येपि कुक्कुटी ॥ ३९ ॥  
 कुक्कुटी ताम्रचूडाख्ययोषिन्मिथ्योपचर्ययोः ।  
 कुरुण्टी शालभंज्यां स्यात्कुरुण्टो झिण्टिकान्तरे ॥ ४० ॥  
 कृपीटमुदरे नीरे केशटस्तु कणे हरौ ।  
 चक्राटः पुंसि दीनारे धूर्त्तं जाङ्गलिके त्रिषु ॥ ४१ ॥  
 चर्पटः स्फारविपुले चपेटे चैव चर्पटः ।  
 चर्पटः पर्पटेऽपि स्यात्पिष्टभेदे तु चर्पटी ॥ ४२ ॥

कर्दट—कीच, सिवाल ( जलकाई ), कमलकी जड़, ( पुं० )	मुर्गा, मिथ्यासत्कार, ( स्त्री० )
कर्कट—कार्यको जाननेवाला, ( त्रि० ) लाख, ( पुं० ) ॥ ३७ ॥	कुरुंटी—शालभंजी ( कठपूतली ), ( स्त्री० )
कीकट—मगध-देश, दरिद्री, अश्व ( घोडा ), कंजूस, ( पुं० )	कुरुंट—कटसरैया-झाड़, ( पुं० ) ॥ ४० ॥
कुक्कुट—मुर्गा, वनमुर्ग, ॥ ३८ ॥ अग्निकुक्कुट, निषाद ( भील ) जाति, शूद्र-जाति, पुत्र, ( त्रि० )	कृपीट—उदर ( पेट ), जल, ( न० ) केशट—कण ( अल्प ), हरि ( पुं० ) चक्राट—अशरफी, धूर्त्त, ( पुं० ) विषवैद्य ( गारुडी ) ( त्रि० ) ४१
कुक्कुटी—लहसुनभेद, भूईं आवला, तालवृक्ष ॥ ३९ ॥	चर्पट—बहुतजियादह, चपेट ( थप्पड़ ), पापड़, ( पुं० ) चर्पटी—पिष्टभेद, ( स्त्री० ) ॥ ४२ ॥

चिपिटश्चिपिटे पुंसि पिच्चिते विस्तृतेऽन्यवत् ।  
 चिरण्टी तु सुवासिन्यां स्याद्वितीयवयःस्त्रियाम् ॥ ४३ ॥  
 वार्त्ताकु पुष्पे जकुटं जकुटो मलये शुनि ।  
 त्रिकूटं सिन्धुलवणे त्रिकूटः स्यात्सुवेलके ॥ ४४ ॥  
 त्रिपुटस्तु भवेत्तीरे पुमानपि सतीनके ।  
 त्रिपुटा मल्लिकाभेदे सूक्ष्मैलात्रिवृतोरपि ॥ ४५ ॥  
 त्र्यङ्गटं शिष्यभेदे स्याद्द्वौताञ्जन्यामपीष्यते ।  
 द्रोहाटस्तु मतो गाथाप्रभेदे मृगलुब्धके ॥ ४६ ॥  
 बैडालव्रतिकेऽपि स्याद्भाराटश्चातकाश्वयोः ।  
 निर्दटो निर्दये न्यायवादरक्ते च निष्फले ॥ ४७ ॥  
 निष्कुटस्तु गृहोद्याने स्यात्केदारकपाटयोः ।  
 पर्पटस्तु द्वयोः पिष्टविकृतौ भेषजान्तरे ॥ ४८ ॥

चिपिट—भिगोयकर भूना हुवा धान्य,  
 ( पुं० ) नेत्ररोगी, विस्तारवाला,  
 ( त्रि० )  
 चिरंटी—सुहागिनस्त्री, दूसरी अव-  
 स्थावाली स्त्री ( स्त्री० ) ॥ ४३ ॥  
 जकुट—बैंगनका पुष्प, ( न० )  
 जकुट—मलय-पर्वत, कुत्ता, ( पुं० )  
 त्रिकूट—समुद्रनमक, ( न० )  
 त्रिकूट—सुवेल नामका पर्वत, ( पुं० ) ४४  
 त्रिपुट—तीर, मटर-धान्य, ( पुं० )  
 त्रिपुटा—मल्लिका ( मोतिया ) भेद,  
 छोटीइलायची, निसोध, ( स्त्री० )  
 ॥ ४५ ॥

त्र्यंगट—शिष्य ( छाँका ) भेद, औष-  
 धीभेद ( न० )  
 द्रोहाट—गाथाभेद, मृगका शिकारी,  
 ॥ ४६ ॥ बैडालव्रती ( व्रतीभेद )  
 ( पुं० )  
 धाराट—पपीहा-पक्षी, अश्व, ( पुं० )  
 निर्दट—निर्दय-पुरुष, न्यायवादमें अ-  
 नुरक्त, निष्फल, ( पुं० ) ॥ ४७ ॥  
 निष्कुट—घरका बगीचा, खेत,  
 किवाड़ ( पुं० )  
 पर्पट—पापड़, औषधिभेद ( पित्तपा-  
 पका ) ( पुं० न० ) ॥ ४८ ॥

परीष्टिः परिचर्यायां प्राकाश्येऽपि गवेषणे ।  
 पर्कटी प्लक्षपाकल्पोः पात्रटः कर्परे कृशे ॥ ४९ ॥  
 पिच्छटो नेत्ररोगेऽपि पिच्छटं सीसके त्रपौ ।  
 बरटायां समोषायां गन्धोल्यां बरटो द्वयोः ॥ ५० ॥  
 बर्बटी गणिकायां स्याद् व्रीहिभेदेऽपि बर्बटी ।  
 बर्बटो मकरे पोते वारुडेऽपि च बर्बटः ॥ ५१ ॥  
 स्त्रियां पुञ्जेऽपि भाकूटा भाकूटो मीनशैलयोः ।  
 भार्याटः पटहाजीवे लोभात्स्त्रीसमर्पके ॥ ५२ ॥  
 भावाटः कामुके साधुनिवेशे भावके नटे ।  
 मर्कटः कपिलतास्त्रीकरणेष्वथ मर्कटी ॥ ५३ ॥  
 रानरीशूकशिब्यां स्याद् चक्राङ्ग्यां करजान्तरे ।  
 बीजे तु राजकर्कट्याः प्राचीनामलकस्य च ॥ ५४ ॥

परीष्टि—शुश्रूषा ( सेवा ), प्रकाशक-  
 रणा, ह्रंढना, ( स्त्री० )

पर्कटी—पिलखन-वृक्ष, ककड़ी, ( स्त्री० )

पात्रट—कपाल, दुबला-पुरुष, ( पुं० )  
 ॥ ४९ ॥

पिच्छट—नेत्ररोग, ( पुं० ) शीशा,  
 रांगा, ( न० )

बरट—हंस, छोटाकचूर, ( पुं० न० )

बरटा हंसी, ( स्त्री० ) ॥ ५० ॥

बर्बटी—वेद्या, धान ( चावल ) भेद,  
 ( स्त्री० )

बर्बट—मगरमच्छ, बालक, नटजाति-  
 भेद ( पुं० ) ॥ ५१ ॥

भाकूटा—समूह ( स्त्री० )

भाकूट—मच्छी, पर्वत, ( पुं० )

भार्याट—ढोल बजाकर आजीविका-  
 करनेवाला, लोभसे अपनी स्त्रीको  
 दूसरेको सौंपनेवाला ( पुं० ) ५२

भावाट—कामी-पुरुष, सुंदरसेनास्थान,  
 पदार्थको सोचनेवाला, नट, ( पुं० )

मर्कट—बन्दर, ( पुं० )

मर्कटी—॥ ५३ ॥ मकड़ी-जन्तु, स्त्री-  
 करण ( हावभेद ), कौचकी फली,  
 कुटकी, करंजुवाभेद, ( स्त्री० ) बडीक-  
 कडीके बीज, पुराने आवलेके बीज,  
 ॥ ५४ ॥

गवेधुकाफले चैव मर्कटः पुंसि दृश्यते ।  
 मोचाटश्चन्दने कृष्णजीररम्भास्थ्युपस्करे ॥ ५५ ॥  
 मोरटं त्विक्षुमूले स्यादङ्गोटकुसुमेऽपि च ।  
 सप्तरात्रात्परक्षीरे मूर्तिकायां तु मोरटा ॥ ५६ ॥  
 रवटो दक्षिणावर्तशङ्खे जाङ्गुलिकेऽपि च ।  
 वराहे मोरटे रेणौ वातूलेऽपि च रेवटः ॥ ५७ ॥  
 वर्णार्णटो गायने कामिचित्रकृद्धारजीविनि ।  
 विकटो विकराले स्याद्विशाले सुन्दरे वरे ॥ ५८ ॥  
 वेकटः स्याद्वैकटिके मीने च नवयौवने ।  
 वरटो मिश्रिते नीचे वेरटं बदरीफले ॥ ५९ ॥  
 शैलाटो देवले सिंहे सितकाचकिरातयोः ।  
 संसृष्टं त्रिषु वान्त्यादिसंशुद्धे सङ्गतेऽपि च ॥ ६० ॥  
 हर्मटस्तु पुमान्सूर्ये कच्छपेऽपि च हर्मटः ।

गंगेरनका फल, ( पुं० )	कार, स्त्रीकी कीहुई जीविकावाला
मोचाट-चंदन, कालाजीरा, केलेका	( पुं० )
गर्भभाग, उपस्कर, ( पुं० ) ५५	विकट-भयंकर, बडा, सुंदर, श्रेष्ठ,
मोरट-गन्नाकी-जड़, डेराशुक्का पुष्प,	( पुं० ) ॥ ५८ ॥
सातरात्रिसे उपरांतका दूध, ( पुं० )	वेकट-मच्छीभेद, मच्छीमात्र, नवीन-
मोरटा-मोरबेल तथा मूर, ( स्त्री० )	यौवन, ( पुं० )
॥ ५६ ॥	वरट-मिलाहुवा, नीच, ( पुं० )
रवट-दक्षिणावर्त शंख, विषवैद्य ( गा-	वेरट-झाडीका फल ( वर ), ( न० ) ५९
रुडी ) ( पुं० )	शैलाट-देवल ( मंदिर ), सिंह, सफेद
रेवट-सूकर, क्षीरमोरट, पित्तपा-	काच, किरात-जाति, ( पुं० )
पद्म, वायुको नहीं सहनेवाला	संसृष्ट-बमन आदिसे शुद्धहुवा, सं-
( पुं० ) ॥ ५७ ॥	गत ( योग्य ) ( त्रि० ) ॥ ६० ॥
वर्णार्णट-गाना, कामी-पुरुष, चित्र-	हर्मट-सूर्य, कछवा, ( पुं० ) ॥

टचतुर्थम् ।

पुगानुच्छिङ्गटे मीनभेदे कोपनपूरुषे ॥ ६१ ॥  
 करहाटोऽब्जकन्देऽपि शल्यद्रौ कुसुमान्तरे ।  
 कामकूटस्तु गणिकाविभ्रमे गणिकाप्रिये ॥ ६२ ॥  
 त्रिषु कार्यपुटो हीके प्रमत्ताऽनर्थकारिणोः ।  
 कुटन्नटस्तु कैवर्त्तिमुस्तके शोणके पुमान् ॥ ६३ ॥  
 कुण्डकीटस्तु चार्वाकवाण्यभिज्ञेपि पुंश्चले ।  
 जारजे ब्राह्मणीपुत्रदासीकामुकयोरपि ॥ ६४ ॥  
 खङ्गरीटस्तु फलकासिधाराव्रतचारिणोः ।  
 गाढमुष्टिस्तु कृपणे कृपाणलुरिकादिषु ॥ ६५ ॥  
 चक्रवाटः क्रियारोहे पर्यन्ते च शिखातरौ ।  
 चतुःषष्टिस्तु संख्यायां बह्वृचेऽपि कलास्वपि ॥ ६६ ॥  
 नारकीटोऽश्मकीटे स्यात्स्वदन्ताशाविहन्तरि ।  
 परपुष्टः परभृते परपुष्टाऽपणस्त्रियाम् ॥ ६७ ॥

टचतुर्थ ।

उच्छिङ्गट—मच्छीभेद, क्रोधी पुरुष,  
 ( पुं० ) ॥ ६१ ॥

करहाट—कमलकन्द, मैनफलका वृक्ष,  
 पुष्पभेद, ( पुं० )

कामकूट—वेद्याका हावभाव आदि,  
 वेद्यागामी, ( पुं० ) ॥ ६२ ॥

कार्यपुट—लज्जावान, प्रमत्त, अनर्थ-  
 कारी, ( पुं० )

कुटन्नट—केवटीमोथा, सोनापाठा-वृक्ष,  
 ( पुं० ) ॥ ६३ ॥

कुण्डकीट—चार्वाकवाणीका जानने-  
 वाला, जार-पुरुष, जारसे उत्पन्न-  
 हुआ ब्राह्मणीका पुत्र, दासीके संग र-

मण करनेवाला ( पुं० ) ॥ ६४ ॥

खङ्गरीट—ढाल और तलवारकी धा-  
 रका व्रत धारण करनेवाला ( पुं० )

गाढमुष्टि—कंजूस, तलवार छुरी आदि  
 ( पुं० ) ॥ ६५ ॥

चक्रवाट—क्रियाका प्रारंभ, गोरा,  
 शिखावृक्ष, ( पुं० )

चतुःषष्टि—चौसठ-संख्या, (बह्वृच वेद-  
 ऋचा), चौसठकला ( स्त्री० ) ॥ ६६ ॥

नारकीट—पत्थरका कीड़ा, अपनी  
 दईहुई आशाको नष्ट करनेवाला,  
 ( पुं० )

परपुष्ट—कोयल-पक्षी, ( पुं० )

परपुष्टा—वेद्या ( स्त्री० ) ॥ ६७ ॥

प्रतिकृष्टं मतं गुह्ये द्विरावृत्त्यवकर्षिते ।  
 प्रतिशिष्टः प्रतिहते दन्ते ख्याते च वाच्यवत् ॥ ६८ ॥  
 प्रतिसृष्टं भवेत्प्रत्याख्यातप्रोषितयोस्त्रिषु ।  
 बर्कराटः कटाक्षेऽपि तरुणादित्यदीधितौ ॥ ६९ ॥  
 नारीपयोधरोत्सङ्गकान्तदन्तनखक्षते ।  
 शिपिविष्टस्तु खलतौ दुश्चर्मणि महेश्वरे ॥ ७० ॥  
 प्राञ्चलोहे श्रुतिकटः प्रायश्चित्ते भुजङ्गमे ।  
 सिंहच्छटा तु पुन्नागकेसरे नागकेसरे ॥ ७१ ॥

दृष्यमम् ।

अथ स्यादशनोच्छिष्टशृङ्गे निःश्वासितेऽधरे ।  
 लोहे कांस्ये मृदङ्गारशकट्यां रत्नकङ्कणे ॥ ७२ ॥  
 पावके पटहस्यापि बदरे पात्रचर्घटः ॥ ७३ ॥  
 इति विश्वलोचने टान्तवर्गः ॥

प्रतिकृष्ट—गुह्य ( गुदादि ), दूसरी- बार बाहाहुवा क्षेत्र, ( न० )	श्रुतिकट—धातुभेद, लगेहुए पापका दूर करना, सर्प, ( पुं० )
प्रतिशिष्ट—दियाहुवाका फिर लेना, विख्यात, ( त्रि० ) ॥ ६८ ॥	सिंहच्छटा—नागकेसरभेद, नागके- सर, ( स्त्री० ) ॥ ७१ ॥
प्रतिसृष्ट—नटाहुवा, प्रोषित ( परदेश गयाहुवा ) ( त्रि० )	दृष्यमम् ।
बर्कराट—कटाक्ष ( नेत्रकी कोरसे दे- खना ), मध्याह्नसूर्यकी किरण, ॥ ६९ ॥	दशनोच्छिष्ट—शृङ्ग करना, बाह- रको श्वास छोडना, होंठ ( पुं० )
स्त्रीके कुच और पेट आदिपर प- तिका कियाहुवा नखघाव ( पुं० )	पात्रचर्घट—लोहा, कांसी, मिट्टीकी सिगड़ी, रत्नकङ्कण, ॥ ७२ ॥
शिपिविष्ट—गंजा ( जिसके केश उ- डगयेहों ), बुरी चर्मवाला, महादेव, ( पुं० ) ॥ ७० ॥	अग्नि, ढोलका घेरा, ( पुं० ) ॥ ७३ ॥ इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषा- टीकामें टान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

## अथ ठान्तवर्गः ।

ठैकम् ।

ठश्चन्द्रे मण्डले शून्ये स्वात् करेणूच्चशब्दिते ।

ठद्वितीयम् ।

कठो मुनावृचां भेदे तदध्येतरि तद्विदि ॥ १ ॥

खरेऽपि कण्ठस्तु गले पार्श्वे शल्यदुशब्दयोः ।

काष्ठोत्कर्षे दिशि स्थाने कालमाने च सीमनि ॥ २ ॥

काष्ठा दारुहरिद्रायां काष्ठं तु क्लीबमिन्धने ।

कुण्ठो मूर्खेऽप्यकर्मण्ये कुष्ठं भेषजरोगयोः ॥ ३ ॥

कोष्ठोऽन्तःकुक्षिगृह्योः कुसूलात्मीययोरपि ।

गोष्ठी सभायां संलापे गोष्ठं गोस्थानके मतम् ॥ ४ ॥

ज्येष्ठो मासेऽग्रजे श्रेष्ठे वृद्धे ज्येष्ठा तु तारके ।

मुसल्यामङ्गुलीभेदे दुष्टः स्याद् दुर्बलेऽधमे ॥ ५ ॥

## अथ ठान्तवर्गः ।

ठैक ।

ठ-चंद्रमा, मंडल, शून्य (पोल),  
हथनिर्योका ऊंचाशब्द, (पुं०)

ठद्वितीय ।

कठ-कठनामका-मुनि, ऋचाओंका  
भेद, कठशाखाको पढनेवाला, क-  
ठशाखाको जाननेवाला, ॥१॥ खर,  
(पुं०)कण्ठ-गल, समीपता, मैनफलका  
वृक्ष, (पुं०)काष्ठा-बडप्पन, दिशा, स्थान, काल-  
प्रमाण, सीमा (हृद्) ॥ २ ॥  
दारुहलदी, (स्त्री०)

काष्ठ-ईंधन (न०)

कुंठ-मूर्ख, अकर्मी, (पुं०)

कुष्ठ-औषधि-कूट, कुष्ठ (कोठ)  
रोग (न०) ॥ ३ ॥कोष्ठ-पेटका भीतरभाग, घर, कुठला,  
अपनी वस्तु, (पुं०)

गोष्ठी सभा, वार्तालाप, (स्त्री०)

गोष्ठ-गौबोंका ठान (न०) ॥ ४ ॥

ज्येष्ठ-ज्येष्ठ-मास, बडा भाई, श्रेष्ठ,  
वृद्ध, (पुं०)ज्येष्ठा-ज्येष्ठा-नक्षत्र, छपकली, अं-  
गुलीभेद, (स्त्री०)

दुष्ट-दुर्बल, अधम, (पुं०) ॥ ५ ॥

निष्ठा निर्वहनिष्पत्तिनाशान्तोत्कर्षयाचने ।

क्लेशेऽथ पाठान्बध्नायां पाठस्तु पठने पुमान् ॥ ६ ॥

पृष्ठं शरीरावयवान्तरेऽपि चरमेऽपि च ।

प्रष्ठोऽप्रगामिनि श्रेष्ठे प्रष्ठा चाण्डालिकौषधौ ॥ ७ ॥

वण्ठः स्यादकृतोद्वाहे कुन्तधारकखर्बयोः ।

शठस्तु पुंसि धत्तूरे धूर्तमध्यस्थयोस्त्रिषु ॥ ८ ॥

शोठोऽलसे च मूर्खे च श्रेष्ठो वरकुबेरयोः ।

षष्ठी तु षण्णां पूरण्यां त्रिषु स्त्री हरयोषिति ॥ ९ ॥

हठस्तु स्याद्वलात्कारे वारिपण्यां तु पुंस्ययम् ।

ठट्टीयम् ।

अपष्टुः समये वामेऽम्बष्ठो वैश्यासुते द्विजात् ॥ १० ॥

निष्ठा-नाटकसंधि, सिद्धि, नाश,  
अन्त, बडप्पन, याचना, क्लेश(कष्ट)  
( स्त्री० )

पाठा-पहाडमूल, ( स्त्री० )

पाठ-पठना ( पुं० ) ॥ ६ ॥

पृष्ठ-शरीरका पिछला भाग, पिछला  
( न० )

प्रष्ठ-आगे चलनेवाला, श्रेष्ठ, ( पुं० )

प्रष्ठा-चांडाली औषधि, ( स्त्री० ) ॥ ७ ॥

वण्ठ-जिसका बिवाह न हुवा वह,  
भाला ( हथियार ) धारनेवाला,  
ठिंगना-पुरुष ( पुं० )

शठ-धत्तूरा, धूर्त, मध्यस्थ, ( त्रि० )  
॥ ८ ॥

शोठ-आलसी, मूर्ख, ( पुं० )

श्रेष्ठ-उत्तम, कुबेर, ( पुं० )

षष्ठी-छह संख्याओंको पूरी करने-  
वाली ( त्रि० ) देवी-भेद, ( स्त्री० )  
॥ ९ ॥

हठ-जबरदस्ती, जलकुंभी, ( पुं० )

ठट्टीय ।

अपष्टु-काल, ( पुं० ) वामभाग, ( त्रि० )

अम्बष्ठ-ब्राह्मणसे उत्पन्नहुवा बनि-  
यानीका पुत्र, ॥ १० ॥



देशेऽब्रष्टा तु चाङ्गेर्या पाठयूथिकयोरपि ।  
 कनिष्ठोऽल्पेऽनुजे यूनि कनिष्ठा त्वन्तिमाङ्गुलौ ॥ ११ ॥  
 कमठः कच्छपे पुंसि कमठं भाजनान्तरे ।  
 जरठः कठिने पाण्डौ कर्कशेऽप्यभिधेयवत् ॥ १२ ॥  
 नर्मठश्चुबुके पुंसि नर्मठो नागरेऽन्यवत् ।  
 प्रकोष्ठो विस्तृतकरे कूर्परादधरेऽपि च ॥ १३ ॥  
 नृपकक्षान्तरे चाथ प्रतिष्ठा गौरवे मता ।  
 या(यो)गनिष्पादने स्थानचतुरक्षरपद्ययोः ॥ १४ ॥  
 वरिष्ठः प्रवरे चोरुतरे स्यादभिधेयवत् ।  
 वरिष्ठं मरिचे ताम्रे वरिष्ठः पुंसि तित्तिरौ ॥ १५ ॥  
 मकुष्ठो मन्थरेऽपि स्याद् व्रीहिभिस्सवयोरपि ।  
 लघिष्ठो भेलकेऽत्यल्पे वैकुण्ठो विष्णुशक्रयोः ॥ १६ ॥

अम्बष्ठा—अम्ललोनियां-औषधि, पाद,  
 जूही—पुष्पझाड़, ( स्त्री० )

कनिष्ठ—अल्प, छोटा भ्राता, जवान,  
 ( पुं० )

कनिष्ठा दुबला, पिछली अंगुली,  
 ( स्त्री० ) ॥ ११ ॥

कमठ—कछुवा, ( पु० ) पात्रविशेष,  
 ( न० )

जरठ—कठोर, पाण्डु ( पीला ), क-  
 र्कश ( दुःस्पर्श ) ( त्रि० )  
 ॥ १२ ॥

नर्मठ—कुचका अप्रभाग, धूर्त ( पुं० )

प्रकोष्ठ—फैलायाहुवा हाथ, कौहनीसे

नीचेका भाग, राजाकी ब्यौढी,  
 ( पुं० ) ॥ १३ ॥

प्रतिष्ठा—बडप्पन, योग या यज्ञकी  
 सिद्धि, स्थान, चार अक्षरका छंद,  
 ( स्त्री० ) ॥ १४ ॥

वरिष्ठ—श्रेष्ठ, बहुत जियादह, ( त्रि० )  
 मिरच, ताँबा, ( न० ) तीतर-पक्षी,  
 ( पुं० ) ॥ १५ ॥

मकुष्ठ—मंद चलनेवाला, मोठ-धान्य,  
 यज्ञभेद, ( पुं० )

लघिष्ठ—नदी तरनेकी छोटी नौका,  
 बहुत छोटा, ( पुं० )

वैकुण्ठ—विष्णु, इंद्र ( पुं० ) ॥ १६ ॥

श्रीकण्ठः पार्वतीनाथे कुरुजाङ्गलकेऽपि च ।

भवेदार्येऽपि साधिष्ठः साधिष्ठोऽपि दृढेऽपि च ॥ १७ ॥

ठचतुर्थम् ।

कलकण्ठः पिके पारावते हंसे कलध्वनौ ।

कण्ठे मृगान्तरे कालपृष्ठः क्लीबं तु कार्मुके ॥ १८ ॥

कर्णबाणेऽप्यथो दन्तशठो जम्भकपित्थयोः ।

कर्मरङ्गेऽपि नारङ्गे रुक्मियायां खियामियम् ॥ १९ ॥

नीलकण्ठस्तु दात्यूहे खञ्जने प्रबलाकिनि ।

कलर्विके हरे पीतसारके कालकण्ठवत् ॥ २० ॥

पूतिकाष्ठं तु सरले देवदारुमहीरुहे ।

सूत्रकण्ठः कपोते स्यात्खञ्जरीटे द्विजन्मनि ॥ २१ ॥

हारिकण्ठः परभृते हारान्वितगले त्रिषु ॥ २२ ॥

इति विश्वलोचने ठान्तवर्गः ॥

श्रीकण्ठ-महादेव, कुरुजांगलदेश, (पुं०)

साधिष्ठ-अतिश्रेष्ठ, अतिदृढ, (पुं०)

॥ १७ ॥

ठचतुर्थम् ।

कलकण्ठ-कोयल-पक्षी, कबूतर, हंस,

सूक्ष्मशब्द, कण्ठ, मृगभेद, (पुं०)

कालपृष्ठ-धनुष, कर्णका बाण, (पुं०)

॥ १८ ॥

दन्तशठ-चांगेरी-औषधि, जंबीरी

नींबू, कैथ-वृक्ष, कमरख, नारंगी,

(पुं०)

दन्तशठ-रोगकी किया, (स्त्री०) ॥ १९ ॥

नीलकण्ठ-कालकण्ठ-जलकाक, खं-

जन-पक्षी, मयूर-पक्षी, चिड़ी-

पक्षी, महादेव, टेरा-वृक्ष, (पुं०)

॥ २० ॥

पूतिकाष्ठ-सरल-वृक्ष, देवदारु-वृक्ष,

(न०)

सूत्रकण्ठ-कबूतर-पक्षी, खंजन-पक्षी,

ब्राह्मण आदि, (पुं०) ॥ २१ ॥

हारिकण्ठ-कोयल-पक्षी, (पुं०) हा-

रधारीगलवाला, (त्रि०) ॥ २२ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटी-

कामें ठान्तवर्ग समाप्त हुआ ॥

## अथ डान्तवर्गः ।

डैकम् ।

डकारः पार्वतीनाथे चासे शब्देऽपि दृश्यते ।

डद्वितीयम् ।

अण्डं तु खगमीनादिकोशे स्यान्मुष्कवीर्ययोः ॥ १ ॥

इडा बुधवधूवाचोरिलावद्भूगवोरपि ।

काण्डोऽस्त्री वर्गबाणार्थनालावसरवारिषु ॥ २ ॥

दण्डे प्रकाण्डे रहसि स्तंभे कुत्सितकुत्सयोः ।

पतिवल्लीसुते जारात्कुण्डः कुण्डी कमण्डलौ ॥ ३ ॥

कुण्डं देवजलाधारे पिठरे तु मतं न ना ।

क्रीडा केलाववज्ञायां खेलायामपि सम्मता ॥ ४ ॥

क्रोडः शनौ वराहे च क्रोडं क्रोडा च वक्षसि ।

खण्डोर्द्ध्वोऽस्त्री पुमानिक्षुविकारे मणिदूषणे ॥ ५ ॥

## अथ डान्तवर्गः ।

डैक ।

ड(कार)—महादेव, चास-पक्षी, शब्द  
( आवाज ) ( पुं० )

डद्वितीय ।

अंड—पक्षी और मच्छीआदिकोंका  
कोश ( अंडा ), अंडकोश, वीर्य,  
( न० ) ॥ १ ॥इडा—इला—बुधग्रहकी स्त्री, वाणी,  
पृथ्वी, गौ, ( स्त्री० )कांड—वर्ग (विषयसमाप्ति), बाण, अर्थ,  
नाल—ढंडी, भवसर, जल, ॥ २ ॥  
दण्ड ( डंडा ), वृक्षका—स्थूलभाग,एकांत, गुच्छ, निंदित, निंदा ( पुं०  
न० )कुंड—पतिके जीतेहुए जारसे उत्पन्न  
हुवा, ( पुं० )

कुंडी—कुंडी या कमंडलु ( स्त्री० ) ॥ ३ ॥

कुंड—वर्षाके जलका रहनेका स्थान,  
पेट ( स्त्री० न० )क्रीडा—क्रीडाप्रकार, तिरस्कार, खे-  
लना, ( स्त्री० ) ॥ ४ ॥क्रोड—शनि—ग्रह, सूकर, ( पुं० ) क्रोड  
( न० ) और क्रोडा ( स्त्री० ) छाती,खंड—टुकड़ा ( पुं० न० ) खौंड  
( चीनी ), मणिदोष, ( पुं० ) ॥ ५ ॥

गडो मीनेऽन्तराये च कुब्जे पृष्ठगुडे गडुः ।

गण्डस्तु पिटके योगभेदे खड्गिकपोलयोः ॥ ६ ॥

वरे प्रवीरे चिहे च वाजिमूषणबुहुदे ।

गुडः स्याद्गजसत्राहे गोलकेक्षुविकारयोः ॥ ७ ॥

गुडा सुहीगुडिकयोः कंदुके चोडनात्परः ।

गोण्डः पामरभेदे स्याद् वृद्धनाभौ तु वाच्यवत् ॥ ८ ॥

चण्डस्तीव्रे दैत्यभेदे यमदासेऽतिकोपने ।

स्त्रियां चण्डा धनहरीशङ्खपुष्पिकयोर्मता ॥ ९ ॥

भवेच्चण्डी तु पार्वत्यां हिंस्रकोपनयोषितोः ।

चूडा वलयभेदे स्याच्छिखायां वड(ल)भावपि ॥ १० ॥

चोडो(लो) देशविशेषे स्याच्चोडः प्रावरणान्तरे ।

मूर्खे मूके हिमप्रस्ते जडा स्त्री कन्दरौषधौ ॥ ११ ॥

गड-मच्छी, विघ्न, ( पुं० )

गड-कुब्जा, पीठमें गूमडावाला ( पुं० )

गंड-छोटी फुन्सी, योगभेद, गैडा, गाल ( मुखका एक भाग ) ॥ ६ ॥

श्रेष्ठ, शरवीर, चिह्न, अश्वका आभूषण, बुहुदा, ( पुं० )

गुड-हस्तीका कवच, गोला, गुड, ( पुं० ) ॥ ७ ॥

गुडा-थोहर, गोली, उडनगुडा-खिन्न, ( स्त्री० )

गौड-नीच जाति, ( पुं० ) बड़ी तूंडी-वाला, ( त्रि० ) ॥ ८ ॥

चंड-तीक्ष्ण, दैत्यभेद, धर्मराजका किंकर, अति क्रोधी, ( पुं० )

चंडा-चोरनामक गन्धद्रव्य, शंखा-हुली, ( स्त्री० ) ॥ ९ ॥

चंडी-पार्वती, हिंसा करनेवाली स्त्री, अतिकोधवाली स्त्री ( स्त्री० )

चूडा-कंकणभेद, चोटी, धरका छज्जा ( अप्रभाग ) ( स्त्री० ) ॥ १० ॥

चोड(ल)-देशभेद, अंगरखा, ( पुं० )

जड-मूर्ख, गूंगा, ढंढका सताया, ( पुं० )

जडा-कौचकी फली ( स्त्री० ) ॥ ११ ॥

ताडो मुष्ट्यादिसंभेयतृणादौ ताडने रवे ।

ताडी ताडीतरौ दण्डश्चण्डांशोः पारिपार्श्विके ॥ १२ ॥

दण्डः सैन्यव्यूहभेदे मानभेदे दमे यमे ।

मंथानेऽश्वेऽभिमाने च कोणदण्डप्रकाण्डयोः ॥ १३ ॥

विग्रहे च ग्रहे यज्ञे लगुडेऽपि मतोऽस्त्रियाम् ।

नाडी नाड्यां शिरायां स्याद्वात्तायां कुहनस्य च ॥ १४ ॥

नीडं स्थाने कुलायेऽस्त्री समीपे तु सपूर्वकः ।

पण्डः षण्डे धियां पण्डा पाण्डुः कुन्तीपतौ सिते ॥ १५ ॥

पिण्डो देहांसयोरस्त्री निवापे सिहके पुमान् ।

पिण्डो जपाप्रसूनेऽपि पिण्डः स्याद्भोजने त्रिषु ॥ १६ ॥

पिण्डं सांघे बले बोले गृहाङ्गे जीविकायसोः ।

पिण्डी तु पिण्डिकाऽलावूस्वर्जरीतगरान्तरे ॥ १७ ॥

ताड—मुद्गीभरा तृण, ताडन, शब्द  
( पुं० )

ताडी—ताडका वृक्ष, ( स्त्री० )

दंड—सूर्यका अनुचर, ॥ १२ ॥ सेना,

सेनारचनाभेद, मानभेद, दम (इं-  
द्रियोंका रोकना), यम नियम, दधि

मथनेकी रई, अश्व, अभिमान,

वीणादंड, वृक्षका पेडा, ॥ १३ ॥

विग्रह, ग्रह, यज्ञ, लाठी ( पुं० न० )

नाडी—घटी, नस, पाखंडसे ध्यान,

( स्त्री० ) ॥ १४ ॥

नीड—स्थान, पक्षीका घूसला, सनीड-

समीप, ( पुं० न० )

पंड—हिजड़ा, ( पुं० )

पंडा—बुद्धि ( स्त्री० )

पांडु—कुंतीका पति—राजा, सफेदरंग-  
वाला, ( पुं० ) ॥ १५ ॥

पिंड—शरीर, कंधा ( पुं० न० ) पि-  
तरोंको देनेका पिंड, हींग, जपा-  
पुष्प या जाखंड ( पुं० ) भोजन  
( त्रि० ) ॥ १६ ॥

सघन, बल, स्वनामख्यात गंध द्रव्य  
( बोल ), घरका अंग, आजीविका,  
लोहा, ( न० )

पिण्डी—बीया या कद्दू, पिंडखजूर,

पिंडि—का, कोंकणदेशीय तगर, ( स्त्री० )

॥ १७ ॥

पिण्डी स्याज्ज्ञानजिज्ञासे जिज्ञासेऽपि सतां मता ।

पीडाऽपमर्दकृपयोः सरलद्रुशिरोध्वजे ॥ १८ ॥

बण्डा तु कुलटायां स्याद् बण्डो हस्तादिवर्जिते ।

भाण्डं तु भाजने वणिग्मूलवित्ते विभूषणे ॥ १९ ॥

भूषणे च तुरङ्गाणां नदीपात्रे च कुत्रचित् ।

भवेन्मण्डस्तु कूष्माण्डे कर्कट्यामपि पुंस्ययम् ॥ २० ॥

सारे पिच्छेऽपि मण्डेऽस्त्री पुमानेरण्डभूषयोः ।

मण्डा धात्र्यामथो मण्डं शाकभेदे च मस्तुनि ॥ २१ ॥

मुण्डो राहुशिरोदैत्यभेदेषु त्रिषु मुण्डिनि ।

रण्डा मूषिकपर्ण्याख्यभेषजे विधवास्त्रियाम् ॥ २२ ॥

व्याडस्तु हिंसपश्वाद्ये श्वापदेऽपि सरीसृपे ।

शुण्डा सुरायां वेश्यायां नलिनीहस्तिहस्तयोः ॥ २३ ॥

पिण्डी-ज्ञानजाननेकी इच्छा, श्रेष्ठपुरु-  
षोके जाननेकी इच्छा ( स्त्री० )

पीडा-मर्दनकरना, कृपा, सरल-वृक्ष,  
शिरपै धारण किया हुआ मुकुट  
आदि, ( स्त्री० ) ॥ १८ ॥

बण्डा-बदचलन स्त्री, ( स्त्री० ) हाथसे  
वर्जित किया हुआ, ( त्रि० )

भाण्ड-पात्र, बनियांका मूलधन, आभू-  
षण, अश्वोका आभूषण, ॥ १९ ॥  
नदीके दोनोतटोंके बीचका भाग,  
( न० )

मण्ड-कोहला या पेठा-शाक, ककडी,  
( पुं० ) ॥ २० ॥ द्रव्यका सार,  
मोरकी पंख, ( पुं० न० )

अरंड-वृक्ष, आभूषण, ( पुं० )

मण्डा-आंवला ( स्त्री० )

मण्ड-शाकभेद, दधिसे उत्पन्न हुवा  
मांड, ( न० ) ॥ २१ ॥

मुण्ड-राहु-ग्रह, कटा हुआ शिर, दैत्यभेद,  
( पुं० ) केशमुंडाया हुआ, ( त्रि० )

रण्डा-मूसापर्णी-औषधि, विधवा स्त्री  
( स्त्री० ) ॥ २२ ॥

व्याड-हिंसा करनेवाले पशु आदि,  
श्यावज ( वनके पशु ), सर्प ( पुं० )

शुण्डा-मदिरा, वेश्या, कमोदिनी,  
हस्तीकी सूंड, ॥ २३ ॥ जल ह-  
स्तिनी ( जल जंतु, ) ( स्त्री० )

शुण्डा जलकरिण्यां च शुण्डस्तु मदनिर्भरे ।  
 शौण्डी कुशायां चविके शौण्डो मत्तेऽभिधेयवत् ॥ २४ ॥  
 षडः पेयान्तरे पुंसि षडो भिद्यपि विद्यते ।  
 पद्मादिवृन्दे षण्डोऽस्त्री षण्डः स्याद्गोपतौ चये ॥ २५ ॥  
 क्ष्वेडस्तु पुंसि गरले ध्वाने कर्णे महेश्वरे ।  
 क्ष्वेडस्त्रिषु स्यात्कुटिले क्ष्वेडा तु गजयोषिति ॥ २६ ॥  
 वीराणां सिंहनादेऽपि वंशशल्येऽपि च स्त्रियाम् ।  
 क्ष्वेडस्तु रक्तार्कफले घोषपुष्पे दुरासदे ॥ २७ ॥

तृतीयम् ।

कारण्डो मधुकोषाऽसिकारण्डवदलाढके ।  
 कूष्माण्डो गणभेदे स्यात्कर्कारुभ्रूणयोरपि ॥ २८ ॥  
 कूष्माण्डी चण्डिकायां स्यादपि स्यादौषधीभिदि ।  
 कोदण्डो देशभेदेऽपि कोदण्डः कार्मुके भ्रुवि ॥ २९ ॥

शुण्ड—मदोन्मत्त, ( पुं० )  
 शौण्डी—कुशा, चव्य, ( स्त्री० )  
 शौण्ड—मदोन्मत्त, ( त्रि० ) ॥ २४ ॥  
 षड—पीनेयोग्य पदार्थभेद, ( पुं० )  
 षण्ड—कमल आदिकोंका समूह, ( पुं०  
 न० ) इन्द्र, सांड आदि, समूह  
 ( पुं० ) ॥ २५ ॥  
 क्ष्वेड—विष, शब्द, कर्ण, महादेव,  
 ( पुं० ) कुटिल ( त्रि० )  
 क्ष्वेडा—हस्तिनी, ॥ २६ ॥ शूरवीरोंकी  
 गर्जना, बांसका माला, ( स्त्री० )  
 क्ष्वेड—लाल आकका फल, घोष ( तोरी )

लताका पुष्प, तेजस्वी, ( पुं० )  
 ॥ २७ ॥

तृतीय ।

कारण्ड—शहदका कोश, तलवार बना-  
 नेवाला, करडुवा-पक्षी, स्वयं उप-  
 जा तिल ( पुं० )  
 कूष्माण्ड—महादेवके गणोंका भेद,  
 कोहला, गर्भ, ( पुं० ) ॥ २८ ॥  
 कूष्मांडी—चंडिका ( देवी ), औषधीभेद,  
 ( स्त्री० )  
 कोदंड—देशभेद, धनुष, भुङ्कटी,  
 ( पुं० ) ॥ २९ ॥

गारुडं स्यान्मरकते विषशास्त्रेऽपि गारुडम् ।  
 गारुडं गारुडभवे तरण्डो भेलके पुमान् ॥ ३० ॥  
 वडिशीसूत्रसंबद्धतरद्वस्तुनि नावि च ।  
 तित्तिडो दैत्यभेदे स्यात् तित्तिडो यमचेटके ॥ ३१ ॥  
 वृक्षभेदेऽपि वृक्षाम्लबिंबयोरपि तित्तिडी ।  
 द्राविडो वेधमुख्ये स्यान्न्रीवृदन्तरसङ्ख्ययोः ॥ ३२ ॥  
 निर्गुण्डीन्द्राणिकानीलशेफाल्योः करहाटके ।  
 पिचण्डः पुंसि जठरे पशोरवयवेऽपि च ॥ ३३ ॥  
 पूत्यण्डः श्वाविद्वन्धमृगयोर्गन्धकीटके ।  
 प्रकाण्डोऽस्त्री तरुस्कन्धे प्रशस्ते विटपेऽपि च ॥ ३४ ॥  
 प्रचण्डो दुर्वहे श्वेतकरवीरे प्रतापिनि ।  
 वरण्डो मुखरोगे स्यादन्तरावेदिवृन्दयोः ॥ ३५ ॥

<p>गारुड—मरकत ( नीली ) मणि, विष-                  शास्त्र, विषशास्त्र विषै होनेवाला                  ( न० )                  तरण्ड—नदी आदिमें तरनेका पूला                  आदि ॥ ३० ॥ मच्छीपकडनेका                  कांटाके सूत्रके संबंधसे तिरती                  हुई वस्तु, नौका, ( पुं० )                  तित्तिड—दैत्यभेद, धर्मराजका किंकर                  ( पुं० ) ॥ ३१ ॥                  तित्तिडी—वृक्षभेद, चूका-शाक, इम-                  ली-वृक्ष,                  द्राविड—वेधमुख्य, देशभेदमें उत्पन्न                  होनेवाला, संख्याभेद ( पुं० ) ॥ ३२ ॥</p>	<p>निर्गुण्डी—पुष्पभेद, नीलासंभाल, कम-                  लकंद, ( स्त्री० )                  पिचण्ड—उदर ( पेट ), पशुका एक                  अंग, ( पुं० ) ॥ ३३ ॥                  पूत्यण्ड—सेही, गन्धमृग, गन्धकीटक                  ( गंधकीडा ) ( पुं० )                  प्रकाण्ड—वृक्षकी जड़से शाखाओंत-                  कका भाग, श्रेष्ठ, वृक्ष, ( पुं० न० )                  ॥ ३४ ॥                  प्रचण्ड—जिसके साथ दुःखसे बर्ताव                  हो वह, सफेद कनेर, प्रतापी, ( पुं० )                  वरण्ड—मुखरोग, अन्तरावेदि ( भीतरका                  चौतरा ) वृन्द ( समूह ) ( पुं० ) ॥ ३५ ॥</p>
---	---



मतो दुष्टिणि वार्तण्डो वार्तण्डः स्याद्विहङ्गमे ।  
 वारुण्डी द्वारपिण्ड्यां स्याद् वारुण्डः कर्णदृष्ट्यले ॥ ३६ ॥  
 फणिराजेऽथ वारुण्डः सेकपात्रेऽपि मुद्गरे ।  
 भेरुण्डा यक्षिणीदेवीभेदयोस्त्रिषु भीषणे ॥ ३७ ॥  
 मार्त्तण्डस्तु मतश्चण्डकिरणक्रोडयोरयम् ।  
 मारण्डस्तु भुजङ्गाण्डे पथि गोमयमण्डले ॥ ३८ ॥  
 वरण्डा सारिकाखड्गधेनुवर्त्तिषु वर्त्तते ।  
 वितण्डा वादभेदे स्यात् करवीर्यां शिलाह्वये ॥ ३९ ॥  
 कच्छीशाके च सा ज्ञेया शिखण्डो बर्हिचूडयोः ।  
 सपिण्डः पुंसि दायादे सपिण्डस्तनयेऽपि च ।  
 सरण्डः सरटे धूर्त्ते सरण्डो भूषणान्तरे ॥ ४० ॥

इचतुर्थ ।

आपोगण्डस्तु शिशुके विकलाङ्गेऽतिभीरुके ॥ ४१ ॥

वार्तण्ड—दुष्टी, पक्षी, ( पुं० )  
 वारुण्डी—द्वारपिण्डी ( देहली ) ( स्त्री० )  
 वारुण्ड—कान और नेत्रका मल ॥ ३६ ॥  
 नागराज, सींचनेका पात्र, मुद्गर,  
 ( पुं० )  
 भेरुण्डा—यक्षिणीभेद, देवीभेद, ( स्त्री० )  
 भयंकर ( त्रि० ) ॥ ३७ ॥  
 मार्त्तण्ड—सूर्य, सूकर, ( पुं० )  
 मारण्ड—सर्पका अंडा, मार्ग, गोबरका  
 मंडल, ( पुं० ) ॥ ३८ ॥  
 वरण्डा—मैना-पक्षी, खज्ज, गौ, बत्ती,  
 ( स्त्री० )

वितण्डा—वादभेद, कनेर, शिलाजीत  
 ॥ ३९ ॥ कच्छी—शाक ( शाकभेद )  
 ( स्त्री० )  
 शिखण्ड—मोरपंख, मोरचोटी, ( पुं० )  
 सपिण्ड—हिस्तेदार, पुत्र, ( पुं० )  
 सरण्ड—गिरगट, धूर्त्त, आभूषणभेद,  
 ( पुं० ) ॥ ४० ॥

इचतुर्थ ।

आपोगण्ड—बालक, विकल अंग,  
 बहुत डरपोक, ( पुं० ) ॥ ४१ ॥

चक्रवाडोऽद्रिभेदे स्याच्चक्रवाडं तु मण्डले ।  
जलरुण्डो जलावर्त्ते जलरेणुभुजङ्गयोः ॥ ४२ ॥  
देवताडो बृहद्भानौ खर्भानौ घोषकेऽपि च ।  
द्वयोर्वातगुडः स्यातो वात्यायां वातशोणिते ॥ ४३ ॥  
पिच्छिलास्फोटिकायां च धाममात्रेऽपि दृश्यते ।  
इति विश्वलोचने डान्तवर्गः ॥

### अथ ढान्तवर्गः ।

ढैकम् ।

स्याद् ढकारस्तु ढकायां निर्गुणे विषमध्वनौ ॥ १ ॥

द्वितीयम् ।

गूढं रहसि गुह्ये च संवृते त्वभिधेयवत् ।  
भवेद्दाढा तु दंष्ट्रायामिच्छायामप्यथ त्रिषु ॥ २ ॥  
स्याद्दढः स्थूलबलिनोर्दृढं वाढप्रगाढयोः ।  
माढिः पत्रादिभङ्गौ स्याद् बलिनां दैन्यदीपने ॥ ३ ॥

चक्रवाड—पर्वतभेद, ( पुं० ) मंडल,  
( न० )

जलरुण्ड—जलका भंवर, जलकी रेती,  
सर्प, ( पुं० ) ॥ ४२ ॥

देवताड—अग्नि, राहु, तोरई, ( पुं० )

वातगुड—वात ( वायु ) समूह, वात-  
शोणित ( वातरुधिर ), ॥ ४३ ॥

जलक्षिरतीहुई गूमडी, स्थानमात्र,  
( पुं० स्त्री० )

इसप्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें  
डान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

अथ ढान्तवर्ग ।

ढैक ।

ढ(कार)—ढोल-बाजा, निर्गुण-पुरुष,  
विषमशब्द, ( पुं० ) ॥ १ ॥

द्वितीय ।

गूढ—एकांत, गुप्त, ढकाहुवा, ( त्रि० )

दाढा—डाढ, इच्छा ( स्त्री० ) ॥ २ ॥

दढ—मोटा, बली, ( त्रि० ) निरंतर,  
मजबूत ( न० )

माढि—झियोंके मुखआदिका चित्र,  
बलीके आगे दीनताका दिखाना  
( स्त्री० ) ॥ ३ ॥

मूढस्तु तन्द्रिते मूर्खे राढा स्यादुद्यशोभयोः ।  
 वाढं भृशे प्रतिज्ञायां वोढा भारिकसूतयोः ॥ ४ ॥  
 व्यूढः पृथुलविन्यस्तसंहतेषु हते त्रिषु ।  
 षण्ढो वृषे वर्षवरे क्लीबे स्याद्वन्ध्यपूरुषे ॥ ५ ॥  
 वाच्यवन्मर्षणे सोढा सोढा शक्तेऽपि वाच्यवत् ।

द्वतृतीयम् ।

अध्यूढ ईश्वरेऽध्यूढा कृतसापत्न्ययोषिति ॥ ६ ॥  
 आषाढो व्रतिनां दण्डे मासेऽपि मलयाचले ।  
 उदूढ ऊढे स्थूले स्यादुपोढो निकटोदयोः ॥ ७ ॥  
 प्रगाढस्तु दृढे कृच्छ्रे प्रमीढो मूर्त्रिते घने ।  
 प्ररूढो जाठरे बद्धमूले स्यादभिधेययोः ॥ ८ ॥

मूढ—नंदावाला, मूर्ख ( पुं० )  
 राढा—गुप्त, शोभा, ( स्त्री० )  
 वाढ—अत्यन्त, प्रतिज्ञा, ( न० )  
 वोढा—भारलेजानेवाला, सारथि,  
 ( पुं० ) ॥ ४ ॥  
 व्यूढ—मोटा, स्थापनकियाहुवा, इच्छा  
 कियाहुवा, नाशहुवा, ( त्रि० )  
 षण्ढ—सांडवैल, हिजडा, ( पुं० ) संतान-  
 रहित पुरुष ( पुं० ) ॥ ५ ॥  
 सोढा—सहनेवाला-पुरुष, समर्थ, ( त्रि० )  
 द्वतृतीय ।  
 अध्यूढ—ईश्वर या समर्थ, ( पुं० )

अध्यूढा—जिसके कई विवाह हुए हों  
 उसकी पहली स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ ६ ॥  
 आषाढ—व्रतियोंका दंड, आषाढ-  
 मास, मलयाचल-पर्वत, ( पुं० )  
 उदूढ—विवाहाहुवा, स्थूल ( मोटा )  
 ( पुं० )  
 उपोढ—समीप होनेवाला, विवाहा  
 हुवा, ( पुं० ) ॥ ७ ॥  
 प्रगाढ—दृढ, कष्ट, ( पुं० )  
 प्रमीढ—पेशाब करना, मेघ ( पुं० )  
 प्ररूढ—पेट, जिसकी जड़ दृढ है वह,  
 नाम ( पुं० ) ॥ ८ ॥

प्रारूढः सम्बले वहौ वस्त्राञ्चलकपाटयोः ।  
 पञ्जरेऽपि विगूढस्तु गुप्तगर्हितयोस्त्रिषु ॥ ९ ॥  
 विगूढस्त्रिषु सञ्जाते वर्द्धिते छुरिते मतः ।  
 संमूढस्तु नवे भुमे पुंजितेऽप्यनुपप्लुते ॥ १० ॥  
 संरूढो वाच्यवत्प्रौढे तथैवाङ्कुरितेऽपि च ।

ढचतुर्थम् ।

अध्यारूढं समारूढोऽत्यधिकेऽपि त्रिलिङ्गकः ॥ ११ ॥

इति विश्वलोचने ढान्तवर्गः ॥

### अथ णान्तवर्गः ।

णकारो निर्णये ज्ञाने ।

णद्वितीयम् ।

सूक्ष्मे त्रीह्यन्तरेऽप्यणुः ॥

अणिराणिवदक्षाग्रकीलसीमाश्रिषु द्वयोः ॥ १ ॥

प्रारूढ-खरची, अग्नि, वस्त्रखंड,  
 किंवाड, पींजरा ( पुं० )

विगूढ-गुप्त, निंदिन, ( त्रि० ) ॥ ९ ॥

विगूढ-उत्पन्नहुवा, बडाहुवा, अधि-  
 क हास, ( पुं० )

संमूढ-नवीन, मुडाहुवा, इकट्ठा  
 किया हुवा, नहीं कष्टमें पडाहुवा,  
 ( पुं० ) ॥ १० ॥

संरूढ-जवान, अंकुरवाला, ( त्रि० )

ढचतुर्थ ।

अध्यारूढ-अच्छीतरह चडाहुवा,

अत्यंत अधिक ( जियादह ),  
 ( त्रि० ) ॥ ११ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें  
 ढान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

### अथ णान्तवर्ग ।

णैक ।

ण(कार)-निर्णय, ज्ञान, ( पुं० )

णद्वितीय ।

अणु-सूक्ष्म, त्रीहिभेद, ( पुं० )

अणि-आणि-धुराका अग्रभाग,

कीला, सीम, कोण, ( पुं० स्त्री० ) ॥ १ ॥

उष्णः स्यादातपे ग्रीष्मे वाच्यवत्तप्तदक्षयोः ।  
 ऊर्णा भ्रूमध्यजावर्त्ते भवेन्मेष्ण्यादिलोम्नि च ॥ २ ॥  
 पिप्पलीजीरकुम्भीरमक्षिकासु कणा स्मृता ।  
 कणोऽतिसूक्ष्मे धान्यांशे कर्णः श्रोत्रे पृथासुते ॥ ३ ॥  
 सुवर्णालौ च काणस्तु मौद्गल्याधिकलोचने ।  
 किणस्तु व्रणे चिह्ने स्यादथ सूक्ष्मव्रणे गुणे ॥ ४ ॥  
 कीर्णं छत्रे परिक्षिप्ते हिंसितेऽप्यभिधेयवत् ।  
 कुणिस्तु कुकरे तुत्रे कृष्णे विष्णौ पिकेऽर्जुने ॥ ५ ॥  
 व्यासे कृष्णं तु मरिचे लोहे च त्रिषु तद्व्रति ।  
 कृष्णा तु द्रौपदीनीलीहारह्वरासु पिप्पलौ ॥ ६ ॥  
 कोणोऽसौ लगुडे बाद्यप्रभेदे चार्कसम्भवे ।  
 बीणादिवादनोपायेऽप्येकदेशेऽपि वाच्यवत् ॥ ७ ॥

उष्ण—धूप, ग्रीष्म-ऋतु, ( पुं० ) तपा  
 हुवा, चतुर, ( त्रि० )  
 ऊर्णा—भ्रुकुटीके बीचका चक्र, भेडी  
 आदिके केश, ( स्त्री० ) ॥ २ ॥  
 कणा—पीपल औषधि, जीरा, जल-  
 जन्तु, सोनामक्खी, ( स्त्री० )  
 कण—अतिसूक्ष्म, धान्यका अंश ( कि-  
 तनेकदाने ) ( पुं० )  
 कर्ण—कान, कुंतीका पुत्र, सुवर्णालि  
 ( सोनाली-वृक्ष ) ( पुं० ) ॥ ३ ॥  
 काण—काग आदिक अर्थात् काणाने  
 नेत्रवाला, ( पुं० )  
 किण—व्रण ( घाव ), चिह्न, सूक्ष्मव्रण,  
 गुण, ( पुं० ) ॥ ४ ॥

कीर्ण—ढकाहुवा, तिरस्कार कियाहुवा,  
 माराहुवा, ( त्रि० )  
 कुणि—रोगआदिसे दूषित हाथोंवाला  
 ( दृष्टा ), ( त्रि० ) तूनवृक्ष, ( पुं० )  
 कृष्ण—विष्णु, कोयल, अर्जुन, ॥ ५ ॥  
 व्यास, ( पुं० ) स्याहमिरच, लोहा  
 ( न० ) स्याहरंगवाला ( त्रि० )  
 कृष्णा—द्रौपदी, नीली, दाख, पिप्पली,  
 ( स्त्री० ) ॥ ६ ॥  
 कोण—कूना, लाठी, बाजाभेद, शनै-  
 श्वर, बीणाबजानेका गज, ( पुं० )  
 किसी द्रव्यका एकदेश ( त्रि० )  
 ॥ ७ ॥

गणः समूहे प्रमथे संख्यासैन्यप्रभेदयोः ।

गुणो रूपादिसत्त्वादिर्बिम्बादिहरितादिषु ॥ ८ ॥

सूदेऽप्रधाने सन्ध्यादौ रज्जौ मौर्व्या वृकोदरे ।

गेष्णुर्नटे गायने स्याद् घृणा कारुण्यनिन्दयोः ॥ ९ ॥

घ्राणं घ्राणेऽपि नासायां चूर्णीं तु स्यात्कर्पदके ।

चूर्णः क्षोदे क्षारभेदे चूर्णानि गन्धशुक्तिषु ॥ १० ॥

जर्णः कलानिधौ वृक्षे जिष्णुः पार्थेन्द्रवह्निषु ।

जित्वरे त्रिषु जीर्णं तु पक्वे वृद्धे जरान्तरे ॥ ११ ॥

झाणिः पूगे दुष्टदैवश्रुतौ स्त्री कठिनेऽन्यवत् ॥

तीक्ष्णं क्षारेऽथ निशिततिग्मात्मत्यागिषु त्रिषु ॥ १२ ॥

निरालस्ये सुबुद्धौ च त्रिषु तीक्ष्णं च मुष्कके ।

तीक्ष्णं लोहे विषे तिग्मे यवाग्रे लवणे रणे ॥ १३ ॥

गण-समूह, महादेवकेगण, संख्या,  
सेनाभेद ( पुं० )

गुण-रूप रस आदि, सत्त्व रज आदि,  
बिम्बआदि, ॥ ८ ॥ हरित पीत  
आदि ( रंग ), रसोद्भवा, मंत्री,  
सन्ध्याआदि, रस्सी, धनुषकी ज्या,  
भीमसेन, ( त्रि० )

गेष्णु-नट, गानेवाला, ( पुं० )

घृणा-दया, निन्दा, ( स्त्री० ) ॥ ९ ॥

घ्राण-संधाहुवा, नासिका, ( न० )

चूर्णी-कौडी, ( स्त्री० )

चूर्ण-पीसाहुवा ( आटा आदि ),  
क्षारभेद, ( पुं० ) गंधवालीशुक्ति  
( सीपी ) ( न० ) ॥ १० ॥

जर्ण-चंद्रमा, वृक्ष, ( पुं० )

जिष्णु-अर्जुन, इन्द्र, अग्नि, ( पुं० )

जीतनेके स्वभाववाला, ( त्रि० )

जीर्ण-पक्व, वृद्ध, अतिवृद्ध, ( त्रि० )  
॥ ११ ॥

झाणि-सुपारी-वृक्ष, दुष्टभाग्यका सु-  
नना, ( स्त्री ) कठिन ( करुणा )  
( त्रि० )

तीक्ष्ण-क्षार, पैना, तीखा, आत्म-  
त्यागी, ( त्रि० ) ॥ १२ ॥ आ-  
लस्यरहित, अच्छीबुद्धिवाला, ( त्रि० )  
मोखा-वृक्ष, लोहा, विष, तिग्म  
( तीक्ष्ण ), जवाखार, नमक, रण,  
( न० ) ॥ १३ ॥

तूणी नील्यां निषङ्गे ना तृष्णा लिप्सापिपासयोः ।

द्रोणं तु रक्षिते रक्ष्ये रक्षणत्रायमाणयोः ॥ १४ ॥

दीर्णं विदारिते भीते स्फुटितेऽप्यभिधेयवत् ।

देष्णुर्दातरि दुर्दान्ते द्रुणो वृश्चिकभृंगयोः ॥ १५ ॥

द्रुणी तु कच्छपीद्रोणयोर्द्रुणं चापकृपाणयोः ।

द्रोणस्तु द्रोणकाके स्यादपि द्रोणः कृपीपतौ ॥ १६ ॥

आढकानां चतुष्केपि द्रोणं स्यादाढकेऽस्त्रियाम् ।

द्रोणी काष्ठाम्बुवाहिन्यां गवां घासभुजिस्थितौ ॥ १७ ॥

काष्ठामगारे गिरेः सन्धौ नीवृद्धेदेऽपि दृश्यते ।

वर्णः स्वर्णेऽपि रूपेऽपि पणो मूल्ये भृतौ ग्लहे ॥ १८ ॥

पणोऽशीतिवराटेऽपि पणः कार्षापणे धने ।

घूते विक्रय्यशाकादेर्बद्धमुष्ठावपि स्मृतः ॥ १९ ॥

तूणी—नीली-औषधि ( स्त्री० ) बाणों-  
का भाथा, ( पुं० )

तृष्णा—वांछा, तृषा (प्यास) (स्त्री०)

द्रोण—रक्षाक्रियाहुवा, रक्षाकरने योग्य,  
रक्षा, त्रायमान औषधि ( न० )  
॥ १४ ॥

दीर्ण—फाडाहुवा, डराहुवा, फूटाहुवा,  
( त्रि० )

देष्णु—दाता ( देनेवाला ), दुःखसे  
रोकाहुवा ( पुं० )

द्रुण—बीछ, भौंरा ( पुं० ) ॥ १५ ॥

द्रुणी—कछवी, छोटी नौका, ( स्त्री० )

द्रुण—धनुष, तरवार ( खड्ग ) ( न० )

द्रोण—काकभेद, द्रोणाचार्य, ( पुं० )  
॥ १६ ॥

द्रोण—चार आढक, ( पुं० न० )

द्रोणी—डोंडी, गाँवोंके घास चरनेकी  
जगह ॥ १७ ॥ काष्ठका स्थान,  
पर्वतकी संधि, देशभेद, ( स्त्री० )

वर्ण—सुवर्ण, रूप, ( पुं० )

पण—वस्तुका मोल, नौकरी, ज़वामें  
लगानेका धन, ॥१८॥ ५० कौडी,  
पैसा, धन, ज़वा, बेचनेके शाक  
आदिकी बाँधीहुई मुट्ठी, ॥ १९ ॥

पणो घृतादिषूत्सृष्टे व्यवहारेऽप्ययं पणः ।

पर्णं पत्रे पतत्रे च पर्णः स्यात्पुंसि किंशुके ॥ २० ॥

पार्ष्णिश्चरणमूले ना कुम्भीपाश्चात्यभागयोः ।

सेनापृष्ठेऽपि पार्ष्णिः स्यात्पार्ष्णिः स्यादुन्मदस्त्रियाम् ॥ २१ ॥

समग्रे पूरिते पूर्णस्त्रिषु शक्ते तु पुंस्ययम् ।

प्राणा असुष्वथ प्राणे विद्धातेऽप्यनिले बले ॥ २२ ॥

काव्यजीवे च बोले च प्राणं तु त्रिषु पूरिते ।

फाणिर्गुडे करण्डे च वाणी घृतौ च वाचि च ॥ २३ ॥

वाणिस्तु हारके मूल्ये भ्रूणः स्त्रीगर्भडिम्भयोः ।

मणिर्द्वयोर्मेहनाग्रे रत्ने छागीगलस्तने ॥ २४ ॥

अलिञ्जरेऽपि मुक्तादौ मोणस्तु पटमुत्सके ।

मोणो वाणेपि कुम्भीरे मक्षिकाहिकरण्डयोः ॥ २५ ॥

पणो—जूवा आदिमें लगायाहुवा,  
व्यवहार ( पुं० )

पर्ण—पत्ता, पक्षीकी पर, ( न० )

पर्ण—केसू ( पलाशपुष्प ) ( पुं० )  
॥ २० ॥

पार्ष्णि—एडी—पाँवकी, ( पुं० )

कायफल, पिछलाभाग, सेनाकी पीठ,  
मदोन्मत्त स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ २१ ॥

पूर्ण—संपूर्ण, पूराहुवा, ( त्रि० )  
समर्थ, ( पुं० )

प्राण—श्वास, ( पुं० ब० )

हृदयमें रहनेवाला वायु, बिट्वायु,  
वायु, बल, ॥ २२ ॥

काव्यजीव ( रस ), बोल ( गंधद्रव्य )  
( न० ) पूराहुवा, ( त्रि० )

फाणि—गुड, पिटारा, ( पुं० )

वाणी—जूवा, वाणी ( वाक् ) ( स्त्री० )  
॥ २३ ॥

वाणी—हार, मोल, ( पुं० )

भ्रूण—स्त्रीका गर्भ, बालक, ( पुं० )

मणि—लिंगका अग्रभाग, रत्न, बकरीके  
कंठके स्तन, ॥ २४ ॥ मटका, मो-  
ती आदि, ( पुं० स्त्री० )

मोण—वाण, नाकू ( जलजंतु ),

मक्खी, सर्पकी पिटारी, ( पुं० )  
॥ २५ ॥



रणः कोणे कणे युद्धे रेणुर्धूल्यणुपर्पटे ।

अथ पुंस्येव वर्णः स्यात्स्तुतौ रूपयशोगुणे ॥ २६ ॥

रागे द्विजादौ मुक्तादौ शोभायां चित्रकम्बले ।

व्रते गीतक्रमे देशेऽप्यस्त्री स्याद्वर्णकेऽक्षरे ॥ २७ ॥

बाणो वलिसुते काण्डे काण्डांशे केवले पुमान् ।

बाणो बाणा च क्षिप्यां स्याद् बाणको व्यन्तरे कचित् ॥ २८ ॥

विष्णुः कृष्णे वसौ सूर्ये विष्णुर्नारायणार्कयोः ।

वसुदैवतभेदेऽपि वीणा वल्लकिविद्युतोः ॥ २९ ॥

वृष्णिः स्याद्यादवे मेषे वृष्णिः पाषण्डिचण्डयोः ।

वेणी नदीनां सङ्गे स्यात् केशबन्धान्तरेऽपि च ॥ ३० ॥

देवताडेऽपि वेणी स्त्री वेणुर्वेशे नृपान्तरे ।

शाणोर्द्धमाषके कर्षे कषणे करपत्रके ॥ ३१ ॥

रण—कोण, शब्द, युद्ध, ( पुं० )

रेणु—धूलि, बारीक पापड, ( पुं० )

वर्ण—स्तुति, रूप, यश, गुण, ॥ २६ ॥

रागभेद, ब्राह्मण आदि, मोती  
आदि, शोभा, विचित्र कंबल, व्रत,  
गीतक्रम, देशभेद, रंग, अक्षर,  
( पुं० न० ) ॥ २७ ॥

बाण—बलिका पुत्र, बाण, बाणका मूल,  
केवल, ( पुं० )

बाणा—कटसरैया-औषधि, ( स्त्री० )

बाणक—व्यन्तरदेव ( पुं० ) ॥ २८ ॥

विष्णु—कृष्ण, वसु, सूर्य, नारायण,  
सूर्य, देवभेद, ( पुं० )

वीणा—बीणा-बाजा, बिजली, ( स्त्री० )  
॥ २९ ॥

वृष्णि—यादव, मेंढा, पाषंडी, अति  
क्रोधी, ( पुं० )

वेणी—नदियोंका संग, केशबंधभेद,  
॥ ३० ॥ देवताड-वृक्ष, ( स्त्री० )

वेणु—बाँस-वृक्ष, वेणु-राजा, ( पुं० )

शाण—आधामासा, सोलहमासा, कसो-  
टी पत्थर, करौत (आरा) ॥ ३१ ॥

शीतत्राणान्तरे शाणी शीर्णमल्पविशीर्णयोः ।  
 शोणो नदे कोकनदच्छवौ श्योनाकबर्हिषोः ॥ ३२ ॥  
 लोहिताश्वेऽप्यथ श्रोणिर्द्वयोः स्यात्कारुसंहतौ ।  
 केशपात्रान्तरे श्रोणिः श्रेणिः पङ्कावनिः स्त्रियाम् ॥ ३३ ॥  
 श्राणा यवाग्वां श्राणं तु पके स्यादभिधेयवत् ।  
 स्थाणुः कीले हरे पुंसि स्थाणुस्त्वस्त्री ध्रुवेपि च ॥ ३४ ॥  
 स्थूणा तु स्याद् गृहस्तम्भे लोहप्रतिकृतावपि ।  
 क्षणः स्यादुत्सवे कालभेदावसरपर्वसु ॥ ३५ ॥

णतृतीयम् ।

अभीक्षणं तु भूशे नित्येऽप्यरुणोऽनूरुसूर्ययोः ।  
 कुष्ठे चाव्यक्तारागे च सन्ध्यारागे च पुंस्ययम् ॥ ३६ ॥  
 नीरवाऽऽरक्तकपिलव्याकुलेषु च वाच्यवत् ।  
 अरुणा तिवृताश्यामामञ्जिष्ठाऽतिविषासु च ॥ ३७ ॥

शाणी—ठंडसे रक्षा करनेवाला पहनने-  
 का वस्त्र ( स्त्री० )

शीर्ण—अल्प, गिराहुवा, ( न० )

शोण—नद, लालकमलकी छवि, सोना-  
 पाठा, कुशा ॥ ३२ ॥ लालअश्व,  
 (घोडा) ( पुं० )

श्रोणि—कागीगरोंका समूह, ( पुं० स्त्री० )

श्राणा—यवागू, ( स्त्री० )

श्राण—पकाहुवा ( त्रि० )

स्थाणु—कीला, महादेव, ( पुं० )

स्थानु—ध्रुव, द्रव्य, ( पुं० न० )  
 ॥ ३४ ॥

स्थूणा—धरका स्तंभ, लोहेकी मूर्ति,  
 ( स्त्री० )

क्षण—उत्सव, कालभेद, अवकाश,  
 पर्व, ( पुं० ) ॥ ३५ ॥

णतृतीय ।

अभीक्षण—अत्यंत, नित्य, ( अ० )

अरुण—अनूरु ( सूर्यका सारथि ),  
 सूर्य, कुष्ठभेद, थोडालाल रंग, सं-  
 ध्यासमयमें आकाशकी लाली,  
 ( पुं० ) ॥ ३६ ॥ शब्दरहित,  
 थोडा लाल कपिल, व्याकुल, ( त्रि० )

अरुणा—निसोथ, सारिवा, मजीठ,  
 अतीस, ( स्त्री० ) ॥ ३७ ॥

अरणिस्तु भवेदग्निमन्थे मन्थानदण्डके ।  
 इन्द्राणी तु शचीसिन्दुवारयोः करणे स्त्रियाम् ॥ ३८ ॥  
 ईरिणं तूषरे शून्येऽपीक्षणं दर्शने दृशि ।  
 ऊषणा तु कणायां स्यादूषणं मरिचे मतम् ॥ ३९ ॥  
 एषणी व्रणमार्गाऽनुसारिण्यां तु तुलाभिदि ।  
 एषणो लोहबाणे स्यादन्वेषे त्वनुपूर्वकम् ॥ ४० ॥  
 कङ्कणं करभूषायां हस्तसूत्रेऽपि शेखरे ।  
 कत्तृणं तृणभेदेऽपि वारिपण्यां च कत्तृणम् ॥ ४१ ॥  
 करणस्तु भवेद्वैश्याच्छुद्रायास्तनुजे पुमान् ।  
 करणं साधकतमे कार्यकायस्थकर्मसु ॥ ४२ ॥  
 क्रियायामिन्द्रिये क्षेत्रे करणं बालवादिषु ।  
 गीताङ्गहारसंवेशक्रियाभेदेऽपि चेप्यते ॥ ४३ ॥

अरणि—अरडूवृक्ष, मथनेकी डंडा,  
 ( स्त्री० )

इन्द्राणी—इन्द्राणी ( इन्द्रकी स्त्री ), सि-  
 म्हाल-वृक्ष, स्त्रियोका-करण हाव-  
 आदि ( स्त्री० ) ॥ ३८ ॥

ईरिण—ऊपर ( जहां बीज नहीं उपजे ),  
 शून्य ( सूना ) ( न० )

ईक्षण—दर्शन ( देखना ), नेत्र, ( न० )

ऊषणा—पीपल, ( स्त्री० )

ऊषण—स्याहमिरच, ( न० ) ॥ ३९ ॥

एषणी—व्रणछिद्रमें देनेकी सलाई,  
 काँटा-तोलनेका ( स्त्री० )

एषण—लोहेका बाण,

अन्वेषण—हँडना, ( पुं० ) ॥ ४० ॥

कंकण—हाथका आभूषण ( कंगन ),  
 हाथका सूत्र ( रक्षासूत्र ), शिखामें  
 धारणकीहुई माला, ( न० )

कत्तृण—तृणभेद, पिठवन, ( न० )  
 ॥ ४१ ॥

करण—वैश्यसे उत्पन्नहुवा शह्रीका  
 पुत्र, ( पुं० )

करण—क्रियाको सिद्धकरनेवाला ( बा-  
 ण आदि ), कार्य, कायस्थ ( शरी-  
 रमें स्थित ), कर्म ॥ ४२ ॥ क्रिया,  
 इन्द्रिय, क्षेत्र, बालव आदि-करण,  
 गाना, भावबताना, सोना क्रियाका  
 भेद ॥ ४३ ॥

करुणस्तु रसे वृक्षे कृपायां करुणा स्त्रियाम् ।  
 करेणुस्तु वसायां स्त्री कर्णिकारेभ्योः पुमान् ॥ ४४ ॥  
 कल्याणमक्षयस्वर्गे मङ्गले तद्वति त्रिषु ।  
 स्यान्मानदण्डपणयोश्चतुर्थीशे हि काकिणी ॥ ४५ ॥  
 गुञ्जायां वाटमात्रेऽपि कुष्ठभेदेऽपि काकणे ।  
 कारणं हेतुवधयोः पीडायां करणेऽपि च ॥ ४६ ॥  
 कारणा यातनायां स्यात्कार्मणं स्यात्तु कर्मठे ।  
 परदेहप्रवेशे च योजने मंत्रतन्त्रयोः ॥ ४७ ॥  
 भृत्ये कर्तरि कुर्वाणः कृपणः कुत्सिते कृमौ ।  
 खड्गे कृपाणः शस्त्री तु कृपाणी कर्त्तरावपि ॥ ४८ ॥  
 कोङ्कणो देशभेदे स्यादस्त्रभेदे तु कोङ्कणम् ।  
 गोकर्णोऽश्वतरे सर्पमृगभेदे गणान्तरे ॥ ४९ ॥

करुण-रस, वृक्ष, ( पुं० )  
 करुणा-कृपा, ( स्त्री० )  
 करेणु-वसा (चर्मके नीचे श्वेतभाग),  
 ( स्त्री० ) पुष्पकी कर्णिका, हस्ती,  
 ( पुं० ) ॥ ४४ ॥  
 कल्याण-अक्षयस्वर्ग ( मोक्ष ), मं-  
 गल, ( न० ) मंगलवाली वस्तु  
 ( त्रि० )  
 काकिणी-मान ( प्रमाण ) के दंडका  
 चौथा भाग, पैसाका चौथा भाग,  
 रत्ती-प्रमाण, वाटमात्र, कुष्ठभेद,  
 काकण, ( स्त्री० ) ॥ ४५ ॥  
 कारण-हेतु, वध ( मारना, ) पीडा,  
 करण ॥ ४६ ॥

कारणा-तीव्रपीडा, ( स्त्री० )  
 कार्मण-कर्मकराने वाला, परश-  
 रीरमें प्रवेश, तंत्र मंत्र का योजन  
 करना, ( न० ) ॥ ४७ ॥  
 कुर्वाण-भृत्य ( नौकर ), करनेवाला,  
 ( पुं० )  
 कृपण-निंदित, ( कृमि-कीड़ा ) ( पुं० )  
 कृपाण-खड्ग, ( पुं० )  
 कृपाणी-छुरी, कतरनी ( कैची )  
 ( स्त्री० ) ॥ ४८ ॥  
 कोङ्कण-देशभेद, ( पुं० ) अस्त्रभेद,  
 ( न० )  
 गोकर्ण-खिचर, सर्पभेद, मृगभेद,  
 गणभेद ॥ ४९ ॥

अङ्गुष्ठाऽनामिकोन्माने गोकर्णीं मूर्ध्विकौषधी ।

ग्रहणं तूपलब्धौ स्यात्स्वीकारादरयोः करे ॥ ५० ॥

ग्रहोपरागे बन्धां च प्रत्याये ग्रहणीरुजि ।

ग्रामणीर्नापिते पुंसि श्रेष्ठाऽधिपे च भौगिके ॥ ५१ ॥

त्रिषु स्त्रियां तु गणिका ग्रामिणी नीलिका स्त्रियाम् ।

चरणोऽस्त्री बह्वृचादौ मूलेऽपि पदगोत्रयोः ॥ ५२ ॥

चरणं भ्रमणेऽस्त्रीया चरणं भक्षणेऽपि च ।

जरणं जीरणोऽजाजीहिङ्गुसौवर्चले मतम् ॥ ५३ ॥

तरणिः सूर्येऽपि तरणे कुमारीनौकयोः स्त्रियाम् ।

तरुणो यूनि नवके कुञ्जपुप्योरुबूकयोः ॥ ५४ ॥

दक्षिणः सरलावामपरच्छन्दानुवर्तिषु ।

त्रिषु स्याद्वाच्यलिङ्गोऽयमवाची संभवे मतः ॥ ५५ ॥

अंगूठा और अनामिका उंगलीके  
फैलानेसे उन्मान, ( पुं० )

गोकर्णी—मरोरफली, ( स्त्री० )

ग्रहण—प्राप्ति, अंगीकार, आदर,  
हाथ ॥ ५० ॥ ग्रहण-सूर्यचंद्रका,  
बंदी, प्रत्याय ( निश्चय कराना )  
( न० )

ग्रहणी—संग्रहणी-रोग ( स्त्री० )

ग्रामणी—नाई ( पुं० ) श्रेष्ठ, अधिप,  
भोगनेवाला, ( त्रि० ) ॥ ५१ ॥

ग्रामिणी—गणिका, नीली-औषधि,  
( स्त्री० )

चरण—बह्वृचआदि, मूल, पाँव, गोत्र,  
( पुं० न० ) ॥ ५२ ॥

चरण—भ्रमण करना, पाँव, भक्षण  
करना, ( न० )

जरण—( न० ) जीरण ( पुं० ) जीरा,  
हींग, स्याहनमक, ॥ ५३ ॥

तरणि—सूर्य, जमीकंद, ( पुं० ) धी-  
कुँवार-औषधि, नाव, ( स्त्री० )

तरुण—जवान पुरुष, नवीन, कूजावृ-  
क्षका पुष्प, अरंड-वृक्ष ( पुं० ) ॥ ५४ ॥

दक्षिण—सरल, दहना हाथ आदि,  
दूसरेकी इच्छाके अनुकूल, दक्षिण-  
दिशामें होनेवाला, ( त्रि० ) ॥ ५५ ॥

यज्ञदानप्रतिष्ठायामवाच्यामपि दक्षिणा ।  
 दुर्वर्णं वालुके रूप्ये द्रविणं स्यात्पराक्रमे ॥ ५६ ॥  
 धरणं धारणे मानभेदेऽपि धरणी क्षितौ ।  
 धरुणः सलिले स्वर्गे धरुणः परमेष्ठिनि ॥ ५७ ॥  
 धर्मणः सर्पभेदेऽपि धर्मणः पादपान्तरे ।  
 धर्षणी कुलटायां स्याद् धर्षणं गञ्जिते रते ॥ ५८ ॥  
 बुद्धोक्तमन्त्रभेदे च नाटिकायां च धारणी ।  
 धिषणस्तु सुराचार्ये धिषणा बुद्धिनिद्रयोः ॥ ५९ ॥  
 निर्माणो निर्मितौ सारे रचनायां समञ्जसे ।  
 निर्याणं निर्गमे मोक्षे गजापाङ्गे च तद्द्वयोः ॥ ६० ॥  
 निर्वाणं निर्वृतौ मोक्षे स्तम्भने गजमज्जने ।  
 निश्रेणिरधिरोहिण्यां खजूरीपादपे स्त्रियाम् ॥ ६१ ॥

दक्षिणा—यज्ञदानकी प्रतिष्ठामें द्रव्य-  
 देना, दक्षिण-दिशा, ( स्त्री० )  
 दुर्वर्ण—एलुवा-औषधि, चाँदी, ( न० )  
 द्रविण—पराक्रम, ( न० ) ॥ ५६ ॥  
 धरण—धारण करना, मानभेद, ( न० )  
 धरणी—पृथ्वी, ( स्त्री० )  
 धरुण—जल, स्वर्ग, ब्रह्मा, ( पुं० ) ॥ ५७ ॥  
 धर्मण—सर्पभेद, वृक्षभेद, ( पुं० )  
 धर्षणी—कुलटा स्त्री, ( स्त्री० )  
 धर्षण—निरादर, मैथुन ( स्त्रीसंग )  
 ( न० ) ॥ ५८ ॥

धारणी—बुद्धका कहाहुवा मंत्रभेद,  
 एकप्रकारका नाटक, ( स्त्री० )  
 धिषण—बृहस्पति ( पुं० )  
 धिषणा—बुद्धि, निद्रा, ( स्त्री० ) ॥ ५९ ॥  
 निर्माण—बनाना, सार, रचना, उचि-  
 त ( मुनासिब ) ( पुं० )  
 निर्याण—निकसना, मोक्ष, हस्तीके-  
 नेत्रका कोया, ( पुं० न० ) ॥ ६० ॥  
 निर्वाण—आनन्द, मोक्ष, थाँभना,  
 हस्तीका मंजन ( स्नान ) ( न० )  
 निश्रेणि—सीढी, खजूरका वृक्ष,  
 ( स्त्री० ) ॥ ६१ ॥

पत्रोर्णं धौतकौशेये पत्रोर्णः शोणकद्रुमे ।  
 पुराणं चिरकालीयद्रव्ये स्यादभिधेयवत् ॥ ६२ ॥  
 पूरणः पूरके पुंसि पूरणे पिष्टकान्तरे ।  
 पूरणी शालमलीवस्त्वारम्भसूत्रान्तरेऽपि च ॥ ६३ ॥  
 प्रघणस्ताम्रकुण्डे स्यादलिन्दे लोहमुद्गरे ।  
 प्रमाणमेकतेयत्ताहेतियन्तृप्रमातृषु ॥ ६४ ॥  
 सत्यवादिनि नित्ये च मर्यादाहन्तृशास्त्रयोः ।  
 प्रवणः प्रगुणे प्रह्वे क्रमनिम्नःक्षितौ कृशे । ॥ ६५ ॥  
 एतेषु त्रिषु पुंस्येव प्रवणः स्याच्चतुष्पथे ।  
 प्रवेणिः स्त्री कुथे वेण्यां प्रोक्षणं वधसेकयोः ॥ ६६ ॥  
 वरणस्तिक्तशाकेऽपि प्राकारे वरणं वृतौ ।  
 वरुणस्तरुभेदे स्यात् प्रचेतःसूर्यवारिषु ॥ ६७ ॥

पत्रोर्ण—धोयाहुवा रेशमी वस्त्र, (न०)

पत्रोर्ण—सोनापाठा-वृक्ष ( पुं० )

पुराण—बहुतकालका द्रव्य, (त्रि०) ६२

पूरण—पूरण करनेवाला या प्राणाया-  
मभेद, पूरित करना, पीठीका भेद  
( पुं० )

पूरणी—सालवृक्ष, वस्त्र बुननेकेलिये  
फैलायाहुवा सूत्र, ( स्त्री० ) ॥ ६३ ॥

प्रघण—ताँबेका कुंड, द्वारकी चौखट,  
लेहेका मुद्गर ( पु० )

प्रमाण—एकता, इयत्ता ( प्रमाण ),  
शास्त्र या अभिज्ञवाला, सारथि,  
प्रमाण करनेवाला ॥ ६४ ॥ सत्य-

वचनबोलनेवाला, नित्य, मर्यादाका  
नष्टकरनेवाला, शास्त्र, ॥

प्रवण—सीधा, नम्र, क्रमसेनीची  
पृथ्वी, दुबला, ( त्रि० ) ॥ ६५ ॥

चुरा हा( चौपटरास्ता ) ( पुं० )

प्रवेणि—हस्तीकी झूल या कुशा, वेणी  
( गुँथेहुएकेस ), ( स्त्री० )

प्रोक्षण—मारना, सींचना ( न० ) ॥ ६६ ॥

वरण—पत्रसुंदरशाक, ( बंगभाषा-  
गिमा ), प्राकार, ( किला ) ( पुं० )

वरण—वरणकरना, ( न० )

वरुण—वृक्षभेद ( बरना ), वरुण-देव,  
सूर्य, जल, ( पुं० ) ॥ ६७ ॥

वारणो दन्तिनि ख्यातः प्रतिषेधे तु वारणम् ।  
 अथ प्रतीचीमदिरागण्डदूर्वासु वारुणी ॥ ६८ ॥  
 ब्राह्मणी फल्लिकासृक्काद्विजपत्नीष्वथ द्विजे ।  
 ब्राह्मणो ब्राह्मणं मन्त्रभेदेऽपि द्विजसंहतौ ॥ ६९ ॥  
 भरणी शोणके ऋक्षे भरणं वेतने भृतौ ।  
 भीषणे दारुणे गाढे भीषणं सल्लकीरसे ॥ ७० ॥  
 कारुण्ड्यामीश्वरक्रीडाभ्रमणे भ्रमणी स्त्रीयाम् ।  
 मार्गणो याचके बाणे क्लीवमन्वेषयाच्चजयोः ॥ ७१ ॥  
 यन्त्रणं स्यान्नियमने बन्धने रक्षणेऽपि च ।  
 पटोलमूले रमणं रमणस्तु प्रिये स्मरे ॥ ७२ ॥  
 रवणो रासभे शब्दे रोषाणो रोषणे त्रिषु ।  
 पारदोपरयोः स्वर्णघर्षणेऽपि पुमानयम् ॥ ७३ ॥

वारण-हस्ती ( पुं० )	सेह-प्राणी, सालवृक्षका रस, ( पुं० )
वारण-निषेध करना ( वर्जना ) ( न० )	॥ ७० ॥
वारुणी-पश्चिमदिशा, मदिरा, गांडर- द्व, ( स्त्री० ) ॥ ६८ ॥	भ्रमणी-जलौका ( जोक ), ईश्वर- क्रीडा, भ्रमण, ( स्त्री० )
ब्राह्मणी-भारंगी या देवताउ-वृक्ष, होटोंका जोड़ ( गलाफू ), ब्राह्मण- की स्त्री, ( स्त्री० )	मार्गण-याचनाकरनेवाला, बाण, ( पुं० ) हूँटना, याचना, ( न० ) ॥ ७१ ॥
ब्राह्मण-ब्राह्मण-जाति, ( पुं० ) मंत्र- भेद, ब्राह्मणोंका समूह, ( न० ) ॥ ६९ ॥	यन्त्रण-वशमेंकरना, बाँधना, रक्षा- करना, ( न० )
भरणी-सोनापाटा-वृक्ष, भरणी-नक्षत्र, ( स्त्री० )	रमण-परवलकी जड़, ( न० )
भरण-मज्जरी, पोषणकरना, ( न० )	रमण-प्रिय ( पति ), कामदेव, ( पुं० )
भीषण-भयंकर, कठोर, दृढ, ( त्रि० )	॥ ७२ ॥
	रवण-गधा, शब्द, ( पुं० )
	रोषाण-क्रोधी. ( त्रि० ) पारा, ऊ- पर-भूमि, कसौटी, ( पुं० ) ॥ ७३ ॥



रोहिणी कटुरोहिण्यां लोहितासोमवल्कयोः ।  
 गोनागकर्णरुग्भेदे लवणं तु द्विजान्तरे ॥ ७४ ॥  
 लवणो रसरक्षोब्धिभेदेषु लवणा द्युतौ ।  
 लक्षणं नाम्नि चिह्ने च रामभ्रातरि लक्षणः ॥ ७५ ॥  
 लक्ष्मणः पुंसि सौमित्रौ लक्ष्मणं नामलक्ष्मणोः ।  
 लक्ष्मणा सारसीज्योतिष्मत्योः श्रीमति वाच्यवत् ॥ ७६ ॥  
 विपणिस्तु स्त्रियां पण्यवीथ्यामापणपण्ययोः ।  
 विषाणं तु पशोः शृङ्गौ विषाणं द्विरददन्तयोः ॥ ७७ ॥  
 त्रिषु त्रिषु विषाणी तु मेषशृङ्गाख्यभेषजे ।  
 शरणं गृहरक्षित्रोः शरणं रक्षणे वधे ॥ ७८ ॥  
 सिङ्घाणं काचपात्रेऽपि नासिकालोहकिट्टयोः ।  
 श्रावणो मासि पाषण्डे दध्यान्यां श्रावणा स्त्रियाम् ॥ ७९ ॥

रोहिणी—कुटकी, लालसांटी, करंजु- वा या रीठा, गौ, लालअरंड, एक प्रकारका रोग, ( स्त्री० )	स्त्री ), मालकांगनी, ( स्त्री० ) सं- पत्तिवाला, ( त्रि० ) ॥ ७६ ॥
लवण—जलट्टवीके संयोगसे पैदा होनेवाला, ॥ ७४ ॥	विपणि—बाजार, हाट, दूकान, ( स्त्री० )
लवण—रस-भेद, राक्षस भेद, समुद्र भेद, ( पुं० )	विषाण—पशुके सींग, हाथीके दांत, ( त्रि० ) ॥ ७७ ॥
लवणा—कांति ( स्त्री० )	विषाणी—मेढासींगी-औषधि ( स्त्री० )
लक्षण—नाम, चिह्न, ( न० ) राम- भ्राता ( लक्ष्मण ) ( पुं० ) ॥ ७५ ॥	शरण—घर, रक्षाकरनेवाला, रक्षा, मारना, ( न० ) ॥ ७८ ॥
लक्ष्मण—सुमित्राका पुत्र ( लक्ष्मण ) ( पुं० ) नाम, चिह्न, ( न० )	सिङ्घाण—काचका पात्र, नासिकाका मल, लोहेका मल, ( न० )
लक्ष्मणा—सारसी-पक्षी ( सारसकी	श्रावण—श्रावण-मास, पाषंड, ( पुं० ) श्रावणा—दधियू-वृक्ष, ( स्त्री० ) ॥ ७९ ॥

श्रीपर्णी कुम्भिगम्भार्या क्लीवं पद्माग्निमन्थयोः ।  
 सङ्कीर्णं सङ्कटेऽशुद्धे सरणिः श्रेणिवर्त्मनोः ॥ ८० ॥  
 सारणो रावणाऽमात्येऽप्यतीसारोऽपि सारणः ।  
 सारणी स्वल्पसरिति प्रसारण्यां च सारणी ॥ ८१ ॥  
 सुपर्णः स्वर्णचूडेऽपि गरुडे कृतमालके ।  
 सुपर्णा कमलिन्यां च सुपर्णा तार्क्ष्यमातरि ॥ ८२ ॥  
 सुवर्णस्तु सुवर्णालौ कृष्णाऽगुरुमखान्तरे ।  
 सुवर्णं वर्णितं स्वर्णे सुवर्णं कर्षवित्तयोः ॥ ८३ ॥  
 सुषेणो हृदिमुग्रीववैद्ययोः कर्मदर्दके ।  
 हरणं यौतकद्रव्येऽप्यङ्गरागे भुजे हतौ ॥ ८४ ॥  
 हरिणस्तु मृगे पुंसि हरिणः पाण्डुरेऽन्यवत् ।  
 हरिणी हरितामृग्योर्वृत्तस्त्रीभेदयोरपि ॥ ८५ ॥

श्रीपर्णी-गूगल-वृक्ष, कंभारी या कुंभेर-वृक्ष, ( स्त्री० )	सुवर्ण-हेमपुष्पी या सोनाली-स्याह अगर-वृक्ष, यज्ञभेद, ( पुं० )
श्रीपर्ण-कमल, अरणी-वृक्ष, ( न० )	सुवर्ण-सोना, कर्ष ( सोलहमासा ), द्रव्य, ( न० ) ॥ ८३ ॥
संकीर्ण-संकट ( सकटा-भीडा ), अशुद्ध, ( न० ),	सुषेण-विष्णु, सुग्रीववैद्य, करौदा-वृक्ष, ( पुं० )
सरणि-पंक्ति, मार्ग ( स्त्री० ) ॥ ८० ॥	हरण-वरवधूको देनेका द्रव्य, अंग-राग, भुज, हरना, ( न० ) ॥ ८४ ॥
सारण-रावणका मंत्री, अतीसार-रोग, ( पुं० )	हरिण-मृग, ( पुं० ) पाण्डुर ( श्वेत-रंग ) ( त्रि० )
सारणी-छोटी नदी, पसरन या छुइ मुइ, ( स्त्री० ) ॥ ८१ ॥	हरिणी-हरितरंगवाली, मृगी, छंद-भेद, स्त्रीभेद, ॥ ८५ ॥
सुपर्ण-स्वर्णचूड-पक्षी, गरुड, अमल-तास-वृक्ष, ( पुं० )	
सुपर्णा-कमलिनी ( कमोदनी ), गरुडकी मता, ( स्त्री० ) ॥ ८२ ॥	

सुवर्णप्रतिमायां च हर्षणस्तु प्रमोदके ।  
 अक्षिरोगान्तरे योगान्तरेऽपि श्राद्धदैवते ॥ ८६ ॥  
 स्त्री कुलस्त्रीरेणुकयोः हरेणुर्ना सतीनके ।  
 हिरणं च हरिण्यं च वराटे स्वर्णरेतसोः ॥ ८७ ॥  
 क्षेपणी च भवेन्नौकादण्डे जालान्तरेऽपि च ।

णचतुर्थम्

अङ्गारिणी हसन्त्यां स्याद् भास्करत्यक्तदिश्यपि ॥ ८८ ॥  
 आतर्पणं तु सौहित्ये मङ्गलालेपनेऽपि च ।  
 आथर्वणस्त्वथर्वज्ञद्विजन्मनि पुरोहिते ॥ ८९ ॥  
 आरोहणं तु सोपाने समारोहप्ररोहयोः ।  
 उरक्षेपणं तु व्यजने धान्यमर्दनवस्तुनि ॥ ९० ॥  
 वान्तोन्मूलननिस्तारोन्नयेषूद्धरणं मतम् ।  
 अथ कामगुणो रागेऽप्याभोगे विषयेऽपि च ॥ ९१ ॥

सुवर्णकी मूर्ति, ( स्त्री० )	आतर्पण—वृत्ति, मंगलद्रव्यका लीपना
हर्षण—आनन्द, नेत्ररोगविशेष, हर्ष-	( न० )
ण-योग, श्राद्धदैवत ( धर्मराज )	आथर्वण—अथर्ववेदका जाननेवाला
( पुं० ) ॥ ८६ ॥	ब्राह्मण, पुरोहित, ( पुं० ) ॥ ८९ ॥
हरेणु—कुलकी स्त्री, रेणुका औषधि,	आरोहण—सीढ़ी, चढ़ना, बीजआ-
( स्त्री० ) मटर-अन्न ( पुं० )	दिकी उत्पत्ति, ( न० )
हिरण-हिरण्य-कौडी, सुवर्ण, वीर्य,	उत्क्षेपण—पंखा, धान्यको मर्दनकर-
( न० ) ॥ ८७ ॥	नेवाली वस्तु, ( न० ) ॥ ९० ॥
क्षेपणी—नौकादंड, जालभेद, ( स्त्री० )	उद्धरण—छेद, उखाड़ना, उद्धार,
णचतुर्थ ।	ऊपरप्राप्तकरना, ( न० )
अंगारिणी—सिंगडी, सूर्यकी ल्यागी-	कामगुण—राग ( रति ), आभोग
हुई दिशा, ( स्त्री० ) ॥ ८८ ॥	( परिपूर्णता ), विषय, ( पुं ) ॥ ९१ ॥

कार्षापणः पुराणे स्यादस्त्रियामपि कार्षिके ।

चीर्णपर्णस्तु खर्जुरीपादपे पिचुमर्दके ॥ ९२ ॥

चूडामणिः शिरोरत्ने काकचिञ्चाफलेऽपि च ।

जुहुराणोऽनलेऽध्वर्यौ तण्डुरीणस्तु कीटके ॥ ९३ ॥

स्यात्तन्दुलोदके चैव याम्यदेशीयवर्धरे ।

तैलपर्णी मलयजे सिह्मश्रीवासयोरपि ॥ ९४ ॥

दाक्षायणी च दुर्गायां रोहिण्यां तारकासु च ।

देवमणिः शिवे वाजिकण्ठावर्त्ते च कौस्तुभे ॥ ९५ ॥

नारायणोऽच्युतेऽभीरुगौर्यैर्नारायणी स्त्रियाम् ।

गले निगरणः पुंसि भोजने तु नपुंसकम् ॥ ९६ ॥

निरूपणं विचारे स्यादालोकननिदर्शने ।

निस्तरणं स्यान्निस्तारेऽप्युपाये निर्गमेऽपि च ॥ ९७ ॥

कार्षापण-पुराना, रुपया, ( पुं० न० )	दाक्षायणी-दुर्गा, रोहिणी, तारा, ( स्त्री० )
चीर्णपर्ण-खजूरका वृक्ष, नीवका वृक्ष, ( पुं० ) ॥ ९२ ॥	देवमणि-महादेव, घोडेके कंठकी भौरी, कौस्तुभ-मणि, ( पुं० ) ॥ ९५ ॥
चूडामणि-शिरपरधारनेका रत्न, गु- ञ्जा-फल, ( पुं० ) ( पुं० )	नारायण-विष्णु, ( पुं० )
जुहुराण-अग्नि, अध्वर्यु ( यज्ञकर्ममे वराहुवा एक ब्राह्मण ) ( पुं० )	नारायणी-सतावर-औषधि, पार्वती, ( स्त्री० )
तण्डुरीण-कीटमात्र, ॥ ९३ ॥	निगरण-गल ( कंठ ) ( पुं० ) भो- जन, ( न० ) ॥ ९६ ॥
चावलोका जल, दक्षिण देशका बोल ( द्रव्य ) ( पुं० )	निरूपण-विचार, देखना, दिखाना, ( न० )
तैलपर्णी-चंदन, ह्रीं, देवदारकी धूप, ( स्त्री० ) ॥ ९४ ॥	निस्तरण-उद्धार, उपाय, निकल- ना, ( न० ) ॥ ९७ ॥

निस्सरणं द्वारमुक्तिनिर्याणोपायमृत्युषु ।

परीरणः स्यात्कमठे दण्डे च पट्टशाटके ॥ ९८ ॥

पर्वरीणस्तु पर्णस्य शिरायां धूतकम्बले ।

पर्णवृन्तरसेऽपि स्यात् सितसौरभपर्वणोः ॥ ९९ ॥

परवाणिस्तु कथितो धर्माऽध्यक्षेऽपि वत्सरे ।

त्रिषु स्यात्तत्परेऽभीष्टेऽप्याश्रये तु परायणम् ॥ १०० ॥

पारायणं पारगतौ सम्यगासङ्गकात्स्न्ययोः ।

पीलुपर्णी तु मूर्वायां बिम्बायामौषधीभिदि ॥ १०१ ॥

पुष्करिणी सरोजिन्यां हस्तिन्यां च जलाशये ।

स्यात्प्रतिपणः संस्कारेऽप्युपग्रहनिषङ्गयोः ॥ १०२ ॥

प्रवारणं निषेधे स्यात् काम्यदाने प्रवारणम् ।

वारवाणस्तु कवचे सर्वसन्नहनेऽपि च ॥ १०३ ॥

निस्सरण—दरवाजा, मुक्ति, निक-  
लना, उपाय, मृत्यु, ( न० )

परीरण—कछुवा, छडी, पाटकी साडी  
या धोती ( पुं० ) ॥ ९८ ॥

पर्वरीण—पत्तेकी नसै, जूवाका कंबल,  
पत्तोंके नाकुर्वोंका रस, सफेद बोल  
औषधि, पर्व ( पोरी ) ( पुं० )  
॥ ९९ ॥

परवाणि—धर्मका अध्यक्ष ( स्वामी ),  
संवत्सर ( पुं० )

परायण—तत्पर, बांछित, आश्रय,  
( त्रि० ) ॥ १०० ॥

पारायण—पारगति ( पारगमन ),  
अच्छीतरह संग, संपूर्णता ( न० )

पीलुपर्णी—मूर या मोरबेल, चुरनहार,  
मरोरफली, औषधीभेद ( स्त्री० )  
॥ १०१ ॥

पुष्करिणी—कमलिनी ( कमोदनी ),  
हस्तिनी, सरोवर, ( स्त्री० )

प्रतिपण—संस्कार, उपग्रह, वाणोंका  
तरकस ( पुं० ) ॥ १०२ ॥

प्रवारण—वर्जना, यथेच्छदान, ( न० )

वारवाण—कवच, अंगरखा, ( पुं० )  
॥ १०३ ॥

मीनाम्नीणो मतः पुंसि दर्दराग्रेऽपि खञ्जने ।

रक्तरेणुस्तु सिन्दूरे पलाशकलिकोद्धवे ॥ १०४ ॥

रागचूर्णः सरे रक्तवालुके दन्तधावने ।

रेरिहाणः पशुपतौ रेरिहाणो विहायसि ॥ १०५ ॥

लम्बकर्णो मतश्छागे स्यादङ्कौरमहीरुहे ।

अस्त्री विदारणं युद्धे भेदने च विडम्बने ॥ १०६ ॥

भवेद्वैतरणी प्रेतनद्यां राक्षसमातरि ।

शरवाणिः शरमुखे पापिष्ठे शरजीविनि ॥ १०७ ॥

स्त्रियां शिखरिणी वृत्तभेदे तक्रप्रभेदयोः ।

स्त्रीरत्ने मल्लिकायां च रोमावल्यामपि स्मृता ॥ १०८ ॥

समीरणः स्यात्पवने प्रस्थपुष्पकपान्थयोः ।

संसरणं स्यात्संसारे पुरनिर्गमगोपुरे ॥ १०९ ॥

मीनाम्नीण-दर्दरान्न-वृक्ष, खंजन-पक्षी, ( पुं० )	वैतरणी-प्रेतनदी, राक्षसमाता, ( स्त्री० )
रक्तरेणु-सिन्दूर, ढाकके फूलकी कली, ( पुं० ) ॥ १०४ ॥	शरवाणि-शर बाणका मुख, पापी, बाणबनानेवाला, ( पुं० ) ॥ १०७ ॥
रागचूर्ण-कामदेव, लालबालू, दां-तोंका मंजन ( पुं० )	शिखरिणी-छंदभेद, तक्रभेद, स्त्री-रत्न, मल्लिका ( कुडावृक्ष ), रोमा-वली, ( स्त्री० ) ॥ १०८ ॥
रेरिहाण-महादेव, आकाश ( पुं० ) ॥ १०५ ॥	समीरण-वायु, मरुवा, पांथ ( बटेऊ ) ( पुं० )
लंबकर्ण-बकरा, पिस्ताका-वृक्ष, ( पुं० )	संसरणं-संसारपुरसे निकलना, पुर-दरवाजा, ॥ १०९ ॥
विदारण-युद्ध, फाडना, निरादरक-रना ( न० ) ॥ १०६ ॥	

घण्टापथे रणारम्भेऽप्यसंबाधचमूगतौ ।

हस्तिकर्णोऽयमेरण्डे पलाशगणभेदयोः ॥ ११० ॥

णपंचमम् ।

अवग्रहणमाख्यातं प्रतिरोधेऽप्यनादरे ।

अथाऽवतारणं भूताद्यावेशेऽप्यम्बरेऽर्चने ॥ १११ ॥

आख्येयभागेऽध्याहारग्रन्थे स्यादवतारणा ।

निन्दोपालम्भनियमाऽरूपेषु परिभाषणम् ॥ ११२ ॥

प्रविदारणमित्येतत्सम्मतं दारणे रणे ।

मण्डूकपर्णः स्योनाकेऽप्यलके च कपीतने ॥ ११३ ॥

मण्डूकपर्णी मञ्जिष्ठाब्राह्मीगोजिह्वास्वपि ।

स्यान्मत्तवारणः पुंसि मददुर्दान्तवारणे ॥ ११४ ॥

क्रीवं प्रासादवीथीनां वरण्डे चाप्यपाश्र्वे ।

विभीतकतरौ पुंसि रोमाञ्चे रोमहर्षणम् ॥ ११५ ॥

राजमार्गं, रणका आरंभ, नहींरु-  
कनेवाली सेनाकी गति, (न०)  
हस्तिकर्ण—अरंड, ढाक, गणभेद,  
(पुं०) ॥ ११० ॥

णपंचम ।

अवग्रहण—रोकना, अनादर, (न०)  
अवतारण—भूतआदिका प्रवेश, वस्त्र,  
पूजन, (न०) ॥ १११ ॥

अवतारणा—कहनेयोग्य भाग, अध्या-  
हारकियाहुवा ग्रंथ, (स्त्री०)

परिभाषण—निंदासहित उलाहना,  
नियम, संभाषण, (न०) ॥ ११२ ॥

प्रविदारण—विदीर्णकरना, रण, (न०)

मण्डूकपर्ण—सोनापाटा, सफेदआक,  
पारिसपीपल, (पुं०) ॥ ११३ ॥

मण्डूकपर्णी—मँजीठ, ब्राह्मी, गोभी  
(स्त्री०)

मत्तवारण—मदसे उन्मत्त हस्ती,  
(पुं०) ॥ ११४ ॥

मत्तवारण—महलकी गलियोंमें कुंद-  
आदिफुलवादीका वाड़, आश्रयरहित,  
(न०)

रोमहर्षण—बहेडाका वृक्ष, रोमपुल-  
कावली, (न०) ॥ ११५ ॥

वातरायण उन्मत्ते मतः कूटे च मार्गणे ।

शरसंक्रमणे किञ्चित्करेपि करपत्रके ॥ ११६ ॥

णषष्ठम् ।

वयःसंधौ च गर्भे च भवेद्दोहदलक्षणम् ।

पयोधरे च लावण्ये मतं यौवनलक्षणम् ॥ ११७ ॥

इति विश्वलोचने णान्तवर्गः ॥

### अथ तान्तवर्गः ।

तैकम् ।

पालने पालके तः स्यात्तुश्चौरक्रोडपुच्छयोः ।

तद्वितीयम् ।

अन्तं विशुद्धे व्याप्ते स्यादन्तो नाशे मनोहरे ॥ १ ॥

स्वरूपेऽन्तं मतं क्लीबं न स्त्री प्रान्तेऽन्तिके त्रिषु ।

आर्त्तिः पीडाधनुष्कोट्योरस्तः प्रत्यङ्महीधरे ॥ २ ॥

वातरायण-उन्मत्त, मायावी आदि,

वाण, वाणोंका छाना, निष्प्रयोजन-

मनुष्य, करोत, (पुं०) ॥ ११६ ॥

णषष्ठम् ।

दोहदलक्षण-अवस्थाकी संधि, गर्भ,

(न०)

यौवनलक्षण-कुच (दूधी), सुंदर-

ता, (न०) ॥ ११७ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें

णान्तवर्ग समाप्तहुवा ॥

अथ तान्तवर्गः ।

तैक ।

त(कार)-पालनकरना, पालनकरने-  
वाला, (पुं०)

तु-चोर, छाती, पूँछ, (पुं०)

तद्वितीय ।

अन्त-विशुद्ध, व्याप्त, (न०)

अन्त-नाश, सुंदर, (पुं०) ॥ १ ॥

अन्त-स्वरूप, (न०) प्रान्त, (पुं०-

न०) समीप, (त्रि०)

आर्त्ति-पीडा, धनुषकी ज्या, (स्त्री०)

अस्त-प्रत्येकका पूजनकरनेवाला, पर्व-

त, (पुं०) ॥ २ ॥



त्रिषु क्षिप्ते गतेऽप्यस्तमासः सत्यगृहीतयोः ।  
 आसिः संवरणे प्राप्तौ विज्ञातगतयोर्गतम् ॥ ३ ॥  
 ईतिः स्यादतिवृष्ट्यादिषट्के डिम्बप्रवासयोः ।  
 उक्तमेकाक्षरच्छन्दस्युक्तस्तु त्रिषु भाषिते ॥ ४ ॥  
 स्फूर्तिरक्षणयोरुतिर्ऋतमुञ्छशिले जले ।  
 मतं त्रिलिङ्गकं सत्ये गतौ दीप्तेऽभिपूजिते ॥ ५ ॥  
 ऋतिर्गतौ जुगुप्सायां स्पर्द्धायामप्यमङ्गले ।  
 ऋतुः स्यादार्चवे वीरे वसन्तादिषु मासि च ॥ ६ ॥  
 एतस्तु कर्बुरे वाच्यलिङ्गः स्यादागतेऽपि च ।  
 शोभाऽभिलाषयोः कान्तिः कान्तो रम्ये प्रिये त्रिषु ॥ ७ ॥  
 कान्तोऽश्मनि पुमान्कान्ता प्रियङ्गौ नायिकान्तरे ।  
 कीर्तिर्यशसि विस्तारे प्रसादेऽपि च कर्दमे ॥ ८ ॥

अस्त—फेंकाहुवा, गयाहुवा, ( त्रि० )	गयाहुवा, दीप्त, अभिपूजित,
आसि—सत्य, ग्रहणकियाहुवा, ( पुं० )	( त्रि० ) ॥ ५ ॥
आसि—ढकना, प्राप्ति, ( स्त्री० )	ऋति—निदा, वैर, अमंगल, ( स्त्री० )
गत—जानाहुआ, गयाहुवा, ( न० )	ऋतु—स्त्रीका रज, वीर, वसन्तआदि- ॥ ३ ॥ ऋतु, कान्ति, ( पुं० ) ॥ ६ ॥
ईति—अतिवृष्टि आदि छह, लट्ठना आदिसे पीडा, मुसाफिरी, ( स्त्री० )	एत—चित्रित, आयाहुवा ( त्रि० )
उक्त—एकअक्षरका छंद, ( न० )	कान्ति—शोभा, अभिलाषा, ( स्त्री० )
उक्त—कहाहुवा ( त्रि० ) ॥ ४ ॥	कान्त—सुंदर, प्रिय, ( त्रि० ) ॥ ७ ॥
ऊति—स्फूर्ति, रक्षा, ( स्त्री० )	कान्त—पत्थरभेद, कंगुनी धान्य, ( पुं० ) नायिका, ( स्त्री० )
ऋत—उंछशिल ( स्वामीकाछोडाहुवा अन्नका लेना, ) जल, ( न० ) सत्य,	कीर्ति—यश ( जश ), विस्तार, प्रसाद, कींच ( स्त्री० ) ॥ ८ ॥

कुन्तो गवेधुके प्राप्ते दण्डभावेऽल्पजन्तुषु ।

कुन्ती स्यात्पाण्डुकान्तायां शल्लक्यां गुग्गुलुद्रुमे ॥ ९ ॥

कृतिर्वधेऽपि करणे क्लीबं सत्ययुगे कृतम् ।

त्रिषु हिंसितपर्याप्तविहिते निष्फलेऽव्ययम् ॥ १० ॥

कृतं तु कथितं छिन्ने वेष्टितेऽप्यभिधेयवत् ।

कृत्तिस्त्वक्चर्मभूर्जेषु कृत्तिकायां च कीर्तिता ॥ ११ ॥

केतुर्महान्तरोत्पातद्युतिलक्ष्मध्वजादिषु ।

क्रतुर्यज्ञे मुनेर्भेदे गतं स्याज्जातयादसोः ॥ १२ ॥

गतिर्दशायां गमने ज्ञाने मर्माऽभ्युपाययोः ।

नाडीत्रणे सरण्यां च गतिर्जन्मान्तरेऽपि च ॥ १३ ॥

गर्तस्त्रिगर्तदेशे स्याद् भूश्चभ्रेऽपि कुकुन्दरे ।

गातुर्गन्धर्वरोलम्बरोषणे कोकिलापतौ ॥ १४ ॥

कुन्त-गेरू, फरमा, दण्ड, भाव, अल्प  
जन्तु, ( पुं० ) ।

कुन्ती-पांडुराजाकी स्त्री, सलई वृक्ष,  
गूगल-वृक्ष, ( स्त्री० ) ॥ ९ ॥

कृति-मारना, करण, ( स्त्री० )

कृत-सत्ययुग ( न० )

कृत्त-हिंसित, परिपूर्ण, विधानकिया-  
हुवा, ( त्रि० )

कृतं-निष्फल, ( अव्य० ) ॥ १० ॥

कृत्त-छिन्न, ( कटाहुवा ), लपेटाहु-  
वा, ( त्रि० )

कृत्ति-त्वचा, वृक्षका बकल, भोजपत्र,  
कृत्तिका-नक्षत्र, ( स्त्री० ) ॥ ११ ॥

केतु-केतुग्रह, उत्पात, कान्ति, चिह्न,  
ध्वजआदि, ( पुं० )

क्रतु-यज्ञ, एकमुनि, ( पुं० )

गत-उत्पन्नहुवा, जलजन्तु, ( न० )  
॥ १२ ॥

गति-दशा, गमन, ज्ञान, मर्म, उपाय,  
नाडीछिद्र, मार्ग, जन्मान्तर,  
( स्त्री० ) ॥ १३ ॥

गर्त-त्रिगर्तदेश, पृथ्वीका छिद्र  
( गड्ढा ), नितम्ब ( चूतब ) का  
गड्ढा, ( पुं० )

गातु-गंधर्व, मर, क्रोधि, कोकिल,  
( पुं० ) ॥ १४ ॥

गीतिश्छन्दोन्तरे ज्ञाने गीतं गाने च शब्दिते ।  
 गुप्तस्तु रक्षिते गूढे वृषले चन्द्रपूर्वकः ॥ १५ ॥  
 गुप्तिः कारागृहे गर्ते गोपाये रक्षणे युगे ।  
 ग्रस्तं ग्रासीकृतेऽपि स्याल्लुप्तवर्णपदोदिते ॥ १६ ॥  
 घातः प्रहारे काण्डे च घृतं दीप्ताज्यवारिषु ।  
 चितिः समूहे चित्वायामुपादुपचये चितिः ॥ १७ ॥  
 चितः कूटीकृतेऽपि स्याच्चिता संहतिचित्ययोः ।  
 चिता छन्ने चुल्लिकायां जातं जन्मौषजन्तुषु ॥ १८ ॥  
 जातिः सामान्यमालत्योश्छन्दोभिद्रोत्रजन्मसु ।  
 तातोऽनुकम्प्ये जनके तित्तो रससुगन्धयोः ॥ १९ ॥  
 तित्का तु कटुरोहिण्यां तित्तं पर्पटके मतम् ।  
 त्रेता युगऽग्नित्रितये दत्तं विश्राणितेऽविते ॥ २० ॥

गीति—छन्दका भेद, ज्ञान, ( स्त्री० )  
 गीत—गाना, शब्दित ( शब्दयुक्त ) ( न० )  
 गुप्त—रक्षाकियाहुवा, गूढ ( पुं० )  
 चन्द्रगुप्त—शुद्ध, ( पुं० ) ॥ १५ ॥  
 गुप्ति—बंदीखाना, गड्ढा, गुप्तकरना,  
 रक्षाकरना, युग, ( स्त्री० )  
 ग्रस्त—ग्रास कियाहुवा, लुप्तहै वर्ण  
 पद जिसमें ऐसा उच्चारण, ( न० )  
 ॥ १६ ॥  
 घात—प्रहार ( मारना ), दण्ड, ( पुं० )  
 घृत—दीप्त, घृत ( घी ), जल, ( न० )  
 चिति—समूह, चिता,  
 उपचिति—वृद्धि, ( स्त्री० ) ॥ १७ ॥  
 चित—ढेरकियाहुवा, ( पुं० )

चिता—समूह, चिता ( मुर्दाजलानेके  
 लिये चिनाहुवा काष्ठेडेर ), ( स्त्री० )  
 चिता—आच्छादित, सिगडी, ( त्रि० )  
 जात—जन्म, समूह, जन्तु, ( न० )  
 ॥ १८ ॥  
 जाति—सामान्य, चमेली, छंदोभेद,  
 गोत्र, जन्म, ( स्त्री० )  
 तात—जिमपर दयाकरीजातीहै वह,  
 पिता, ( पुं० )  
 तित्त—कसैलारस, सुगन्ध, ( पुं० ) १९  
 तित्का—कुटकी, ( स्त्री० )  
 तित्त—पित्तपापडा, ( न० )  
 त्रेता—त्रेता-युग, तीन अग्नि, ( स्त्री० )  
 दत्त—दानकियाहुवा, रक्षाकियाहुवा  
 ( न० ) ॥ २० ॥

दन्तः कुञ्जे रदे सानौ दन्ती स्यादौषधीमिदि ।  
 दान्तस्त्रिषु तपःक्लेशसहेऽपि दमितेऽपि च ॥ २१ ॥  
 दितिर्दनौ खण्डने च दीप्तं ज्वलितदग्धयोः ।  
 त्रिषु निर्वासितेऽपि स्याद्वृत्तिश्चर्मपुटे कषे ॥ २२ ॥  
 दृप्तो निवारिते शक्ते द्युतिर्दीधितिशोभयोः ।  
 द्रुतं शीघ्रे च विद्राणे विलीने शीघ्रगे त्रिषु ॥ २३ ॥  
 धाता तु ब्रह्मणि रवौ त्रिषु स्यात्परिपालके ।  
 धातुः क्रियार्थे शुकेपि विषयेष्विन्द्रियेषु च ॥ २४ ॥  
 श्लेष्मादिरसरक्तादिभृतादिवसुधादिषु ।  
 मनःशिलादिके लोहे विशेषाद्वैरिकेस्थिनि ॥ २५ ॥  
 धुतं विधूते त्यक्ते च धूतः कम्पितमर्त्तिते ।  
 धूर्त्तं तु खण्डलवणे धत्तूर नाविटे त्रिषु ॥ २६ ॥

दन्त-कुञ्ज ( लताआदिकीकुटी ),	द्रुत-शीघ्र ( जल्दी ), पिघलना,
दाँत, पर्वतका निकलाहुवा भाग,	( न० ) विलीन ( मिलजाना ),
( पुं० )	शीघ्र गमन करनेवाला, ( त्रि० )
दन्ती-जमालगोटाकी जड़, ( स्त्री० )	॥ २३ ॥
दान्त-तप क्लेशको सहनेवाला, दमन-	धाता-ब्रह्मा, सूर्य, ( पुं० ) पालना
कियाहुवा, ( पुं० ) ॥ २१ ॥	करनेवाला, ( त्रि० )
दिति-दैत्योंकी माता, खंडनकरना,	धातु-क्रियार्थ, शुक, विषय, इंद्रिय २४
( स्त्री० )	कफ आदि, रसरक्तआदि, पंचम-
दीप्त-देदीप्यमान, दग्ध, निकास-	हाभूतआदि, पृथ्वीआदि, मनसि-
हुवा, ( त्रि० )	लआदि, लोह, गेरू ( विशेषकरके ),
द्विति-चर्मकी डोली, कसौटी, ( स्त्री० )	अस्थि ( हड्डी ) ( पुं० ) ॥ २५ ॥
॥ २२ ॥	धुत-कँपायाहुवा, त्यागाहुवा, ( त्रि० )
दृप्त-निवारणकियाहुवा, समर्थ, ( पुं० )	धूत-कँपायाहुवा, झिडकाहुवा, ( त्रि० )
द्युति-किरण-सूर्यआदिकी, शोभा,	धूर्त्त-बिरियासंचर-नौन ( न० ), धतूरा,
( स्त्री० )	( पुं० ) कामी, ( त्रि० ) ॥ २६ ॥

धृतिधारणसंतुष्टिधैर्ये योगान्तरेऽध्वरे ।

नतस्तगरवृक्षे स्यात् कुटिलानतयोस्त्रिषु ॥ २७ ॥

नीतिर्नये प्रापणे च नृत्तः स्यान्नर्तने क्रिमौ ।

पक्तिः स्त्री गौरवे पाके पङ्क्तिः श्रेणौ दशत्वपि ॥ २८ ॥

स्याद्दशक्षरवृत्तेपि स्त्रिया मूल्ये गतौ पतिः ।

पत्तिः पदातौ वीरे ना गतौ सेनान्तरे स्त्रियाम् ॥ २९ ॥

पातस्तु पतने त्राते पीतमाचान्तगौरयोः ।

त्रिषु पीता तु पर्णिन्यां पीतं पाने नपुंसकम् ॥ ३० ॥

पीतिः पाने सपूर्वा तु सहपाने हये पुमान् ।

पुस्तं तु पुस्तके क्लीबं विज्ञाने लेप्यकर्मणि ॥ ३१ ॥

पूतं पवित्रे शब्दे च त्रिषु स्याद्बहुलीकृते ।

पूरितच्छन्नयोः पूर्त्तं पूर्त्तं खातादिकर्मणि ॥ ३२ ॥

धृति—धारणा, संतोष, धैर्य योगभेद, यज्ञ, ( स्त्री० )	पीत—आचमन किया हुआ, गौर ( पीला ) ( त्रि० )
नत—तगर-वृक्ष, ( पुं० ) कुटिल, नम्र-पुरुष, ( त्रि० ) ॥ २७ ॥	पीता—मखवन-औषधि, ( स्त्री० )
नीति—न्याय, प्राप्तकरना, ( स्त्री० )	पीत—पीना, ( न० ) ॥ ३० ॥
नृत्त—नृत्यभेद, क्रिमि, ( पुं० )	पीति—पीना,
पक्ति—गौरव, पाक, ( स्त्री० )	सपीति—संगमें पीना ( स्त्री० ) अश्व, ( पुं० )
पङ्क्ति—श्रेणि ( पङ्क्ति ), दश—संख्या, ॥ २८ ॥ दशअक्षरवाला छंद, ( स्त्री० )	पुस्त—पुस्तक, शिल्प ( कारीगरी ), लेप्यकर्म, ( न० ) ॥ ३१ ॥
पति—स्त्रीका मूल्य, गति, ( स्त्री० )	पूत—पवित्र, शब्दित, ( न० ) ब-ढायाहुवा, ( त्रि० )
पत्ति—पयादा सिपाही, शूरवीर, ( पुं० ) गमन, सेनाभेद, ( स्त्री० ) ॥ २९ ॥	पूर्त्त—पूरित, आच्छादित, ( त्रि० ) खोदनाआदिकर्म, ( न० ) ॥ ३२ ॥
पात—पडना, ( पुं० ) रक्षाकियाहुवा, ( त्रि० )	

पोतो बाले बहित्रे च प्रातिः पूर्तिप्रदेशयोः ।

प्राप्तिर्महोदये लाभे प्राप्तं लब्धसमञ्जसे ॥ ३३ ॥

प्रीतिः सरसुतायोगभेदयोः प्रेममोदयोः ।

हर्षिते नर्मणि प्रीतं प्रेतो भूतान्तरे मृते ॥ ३४ ॥

प्रोतं तु ग्रथिते वस्त्रे पुतस्तु स्यात्त्रिमातृके ।

पुतमश्वस्य गमने पुतं सप्तवने त्रिषु ॥ ३५ ॥

भक्तिर्विभागे सेवायां भर्तास्वामिनि धारके ।

भित्तिः कुड्ये च काशे च प्रदेशे भेदभागयोः ॥ ३६ ॥

भीतं भयेऽपि सभये भीतिः साध्वसकंपयोः ।

अथ भूतः पुमान्देवयोनिभेदेऽपि देवले ॥ ३७ ॥

त्रिषु प्राप्ते विवृत्तेच भूतं स्यान्न्याय्यसत्ययोः ।

उपमाने पृथिव्यादौ पिशाचादौ समे त्रिषु ॥ ३८ ॥

पोत-बालक, नौका या जिहाज, (पुं०)	भक्ति-विभाग, सेवा, ( स्त्री० )
प्राति-पूर्ति, प्रदेश, ( स्त्री० )	भर्ता-स्वामी, धारणकरनेवाला, (पुं०)
प्राप्ति-महान् उदय ( भाग्योदय ), लाभ, ( स्त्री० )	भित्ति-दीवार, काश, प्रदेश, भेद, भाग, ( स्त्री० ) ॥ ३६ ॥
प्राप्त-लब्धहुवा, उचित (न०) ॥ ३३ ॥	भीत-भय, (न०) डराहुवा, ( त्रि० )
प्रीति-कामदेवकी पुत्री, योगभेद, प्रेम, आनन्द, ( स्त्री० )	भीति-भय, कंप, ( स्त्री० )
प्रीत-आनन्दित, टट्टा, ( न० )	भूत-देवयोनिभेद, देवल ( देवसेवा- से आजीवन करनेवाला ) ( पुं० )
प्रेत-भूतान्तर, मृतक, ( पुं० ) ॥ ३४ ॥	॥ ३७ ॥
प्रोत-भूँथाहुवा, वस्त्र, ( न० )	भूत-प्राप्तहुवा, बदीतहुवा, न्याय- युक्त, सत्य, उपमान, पृथिवीआदि, पिशाचआदि, सम ( तुल्य ) ( त्रि० )
पुत-तीनमात्रावालावर्णोच्चारण, ( पुं० ) अश्वकी गति, सप्तवन ( त्रि० )	॥ ३८ ॥
॥ ३५ ॥	

भूतिस्मार्तङ्गशृङ्गारे भस्मसम्पत्तिजन्मसु ।  
 भृतिस्तु भरणे ख्याता तथा वेतनमूल्ययोः ॥ ३९ ॥  
 भ्रान्तिः स्याद्भ्रमणेऽपि स्यान्मतौ वाऽप्यनवस्थितौ ।  
 मतोऽर्चितेऽप्यनुमते मतिर्बुद्धौ स्मृतीच्छयोः ॥ ४० ॥  
 मन्तुः स्यादपराधेऽपि मानवे परमेष्ठिनि ।  
 माता ब्राह्म्यादिगोकादिप्रसूगौरीष्वपि क्षितौ ॥ ४१ ॥  
 त्रिषु स्यान्मापके माता गीताध्यक्षे प्रपूर्वकः ।  
 मितिर्मानेऽप्यवच्छेदे मुक्तिर्मोक्षेऽपि मोचने ॥ ४२ ॥  
 मुक्तो मोक्षगतेऽप्युक्तस्त्रिषु मुक्ता तु मौक्तिके ।  
 मूर्त्तिं मूर्त्यन्विते मूर्च्छाऽन्विते काठिन्यवत्यपि ॥ ४३ ॥  
 मूर्त्तिः कायेऽपि काठिन्ये मृत्युयाचितयोर्मतम् ।  
 मृतं मृत्युपरिप्राप्ते विज्ञेयमभिधेयवत् ॥ ४४ ॥

भूति—हस्तीका शृङ्गार, भस्म, सम्पत्ति, जन्म, ( स्त्री० )	प्रमाता—प्रमाणकरनेवाला, गीतआदि-का अध्यक्ष, ( त्रि० )
भृति—पोषण, नौकरी, मूल्य, ( स्त्री० ) ॥ ३९ ॥	मिति—मान ( मापना ), अवच्छेद ( विधाम ), ( स्त्री० )
भ्रान्ति—बुद्धिविषै भ्रम, एकजगह नही-ठहरना ( स्त्री० )	मुक्ति—मोक्ष, छुटना, ( स्त्री० ) ॥ ४२ ॥
मत—पूजित, संमत, ( पुं० )	मुक्त—मोक्षको प्राप्तहुवा, छुटाहुवा, ( त्रि० )
मति—बुद्धि, स्मृति, इच्छा, ( स्त्री० ) ४०	मुक्ता—मोती ( स्त्री० )
मन्तु—अपराध, मनुष्य, ब्रह्मा, ( पुं० )	मूर्त्ति—मूर्त्तिमान, मूर्छित, काठिन्यवा-ला ( त्रि० ) ॥ ४३ ॥
माता—ब्राह्मी माहेश्वरीआदि, गौआ-दि, जननी ( माता ), गौरी, पृथ्वी, ( स्त्री० ) ॥ ४१ ॥	मूर्त्ति—शरीर, काठिन्य, ( स्त्री० )
	मृत—मृत्यु, याचित, ( न० ) मृत्युको प्राप्त, ( त्रि० ) ॥ ४४ ॥

यतिर्यतिनि पुंसि स्त्री पाठभेदनिकारयोः ।

यन्ता सादिनि सूते च निपूर्वोऽसौ नियामके ॥ ४५ ॥

युक्तं स्यादुचिते युक्तं संयुतेऽप्यभिधेयवत् ।

युक्तिर्वियोजने न्याये पृथक्संयुक्तयोर्मतम् ॥ ४६ ॥

युतं हस्तचतुष्केऽपि संख्याभेदे नपूर्वकम् ।

रक्तोनुरक्ते नील्यादिरञ्जिते लोहितेऽन्यवत् ॥ ४७ ॥

रिक्तं शून्ये वनेऽपि स्यादशरीतिर्गिरां पथि ।

रीतिः स्यन्दे प्रचारे च लोहकिट्टारकूटयोः ॥ ४८ ॥

लता तु माधवीवल्लीशाखास्पृक्काप्रियङ्गुषु ।

लता कस्तूरिकाज्योतिष्मतीदूर्वासु च स्मृता ॥ ४९ ॥

लिप्तं विलेपिते भुक्ते विषाक्तविशिषादिषु ।

लूता पिपीलिकायां स्यादूर्णनाभे गदान्तरे ॥ ५० ॥

यति-संन्यासी अथवा मुनि, ( पुं० )

पाठका विश्राम, अनादर, ( स्त्री० )

यन्ता-सवार, सारथि,

नियन्ता-प्रेरणेवाला, ( पुं० ) ॥ ४५ ॥

युक्त-उचित, संयुक्त, ( त्रि० )

युक्ति-लगाना, न्याय, अलगकिया-

हुवा, ( स्त्री० ) ॥ ४६ ॥

युत-चारहाथप्रमाणवाला,

अयुत-संख्याभेद ( दशहजार )

( न० )

रक्त-आसक्त, नीलीआदिसे रंगाहुवा,

लालरंगवाला ( त्रि० ) ॥ ४७ ॥

रिक्त-शून्य, वन, ( न० )

रीति-झिरना, प्रचार, लोहेका मैल,

पीतल ( स्त्री० ) ॥ ४८ ॥

लता-माधवीलता, बेल, शाखा-वृक्ष-

की, असवरग, कंगुनीधान्य, कस्तूरी,

मालकांगनी, दूब, ( स्त्री० ) ॥ ४९ ॥

लिप्त-लेपकियाहुवा, भुक्त ( खाया-

हुवा, विषसेलिप्तकिया बाणआदि,

( त्रि० )

लूता-चीटी, मकड़ी, रोगविशेष,

( स्त्री० ) ॥ ५० ॥



दीर्घकोशीहयावर्त्ते कपालशकले स्त्रियाम् ।

शुक्तोऽग्ले कर्कशे पूते शास्त्रावधृतयोः श्रुतम् ॥ ६२ ॥

श्रुतिः श्रोत्रे च वेदे च वार्तायां श्रौतकर्मणि ।

श्वेतं रूप्यं त्रिषु सिते श्वेतो द्वीपाद्रिभेदयोः ॥ ६३ ॥

श्वेता वराटिकायां स्याच्छङ्खिन्यां काष्ठपाटलौ ।

सत्साधौ विद्यमानेऽपि प्रशस्ते पूजिते त्रिषु ॥ ६४ ॥

सती साध्वीचण्डिकयोः सत्तु सत्येऽभिधेयवत् ।

सातिर्दानेवसानेऽपि सितं श्वेतसमाप्तयोः ॥ ६५ ॥

त्रिषु ज्ञातेऽपि बद्धेऽपि शर्करायां सिता मता ।

सीता तु जानकीव्योमगङ्गालाङ्गलवर्त्मसु ॥ ६६ ॥

सुतस्तु पार्थिवे पुत्रे सुप्तिर्विश्वासघातिनि ।

स्वापे स्पर्शज्ञतायां च सुखस्वापे सुपूर्विका ॥ ६७ ॥

जलजन्तु, घोडेकी भौरी, कपालका खंड, ( स्त्री० )	सती—श्रेष्ठ स्त्री, चण्डिका, ( स्त्री० )
शुक्त—खट्वा, कठोर, पवित्र, ( पुं० )	सत्—सच्चा पुरुषआदि ( त्रि० )
श्रुत—शास्त्र, श्रवणकियाहुवा, ( न० )	साति—दान, अन्त, ( स्त्री० ) ॥ ६५ ॥
॥ ६२ ॥	सित—सफ़ेद, समाप्त, जानाहुवा, बँधाहुवा, ( त्रि० )
श्रुति—कान, वेद, वार्ता, श्रौतकर्म ( वेदविहित कर्म ), ( स्त्री० )	सिता—मिसरी ( स्त्री० )
श्वेत—चांदी, ( न० ) सफ़ेद ( त्रि० )	सीता—जानकी, आकाशगंगा, हलसे कीहुई पृथ्वीमें लकीर, ( स्त्री० ) ॥ ६६ ॥
श्वेत—श्वेतद्वीप, पर्वतभेद, ( पुं० )	सुत—राजा, पुत्र, ( पुं० )
॥ ६३ ॥	सुप्ति—विश्वासघाती, ( पुं० ) सोना, स्पर्शका अज्ञान, सुषुप्ति—सुखपूर्वक सोना ( स्त्री० ) ॥ ६७ ॥
श्वेता—कौडी, चोरपुष्पी ( चोरहूली ), अगर, पादर-पुष्पवृक्ष, ( स्त्री० )	
सत्—साधु विद्यमान, श्रेष्ठ, पूजित ( त्रि० ) ॥ ६४ ॥	

सूतस्तु पारदे तक्षिण सूतः सारथिवन्दिनोः ।

प्रसूते प्रेरिते सूतः क्षत्रियाद् ब्राह्मणीसुते ॥ ६८ ॥

सूतिः स्त्री गमने मार्गे कुपूर्वा निकृतौ सूतिः ।

सेतुर्बालौ च वरुणे स्थितमूढ्वेऽपि संस्थिते ॥ ६९ ॥

निश्चिते सप्रतिज्ञेऽपि गत्यभावे तु न द्वयोः ।

मर्यादायामवस्थाने स्थाने सीमनि च स्थितिः ॥ ७० ॥

स्मृतिस्तु धर्मशास्त्रे स्यात् स्मरणे धीच्छयोरपि ।

संततौ सीवने स्यूतिः स्यूतः क्षतप्रसेवयोः ॥ ७१ ॥

स्वान्तं नपुंसकं वित्ते स्वान्तं स्यादपि गह्वरे ।

द्वयोस्तु हस्तो नक्षत्रे हस्तः करिकरे करे ॥ ७२ ॥

सप्रकोष्ठाततकरे हस्तः केशात्परश्वये ।

हितं गते धृते पथ्ये हेतिर्ज्वालाकृतेजसोः ॥ ७३ ॥

सूत-पारा, बढई, सारथि, बन्दीजन,  
( पुं० ) उत्पन्न ( जन्मा ) हुवा,

प्रेराहुवा, ( त्रि० ) क्षत्रियसे ब्राह्म-  
णीका पुत्र, ( पुं० ) ॥ ६८ ॥

सूति-गमन, मार्ग कुसूति-कपट,  
( स्त्री० )

सेतु-पुल, वरुण, ( पुं० ) ॥ ६९ ॥

स्थित-ऊपर, स्थित, निश्चित, प्रति-  
ज्ञावाला, ( पुं० ) गतिअभाव  
अर्थात् स्थिति ( न० )

स्थिति-मर्यादा, अवस्थान ( स्थिति ),  
स्थान, सीमा, ( स्त्री० ) ॥ ७० ॥

स्मृति-धर्मशास्त्र, स्मरण, बुद्धि,  
इच्छा, ( स्त्री० ) .

स्यूति-संतति निरंतरता कपडाका-  
सीना, ( स्त्री० )

स्यूत-घाव, थैली ( पुं० ) ॥ ७१ ॥

स्वान्त-वित्त, सघन, ( न० )

हस्त-नक्षत्र, हाथीकी सूंड, हाथ, ( पुं०  
न० ) ॥ ७२ ॥ प्रकोष्ठसमेतवि-

स्तारकिया हाथ ( एकहाथप्रमाण ),  
केशशब्दसेपरे हस्तशब्द केशसमूह,  
जैसे कुंतलहस्त ( पुं० )

हित-गयाहुवा, धारणकियाहुवा, पथ्य  
( सुखदाता ) ( न० )

हेति-अभिज्वाला, सूर्यतेज, ॥ ७३ ॥

स्त्रियां शस्त्रेऽप्यथ क्षत्ता सारथिद्वारस्थधातृषु ।

भुजिष्यजे नियुक्ते च शूद्राच्च क्षत्रियासुते ॥ ७४ ॥

क्षमायां तु मता क्षान्तिः क्षान्तिः स्यान्नियमेऽपि च ।

क्षितिः पृथिव्यां वासे च स्थानमात्रे क्षये क्षितिः ॥ ७५ ॥

ततृतीयम् ।

अगस्तिर्वङ्गसेनद्रौ स्यादगस्त्येऽप्यथाङ्कतिः ।

अग्निब्रह्माऽग्निहोत्रेषु स्थिरे दामोदरेऽच्युतः ॥ ७६ ॥

अजितोऽनिर्जिते विष्णावदितिर्देवसूनुवोः ।

अनृतं स्याद् मृषाकृप्योरनन्तो विष्णुशेषयोः ॥ ७७ ॥

अनन्तं गगनेऽनन्तं भवेदनवधौ त्रिषु ।

अनन्ता पृथिवीदूर्वापार्वतीलाङ्गलीष्वपि ॥ ७८ ॥

सारिवायां गुह्यच्यां च समुद्रान्ताविशल्ययोः ।

अमृतं मोक्षपीयूषसलिले ह्यवस्तुनि ॥ ७९ ॥

शस्त्र ( स्त्री० )	अच्युत—स्थिर, दामोदर ( भगवान् )
क्षत्ता—सारथि, द्वारपाल, ब्रह्मा, दास-	॥ ७६ ॥
पुत्र, दियाहुवा, शूद्रसे क्षत्रियाका	अजित—नहीं जीताहुवा, विष्णु,
पुत्र, ( पुं० ) ॥ ७४ ॥	पुं० )
क्षान्ति—क्षमा, नियम, ( स्त्री० )	दिति—देवताओंकी माता, पृथ्वी,
क्षिति—पृथ्वी, वास ( निवास ), स्था-	( स्त्री० )
नमात्र, क्षय ( नाश ) ( स्त्री० )	अनृत—असत्य, कृपि, ( न० )
॥ ७५ ॥	अनन्त—विष्णु, शेष-नाग, ( पुं० ) ॥ ७७ ॥
ततृतीय ।	आकाश ( न० ) निस्सीम ( त्रि० )
अगस्ति—बक ( हथिया ) वृक्ष, अग-	अनन्ता—पृथिवी, दूर्वा, सिंहलीपीपल,
स्त्यमुनि ( पुं० )	कलिहारी ॥ ७८ ॥ सरिवन, गिलोय,
अङ्कति—अग्नि, ब्रह्मा, अग्निहोत्र,	जवाँसा, अजमोद, ( स्त्री० )
( पुं० )	अमृत—मोक्ष, पीयूष ( अमृत ), जल,
	मनोहर वस्तु, ॥ ७९ ॥

अयाचिते यज्ञशेषे घृते दुग्धेऽतिसुन्दरे ।  
 अमृतस्तु मतः पुंसि धन्वंतरिसुपर्वणोः ॥ ८० ॥  
 गुडूच्यामलकीपथ्यामागधीष्वमृता मता ।  
 अमतिर्भाविकाले स्यादर्हस्तु जिनपूज्ययोः ॥ ८१ ॥  
 अर्दितः पवनव्याधौ याचिताऽहतयोस्त्रिषु ।  
 अर्वती चेटिकावाम्योरश्वेऽर्वन् कुत्सितेऽन्यवत् ॥ ८२ ॥  
 अव्यक्तस्तु हरौ हीरे मूर्खे वाच्यवदस्फुटे ।  
 वाच्यवत्क्षतहीने स्यादाकृतिः कायरूपयोः ॥ ८३ ॥  
 सामान्येऽपि तथाख्यातमाख्यातं कथिते तिडि ।  
 अथ वाच्यवदाख्यातं प्राणिते हिंसितेऽपि च ॥ ८४ ॥  
 आचितस्तु चिते छत्रे संगृहीते त्रिलिङ्गकः ।  
 आचितः शकटोन्मेये पलानामयुतद्वये ॥ ८५ ॥

अयाचित, यज्ञशेष, घृत, दुग्ध, अतिसुन्दर ( न० )	अर्वत्-घोडा ( पुं० ) कुत्सित ( निं- दित ) ( त्रि० ) ॥ ८२ ॥
अमृत-धन्वंतरि, देवता, ( पुं० ) ॥ ८० ॥	अव्यक्त-विष्णु, हीरा ( पुं० ) मूर्ख, अस्फुट, नाशहीन ( त्रि० )
अमृता-गिलोय, आंवला, हरड़, पी- पल, ( स्त्री० )	आकृति-घावरहित, ( त्रि० ) शरीर, रूप, ( स्त्री० ) ॥ ८३ ॥
अमति-आनेवाला काल,	आख्यात-सामान्य, ( त्रि० ) कहा- हुवा, तिड् ( तिडंतक्रिया ) ( न० )
अर्हन्-(त्) जिनदेव, पूजा करनेयो- ग्य ( पुं० ) ॥ ८१ ॥	आख्यात-सूँधा हुवा, माराहुवा, ( त्रि० ) ॥ ८४ ॥
अर्दित-वातरोग, ( पुं० ) याचनाकि- याहुवा, माराहुवा, ( त्रि० )	आचित-चिनाहुवा, आच्छादनकि- याहुवा, संप्रहकियाहुवा ( त्रि० )
अर्वती-दासी, घोड़ी ( स्त्री० )	आचित-गाडाभरा भार, ८००० तोल ( पुं० ) ॥ ८५ ॥

आहृतः सादरेऽपि स्यात् पूजितेऽप्यभिधेयवत् ।

आध्मातः पवनव्याधौ दग्धशब्दितयोस्त्रिषु ॥ ८६ ॥

आनर्त्तो नर्त्तनस्थाने देशभेदे रणे जले ।

पाते तदात्वेऽप्यापात आपतिः प्राप्तिदोषयोः ॥ ८७ ॥

आप्नुतः स्नातके पुंसि स्नाते स्यादभिधेयवत् ।

आयत्तिः स्नेहमर्यादावशितावलवासरे ॥ ८८ ॥

आयतिस्तु यमे दैर्घ्ये प्रभावोत्तरकालयोः ।

आयस्तस्तेजिते क्षिप्ते कुपिते क्लेशिते हते ॥ ८९ ॥

आवर्त्तश्चिन्तने चाऽऽवर्तने वाप्यम्भसां भ्रमे ।

आस्फोटस्त्वर्कपणे स्यादास्फोटः कोविदारके ॥ ९० ॥

आस्फोता गिरिकर्ण्या च वनमह्यामपि स्त्रियाम् ।

आसत्तिः सङ्गमे लाभे आहतं तु मृषार्थके ॥ ९१ ॥

आहृत—आदरक्रियाहुवा, पूजाक्रिया-  
हुवा, ( त्रि० )

आध्मात—वातरोग, दग्ध, शब्दित,  
( त्रि० ) ॥ ८६ ॥

आनर्त्त—नृत्यकरनेका स्थान, देशभेद,  
रण, जल, ( पुं० )

आपात—पड़ना, तत्काल, ( पुं० )

आपत्ति—प्राप्ति, दोष, ( स्त्री० )  
॥ ८७ ॥

आप्नुत—वेदमतवाला, ( पुं० ) स्ना-  
नक्रियाहुवा ( त्रि० )

आयत्ति—स्नेह, मर्यादा, वशित्व, बल,  
वासर ( दिन ) ( स्त्री० ) ॥ ८८ ॥

आयति—यम, लंबापना, प्रभाव आगे  
आनेवाला काल, ( स्त्री० )

आयस्त—तीक्ष्णक्रियाहुवा, फेकाहुवा,  
कुपित, क्लेशित, हत, ( पुं० )  
॥ ८९ ॥

आवर्त्त—चिन्तनकरना, आवर्तन (आ-  
वृत्ति) करना, जलोंका भँवर ( पुं० )

आस्फोट—आकका पत्ता, कचनार-  
वृक्ष, ( पुं० ) ॥ ९० ॥

आस्फोता—कोयल-औषधि, वन-  
मल्लिका, ( स्त्री० )

आसत्ति—संगम, लाभ, ( स्त्री० )

आहत—असत्य अर्थवाला ( न० ) ॥ ९१ ॥

स्यात्पुरातनवस्त्रेऽपि नववस्त्रेऽपि वाहतम् ।  
 आहतं चानकेऽपि स्यात्ताण्डिते ग्रसिते त्रिषु ॥ ९२ ॥  
 इङ्गितं चेष्टिते गत्यामुचितं तु समञ्जसे ।  
 अनुमत्यां मिताऽभ्यस्तज्ञातेषु त्रिषु च त्रिषु ॥ ९३ ॥  
 उच्छ्रितं तु प्रवृद्धे स्यात् सञ्जातेऽप्युन्नतेऽन्यवत् ।  
 उत्तप्तं शुष्केऽपिशिते संतप्ते च परिप्लुते ॥ ९४ ॥  
 वृद्धिमत्युन्मनस्केऽपि प्रोद्यते मतमुत्थितम् ।  
 उच्छ्रितं तु त्रिषूत्पन्ने प्रोद्यते वृद्धिमत्यपि ॥ ९५ ॥  
 उदितं सूदिते प्राप्तेऽप्युद्गतप्रोक्तयोस्त्रिषु ।  
 उद्धातो मुद्गरे वायुयोगार्थं कुम्भकादिषु ॥ ९६ ॥  
 उद्रङ्गे स्खलनेऽप्यर्थाऽऽधानेऽपि समुपक्रमे ।  
 स्यादुदन्तस्तु वार्तायामुदन्तः सज्जनेऽपि च ॥ ९७ ॥

पुराणा वस्त्र, नवीन वस्त्र, ढोल, ता-  
 डनाकियाहुवा, ग्रसाहुवा ( त्रि० )  
 ॥ ९२ ॥

इङ्गित-चेष्टित, गमन, ( न० )  
 उचित-युक्त, अनुमति, ( न० )  
 ग्रसित, अभ्यस्त, ज्ञात, ( त्रि० )  
 ॥ ९३ ॥

उच्छ्रित-प्रवृद्ध, संजात, उन्नत ( ऊँ-  
 चा ) ( त्रि० )

उत्तप्त-सूखामांस, ( न० ) संतप्त, परिप्लुत  
 ( भिगोयाहुवा ) ( त्रि० ) ॥ ९४ ॥

उत्थित-वृद्धिवाला, उन्मना, अति  
 उद्यमयुक्त, ( त्रि० )

उच्छ्रित-उत्पन्नहुवा, अतिउद्यमयुक्त,  
 वृद्धिवाला, ( त्रि० ) ॥ ९५ ॥

उदित-उदयहुवा, प्राप्तहुवा, उगला-  
 हुवा, कहाहुवा ( त्रि० )

उद्धात-मुद्गर, वायुके अभ्यासकेलिये  
 कुम्भकादि तीन प्राणायाम ॥ ९६ ॥  
 लोटना, पावसे आखलना, धनइक-  
 टाकरना, आरंभकरना,

उदन्त-वार्ता ( वृत्तान्त ), सज्जन,  
 ( पुं० ) ॥ ९७ ॥

त्रिषूद्धान्तः समुद्गीर्णे पुमान्निर्मददन्तिषु ।

उदात्तः स्वरभेदे स्यात् काव्यालङ्कारेऽपि च ॥ ९८ ॥

उदात्तो दातृमहतोर्मतो हृद्येऽपि वाच्यवत् ।

उद्धृत्तं तु सिते भुक्तोज्झितेऽप्यातोलिते मृते ॥ ९९ ॥

उन्नतिस्तूदये वृद्धावुद्धतौ ताक्षर्योषिति ।

उन्मत्त उन्मादवति धत्तूरमुचकुन्दयोः ॥ १०० ॥

उषितं व्युषिते दग्धेऽप्यूर्मितं क्षिप्तदग्धयोः ।

एधतुः पुरुषे बद्धावंहतिस्त्यागरोगयोः ॥ १०१ ॥

कपोतः स्यात्कलरवे कवकाख्ये विहङ्गमे ।

कलितं विदितेप्याप्ते स्वीकृतेऽप्यभिधेयवत् ॥ १०२ ॥

कापोतं तद्गुणे स्रोतोऽञ्जनखञ्जिकयोरपि ।

किरातः पुंसि भूनिम्बे म्लेच्छस्वरूपशरीरयोः ॥ १०३ ॥

उद्धान्त—उगलाहुवा, ( वमनकिया )  
( त्रि० ) मदरहित हस्ती, ( पुं० )

उदात्त—स्वरभेद, काव्यका अलंकार,  
॥ ९८ ॥ दातार, बडा, मनोहर,  
( त्रि० )

उद्धृत्त—बँधाहुवा, खायाहुवा, त्यागा-  
हुवा, तोलाहुवा, मराहुवा, ( त्रि० )  
॥ ९९ ॥

उन्नति—उदय, वृद्धि, ऊपरको गमन,  
गरुडकी स्त्री ( त्रि० )

उन्मत्त—उन्मादवाला, धत्तरा, पुष्प-  
वृक्ष विशेष, ( पुं० ) ॥ १०० ॥

उषित—रातका रक्खाहुवा, दग्ध,  
( त्रि० )

ऊर्मित—फेंकाहुवा, दग्धहुवा, ( न० )

एधतु—पुरुष, अग्नि, ( पुं० )

अंहति—त्याग ( दान ), रोग ( स्त्री० )  
॥ १०१ ॥

कपोत—सूक्ष्मशब्द, कवक ( कबूतर )  
नाम पक्षी, ( पुं० )

कलित—जानाहुवा, प्राप्तहुवा, अंगी-  
कारकियाहुवा, ( त्रि० ) ॥ १०२ ॥

कापोत—कपोतों ( कबूतरों ) का समूह,  
कालासुरमा, करछी ( न० )

किरात—चिरायता, म्लेच्छ, छोटाश-  
रीरवाला, ( पुं० ) ॥ १०३ ॥

बालव्यजनधारिण्यां कुट्टिनीसुरगङ्गयोः ।

स्यात्किरातीति कुर्वस्तु भृत्ये कर्मकरे त्रिषु ॥ १०४ ॥

कृतान्तो यमसिद्धान्तदैवेऽप्यशुभकर्मणि ।

ऋन्दितं रोदितेऽपि स्यादाह्वाने कृतरोदने ॥ १०५ ॥

गभस्तिः किरणे सूर्ये पुंसि स्त्री वह्नियोषिति ।

गर्मुत् कार्तस्वरे स्त्रीबं गर्मुच्छाखाभिधायिनि ॥ १०६ ॥

गर्जितो मत्तमातङ्गे गर्जितं जलदध्वनौ ।

गोदन्तो हरिताले स्यादंशिते वर्म्मिते त्रिषु ॥ १०७ ॥

गोपतिः पार्थिवे षण्डे रविपण्डितशूलिषु ।

ग्रंथितं गुम्फिताक्रान्तहिंसितेषु त्रिषु स्मृतम् ॥ १०८ ॥

चिन्तातो मोचने गाङ्गचित्ते च चिरजीविनि ।

जगन्वाते पुमान्स्त्रीबं भुवने जङ्गमे त्रिषु ॥ १०९ ॥

किराती-चैवरढोरनेवाली, कुट्टिनी,  
आकाशगंगा, ( स्त्री० )

कुर्वत् ( नृ )-दास, नौकर ( त्रि० )  
॥ १०४ ॥

कृतान्त-धर्मराज, सिद्धान्त, भाग्य,  
अशुभकर्म ( पुं० )

ऋन्दित-रोना, बुलाना, रुदनकरने-  
वाला, ( त्रि० ) ॥ १०५ ॥

गभस्ति-किरण, सूर्य, ( पुं० ) अ-  
ग्निकी स्त्री ( स्त्री० )

गर्मुत्-सुवर्ण, ( न० )  
शाखाओंका बखानकरनेवाला ( पुं० )

॥ १०६ ॥

गर्जित-मदोन्मत्त हस्ती, ( पुं० )  
मेघकी ध्वनि ( न० )

गोदन्त-हरताल, कंबुक आदिधारण-  
किये, कवच धारणकिये ( त्रि० )  
॥ १०७ ॥

गोपति-राजा, हीजड़ा, सूर्य, पण्डित,  
महादेव, ( पुं० )

ग्रंथित-गूँथाहुवा, दबायाहुवा, मारा-  
हुवा, ॥ १०८ ॥ चिन्तासे छुडाना,  
गंगाको चिन्तनकरनेवाला, चिर-  
जीवी ( त्रि० )

जगत्(नृ)-वायु, ( पुं० ) भुवन,  
जंगम ( चलनेवाला ) ( त्रि० )

॥ १०९ ॥



जगती जगति क्षमायां छन्दोभेदे जनेऽपि च ।  
 जयन्ती त्वथ गौरीन्द्रपुत्री जरा द्रुमान्तरे ॥ ११० ॥  
 वैजयन्त्यां जयन्तस्तु पाकशासनिहीरयोः ।  
 जामाता दयिते सूर्यावर्ते तु दुहितुः पतौ ॥ १११ ॥  
 जीमूतो जलदे शक्रे घोषेपि वृद्धिजीविनि ।  
 देवताडेऽपि जीमूतो जीमूतः पर्वतेऽपि च ॥ ११२ ॥  
 जीवातुरस्त्रियां भक्ते जीविते जीवनौषधौ ।  
 जीवन्ती जीवनीवृक्षे शमीवन्दाऽमृतासु च ॥ ११३ ॥  
 जृम्भितं करणे स्त्रीणां वेष्टिते स्फुटिते त्रिषु ।  
 ज्वलितो भास्करे दग्धे वानितं तनितांशुके ॥ ११४ ॥  
 वाद्यभाण्डे गुणे विस्तारे तेषु त्रिषु तानितम् ।  
 तृणता तु तृणत्वे स्यात् तृणता कार्मुकेऽपि च ॥ ११५ ॥

जगती—जगत. पृथ्वी, छन्दोभेद, जन ( मनुष्यआदि ) ( स्त्री० )	जीवातु—भक्त, ( भात ), जीवित, जी- नेकी औषधि, ( पुं० न० )
जयन्ती—गौरी ( पार्वती ), इन्द्रपुत्री, वृद्धाऽवस्था, वृक्षभेद ( स्त्री० ) ॥ ११० ॥ पताका, ( स्त्री० )	जीवन्ती—काकोली-वृक्ष, जांट वृक्ष, वृक्षमें उपजा वृक्ष, गिलोय ( स्त्री० ) ॥ ११३ ॥
जयन्त—इंद्रका पुत्र, हीरा-रत्न, ( पुं० )	जृम्भित—स्त्रियोंका करण ( चेष्टा ), ल- पेटाहुवा, फूटाहुवा, ( त्रि० )
जामा(तृ)ता—प्रिय, सूर्यावर्तमणि, पुत्रीका पति, ( पुं० ) ॥ १११ ॥	ज्वलित—सूर्य, दग्ध, ( पुं० )
जीमूत—मेघ, इंद्र, शब्द, वृद्धिजीवी ( व्याज लेनेवाला ), देवताड-वृक्ष, पर्वत, ( पुं० ) ॥ ११२ ॥	वानित—तनाहुवा वस्त्र, ( न० ) ॥ ११४ ॥
	तानित—बाजाका पात्र, तार, विस्तार, ( त्रि० )
	तृणता—तृणभाव, धनुष, ( स्त्री० ) ॥ ११५ ॥

त्रिगर्तः स्याज्जनपदे त्रिगर्तो गणितान्तरे ।  
 विषयेऽपि त्रिगर्ता तु धुर्धुरीकामुकस्त्रियोः ॥ ११६ ॥  
 त्वरितं प्रजवे शीघ्रे दुर्गतिर्निरये स्त्रियाम् ।  
 दारिद्रेऽप्यथ दुर्जातं कुजाते व्यसने तथा ॥ ११७ ॥  
 दृष्टान्तस्तु पुमाञ्छास्त्रे स्यादुदाहरणेपि च ।  
 दंशितं वर्ष्मते दष्टे द्रवन्ती सरिदन्तरे ॥ ११८ ॥  
 मधौ चैव द्विजातिस्तु द्विजन्मनि विहङ्गमे ।  
 धीमान्वाचस्पतौ पुंसि धीरे बुद्धिमति त्रिषु ॥ ११९ ॥  
 निकृतं विप्रलम्भेऽपि नीचे विप्रकृतेऽपि च ।  
 निकृतिर्भर्त्सने क्षेपे निकृतिः शठशाठ्ययोः ॥ १२० ॥  
 निमित्तं लक्षणे हेतौ निमित्तं पर्वणि स्मृतम् ।  
 आगन्तुर्देवादशे च नियतिर्नियमे विधौ ॥ १२१ ॥

त्रिगर्त-त्रिगर्तदेश, मनुष्य, गणित- भेद, देश, ( पुं० )	द्रवन्ती-नदी, ( स्त्री० ) ॥ ११८ ॥ मुलहटी-बेल, ( स्त्री० )
त्रिगर्ता-धुर्धुरिया-क्रीडा, संभोग इ- च्छावाली स्त्री ( स्त्री० ) ॥ ११६ ॥	द्विजाति-ब्राह्मणआदि, पक्षी, ( पुं० ) धीमान्(त्)-बृहस्पति, ( पुं० ) धीर, बुद्धिमान्, ( त्रि० ) ॥ ११९ ॥
त्वरित-वेग, शीघ्रता, ( न० )	निकृत-ठगना, नीच, विगाडाहुवा, ( न० )
दुर्गति-नरक, दारिद्र्य, ( स्त्री० )	निकृति-झिडकना, फेंकना, शठ, शठता, ( स्त्री० ) ॥ १२० ॥
दुर्जात-कुत्सितजन्मवाला, व्यसन, ( न० ) ॥ ११७ ॥	निमित्त-लक्षण, हेतु, पर्व, ( न० ) आगन्तु-देवआज्ञा, ( पुं० )
दृष्टान्त-शास्त्र, उदाहरण, ( पुं० )	नियति-नियम, भाग्य, ( स्त्री० ) ॥ १२१ ॥
दंशित-कवचधारणकियाहुवा, का- टाहुवा ( त्रि० )	

निरस्तः प्रेषितशरे संत्यक्ते त्वरितोदिते ।

निष्ठचूतेऽपि प्रतिहते निर्मितस्त्वनुपद्रुते ॥ १२२ ॥

दिक्पालकालपर्णौ तु पुंस्त्रियोः स्यादनुक्रमात् ।

निर्वृत्तिः सुस्थितासौख्यनिर्वाणाऽस्तङ्गमाध्वसु ॥ १२३ ॥

निर्मुक्तस्त्यक्तसङ्गे स्यात् त्यक्तकञ्चुकपन्नगे ।

निर्वातो वातविगते व्याश्रये दृढवर्मणि ॥ १२४ ॥

निशान्तस्त्रिषु शान्ते स्यान्निशान्तो भवनोपसोः ।

पञ्चता मृत्युमात्रेऽपि पञ्चभावेऽपि पञ्चता ॥ १२५ ॥

पण्डितः सिद्धके धीरे पतत्पातुकपक्षिणोः ।

पद्धतिः पथि पङ्क्तौ च परेतो वाच्यवन्मृते ॥ १२६ ॥

भूतभेदेऽप्यथ गिरौ सुरर्षावपि पर्वतः ।

पर्याप्तं वारणतुष्टियथेष्टेष्वासशक्तयोः ॥ १२७ ॥

निरस्त—फेंकाहुवा बाण, त्यागाहुवा, शीघ्रकहाहुवा, थूकाहुवा, माराहुवा, ( पुं० )

निर्मित—उपद्रवरहित, ( पुं० ) ॥ १२२ ॥  
दिक्पाल, ( पुं० ) तगर-वृक्ष, ( स्त्री० )

निर्वृत्ति—सुस्थिता, सौख्य, मृत्यु होना, अस्त होना, मार्ग, ( स्त्री० ) ॥ १२३ ॥

निर्मुक्त—त्यागा है संग जिसने वह, कँचुलीसे मुक्तहुवा सर्प ( पुं० )

निर्वात—वायुरहित होना, आश्रय, दृढ कवच ( पुं० ) ॥ १२४ ॥

निशान्त—शान्त, ( त्रि० ) निशान्त-घर, प्रभात-काल ( पुं० )

पञ्चता—मृत्यु, पाँचोंका भाव ( पञ्चना ) ( स्त्री० ) ॥ १२५ ॥

पण्डित—हींग, विद्वान्, ( पुं० )  
पतत्—पडनेवाला, पक्षी, ( त्रि० )

पद्धति—मार्ग, पंक्ति, ( स्त्री० )  
परेत—मृतक ॥ १२६ ॥ भूतभेद,

( पुं० )  
पर्वत—पहाड़, एक सुरर्षि, ( पुं० )

पर्याप्त—मनह करना, तुष्टि, यथेष्ट ( न० ) भान्य, समर्थ, ( पुं० ) ॥ १२७ ॥

विनाशदोषकृच्छ्रेषु दण्डे तु मतमव्ययम् ।  
 पर्याप्तिस्तु प्रकामे स्यात्प्राप्तौ च परिरक्षणे ॥ १२८ ॥  
 पर्यस्तः पतितक्षिसनिहतेषु त्रिषु त्रिषु ।  
 पलितं केशपांडुत्वे पङ्के तापेऽपि शैलजे ॥ १२९ ॥  
 पक्षतिः पक्षमूले स्यात्प्रतिपद्यपि पक्षतिः ।  
 पार्वती द्रौपदी दुर्गा जीवन्ती शलकीद्रुमे ॥ १३० ॥  
 पिण्डितो गणिते सान्द्रे पित्सन् पातेऽपि पक्षिणि ।  
 पिशिता मासिकायां स्यात्पिशितं पलले मतम् ॥ १३१ ॥  
 पीडितं करणे स्त्रीणां यन्निते बाधितेऽपि च ।  
 पुटितं स्यात्करपुटे प्रसृतिस्स्यूतपोटिते ॥ १३२ ॥  
 पृषतोऽपि पृषद्विन्दौ मृगे तु पृषतः पृषन् ।  
 स्याद्दुःखरेऽहितेऽप्येवं श्वेतबिन्दुयुतेऽन्यवत् ॥ १३३ ॥

पर्याप्तं-विनाश, दोष, कृच्छ्र, ( कष्ट ) दंड, ( अव्यय )	पित्स(त्)न्-पडना, पक्षी, ( न० पुं० )
पर्याप्ति-प्रकाम (अति इच्छा), प्राप्ति, अच्छी रक्षा, ( स्त्री० ) ॥ १२८ ॥	पिशिता-जयमांसी-औषधि, ( स्त्री० )
पर्यस्त-पडाहुवा, फेंकाहुवा, मारा- हुवा, ( त्रि० )	पिशित-मांस, ( न० ) ॥ १३१ ॥
पलित-केशोंकी सफेदी, कींच, ताप, शिलाजीत ( न० ) ॥ १२९ ॥	पीडित-स्त्रियोंका आभूषण, वशमें कियाहुवा, पीडा कियाहुवा ( त्रि० )
पक्षति-पक्षीकी मूल, प्रतिपदा-तिथि, ( स्त्री० )	पुटित-हाथका पुट, ( न० )
पार्वती-द्रौपदी, दुर्गा, हरड-वृक्ष, शालई-वृक्ष, ( स्त्री० ) ॥ १३० ॥	प्रसृति-आधी अंजलि, थैली, पुट- कियाहुवा, ( स्त्री० ) ॥ १३२ ॥
पिण्डित-गणित कियाहुवा, इकठ्ठा कि- याहुवा, ( पुं० )	पृषत-( पुं० ) पृषत्-( न० ) जल आदिकी बुँद, पृषत-पृषत्, हि- रण, ( पुं० ) बुरे शब्दवाला, शत्रु, सफेद बुँदकीवाला ( त्रि० ) ॥ १३३ ॥

प्रकृतिस्तु सत्त्वरजस्तमसां साम्यमात्रके ।  
 स्वभावाऽमात्यपौरैषु लिङ्गे योनौ तथाऽऽत्मनि ॥ १३४ ॥  
 प्रकृतं प्रस्तुतेऽपि स्यात्प्रकृतः प्रकृतिस्थिते ।  
 प्रवितः शकटोन्मेये पलानामयुतद्वये ॥ १३५ ॥  
 प्रणीतः संस्कृताग्नौ स्याद्वाच्यलिङ्गः प्रवेशिते ।  
 संस्कृते चोपपन्ने निक्षिप्ते विहितेऽपि च ॥ १३६ ॥  
 प्रतीतः सादरे ख्याते हृष्टे दृष्टे विरक्षणे ।  
 प्रतीत एते ज्ञाते च प्रततिर्व्रततौ ततौ ॥ १३७ ॥  
 प्रपातो निक्षरे कृच्छ्रे पतनावटयोरपि ।  
 प्रभूतमुद्रते प्राज्ये प्रमीतः प्रोक्षिते मृते ॥ १३८ ॥  
 प्रवृत्तिवृत्तिवार्त्तान्तप्रवाहेषु प्रवर्त्तने ।  
 प्रसूतिः प्रसवोत्पत्तिपुत्रेषु दुहितर्यपि ॥ १३९ ॥

<b>प्रकृति</b> —सत्त्व, रजस्, तमस्, इनकी सम अवस्था; स्वभाव, मंत्री, प्रजा, लिंग, योनि, आत्मा, ( स्त्री० ) ॥ १३४ ॥	<b>प्रतीत</b> —आदरयुक्त, विख्यात, प्रसन्न- हुवा, देखाहुवा, रक्षाकियाहुवा, गयाहुवा, जानाहुवा ( त्रि० )
<b>प्रकृत</b> —प्रस्तुत ( प्रसंग ) ( न० ) स्वभावमें स्थित, ( त्रि० )	<b>प्रतति</b> —बेल, पंक्ति, ( स्त्री० ) ॥ १३७ ॥
<b>प्रवित</b> —गाडाभर, ८०००० तोला प्रमाण, ( पुं० ) ॥ १३५ ॥	<b>प्रपात</b> —झिरना, कष्ट, पड़ना, गड्ढा, ( पुं० )
<b>प्रणीत</b> —संस्कार कियाहुवा अग्नि, ( पुं० ) प्रवेश कियाहुवा, ( त्रि० ) संस्कार कियाहुवा, पास रक्खा- हुवा, स्थापन कियाहुवा, रचाहुवा, ( त्रि० ) ॥ १३६ ॥	<b>प्रभूत</b> —उद्भूत, बहुत, ( न० ) <b>प्रमीत</b> —प्रोक्षित ( सेचन कियाहुवा ), मराहुवा, ( पुं० ) ॥ १३८ ॥
	<b>प्रवृत्ति</b> —वृत्ति ( जीविका ), वृत्तान्त, प्रवाह, प्रवर्तन ( स्त्री० )
	<b>प्रसूति</b> —जन्म, उत्पत्ति, पुत्र, पुत्री, ( स्त्री० ) ॥ १३९ ॥

तृतीयम् । ]

भाषाटीकासमेतः ।

प्रसूतं कुसुमे क्लीबं वाच्यवल्लब्धजन्मनि ।

प्रसूता तु प्रजातायां जंघायां प्रसूता मता ॥ १४० ॥

प्रसूतोऽर्धाञ्जलौ सम्प्रसारे वेगिविनीतयोः ।

प्रवृतं वितते क्षुण्णे प्रोक्षितं सिक्त आहते ॥ १४१ ॥

प्रार्थितं याचिते शत्रुरुद्धेऽप्यभिहते त्रिषु ।

वर्द्धितं पूरिते छिन्ने वर्द्धितं वृद्धिशालिनि ॥ १४२ ॥

बृहती महतीकण्टकारिकाकलशीषु च ।

वाचि च क्षुद्रवार्त्ताक्यां छन्दोभेदोत्तरीययोः ॥ १४३ ॥

भरतस्तु नटे नाट्यशास्त्रे रामाऽनुजे पुमान् ।

दौष्यन्तौ शवरे तन्तुवायेऽपि भरतः स्मृतः ॥ १४४ ॥

भवती बाणभेदे स्यात्त्रिषु युष्मत्सदर्थयोः ।

व्यासर्धिभाषिते ग्रन्थे जम्बूद्वीपेऽपि भारतः ॥ १४५ ॥

प्रसूत-पुष्प, ( न० ) उत्पन्नहुवा  
( त्रि० )

प्रसूता-उत्पन्न हुई-कन्या ( स्त्री० )

प्रसूता-जंघा ( स्त्री० ) ॥ १४० ॥

प्रसूत-आधी अंजलि, अच्छी तरह  
फैलाहुवा, वेगवाला, नम्रतावाला,  
( त्रि० )

प्रवृत-विस्तारवाला, कटाहुवा, ( त्रि० )

प्रोक्षित-सींचाहुवा, अच्छी तरह  
माराहुवा ( त्रि० ) ॥ १४१ ॥

प्रार्थित-याचना कियाहुवा, शत्रुका  
रोकाहुवा, माराहुवा ( त्रि० )

वर्द्धित-पूराहुवा, छेदन कियाहुवा,  
वृद्धिवाला, ( त्रि० ) ॥ १४२ ॥

बृहती-बड़ी-स्त्रीआदि, कटेहली,  
कलशी, वाणी, छोटा बैंगन, छंदो-  
भेद, दुपट्टा, ( स्त्री० ) ॥ १४३ ॥

भरत-नट, नाट्यशास्त्र, रामका छोटा  
भ्राता, दुष्यन्तराजाका पुत्र, शव-  
रजाति, जुलाहा, ( पुं० ) ॥ १४४ ॥

भवती-बाणभेद, युष्मद्-अर्थ, सत्-  
अर्थ, ( त्रि० )

भारत-भारत-इतिहास, जंबूद्वीप,  
( पुं० ) ॥ १४५ ॥

वाग्वाणीपक्षिणीभेदवृत्तिभेदेषु भारती ।

भावितं वासिते लब्धे ध्यातेऽप्युत्पादिते त्रिषु ॥ १४६ ॥

भासन्तो भासविहगे सुन्दरेऽप्यभिधेयवत् ।

भास्वानाभासरे सूर्ये भूभृद्भूपालशैलयोः ॥ १४७ ॥

मथितं निर्जलोदश्रित्यनववृष्टलोडिते ।

मरुत्पुंसि सुरे वाते महद्राज्ये नपुंसकम् ॥ १४८ ॥

नारदस्य तु वीणायां महती स्यात्पृथौ त्रिषु ।

मालती जातियुवतिज्योत्स्नानिक्षु सरिद्धिदि ॥ १४९ ॥

काकमाच्यमिशिखयोर्मुषितं खण्डिते हते ।

मूर्च्छितं मोहसंप्राप्ते सोच्छ्रयेऽपि दृढेऽपि च ॥ १५० ॥

रजतं रूप्यहारेभदन्तेषु विशदे त्रिषु ।

रमतिर्नायके स्वर्गे रसितं खनिते रुते ॥ १५१ ॥

भारती—वचन, सरस्वती, पक्षि(णी)  
भेद, वृत्तिभेद, ( स्त्री० )

भावित—भिगोयाहुवा, लब्धहुवा,  
ध्यानकियाहुवा, उत्पादन कियाहुवा  
( त्रि० ) ॥ १४६ ॥

भासन्त—भास-पक्षी, ( पुं० ) सुन्दर,  
( त्रि० )

भास्वान्—तेजस्वी, सूर्य, ( पुं० )

भूभृत्—राजा, पर्वत, ( पुं० ) ॥ १४७ ॥

मथित—निर्जलछाछ, घोलाहुवा, मथा-  
हुवा ( न० )

मरुत्—देवता, वायु, ( पुं० )

महत्—राज्य, ( न० ) ॥ १४८ ॥

महती—नारदमुनिकी वीणा, ( स्त्री० )  
पृथु ( स्थूल ) ( त्रि० )

मालती—चमेली, जवान स्त्री, सफेदफू-  
लकी तोरई, रात्रि, एकनदी, मकोय,  
॥ १४९ ॥ चौलाई शाक, ( स्त्री० )

मुषित—खंडित, हत ( हडाहुवा )  
( त्रि० )

मूर्च्छित—मोहको प्राप्त, बडाहुवा, दृढ,  
( त्रि० ) ॥ १५० ॥

रजत—चाँदी, हार, हस्तिदन्त, शृङ्ग  
( सफेद ) ( त्रि० )

रमति—स्वामी, स्वर्ग, ( पुं० )

रसित—शब्दयुक्त, शब्द, ॥ १५१ ॥

स्पर्णादिखचिते तु स्यान्निष्वेव रसितं मतम् ।

रेवती हलिकान्तायां ताराभेदेऽपि मातृषु ॥ १५२ ॥

रैवतः शैलभेदे स्यात्सुवर्णालौ हरेश्वरे ।

सरलेऽन्द्रायुधे वीरे रुधिराऽपि च रोहितम् ॥ १५३ ॥

रोहितो लोहिते मीने मृगभेदेऽपि रोहिणि ।

रोहिदके पुमानेव मता रोहिल्लतान्तरे ॥ १५४ ॥

ललितं हारभेदे स्यान्निष्वेव ललितेष्टयोः ।

लोहितं कुङ्कुमे रक्ते गोशीर्षे रक्तचन्दने ॥ १५५ ॥

पुंसेव मङ्गले रक्ते नदे नागे व लोहितः ।

वनिता जनिताऽत्यर्थरागयोषिति योषिति ॥ १५६ ॥

वनितं याचिते क्लीबं शोधिते वनितं त्रिषु ।

वसतिः स्यान्निशावेशमावस्थानेऽप्यर्हदाश्रमे ॥ १५७ ॥

स्पर्णादिसे जडाहुवा, ( त्रि० )  
रेवती-बलदेवजीकी स्त्री, रेवती-  
नक्षत्र, मातृभेद ( स्त्री० ) ॥ १५२ ॥  
रैवत-एकपर्वत, सोनाली-वृक्ष, शिव,  
ईश्वर, ( पुं० )  
रोहित-सीधा, इंद्रका धनुष, वीर,  
रुधिर, ( न० ) ॥ १५३ ॥  
रोहित-लोहित ( लालवर्ण ), मच्छी,  
मृगभेद, रोहेडा-वृक्ष ( पुं० )  
रोहित-सूर्य या आक ( पुं० ) ल-  
ताभेद, ( स्त्री० ) ॥ १५४ ॥

ललित-हारभेद, सुंदर, प्रिय, ( त्रि० )  
लोहित-केसर, कसूभाआदि, हरि-  
चंदन-वृक्ष, रक्तचंदन, ( न० )  
॥ १५५ ॥  
लोहित-मंगल-ग्रह, रक्त-वर्ण, एक-  
नद, हस्ती ( पुं० )  
वनिता-जिसमें अतिप्रीति है वह स्त्री,  
स्त्रीमात्र, ( स्त्री० ॥ १५६ ॥  
वनित-याचना कियाहुवा ( न० )  
शोधाहुवा, ( त्रि० )  
वसति-रात्रि, मकान, स्थिति, अर्ह-  
तदेवका आश्रम ( स्त्री० ) ॥ १५७ ॥



बहतुर्वृषभे पान्थे बहतिः सचिवे गवि ।

वापितं वाच्यवह्नीजाकृतमुण्डितयोर्मतम् ॥ १५८ ॥

वासन्तः कोकिले मुद्रे करभेऽवहिते विटे ।

वासन्ती माधवीयूथ्योर्वासन्ती पाटलावपि ॥ १५९ ॥

वासिता करिणीनार्योर्वासितं विहगारवे ।

ज्ञाने त्रिष्वेव वसनवेष्टिते मुरभीकृते ॥ १६० ॥

विकृतस्त्रिषु बीभत्से रोगिते स्यादसंस्कृते ।

डिम्बे रोगे च विकृतिर्विगतो निष्प्रभे गते ॥ १६१ ॥

विच्छित्तिरङ्गरागे स्यादपि विच्छेदहावयोः ।

विजाता तु प्रसूतायां विकृते जनिते त्रिषु ॥ १६२ ॥

विततं तु मतं व्याप्ते विस्तृतेऽप्यभिधेयवत् ।

विद्युत्तडिति सन्ध्यायां स्त्रियां त्रिष्वेव निष्प्रभे ॥ १६३ ॥

बहतु—वृषभ, बटाऊ, ( पुं० )

बहति—मंत्री, गौ, ( पुं० स्त्री० )

वापित—बीजबोयाहुवा खेत, मुँडा-  
हुवा ( त्रि० ॥ १५८ ॥

वासन्त—कोयल, मूँग, उष्ट्र, साव-  
धान, कामी, ( पुं० )

वासन्ती—माधवीलता, जूही, लाल-  
लोथ ( स्त्री० ) ॥ १५९ ॥

वासिता—हथिनी, स्त्री, ( स्त्री० )

वासित—पक्षीका शब्द, ज्ञान, ( न० )  
बल्लसे लपेटाहुवा, सुगंधितकिया-  
हुवा, ( त्रि० ) ॥ १६० ॥

विकृत—कर, रोगी, नहीं संस्कारकिया  
हुवा, ( पुं० )

विकृति—लटनाआदिपीडा, रोग  
( स्त्री० )

विगत—कांतिहीन, गयाहुवा, ( पुं० )  
॥ १६१ ॥

विच्छित्ति—अंगराग, वियोग, हाव,  
( स्त्रियोंकी चेष्टा ) ( स्त्री० )

विजाता—प्रसूतिका स्त्री, ( स्त्री० )  
बिगड़ाहुवा, उत्पन्नहुवा, ( त्रि० )

॥ १६२ ॥

वितत—व्याप्त, विस्तारवाला, ( त्रि० )

विद्युत्—बिजली, सन्ध्या, ( स्त्री० )  
प्रभारहित, ( त्रि० ) ॥ १६३ ॥

विदितं स्वीकृते ज्ञाते विधाता वेधसि सरे ।  
 विनतः प्रणते भुम्ने शिक्षितेऽप्यभिधेयवत् ॥ १६४ ॥  
 विनता वैनतेयस्य जनन्यां पिडिकान्तरे ।  
 विनीतः सुवहाश्चे स्याद्विनयाब्धे जितेन्द्रिये ॥ १६५ ॥  
 उपनीतेऽपनीतेऽपि निभृते वणिजि त्रिषु ।  
 विनेताऽऽदेशके राज्ञि विपत्तिर्योचनापदोः ॥ १६६ ॥  
 विवृता क्षुद्ररोगे स्याद्विवृतं तु त्रिषु त्रिषु ।  
 विवर्त्तं समुदाये स्यादप्रवर्त्तननृत्ययोः ॥ १६७ ॥  
 विविक्तं विजने पूतेऽप्यसंपृक्तविवेकिनि ।  
 विश्रुतं ज्ञातसंहृष्टप्रतीतेषु त्रिषु त्रिषु ॥ १६८ ॥  
 विश्वस्तस्त्रिषु विश्रब्धे विश्वस्ता विधवा स्त्रियाम् ।  
 विहस्तो हस्तरहिते विह्वले षण्डकेऽपि च ॥ १६९ ॥

विदित—कारकियाहुवा, जानाहुवा, ( त्रि० )	विपत्ति—याचना, आपत् ( विपत् ) ( स्त्री० ) ॥ १६६ ॥
विधातृ(ता)—ब्रह्मा, कामदेव, ( पुं० )	विवृता—क्षुद्र—रोग, ( स्त्री० ) नहींडका- हुवा, ( त्रि० )
विनत—नम्र, मुड़ाहुवा, शिक्षाक्रिया- हुवा ( त्रि० ) ॥ १६४ ॥	विवर्त्त—समूह, नहींडकना, नृत्य, ( न० ) ॥ १६७ ॥
विनता—गरुडकी माता, फुन्सीभेद, ( स्त्री० )	विविक्त—विजन ( एकांत ), पवित्र, नहीं मिलाहुवा, विवेकी, ( त्रि० )
विनीत—अच्छा चलनेवाला अश्व, वि- नयसे युक्त, जितेन्द्रिय, ॥ १६५ ॥ यज्ञोपवीतदियाहुवा, दूरक्रियाहुवा, नम्र, वणिक्, ( त्रि० )	विश्रुत—जानाहुवा, प्रसन्नहुवा, वि- ख्यातहुवा, ( त्रि० ) ॥ १६८ ॥
विनेतृ(ता) आज्ञाकरनेवाला, राजा, ( पुं० )	विश्वस्त—जिसका विश्वास हुवा वह, ( त्रि० )
	विश्वस्ता—विधवा, ( स्त्री० )
	विहस्त—हस्तरहित, विह्वल, नपुंसक, ( पुं० ) ॥ १६९ ॥

वृत्तान्तो भावकार्त्स्न्ये स्यादपि वाचाप्रकारयोः ।

प्रक्रियायां प्रकरणेऽप्येकान्तेऽपि कचिन्मतः ॥ १७० ॥

वेलितं कम्पिते वक्त्रे भ्रुते स्याद्वेलितं गतौ ।

वेष्टितं करणे स्त्रीणां लसके चावृते त्रिषु ॥ १७१ ॥

व्याघातस्त्वन्तराये स्याद्योगभेदप्रहारयोः ।

व्यायतं तु दृढे दीर्घे व्यापृतेऽतिशयेऽन्यवत् ॥ १७२ ॥

शकुन्तो विहगे पक्षिभेदे भासाख्यपक्षिणि ।

शुद्धान्तोन्तःपुरे कक्षान्तरे रहसि च स्मृतः ॥ १७३ ॥

राजयोषिति शुद्धान्ता श्रीपतिः नृपकृष्णयोः ।

श्रीमांस्तिलकवृक्षे स्यादीश्वरेऽपि मनोहरे ॥ १७४ ॥

सङ्घातः संहते पुंसि प्रहारे नरकान्तरे ।

सङ्गतिः सङ्गते ज्ञाने सन्नतिर्नुतिशब्दयोः ॥ १७५ ॥

वृत्तान्त—भावसंपूर्णता, वार्ता, प्रकार,  
प्रक्रिया, प्रकरण, एकान्त, ( पुं० )

॥ १७० ॥

वेलित—कँपाहुवा, टेढा, उछलाहुवा,  
( त्रि० ) गमन ( न० )

वेष्टित—स्त्रियोंका करण ( हावादि ),  
शोभित, घिराहुवा, ( त्रि० ) ॥ १७१ ॥

व्याघात—विघ्न, विष्कंभआदिकोंमें ए-  
क योग, प्रहार ( चोट ) ( पुं० )

व्यायत—दृढ, लंबा, व्यापारयुक्त, अ-  
तिशय, ( त्रि० ) ॥ १७२ ॥

शकुन्त—पक्षिमात्र, पक्षिभेद, भास-  
पक्षी ( पुं० )

शुद्धान्त—रनवास, ब्यौढी, एकान्त  
( पुं० ) ॥ १७३ ॥

शुद्धान्ता—राज्ञी, ( रानी ) ( स्त्री० )

श्रीपति—राजा, श्रीकृष्ण ( पुं० )

श्रीमान्—तिलकपुष्प-वृक्ष, ईश्वर, सुंदर,  
( पुं० ) ॥ १७४ ॥

संघात—समूह, प्रहार, नरकभेद, ( पुं० )

संगति—संग, ज्ञान, ( स्त्री० )

सन्नति—नमस्कार, शब्द, ( स्त्री० )  
॥ १७५ ॥

सन्ततिस्तनयापुत्रगोत्रविस्तारपङ्क्तिषु ।

परम्पराभावेऽपि स्यात्समाप्तिस्तु समर्थने ॥ १७६ ॥

विनाशे संमतिस्तु स्यादनुमत्यभिलाषयोः ।

समितिः सङ्गरे साम्ये सभायां सङ्गमेऽपि च ॥ १७७ ॥

संविदाजौ प्रतिज्ञायामाचारज्ञानयोः स्त्रियाम् ।

संवित्तिः प्रतिपत्तौ स्यादविवादे जनस्य च ॥ १७८ ॥

संवर्त्तः पुंसि कल्पान्ते हायने च कलिद्रुमे ।

सिकता सिकतायुक्तदेशे स्यादामयान्तरे ॥ १७९ ॥

सिकता बालकायां स्युः शर्करायामपीष्यते ।

सुकृतं तु शुभे पुण्ये क्लीबं सुविहिते त्रिषु ॥ १८० ॥

सुनीतिः शोभननये सुनीतिर्ध्रुवमातरि ।

सुव्रता सुखसन्दोहगवर्हेत्सद्गतेषु च ॥ १८१ ॥

सन्तति-पुत्री, पुत्र, गोत्र, विस्तार,  
पङ्क्ति, पारम्पर्य ( परंपरापना )  
( स्त्री० )

समाप्ति-समर्थन ॥ १७६ ॥

विनाश या अंत, ( स्त्री० )

संमति-अनुमति, अभिलाषा, ( स्त्री० )

समिति-युद्ध, समता, सभा, संगम,  
( स्त्री० ) ॥ १७७ ॥

संवित्-युद्धभूमि, प्रतिज्ञा, आचार,  
ज्ञान, ( स्त्री० )

संवित्ति-सिद्धि, जनका अविवाद,  
( स्त्री० ) ॥ १७८ ॥

संवर्त्त-कल्पका अंत ( प्रलय ), वर्ष,  
बहेडा-वृक्ष, ( पुं० )

सिकता-सिकता ( बाल् ) युक्त देश,  
रोगभेद, ॥ १७९ ॥ बाल् ( रेती ),  
( स्त्री० न० ) डली, ( स्त्री० )

सुकृत-शुभ, पुण्य, ( न० ) अच्छी-  
तरह विधानकियाहुवा, ( त्रि० )  
॥ १८० ॥

सुनीति-अच्छीनीति, ध्रुवकी मात  
( स्त्री० )

सुव्रता-जो सुखसे दोहीजाय वह गौ,  
( स्त्री० )

सुव्रत-अर्हन्तदेव, श्रेष्ठव्रत, ( पुं० )  
॥ १८१ ॥

सुरतं स्यान्निधुवने सुरत्वे सुरता मता ।  
 सुहितस्त्रिषु तृप्ते स्यादुक्ते सुष्ठुहितेऽपि च ॥ १८२ ॥  
 सूनृतं मङ्गले सत्यप्रियवाचि न वाच्यवत् ।  
 संस्कृतं लक्षणोपेते कृत्रिमे त्रिषु संस्कृतः ॥ १८३ ॥  
 भूषितेऽपि प्रशस्तेऽपि संहतं सङ्गते दृढे ।  
 स्वलितं तूचिताद्भंशे स्वलितं चलिते त्रिषु ॥ १८४ ॥  
 स्तमितं वीतचाञ्चल्येप्यार्द्राभूतेऽपि वाच्यवत् ।  
 स्थपतिः शल्यभेदे स्यादपि कञ्चुकिसूतयोः ॥ १८५ ॥  
 जीवेष्टियाजके चाऽथ स्थापितं न्यस्तनिश्चिते ।  
 सुवर्णा तु मता नद्यां सरिदौषधिभेदयोः ॥ १८६ ॥  
 हरिता मण्डलायां स्याद् हरिद्वर्णयुते त्रिषु ।  
 हरिद्वाहे च पुंस्येव हरितः ककुभि स्त्रियाम् ॥ १८७ ॥

सुरत—स्त्रीसंग, ( मैथुन ) ( न० )      स्तमित—चंचलतारहित, गीलाहुवा,  
 सुरता—सुरभाव ( देवपना ) ( स्त्री० )      ( त्रि० )  
 सुहित—तृप्तहुवा, ( त्रि० ) कहाहुवा,      स्थपति—शल्यभेद, चोल ( अंगरखा )  
 अच्छा हित, ( न० ) ॥ १८२ ॥      धारण किये, सारथि, ॥ १८५ ॥  
 सूनृत—मंगल, सत्य और प्रिय वचन      जीवेष्टि यजनकरनेवाला, ( पुं० )  
 ( न० )      स्थापित—स्थापन कियाहुवा, निश्चित  
 कियाहुवा, ( त्रि० )  
 संस्कृत—लक्षणसे युक्त, कृत्रिम ( न-      सुवर्णा—नदी, नदीभेद, औषधिभेद,  
 कली ) ॥ १८३ ॥      ( स्त्री० ) ॥ १८६ ॥  
 भूषित, प्रशस्त ( श्रेष्ठ ) ( त्रि० )      हरिता—दूर्वा, ( स्त्री० ) हरितवर्ण-  
 युक्त, ( त्रि० )  
 संहत—संगत, दृढ, ( त्रि० )      हरित—अश्व, ( पुं० ) हरित्—दिशा,  
 स्वलित—उचितसे गिरना, ( न० )      ( स्त्री० ) ॥ १८७ ॥  
 चलित ( त्रि० ) ॥ १८४ ॥      हरित्—तृण, ( न० )

क्रीवं तृणप्रभेदेऽथ हर्मितं क्षिप्तदग्धयोः ।

हसन्त्याङ्गारधान्यां स्यान्मल्लिकाशकिनीभिदोः ॥ १८८ ॥

हारीतः कैतवेऽपि स्यान्मुनिपक्षिप्रभेदयोः ।

हृषितं विस्मृते प्रीते नते रोमाञ्चिते हृते ॥ १८९ ॥

क्षारितं स्राविते क्षारेऽभिश्शस्तेऽपि च वाच्यवत् ।

तचतुर्थम् ।

अङ्गारितं तु दग्धे स्यात्पलाशकलिकोद्गमे ॥ १९० ॥

अतिमुक्तस्तु वासन्त्यां तिनिशे निष्कले त्रिषु ।

अत्याहितं तु जीवनापेक्षकृत्ये महाभये ॥ १९१ ॥

अधिक्षिप्तः पराभूते त्रिषु प्रणिहितेऽपि च ।

स्यात्पुरातनवस्त्रेऽपि नववस्त्रेऽप्यनाहतम् ॥ १९२ ॥

अनुमतिस्त्वपूर्णे तु पूर्णिमानुज्ञयोः स्त्रियाम् ।

मतमन्तर्गतं मध्ये त्रिषु प्राप्ते च विस्मृते ॥ १९३ ॥

हर्मित-क्षिप्त (फेंकाहुवा), दग्ध, (त्रि०)  
हसन्ती-अंगीठी, मल्लिका (मोतिया)  
भेद), शाकिनी-भेद, (स्त्री०)  
॥ १८८ ॥

हारीत-कपट, मुनिभेद, पक्षिभेद,  
(पुं०)

हृषित-भूलाहुवा, प्रसन्नहुवा, नम्र-  
हुवा, रोमांचितहुवा, हङ्गाहुवा,  
(त्रि०) ॥ १८९ ॥

क्षारित-झिराहुवा, क्षार, श्रेष्ठ, (त्रि०)

तचतुर्थम् ।

अङ्गारित-दग्ध, टेसूकी कलीका उ-  
त्पन्न होना, (न०) ॥ १९० ॥

अतिमुक्त-जर्हालता या वासन्ती,  
तिरिच्छ वृक्ष, संगरहित, (त्रि०)  
अत्याहित-जीनेकी इच्छासे कर्म,  
महाभय, (न०) ॥ १९१ ॥

अधिक्षिप्त-तिरस्कार कियाहुवा,  
स्थापन कियाहुवा, (त्री०)

अनाहत-पुराना वस्त्र, नवीन वस्त्र,  
(न०) ॥ १९२ ॥

अनुमति-अपूर्ण, (त्रि०) कलाहीन  
चंद्रमावाली पूर्णिमा, संमति, (सला-  
हमें सलाह मिलाना) (स्त्री०) ॥

अन्तर्गत-मध्य प्राप्तहुवा, विस्मृत  
(भूला) हुवा, (त्रि०) ॥ १९३ ॥

भवेदपचितो न्यूने पूजितेऽप्यभिधेयवत् ।  
 स्त्रियामपचितिः पूजानिष्कृतिक्षयहानिषु ॥ १९४ ॥  
 अपावृतस्तु पिहिते स्वतन्त्रे स्यादपावृतः ।  
 अभिजातस्त्रिषु न्याय्ये कुलीनप्राप्तरूपयोः ॥ १९५ ॥  
 अभियुक्तस्त्रिषु द्वेषिसंरुद्धेऽप्यतितत्परे ।  
 अभिनीतो भवेन्न्याय्यसंस्कृतमर्षिषु त्रिषु ॥ १९६ ॥  
 अभिशस्तिस्तु लोकापवादेयाच्चाभिशापयोः ।  
 उदितेऽभ्युदितो यस्मिन्सुप्तेऽर्कः समुदेति च ॥ १९७ ॥  
 पुमानर्थपतिर्भूषे ईश्वरे किन्नरे त्रिषु ।  
 ज्ञाते मूढोऽप्यवसितं क्लीबं गत्यवसानयोः ॥ १९८ ॥  
 क्लीबमाच्छुरितं हास्ये शब्दान्वितनखार्पणे ।  
 आयुष्मान् योगभेदे ना चिरजीविनि वाच्यवत् ॥ १९९ ॥

अपचित—घटा हुआ वस्तु, पूजित, ( पु० )	अभिशास्ति—लोकापवाद, याचना, झूठा कलंक, ( स्त्री० )
अपचिति—पूजा, बदला, नाश, हानि, ( स्त्री० ) ॥ १९४ ॥	अभ्युदित—उदयहुवा, जिसके सोते- हुए सूर्य उदय होजाय वह मनुष्य, ( पुं० ) ॥ १९७ ॥
अपावृत—ढकाहुवा, स्वतंत्र ( वै अ- ख्तयार ) ( त्रि० )	अर्थपति—राजा, ईश्वर, किन्नर, ( पुं० )
अभिजात—न्याय्य ( योग्य ), कुलीन, रूपवान्, ( त्रि० ) ॥ १९५ ॥	अवसित—जानाहुवा, मोहितहुवा, ( त्रि० ) गमन, अंत, ( न० ) ॥ १९८ ॥
अभियुक्त—शात्रुसे रुकाहुवा, अतित- त्पर, ( पुं० )	आच्छुरित—हँसना, शब्दसेयुक्त नख डालना ( खाना करना ) ( न० )
अभिनीत—न्याय्य ( योग्य ), संस्कार कियाहुवा, क्रोधयुक्त, ( त्रि० ) ॥ १९६ ॥	आयुष्मान्—विष्कम्भ आदिकोंमेंसे एक योग, ( पुं० ) बहुतकाल जी- नेवाला ( त्रि० ) ॥ १९९ ॥

उज्जृम्भितं तु चेष्टायामुत्फुल्ले त्वभिधेयवत् ।

उदास्थितश्चरेध्यक्षे प्रणिधौ द्वारपालके ॥ २०० ॥

उद्गाहितमुपन्यस्ते बद्धप्राहितयोरपि ।

उपाकृतो यज्ञहते पशवुपहते त्रिषु ॥ २०१ ॥

भवेदुपचितं दिग्धे समृद्धे च समाहिते ।

उपाहितोऽनलोत्पाते पुमानारोपिते त्रिषु ॥ २०२ ॥

राहौ सोपप्लवे चोपरक्तः स्याद्वचसनान्तरे ।

उपसत्तिस्तु सेवायां सङ्गेऽपि प्रतिपादने ॥ २०३ ॥

मतमुल्लिखितं तु स्यान्निष्कृतीर्णे तनूकृते ।

ऋष्यप्रोक्ता शतावर्यां शूकशिन्व्यां बलामिदि ॥ २०४ ॥

ऐरावतोऽभ्रमातङ्गे नारङ्गे लकुचद्रुमे ।

ऐरावतं मतं दीर्घसरलेन्द्रशरासने ॥ २०५ ॥

उज्जृम्भित-चेष्टा, ( न० ) फूलाहुवा,  
( त्रि० )

उदास्थित-चर (चंचल), अध्यक्ष, गु-  
मबाट कहनेवाला, द्वारपाल (पुं०)  
॥ २०० ॥

उद्गाहित-उपन्यास कियाहुवा, बँधा-  
हुवा, ग्रहण करायाहुवा (त्रि०)

उपाकृत-यज्ञमें बध कियाहुवा पशु,  
माराहुवा ( त्रि० ) ॥ २०१ ॥

उपचित-लिपाहुवा, समृद्ध ( बड़ा-  
हुवा), समाधान कियाहुवा, ( त्री० )

उपाहित-अग्निसे उत्पात, ( पुं० )  
आरोपण कियाहुवा, ( त्रि० ) २०२

उपरक्त-राहुसे, उपद्रव (ग्रहण) युक्त  
चंद्रसूर्य, दुःखभेद, ( पुं० )

उपसत्ति-सेवा, सङ्ग, प्रतिपादन,  
( स्त्री० ) ॥ २०३ ॥

उल्लिखित-खोदाहुवा, सूक्ष्म किया-  
हुवा, ( त्रि० )

ऋष्यप्रोक्ता-शतावरी, कौंच, बला  
( खरँहटी ) भेद, ( स्त्री० ) २०४

ऐरावत-इंद्र हस्ती, नारंगी, बडहर-  
वृक्ष, ( पुं० )

ऐरावत-दीर्घ लंबा और सीधा इं-  
द्रका धनुष ( न० ) ॥ २०५ ॥



लियामैरावती सौदामनीसौदामनीभिदोः ।

अंशुमान्मास्करे शालपर्ण्यामंशुमती लियाम् ॥ २०६ ॥

कलधौतं कलारावे क्लीवं कनकरूप्ययोः ।

कुमुद्वती कुमुदिन्यां कुशपत्न्यां कुमुद्वती ॥ २०७ ॥

कुमुद्वान्कुमुदप्रायदेशे स्यादभिधेयवत् ।

क्लीवं कुहरितं ध्वाने पिकालापे रतस्वने ॥ २०८ ॥

कृष्णवृन्ता पाटलायां माषपर्ण्यामपि स्मृता ॥ २०९ ॥

मता गन्धवती मद्ये मेदिन्यां च पुरीभिदि ।

अपि योजनगन्धायां गरुत्मांस्तार्क्ष्यपक्षिणोः ॥ २१० ॥

गृहस्थसत्रिणोरर्थाऽऽधाने गृहपतिः पुमान् ।

चक्राहुतिर्द्विबाहुभ्रमे पूर्णाहुतावपि ॥ २११ ॥

चन्द्रकान्तो मणेरभेदे चन्द्रकान्तं तु कैरवे ।

चर्मण्वती नदीभेदे कदलीचारवृक्षयोः ॥ २१२ ॥

ऐरावती—विजली, ( स्त्री० )	विजलीभेद, गन्धवती—मदिरा, पृथ्वी, वरुणकी नगरी, व्यासकी माता, ( स्त्री० )
अंशुमान्—सूर्य, ( पुं० ) अंशुमती— शालपर्णी ( स्त्री० ) ॥ २०६ ॥	गरुत्मान्—गरुड, पक्षिमात्र, ( पुं० ) ॥ २१० ॥
कलधौत—सूक्ष्मशब्द, सुवर्ण, चाँदी, ( न० )	गृहपति—गृहस्थ, यज्ञ, द्रव्यका रचना, ( पुं० )
कुमुद्वती—कमोदनी, औषधिभेद, या कुशराजाकी स्त्री, ( स्त्री० ) २०७	चक्राहुति—लंबी भुजाकरके भ्रमणा, पूर्णाहुति ( स्त्री० ) ॥ २११ ॥
कुमुद्वान्—बहुतकमोदनीवाला स्थल, ( त्रि० )	चन्द्रकान्त—मणिभेद, ( पुं० )
कुहरित—शब्द, कोयलका बोलना, मैथुनसमयका शब्द, ( न० ) २०८	चन्द्रकान्त—कैरव, ( कमल ) ( न० )
कृष्णवृन्ता—पाटल, माषपर्णी-औ- षधि, ( स्त्री० ) ॥ २०९ ॥	चर्मण्वती—नदीभेद, केलावृक्ष, चा- रुवृक्ष, ( चरोंजी ) ( स्त्री० ) ॥ २१२ ॥

आषाढपर्वतस्यान्तः कारुती नाम निम्नगा ।  
 तस्यां मासोपवासिन्यामपि चारुव्रता स्मृता ॥ २१३ ॥  
 चित्रगुप्तो मतो दण्डधारे तस्य च लेखके ।  
 दिवाकीर्तिस्तु चाण्डाले नापिते काकवैरिणि ॥ २१४ ॥  
 दिवाभीत उल्लके स्यात्कुत्सिते कुमुदाकरे ।  
 द्वीपवानब्धिनदयोर्द्वीपवत्यापगाभुवोः ॥ २१५ ॥  
 धूमकेतुर्बृहद्भानावुत्पातग्रहभेदयोः ।  
 नदीकान्तो जलनिधौ सिन्धुवारेऽपि हिज्जले ॥ २१६ ॥  
 नदीकान्ता लताजम्बूकाकजङ्घासु विश्रुता ।  
 नन्द्यावर्त्तः पुमान्वेश्मप्रभेदे तगरद्रुमे ॥ २१७ ॥  
 नागदन्तो गजरदे गृहान्निर्गतदारुणि ।  
 नागदन्ती तु कुम्भायां श्रीहस्तिन्यां च दृश्यते ॥ २१८ ॥

- |   |   |
|---|---|
| <p> <b>चारुव्रता</b>—आषाढ पर्वतके भीतर कारुती नाम जो नदी है वहां एक-मासका व्रत करनेवाली स्त्री, (स्त्री०) ॥ २१३ ॥<br/> <b>चित्रगुप्त</b>—धर्मराज, धर्मराजका लेखक, (पुं०)<br/> <b>दिवाकीर्ति</b>—वांडाल, नाई, काकवैरी (स्त्री०) ॥ २१४ ॥<br/> <b>दिवाभीत</b>—उल्लू-पक्षी, कुत्सित (निन्दित), तालाब, (पुं०)<br/> <b>द्वीपवान्</b>(वत्)—समुद्र, नद, (पुं०)<br/> <b>द्वीपवती</b>—नदी, पृथ्वी, (स्त्री०) ॥ २१५ ॥         </p> | <p> <b>धूमकेतु</b>—अग्नि, उत्पात, ग्रहभेद, (पुं०)<br/> <b>नदीकान्त</b>—समुद्र, सिन्हाल-वृक्ष, जलबेत (पुं०) ॥ २१६ ॥<br/> <b>नदीकान्ता</b>—माधवीलता या श्यामालता, जामुन, काकजंघा या धुं-धुची, (स्त्री०)<br/> <b>नन्द्यावर्त्त</b>—मकानभेद, तगर-वृक्ष, (पुं०) ॥ २१७ ॥<br/> <b>नागदन्त</b>—हाथीदाँत, घरसे बाहिर निकला हुआ काष्ठ, (पुं०)<br/> <b>नागदन्ती</b>—जलकुंभी, हाथीसूँडा, (स्त्री०) ॥ २१८ ॥         </p> |
|---|---|

अस्वाध्याये प्रतिक्षेपे निराकारे निराकृतिः ।

त्रिषु निस्तुषितं त्यक्ते त्वचाशून्ये लघूकृते ॥ २१९ ॥

निष्काशितो निर्गमिते धिक्कतेप्युज्झिते त्रिषु ।

पञ्चगुप्तस्तु चार्वाकदर्शने कमठेऽपि च ॥ २२० ॥

गताप्तचेष्टिते ज्ञाते लाभे परिगतं मतम् ।

परिघातः समाघाताऽऽयुधयोरथ हायने ॥ २२१ ॥

परिवर्त्तो विनिमये कूर्मराजे पलायने ।

दन्ते सप्रसवे लाक्षारक्ते पल्लवितं त्रिषु ॥ २२२ ॥

पारावतः कलरवे शैले मर्कटतिन्दुके ।

पारावती तु गोपालगीतेऽपि लवलीफले ॥ २२३ ॥

पारिजातः पारिभद्रे मन्दारेऽपि च पादपे ।

पाशुपतः पशुपतिदैवते बकपुष्पके ॥ २२४ ॥

निराकृति—पाठका नहीं पठना, व-  
र्जना, निकालना ( स्त्री० ) ( पुं० )

निस्तुषित—त्यागाहुवा, त्वचाशून्य, पल्लवित—दियाहुवा, उत्पत्तिवाला,  
छोटा कियाहुवा, ( त्रि० ) ॥ २१९ ॥ लाखसे रंगाहुवा, ( त्रि० ) ॥ २२२ ॥

निष्काशित—निकालाहुवा, धिक्कार पारावत—कवृत्तर, पर्वत, मकरतं-  
कियाहुवा, त्यागाहुवा, ( त्रि० ) दुवा, ( पुं० )

पञ्चगुप्त—चार्वाकोंका शास्त्र, कमठ पारावती—गोपालका गीत, हरपारेव-  
( कछुवा ) ( पुं० ) ॥ २२० ॥ डीका फल, ( स्त्री० ) ॥ २२३ ॥

परिगत—गयाहुवा के प्राप्त होनेसे पारिजात—नींब-वृक्ष, आक-वृक्ष,  
चेष्टित, जानाहुवा, लाभ, ( त्रि० ) कल्प-वृक्ष, ( पुं० )

परिघात—बहुत आघात ( चोट ), ह- पाशुपत—महादेव देवता है जिसका  
थियार, वर्ष, ( पुं० ) ॥ २२१ ॥ वह, अगस्तका पुष्प, ( पुं० ) २२४

पुरस्कृतं भवेदमकृताभ्यर्चितयोस्त्रिषु ।

शस्ते शिक्ते रिपुग्रस्ते स्वीकृतेऽपि त्रिषु स्मृतम् ॥ २२५ ॥

पुष्पदन्तस्तु दिग्भागनागविद्याधरान्तरे ।

प्रजापतिः क्षितिपतौ विरिच्ये च प्रजापतिः ॥ २२६ ॥

त्रिषु प्रणिहितं ख्यातं न्यस्ते लब्धे समाहिते ।

भवेत्प्रतिहतो द्विष्टे प्रतिस्वलितरुद्धयोः ॥ २२७ ॥

प्रतिपञ्चेतनायां स्यात्प्रतिपत्तावपि स्मृता ।

प्रतिपत्तिः पदप्राप्तिः प्रतिप्राप्तिश्च गौरवे ॥ २२८ ॥

प्रतिपत्तिः प्रबोधेऽपि संवित्प्रागल्भयोरपि ।

प्रतिकृतिः प्रतीकारे प्रतिबिम्बे च पूजने ॥ २२९ ॥

प्रतिक्षिप्तं प्रतिहते प्रेषिते च निराकृते ।

प्रधूपितस्त्रिषु क्लिष्टे सूर्यगम्यदिशि स्त्रियाम् ॥ २३० ॥

पुरस्कृत—आगेकियाहुवा, पूजाकिया हुवा, ( त्रि० ) श्रेष्ठ, सींचाहुवा, प्रतिपत्—बुद्धि, प्रतिपत्ति ( प्रगल्भ-  
ताआदि ) ( स्त्री० )

शत्रुका प्रसाहुवा, अंगीकारकियाहुवा, प्रतिपत्ति—पदप्राप्ति, प्रतिप्राप्ति, गौ-  
( त्रि० ) ॥ २२५ ॥ रव ( बडप्पन ) ( स्त्री० ) ॥ २२८ ॥

पुष्पदन्त—दिग्हस्ती, एक नाग, एक प्रतिपत्ति—ज्ञान, बुद्धि, प्रगल्भता ( निः  
विद्याधर, ( पुं० ) शंकपना ) ( स्त्री० )

प्रजापति—राजा, ब्रह्मा, ( पुं० ) प्रतिपत्ति—दूरकरना या इलाज, मूर्त्ति,  
॥ २२६ ॥ पूजन, ( स्त्री० ) ॥ २२९ ॥

प्रणिहित—स्थापनकियाहुवा, प्राप्त-  
हुवा, सावधानहुवा, ( त्रि० ) प्रतिपत्ति—रोकाहुवाआदि, प्रेराहुवा  
( भेजाहुवा ), निकालाहुवा, ( त्रि० )

प्रतिहत—द्वेषकियाहुवा, आखलाहुवा, प्रधूपित—क्लेशदियाहुवा, ( त्रि० ) सू-  
रकाहुवा, ( त्रि० ) ॥ २२७ ॥ यकेजानेवाली दिशा, ( स्त्री० )  
॥ २३० ॥

प्रव्रजिता तु मुण्डीरीमांस्योस्त्रिषु तपस्विनि ।  
 भगवान्सुगते पूज्ये त्रिषु गौर्यां तु योषिति ॥ २३१ ॥  
 भोगवान्नाट्यगानयोर्भोगवानहिभोगिनोः ।  
 मता भोगवती नागपुरि नागसरित्यपि ॥ २३२ ॥  
 रङ्गमाता तु लाक्षायां कुट्टिन्यामपि दृश्यते ।  
 लक्ष्मीपतिर्नृपे विष्णौ पूगीफललवङ्गयोः ॥ २३३ ॥  
 वनस्पतिर्विना पुष्पं फलिवृक्षेऽपि पादपे ।  
 विजृम्भितं विकसितेऽप्युद्गते वेष्टिते त्रिषु ॥ २३४ ॥  
 विनिपातस्तु दैवादिद्वयसने पतनेऽपि च ।  
 विवस्त्रांस्तु पुमान्वासरेश्वरे त्रिदिवेश्वरे ॥ २३५ ॥  
 विवक्षितं वक्तुमिष्टे शोभनेऽपि विवक्षितम् ।  
 वैजयन्तो ध्वजे शक्रप्रासादे शरजन्मनि ॥ २३६ ॥

प्रव्रजिता—गोरखमुण्डो, जटामांसी, वनस्पति—पुष्पोंके विना फलनेवाला  
 ( स्त्री० ) तपस्वी ( पुं० ) वृक्ष, वृक्षमात्र, ( पुं० )  
 भगवा ( नृ ) त्—बुद्धदेव, ( पुं० ) विजृम्भित—गिलाहुवा, उछलाहुवा,  
 पूज्य ( त्रि० ) लपेटाहुवा, ( त्रि० ) ॥ २३४ ॥  
 भगवती—गौरी, ( स्त्री० ) ॥ २३१ ॥ विनिपात—दैवआदिसे दुःख, पड़ना,  
 भोगवान्—नाट्य, गाना, सर्प, ( पुं० )  
 भोगी पुरुष ( पुं० ) विवस्त्रान्—मूर्ख, इन्द्र, ( पुं० ) ॥ २३५ ॥  
 भोगवती—नागपुरी, नागनदी, ( स्त्री० ) विवक्षित—कहनेको इच्छित, सुंदर,  
 ॥ २३२ ॥ ( त्रि० )  
 रंगमाता—लाख, कुट्टिनी, ( स्त्री० ) वैजयन्त—ध्वजा, इंद्रका महल, स्वा-  
 लौंग, ( पुं० ) ॥ २३३ ॥ सिक्कार्तिक, ( पुं० ) ॥ २३६ ॥

वैजयन्ती पताकायां जयन्ती वह्निमन्थयोः ।  
 व्यतीपातो योगभेदे महोत्पातेऽपमानने ॥ २३७ ॥  
 मत्तः शतधृतिः पाकशासने कमलासने ।  
 शुभ्रदन्ती मरुदन्ती दन्तिनीसुंदरस्त्रियोः ॥ २३८ ॥  
 संख्यावान्पण्डिते पुंमि त्रिषु सङ्ख्यायुते मृते ।  
 सदागतिर्गन्धवाहे निर्वाणेऽपि सदीश्वरे ॥ २३९ ॥  
 समुद्रान्ता त्वनन्तायां कार्पासीपृक्कयोरपि ।  
 समुद्धतः समुत्कीर्णेऽप्यविनीते समुद्धतः ॥ २४० ॥  
 समाघातो वधे युद्धे समाधिस्थे समाहितः ।  
 त्रिषु न्यस्तप्रतिज्ञातसंसिद्धे यम आत्मनि ॥ २४१ ॥  
 समाहितं समाधाने व्यसनेऽपि समाहितम् ।  
 सरस्वात्रसिके सिन्धौ नदेऽप्यथ सरस्वती ॥ २४२ ॥

वैजयन्ती-इंद्रके महलका पताका, समुद्रान्ता-जर्वोसा, कपास-वृक्ष,  
 जैनपुष्पवृक्ष, अरुणो-वृक्ष (स्त्री०) शाकविजेष ( असवरग ) (स्त्री०)  
 व्यतीपात-विक्रमआदियोगोंसे ए- समुद्धत-पिछोड़ाहुवा, उद्धत ( अ-  
 कयोग, महाउत्पात, अपमान(पुं०) नाडी ) पुरुष, ( पुं० ) ॥२४०॥  
 ॥ २३७ ॥ समाघात-मारना, युद्ध, (पुं०)  
 शतधृति-इंद्र, ब्रह्मा, ( पुं० ) समाहित-समाधिमें स्थित, स्थापन-  
 शुभ्रदन्ती-वायव्यकोणके हस्तीकी कियाहुवा, प्रतिज्ञाकियाहुवा, अ-  
 हस्तिनी, सुंदर दाँतोवाली स्त्री, च्छेप्रकारसे सिद्ध, धर्मराज, आत्मा,  
 ( स्त्री० ) ॥ २३८ ॥ ( त्रि० ) २४१  
 संख्यावान्(वत्)-पंडित, ( पुं० ) समाहित-समाधान, स्थापनकरनां,  
 संख्यावाला, मृतक, (त्रि०) (न०)  
 सदागति-वायु, मुनि या अभि, श्रेष्ठ, सरस्वान्(वत्)-रसिक, समुद्र, नद,  
 ईश्वर, ( पुं० ) ॥ २३९ ॥ ( पुं० )  
 सरस्वती-॥ २४२ ॥

नदीभेदे नदीदिव्यस्त्रीगोवाग्देवतागिरि ।

सुधासूतिः पुमान्यज्ञे कुरङ्गतिलकेऽपि च ॥ २४३ ॥

सूर्यभक्तो मतो बन्धुजीवे भास्करदैवते ।

सेनापतिरनीकाधिकृते हैमवतीसुते ॥ २४४ ॥

हिमारातिः खले सूर्येऽनले हैमवती तु या ।

गौर्या हरीतकीस्वर्णक्षीरीश्वेतवचासु सा ॥ २४५ ॥

तपंचमम् ।

स्यादध्यवसितं ज्ञाते गते कुद्रेऽपि वेष्टिते ।

पुंसि श्रीकण्ठवैकुण्ठयज्ञभेदेऽपराजितः ॥ २४६ ॥

जयन्ती पार्वतीविष्णुकान्तासु त्वपराजिता ।

वाच्यलिङ्गः पिपतिषन्पतनेच्छौ खगे पुमान् ॥ २४७ ॥

दृष्टेऽवलोकितं ख्यातं लोकनाथेऽवलोकितः ।

उपधूपित आसन्नमरणे परिधूपिते ॥ २४८ ॥

सरस्वती नाम नदी, दिव्यस्त्री, गौ,

वाणीकी अधिष्ठात्री देवता, वाणी  
( स्त्री० )

सुधासूति—यज्ञ, मृगका तिलक, (पुं०)  
॥ २४३ ॥

सूर्यभक्त—दुपहरियाका-झाड़, सूर्यका  
उपासक, ( पुं० )

सेनापति—सेनाका स्वामी, स्वामिका-  
लिक, (पुं०) ॥ २४४ ॥

हिमाराति—खल ( खोटा ), सूर्य,  
अग्नि, ( पुं० )

हैमवती—पार्वती, हरइ, एकप्रकारकी  
कटेहली, सफेद वच ( स्त्री० )

॥ २४५ ॥

तपंचम ।

अध्यवसित—जानाहुवा, गयाहुवा,  
कुदहुवा, लपेटाहुवा ( त्रि० )

अपराजित—महादेव, विष्णु, यज्ञ-  
भेद, ( पुं० ) ॥ २४६ ॥

अपराजिता—देवीभेद, पार्वती,  
कोयल या विष्णुकान्ता, ( स्त्री० )

पिपतिष(त्)न्—पड़नेकी इच्छावा-  
ला, ( त्रि० ) पक्षी, (पुं०) ॥ २४७ ॥

अवलोकित—देखाहुवा, ( त्रि० )  
लोकनाथ ( स्वामी ) ( पुं० )

उपधूपित—नजदीकमृत्युवाला, धूप-  
दियाहुवा ( पुं० ) ॥ २४८ ॥

गणाधिपतिरित्येष पिनाकिनि विनायके ।  
 श्वेतायामप्यसौ वाच्यलिङ्गस्तु स्यादनिर्जिते ॥ २४९ ॥  
 सर्वमुक्तेऽभिनिर्मुक्तः सुप्ते यत्रास्तगो रविः ।  
 पृथिवीपतिरित्युक्तो भूपाले ऋषभौषधे ॥ २५० ॥  
 मूर्धाभिषिक्तः क्षमापाले मन्त्रिणि क्षत्रियेऽपि च ।  
 यादसांपतिरम्भोधौ वरुणे यादसांपतिः ॥ २५१ ॥  
 वसन्तदूतश्चूतेऽसौ पिकपञ्चमरागयोः ।  
 वसन्तदूतीशब्दस्तु पाटलावतिमुक्तके ॥ २५२ ॥

तषष्ठम् ।

अर्द्धपारावतश्चित्रकण्ठे च तित्तिरावपि ।  
 समुद्रनवनीतं स्यादमृतं च सुधानिधौ ॥ २५३ ॥

इति विश्वलोचने तान्तवर्गः ॥

गणाधिपति—महादेव, गणेश, कटे-  
 हली ( पुं० ) नहीं जीताहुवा,  
 ( त्रि० ) ॥ २४९ ॥  
 अभिनिर्मुक्त—सर्वसे छुटा, जिसके  
 सूतेहुए सूर्य अस्त होजाय वह,  
 ( पुं० )  
 पृथिवीपति—राजा, ऋषभनाम औ-  
 षधि, ( पुं० ) ॥ २५० ॥  
 मूर्धाभिषिक्त—राजा, मंत्री, क्षत्रिय,  
 ( पुं० )  
 यादसांपति—समुद्र, वरुण, ( पुं० )  
 ॥ २५१ ॥  
 वसन्तदूत—आम्र, कोयल, पंचम-  
 राग, ( पुं० )  
 वसन्तदूती—पाटलपुष्प, माधवी-पु-  
 प्लता, ( स्त्री० ) ॥ २५२ ॥  
 तषष्ठ ।  
 अर्द्धपारावत—चित्रकण्ठ ( आधा क-  
 बूतरके समान-पक्षी ) तीतर-पक्षी-  
 समुद्रनवनीत—अमृत, चंद्रमा,  
 ( न० ) ॥ २५३ ॥  
 इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें  
 तान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥



## अथ थान्तवर्गः ।

थैकम् ।

थः स्याच्छिलोच्चये भीतत्राणे थं मङ्गलेऽपि थम् ।

थद्वितीयम् ।

अर्थः प्रयोजने चित्ते हेत्वभिप्रायवस्तुषु ॥ १ ॥

शब्दाभिधेये विषये स्यान्नित्यवृत्तिप्रकारयोः ॥ २ ॥

आस्था त्वालम्बनापेक्षायत्नास्थानेषु दृश्यते ।

कन्था तु मृत्तिकाभित्तौ कन्था प्रावरणान्तरे ॥ ३ ॥

कुथः स्त्रीपुंसयोर्वर्णकम्बले पुंसि वहिषु ।

कोथस्तु नेत्ररुग्भेदे मथने शटितेऽपि च ॥ ४ ॥

क्वाथः स्याद्व्यसने पुंसि द्रवनिष्पाकदुःखयोः ।

गाथा वृत्तेऽपि वाग्भेदे ग्रन्थस्तु धनशास्त्रयोः ॥ ५ ॥

ग्रन्थः स्याद्ग्रन्थनायां च द्वात्रिंशद्वर्णनिर्मितौ ।

ग्रन्थिर्ना पर्वणि ग्रन्थिपर्णेऽरुग्भिदि च स्त्रियाम् ॥ ६ ॥

## अथ थान्तवर्गः ।

थैक ।

थ-पर्वत (पुं०) भयसे रक्षा, मंगल,  
( न० )

थद्वितीय ।

अर्थ-प्रयोजन (मतलब), चित्त, कारण,  
अभिप्राय, वस्तु, ॥ १ ॥ शब्दोका  
अर्थ, विषय, निवृत्ति, प्रकार (पुं०)  
॥ २ ॥आस्था-आलम्बन (आश्रय), अ-  
पेक्षा, यत्न, स्थान, ( स्त्री० )कन्था-मृत्तिकाकी भीत, ओढनेका  
वस्त्र ( स्त्री० ) ॥ ३ ॥कुथ-वर्ण (रंग), कम्बल (स्त्री०पुं०)  
मयूर (पुं०)कोथ-नेत्ररोगका भेद, मथना, दुःख  
(पुं०) ॥ ४ ॥क्वाथ-व्यसन, पतली निष्पाव, दुःख,  
(पुं०)

गाथा-छन्द-भेद, वाणीभेद, ( स्त्री० )

ग्रन्थ-धन, शास्त्र, ॥ ५ ॥ ग्रंथना  
(गूँथना), वस्तीस ३२ वर्णोंकी  
रचना, (पुं०)ग्रन्थि-पोरी, (पुं०) गठिवन-वृक्ष,  
रोगभेद, ( स्त्री० ) ॥ ६ ॥

कौटिल्ये बन्धभेदे च तीर्थं शास्त्रावतारयोः ।  
 पुण्यक्षेत्रमहापात्रोपायोपाध्यायदर्शने ॥ ७ ॥  
 ऋषिजुष्टे जले यज्ञे जातौ च वनितार्चवे ।  
 नीलीसूक्ष्मैल्योस्तु तथा तुत्थोमौ तुत्थमञ्जने ॥ ८ ॥  
 दुःस्थस्तु दुर्गते मूर्खे पार्थः स्यात्ककुभेऽर्जुने ।  
 पाथो दिवाकरे पुंसि पाथः पयसि न द्वयोः ॥ ९ ॥  
 पृथुर्नृपे कृष्णजीरे वाप्यां स्त्री महति त्रिषु ।  
 सानौ मानेऽस्त्रियां प्रस्थः स्यादप्युन्मितवस्तुनि ॥ १० ॥  
 प्रोथः पान्थेऽश्वघोणायामस्त्री ना कटिगर्भयोः ।  
 वीथी गृहतटीपङ्क्तौ नात्ररूपकवर्त्मनोः ॥ ११ ॥  
 मन्थो मन्थानदण्डे स्याद्वादशात्मनि साक्तवे ।  
 मन्थो नयनरोगेऽपि यूथं तिर्यक्ये चये ॥ १२ ॥

<p>तीर्थ-कुटिलता, बन्धभेद, शास्त्र, अवतार, पुण्यक्षेत्र, बडा पात्र, उपाय, पठानेवाला, दर्शन, ॥ ७ ॥          कृपियोंका सेवित जल, यज्ञ, जाति, स्त्रीका रज, ( न० )          तुत्था-नीली-औपधि, छोटी इलायची, ( स्त्री० ) तुत्थ-अग्नि ( पुं० )          तुत्थ-अंजन ( न० ) ॥ ८ ॥          दुःस्थ-दुःखसे गयाहुवा, मूर्ख, ( पुं० )          पार्थ-कोह-वृक्ष, अर्जुन-पांडुपुत्र, ( पुं० )          पाथ-सूर्य, ( पुं० ) पाथस्-जल, ( न० ) ॥ ९ ॥          पृथु-पृथु-राजा, कालाजीरा, ( पुं० ) बाबडी ( स्त्री० ) महान् ( बडा ) ( त्रि० )</p>	<p>प्रस्थ-पर्वतकी समभूमि, ६४ तोला प्रमाण, ( पुं० न० ) उन्मान करीहुई वस्तु ( त्रि० ) ॥ १० ॥          प्रोथ-बटाऊ ( पुं० ) अश्वकी नासिका, ( पुं० न० ) कटि, गर्भ, ( पुं० )          वीथी-घरका अंग, पंक्ति, नाट्यकारूपक, मार्ग, ( स्त्री० ) ॥ ११ ॥          मन्थ-दधिआदि मथनका दंड ( रई ), सूर्य, सक्त विकार या समूह, नेत्ररोग, ( पुं० )          यूथ-सजातीय तिर्यक् जातियोंका समूह, समूहमात्र ( पुं० न० ) ॥ १२ ॥</p>
--	---

अस्त्री यूथी तु मागध्यां पुष्पभेदे कुरण्टके ।

रथस्तु स्यन्दने काये वेतसे चरणेऽपि च ॥ १३ ॥

सार्थः स्याद्वणिजां वृन्दे वृन्दमात्रेऽपि दृश्यते ।

सिक्थं नील्यां मधूच्छिष्टे सिक्थो नौदनसम्भवे ॥ १४ ॥

संस्था नाशे व्यवस्थायां व्यक्तिसादृश्ययोः स्थितौ ।

संस्था क्रतौ समाप्तौ च चरे च निजराष्ट्रगे ॥ १५ ॥

थतृतीयम् ।

अतिथिः स्यात्प्राघुणके कोपेपि कुशपुत्रके ।

त्रिष्वव्यथो व्यथाहीने पथ्यायां पन्नगेऽव्यथः ॥ १६ ॥

अश्वत्थः पूर्णिमायां च गर्दभाण्डे च पिप्पले ।

उद्रथस्ताम्रचूडेऽपि महेन्द्रे महकामुके ॥ १७ ॥

उन्माथः कूटयन्त्रे स्यादपि मारणघातयोः ।

उपस्थस्तु भगे लिङ्गेऽप्युत्सङ्गेऽपि गुदे पुमान् ॥ १८ ॥

यूथी—पीपल, जूही-पुष्पवृक्ष, पीली-  
कटसरेया ( स्त्री० )

रथ—रथ, शरीर, वेतस-वृक्ष, पांवं  
( पुं० ) ॥ १३ ॥

सार्थ—वणिकोंका समूह, समूहमात्र,  
( पुं० )

सिक्थ—लीलका पेड, मोंम, ( न० )  
॥ १४ ॥

संस्था—नाश, व्यवस्था, व्यक्ति (पृथ-  
कशरीर), सादृश्य ( तुल्यता ),  
स्थिति, यन्त्रभेद, समाप्ति, अपने  
राज्यमें प्राप्तहुवा जासूस ( स्त्री० )  
॥ १५ ॥

थतृतीय ।

अतिथि—अभ्यागत, क्रोध, कुशका  
पुत्र ( पुं० )

अव्यथ—व्यथाहीन, हरद्व, सर्प ( त्रि० )  
॥ १६ ॥

अश्वत्थ—पूर्णमातिथि, ( स्त्री० )  
( अश्वत्थ ) पारस पीपल, पीपल,  
( पुं० ) ॥ १७ ॥

उद्रथ—ताम्रचूड़ ( मुरगा ), उरल-  
पक्षी, श्वान ( पुं० )

उन्माथ—कूटयन्त्र, मारना, घात क-  
रना, ( पुं० )

उपस्थ—भग ( स्त्रीकी योनि ), लिंग,  
गोद, गुद, ( पुं० ) ॥ १८ ॥

कायस्थस्तु नृणां जातिप्रभेदे परमात्मनि ।  
 कायस्था स्याद्वयस्थायां पथ्यायां कायगे त्रिषु ॥ १९ ॥  
 गोम्रन्थिस्तु करीषे स्याद्गोष्ठे गोजिह्विकौषधौ ।  
 दमथस्तु दमे दण्डे निर्ग्रन्थः क्षपणेऽधने ॥ २० ॥  
 बालिशेऽपि निशीथस्तु निशामात्रार्द्धरात्रयोः ।  
 प्रमथः शङ्करगणे पथ्यायां प्रमथा तथा ॥ २१ ॥  
 वयःस्था शाल्मलीपथ्याकाकोल्यामलकीषु च ।  
 ब्राह्मीवृटिगुडूचीषु वयस्थस्तरुणे त्रिषु ॥ २२ ॥  
 मन्मथः कामचिन्तायां कामदेवकपित्थयोः ।  
 वमथुः पुंसि वमने मातङ्गकरशीकरे ॥ २३ ॥  
 वरूथो रथगुप्तौ ना वरूथं चर्मवेश्मनि ।  
 विदथो योगिंकृतिनोः शमथः शान्त्यमात्ययोः ॥ २४ ॥

कायस्थ-मनुष्योंकी जातिका भेद ( कायथ ), परमात्मा, ( पुं )	वयःस्था-सेमलका-वृक्ष, हरद, का-कोली, आँवला, ब्राह्मी, छोटी इला-यची, गिलोय, ( स्त्री० )
कायस्था-जवान उम्रमें स्थित स्त्री, हरड, ( स्त्री० ) शरीरमें स्थित ( त्रि० ) ॥ १९ ॥	वयःस्थ-जवान, ( त्रि० ) ॥ २२ ॥
गोम्रन्थि-आरना, गौवोंका टान, गोभी या गावजबी-औषधि, ( पुं० स्त्री० )	मन्मथ-कामचिन्ता, कामदेव, कै-थका-वृक्ष, ( पुं० )
दमथ-इंद्रियोंका रोकना, दण्ड, ( पुं० )	वमथु-वमन, हस्तीकी सूंडके जल-कण, ( पुं० ), ॥ २३ ॥
निर्ग्रन्थ-मुनि, निर्धन, ॥ २० ॥	वरूथ-रथकी रक्षाके लिये लोहादि-मयपरदा, ( पुं० ) चर्मका डेरा ( तंबू ) ( न० )
निशीथ-रात्रिमात्र, अर्द्धरात्र, ( पुं० )	विदथ-योगी, पंडित, ( पुं० )
प्रमथ-महादेवके गण, ( पुं० ) प्र-मथा, ( हरड ) स्त्री० ) ॥ २१ ॥	शमथ-शान्ति, मंत्री, ( पुं० ) ॥ २४ ॥

षड्ग्रन्था तु वचाशब्दोः षड्ग्रन्थः करञ्जान्तरे ।  
 समर्थस्तूद्धटे शक्ते सम्बद्धार्थे हिते त्रिषु ॥ २५ ॥  
 सर्वार्थसिद्धे सिद्धार्थः सिद्धार्था सितसर्षपे ।  
 क्षवधुः पुंसि कासे स्याच्छिक्कायामपि सम्मतः ॥ २६ ॥

थचतुर्थम् ।

अनीकस्थो रणखले चिह्नेषु भटमर्दने ।  
 राजरक्षिषु मातङ्गशिक्षणातिविचक्षणे ॥ २७ ॥  
 भवेदितिकथा ग्राम्यकथाप्रनष्टधर्मयोः ।  
 वाच्यवद्दशमीस्थः स्यात्स्यविरक्षीणरागयोः ॥ २८ ॥  
 वानप्रस्थो मधुष्ठीले तृतीयाश्रमिकिशुके ।

थपंचमम् ।

भटे पुंस्यप्रतिरथं यात्रायां सान्नि मङ्गले ॥ २९ ॥

इति विश्वलोचने थान्तवर्गः ॥

षड्ग्रन्था—वच, कचूर, ( स्त्री० ) षड्ग्रन्थ, करंजुवाभेद, ( पुं० )	इतिकथा—व्यर्थभाषण, नष्टधर्म, ( स्त्री० )
समर्थ—उद्धट, शक्तिमान्, सम्बद्धार्थ, हितकारी, ( त्रि० ) ॥ २५ ॥	दशमीस्थ—बुद्धा, राग ( स्नेह ) रहित, ( पुं० ) ॥ २८ ॥
सिद्धार्थ—बुद्धदेव, ( पुं० ) सिद्धार्था—सफेद-सिरसों, ( स्त्री० )	वानप्रस्थ—महुवा, तीसरा आश्रम, के ( टे ) सू, ( पुं० )
क्षवधु—खौंसी, छींक, ( पुं० ) ॥ २६ ॥	थपंचम ।
थचतुर्थ ।	अप्रतिरथ—योद्धा, ( पुं० ) यात्रा, सामवेद, मंगल, ( न० ) ॥ २९ ॥
अनीकस्थ—रणभूमि, चिह्न, योद्धाका मर्दन, राजाकी रक्षा करनेवाला, हस्तीकी शिक्षामें निपुण, ( पुं० ) ॥ २७ ॥	इम प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटी-कामें थान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

## अथ दान्तवर्गः ।

दैकम् ।

दः शुद्धौ देवने दास्तु दातरि च्छेददानयोः ॥ १ ॥

द्वितीयम् ।

अन्दुः स्त्रियामलङ्कारे वेदबंधनवस्तुनोः ।

अब्दः संवत्सरे मेघे मुस्तके पर्वतान्तरे ॥ २ ॥

कन्दोऽस्त्री शूरेण वृक्षमूले पुंसि पयोधरे ।

कुन्दो माघ्ये पुमांश्चक्रे भ्रमौ निधिसुरद्विषोः ॥ ३ ॥

विष्णुभ्रातरि रोगे च मतः शस्त्रान्तरे गदा ।

छदः पत्रे पतत्रे च ग्रन्थिपर्णतमालयोः ॥ ४ ॥

छन्दोऽभिप्रायवशयोर्धीदा कन्यामनीषयोः ।

नदी सरित्यपि नदः सिन्धौ शोणाविनादयोः ॥ ५ ॥

### अथ दान्तवर्गः ।

दैक ।

द-शुद्धि, क्रीडा, ( पुं० )

दा-दाता, छेदन, दान, ( पुं० ) ॥ १ ॥

### द्वितीय ।

अन्दु-आभूषण, वेद, बेड़ी ( स्त्री० )

अब्द-संवत्सर, मेघ, नागरमोथा, पर्वतभेद, ( पुं० ) ॥ २ ॥

कन्द-जमीकंद, वृक्षकी जड़, ( पुं० )  
न० ) नागरमोथा या मेघ ( पुं० )

कुन्द-कुन्द-पुष्पवृक्ष, चक्र, भ्रमणा,  
निधिभेद, एक राक्षस, ( पुं० )  
॥ ३ ॥

गद-विष्णुका भ्राता, रोग, ( पुं० )

गदा-शास्त्रभेद, ( स्त्री० )

छद-पत्ता, पक्षीकी पर, गठिवन औषधि, तमाल-वृक्ष ( पुं० ) ॥ ४ ॥

छन्द-अभिप्राय, वशा, ( पुं० )

धीदा-कन्या, बुद्धि, ( स्त्री० ) ॥ ५ ॥

नदी-नदी, ( स्त्री० ) नद-सिंधु,  
शोण-नद, मेढीका शब्द ( पुं० )

नन्दिः शिवप्रतीहारे द्यूतभाण्डभिदोर्मुदि ।

नन्दा मणिकसम्पत्त्योर्निन्दा कुत्साऽपवादयोः ॥ ६ ॥

पदं वाक्ये प्रतिष्ठायां व्यवसायाऽपदेशयोः ।

पादातच्चिह्नयोः शब्दे स्थानत्राणाद्धिक्स्तुषु ॥ ७ ॥

पादोऽस्त्री चरणे मूले तुरीयांशेऽपि दीधितौ ।

शैलप्रत्यन्तशैले ना बिदा ज्ञाने मतावपि ॥ ८ ॥

बिन्दुः स्यादन्तदशने शुके वेदितृविमुषोः ।

वेदिरङ्गुलिमुद्रायां बुधे संस्कृतभूतले ॥ ९ ॥

भन्दं(द्रं) शर्मणि कल्याणे भेदो द्वैधविशेषयोः ।

विदारणे चोपजापे संपूर्वः सिन्धुसङ्गमे ॥ १० ॥

मदो मृगमदे मये दानमुद्गर्वरेतसि ।

महापूर्वो मतङ्गे स्यान्मदी कृषकवस्तुनि ॥ ११ ॥

नन्दि—शिवका पौलिया, जूता, भांड ।

( पात्र ) भेद, आनंद, ( पुं०न० ) ।

नन्दा—बड़ा धड़ा, सम्पत्ति, ( स्त्री० )

निन्दा—कुत्सा ( निंदा ), अपवाद

( बुरा कहना ) ( स्त्री० ) ॥ ६ ॥

पद—वाक्य, प्रतिष्ठा, व्यवसाय ( उ-

द्यम ), मिस, पाँव, पैड, शब्द,

( स्थान, रक्षा, वस्त्र, ( न० ) ॥ ७ ॥

पाद—चरण ( पाँव ), वृक्षकी जड़,

चौथा हिस्सा, किरण, पर्वत, पर्वत-

के समीप छोटा पर्वत, ( पुं० )

बिदा—ज्ञान, बुद्धि, ( स्त्री० ) ॥ ८ ॥

बिन्दु—दाँतसे कियाहुवा धाव, वीर्य,

जाननेवाला, ( त्रि० ) जल आ-

दिकी बूँद ( पुं० )

वेदि—अँगूठी, पंडित, संस्कार कीहुई

पृथ्वी, ( पुं० स्त्री० ) ॥ ९ ॥

भन्द (द्रं)—सुख, कल्याण, ( न० )

भेद—द्विधाभाव, विशेष, फाड़ना, पु-

रुषोंके मेलको फोड़ना, ( पु० )

संभेद—समुद्र या नदियोंका मिलना,

( पुं० ) ॥ १० ॥

मद—कस्तूरी, मदिरा, हस्तीके मदसे

झिरनेका जल, हर्ष, गर्व, वीर्य, ( पुं० )

महामद—हस्ती, ( पुं० ) मदी—खेती

करनेवालेकी वस्तु ( स्त्री० ) ॥ ११ ॥

मन्दः खैरे खले मन्दरते मूर्खाल्परोगिषु ।  
 अभाग्येऽपि त्रिषु पुमान् गजजात्यन्तरे शनौ ॥ १२ ॥  
 मृद्वतीक्षणे त्रिषु श्लक्ष्णे रदो दन्ते विलेखने ।  
 शादस्तु कर्दमे शप्पे सूदः स्याद्यञ्जने गुणे ॥ १३ ॥  
 स्वादुर्मिष्ठे मनोज्ञे च स्वेदः स्वेदनघर्मयोः ।  
 हृच्चित्तबुक्कयोः क्लीबं क्षोदश्चूर्णेऽपि पेषणे ॥ १४ ॥

दत्ततीयम् ।

अङ्गदो वालिपुत्रे स्यात्केयूरे त्वङ्गदं मतम् ।  
 भवेदक्षिणदिग्दन्तीदन्तिन्यां तु मताऽङ्गदा ॥ १५ ॥  
 अस्त्री सङ्ख्यान्तरे मांसकीले शैलेऽपि नाऽर्बुदः ।  
 अर्द्धेन्दुरर्द्धचन्द्रे स्याद्गलहस्तनखाङ्कयोः ॥ १६ ॥

मंद-यथेच्छ, खोटा, मंद स्त्रीसंग, मूर्ख, अल्प, रोगी, भाग्यहीन (त्रि०) हस्ती-भेद, शनैश्चर ( पुं० ) ॥ १२ ॥	क्षोद-चूर्ण, पीसना, ( पुं० ) ॥१४॥
मृदु-कोमल, सुंदर, ( त्रि० ) रद-दाँत, काटना, ( पुं० ) शाद-कीच, छोटी घाम आदि, ( पुं० ) सूद-व्यांजन ( तरकारी ), रसोइया, ( पुं० ) ॥ १३ ॥	दत्ततीय । अंगद-वालिका पुत्र, ( पुं० ) बाजू- बंद, ( न० ) दक्षिणदिशाका हस्ती, ( पुं० ) अंगदा-दक्षिणदिक्हस्तीकी हस्तिनी ( स्त्री० ) ॥ १५ ॥
स्वादु-रुचिकारी भोजन, सुंदर, ( त्रि० ) स्वेद-पसीना, धूप, ( पुं० ) हृत्-चित्त, हृदयमें कमलाकार मांस, ( न० )	अर्बुद-संख्या ( अरब ), मांसकील, ( पुं० न० ) एक पर्वत, ( पुं० ) अर्द्धेन्दु-आधाचंद्रमा, गलहस्त ( मी- वापर हाथ देकर निकालना ), नखों करके शरीरपर चिह्न ( पुं० ) ॥१६॥



अर्द्धेन्दुः स्यादतिप्रौढस्त्रीगुह्याङ्गुलियोजने ।

आक्रन्दो दारुणरणे मित्रे तातारिरोदने ॥ १७ ॥

पार्ष्णिग्राहात्परो राजा यस्तस्मिन्नारदेऽपि च ।

सुगन्धिमुदि वामोद आस्पदं पदकृत्ययोः ॥ १८ ॥

स्त्री ककुत् ककुदोऽप्यस्त्री वृषाङ्गे राजलक्ष्मणि ।

शृङ्गे श्रेष्ठे कपर्दस्तु वटे शम्भुजटाटयोः ॥ १९ ॥

कर्कन्दुः साक्षरे शाके वारिजाले गुदामये ।

उत्क्षिप्तिकायां कर्णान्दुः कर्णपाल्यामपि स्त्रियाम् ॥ २० ॥

कामदा धेनुकायां स्याद्वाच्यवत्कामदोग्धरि ।

कुमुदो नागदिग्भागदैत्यान्तरवनौकसि ॥ २१ ॥

कुमुदं कैरवे क्लीबं कृपणे कुमुदन्यवत् ।

कुसीदिके कुसीदः स्यात्कुसीदं वृद्धिजीवने ॥ २२ ॥

अति जवान स्त्रीकी योनिमें अंगुलि डालना, ( पुं० )	कर्कन्दु—साक्षर, शाकभेद, कमल, गुदरोग, ( पुं० )
आक्रन्द—भयंकर रण, मित्र, भ्राता, शत्रुका रोना ॥ १७ ॥ अपने पासके राजदबानेवाले राजासे अन्य राजा, नारद, ( पुं० )	कर्णान्दु—उत्क्षिप्तिका ( कर्णभूषण-मात्र ), कर्णपाली ( कानकी वाली ) ( स्त्री० ) ॥ २० ॥
आमोद—सुगन्धि, हर्ष, ( पुं० )	कामदा—गी, ( स्त्री० ) यथेच्छ देनेवाला, ( त्रि० )
आस्पद—पद, कृत्य, ( न० ) ॥ १८ ॥	कुमुद—नाग, दिग्गहस्त्री, दैत्यभेद, वनमें रहनेवाला, ( पुं० ) ॥ २१ ॥
ककुत् ककुद—( स्त्री० ) वृषकी थूह, राजचिह्न ( ध्वजाआदि ), शृंग, श्रेष्ठ, ( पुं० न० )	कुमुद—कमोदनी, ( न० )
कपर्द—वट—वृक्ष, महादेवकी जटा, ( पुं० ) ॥ १९ ॥	कुमुत्—कृपण, ( त्रि० )
	कुसीद—व्याज लेनेवाला ( पुं० ) वृद्धिजीवन ( व्याज ) ( न० ) ॥ २२ ॥

कौमुदः कार्तिके ज्योत्स्नापर्वणोरपि कौमुदी ।  
 ऋच्यात्कृव्यादवत्पुंसि मांसभक्षकरक्षसोः ॥ २३ ॥  
 गोविन्द इन्द्रावरजे गवाध्यक्षे च गीष्पतौ ।  
 गोष्पदं गोपदश्चभ्रे गवां च गतिगोचरे ॥ २४ ॥  
 बलाहकोऽपि जलदो जलदो मुस्तकेऽपि च ।  
 जीवदो द्विषि वैद्ये च तरत्कारण्डवे ह्रवे ॥ २५ ॥  
 तोयदो मुस्तके मेघे तोयदं तु घृतं मतम् ।  
 दरद्भ्ये प्रपातेऽद्रौ दायादो ज्ञातिपुत्रयोः ॥ २६ ॥  
 दारदः पारदे सिन्धौ हिङ्गुले गरलान्तरे ।  
 दृषत्पेषणपाषाणपट्टपाषाणयोः स्त्रियाम् ॥ २७ ॥  
 धनदो दातरि श्रीदे क्रीडामात्ये तु नर्मदः ।  
 नर्मदा नर्मदायिन्यां रेवायामपि नर्मदा ॥ २८ ॥

कौमुद-कार्तिक-मास, ( पुं० )	तोयद-नागरमोथा, मेघ, ( पुं० )
कौमुदी-चाँदका चाँदना, पर्व, ( स्त्री० )	घृत, ( न० )
ऋच्यात्-ऋव्याद-मांसभक्षी, रा- क्षस, ( पुं० ) ॥ २३ ॥	दरद्-भय, पर्वतमें गिरनेका स्थान, पर्वत, ( पुं० )
गोविन्द-श्रीकृष्ण, गौवोंका स्वामी, बृहस्पति ( पुं० )	दायाद-अपनी सातवीं पीढी भीत- रका-मनुष्य, पुत्र ( पुं० ) ॥ २६ ॥
गोष्पद-गौकी पैड़, गौवोंकी गति आदि ( न० ) ॥ २४ ॥	दारद-पारा, समुद्र, होंगलू, विषभेद, ( पुं० )
जलद-मेघ, नागरमोथा, ( पुं० )	दृषद्-पीसनेके लिये पत्थरका पट्टा, पत्थर, ( स्त्री० ) ॥ २७ ॥
जीवद-शत्रु, वैद्य, ( पुं० )	धनद-दातार, कुबेर, ( पुं० )
तरद्-करडवा पक्षी, पुंढेरी-पक्षी ( पुं० ) ॥ २५ ॥	नर्मद-क्रीडाका मंत्री, ( पुं० )
	नर्मदा-क्रीडा करानेवाली स्त्री, रेवा- नदी ( स्त्री० ) ॥ २८ ॥

नलदं मकरन्दे स्यान्मांसिकोशीरयोरपि ।  
 निर्वादस्तु परीवादपरनिन्दितवादयोः ॥ २९ ॥  
 निषादः स्वरभेदेऽपि निषादः पचपचेऽपि च ।  
 प्रणादोऽत्युच्चशब्दे स्यात्प्रणादः कर्णरुग्भिदि ॥ ३० ॥  
 प्रमदा मत्तकाशिन्यां प्रमदो गर्वितामुदि ।  
 प्रसादस्तु प्रसन्नत्वे काव्यालङ्करणान्तरे ॥ ३१ ॥  
 स्वास्थ्ये चानुग्रहे चाथ प्रह्लादः प्रणदेऽसुरे ।  
 प्रासादः पुंसि देवस्य नरदेवस्य वाऽऽलये ॥ ३२ ॥  
 कन्यायां वरदा शान्ते प्रसन्ने वरदस्त्रिषु ।  
 भसत्पुंस्येव काले स्याद्भसन्मांसे प्रभासुरे ॥ ३३ ॥  
 मर्यादा तु स्थितौ सीम्नि कूले कूले च वारिधेः ।  
 माकन्दस्तु रसाले स्यान्माकन्द्यामलकीफले ॥ ३४ ॥

नलद-पुष्परस, जटामांसी-औषधि,  
 खस, ( न० )

निर्वाद-अपवाद, दूसरोंसे निन्दित  
 वाद, ( पुं० ) ॥ २९ ॥

निषाद-गानेका स्वरभेद, चांडाल  
 भील आदि नीच, ( पुं० )

प्रणाद-अति ऊँचा शब्द, कानरो-  
 गका भेद ( पुं० ) ॥ ३० ॥

प्रमदा-गुणवती स्त्री, ( स्त्री० )

प्रमद-गर्वितास्त्रीका, आनंद, ( पुं० )

प्रसाद-प्रसन्नत्व, काव्य-अलंकार,

॥ ३१ ॥ स्वस्थता, अनुग्रह ( कृपा )  
 ( पुं० )

प्रह्लाद-ऊँचा शब्द, असुर, ( पुं० )

प्रासाद-देवताका मंदिर, राजाका  
 महल, ( पुं० ) ॥ ३२ ॥

वरदा-कन्या, ( स्त्री० ) वरद-शां-  
 तचित्त, प्रसन्न, ( त्रि० )

भसद्-काल, ( पुं० ) मांस, ( न० )  
 प्रकाशवान ( त्रि० ) ॥ ३३ ॥

मर्यादा-स्थिति, सीमा, तीर, समुद्र-  
 का तीर, ( स्त्री० )

माकन्द-आम्र, ( पुं० ) माकंदी-  
 आँवलेका फल ( स्त्री० ) ॥ ३४ ॥

मेनादश्छागमार्जारमेघनादानुलासिषु ।

वातादिर्वल्कले काष्ठलोहीवेदेकयोः स्त्रियाम् ॥ ३५ ॥

विशदः पाण्डरे व्यक्ते शरत्स्त्री शरदब्दयोः ।

शारदा जलपिप्पल्यां सप्तपर्णेऽथ शारदः ॥ ३६ ॥

नवाऽप्रतिमशालीनपीतमुद्गेन्दुवर्षयोः ।

स्त्रियां सम्पद्गुणोत्कर्षे भूतिहारप्रभेदयोः ॥ ३७ ॥

संवित्प्रतिज्ञासङ्केतज्ञानाचारेषु नामनि ।

स्त्रियां तोषे क्रियाकारे रणे सम्भाषणेऽपि च ॥ ३८ ॥

सम्भेदस्तु विकाशे स्यात्सम्भेदः सिन्धुसङ्गमे ।

सुनन्दा रोचनानार्योः क्षणदो गणके पुमान् ॥ ३९ ॥

त्रिषूत्सवप्रदे वारि क्षणदं क्षणदा निशि ।

दचतुर्थम् ।

अपवादस्तु निद्रायामाज्ञाविश्वासयोरपि ॥ ४० ॥

मेनाद-चकरा, बिलाव, मोर, ( पुं० )

वातर्दि-वृक्षका बकला, काष्ठआदि,  
( स्त्री० ) ॥ ३५ ॥

विशद-सफेद, प्रकट, ( पुं० )

शरद्-शरदऋतु, वर्ष, ( स्त्री० )

शारदा-जलपीपल, सप्तपर्णी या सा-  
तवण, ( स्त्री० ) शारद ॥ ३६ ॥  
नवीन जिसके समान दूसरा न हो  
वह, लज्जावान, पीलामूग, चन्द्रमा,  
वर्ष ( पुं० )

सम्पद्-गुणोंकरके उत्कर्ष (बडप्पन),  
संपत्ति, हारभेद, ( स्त्री० ) ॥ ३७ ॥

संवित्-प्रतिज्ञा, संकेत, ज्ञान, आ-  
चार, नाम, संतोष, किसी कार्यका

करनेवाला, रण, संभाषण, ( स्त्री० )  
॥ ३८ ॥

सम्भेद-प्रकाश, समुद्र या नदियोंका  
मिलाप, ( पुं० )

सुनन्दा-रोचना (गोलोचन), स्त्री,  
( स्त्री० )

क्षणद-ज्यौतिषी, ( पुं० ) ॥ ३९ ॥

क्षणद-उत्सवदेनेवाला, ( त्रि० )  
जल, ( न० )

क्षणदा-रात्रि, ( स्त्री० )

दचतुर्थ ।

अपवाद-निन्दा, आज्ञा, विश्वास,  
( पुं० ) ॥ ४० ॥

अभिष्यन्दो विवृद्धौ स्यादास्तावे लोचनामये ।  
 अभिमर्द्दस्तु पुंस्येव रणमन्थानदण्डयोः ॥ ४१ ॥  
 अष्टापदं शारिफले क्लीबमस्त्री तु काञ्चने ।  
 शरभे मर्कटे पुंसि चन्द्रमह्यां स्त्रियामपि ॥ ४२ ॥  
 एकपदं स्यात्तत्काले क्लीबमेकपदी पथि ।  
 कटुकन्दः पुमान् शृङ्गवेरे शिग्रुसोनयोः ॥ ४३ ॥  
 कुरुविन्दस्तु मुस्तायां कुलमापत्रीहिभेदयोः ।  
 कुरुविन्दं तु मुकुरे पद्मरागे च हिङ्गुले ॥ ४४ ॥  
 क्लीवं कोकनदं रक्तकैरवे रक्तपङ्कजे ।  
 चक्रवुन्दस्तु भाकूटे पृष्ठशृङ्गे मृषान्तरे ॥ ४५ ॥  
 चतुष्पदो गवाश्वादिपशौ स्त्रीकरणान्तरे ।  
 पुमाञ्जनपदो देशे तथा जनपदो जने ॥ ४६ ॥

अभिष्यन्द—अतिवृद्धि, चारोंतरफसे- झिरना, नेत्ररोग ( पुं० )	कटुकन्द—अदरक, सहैजना, हस्तन, ( पुं० ) ॥ ४३ ॥
अभिमर्द्द—रण, मथनेका डाँडा ( पुं० ) ॥ ४१ ॥	कुरुविन्द—नागरमोथा, आवासीजा- धान्य, व्रीहिभेद ( पुं० )
अष्टापद—चौपड़, ( न० ) सुवर्ण ( पुं० न० ) शरभ ( मृगभेद ), बन्दर, ( पुं० )	कुरुविन्द—शोशा, पुक्खराज, हींगल, ( न० ) ॥ ४४ ॥
अष्टापदी—चंद्रमल्ली ( मल्लिकाभेद ) ( स्त्री० ) ॥ ४२ ॥	कोकनद—लाल कमोदनी, लालक- मल ( न० )
एकपद—तत्काल, ( न० )	चक्रवुन्द—तेजसमूह, पृष्ठशृङ्ग, अस- त्यभेद ( पुं० ) ॥ ४५ ॥
एकपदी—मार्ग ( स्त्री० )	चतुष्पद—गौ अथ आदि पशु, स्त्रि- योंका करणभेद, ( पुं० )
	जनपद—देश, जन, ( पुं० ) ॥ ४६ ॥

तमोनुदस्तमोनुच्च चन्द्रसूर्यकृशानुषु ।  
 परीवादोऽपवादे स्याद्वीणावादनवस्तुनि ॥ ४७ ॥  
 पृष्ठमर्दोऽतिधृष्टे स्यान्नाट्योक्त्या नायकप्रिये ।  
 पुटभेदो नदीवक्त्रे नगरातोद्ययोरपि ॥ ४८ ॥  
 प्रतिपत्तु स्त्रियामाद्यतिथौ संविदि सा स्मृता ।  
 प्रियंवदः खेचरे स्यात्प्रियवाचि तु वाच्यवत् ॥ ४९ ॥  
 महानादो महाशब्दे वर्षुकाब्दे शयानके ।  
 गजे च मुचुकुन्दस्तु मुनिदैत्यद्रुमान्तरे ॥ ५० ॥  
 मेघनादो दशग्रीवसुते पश्चिमदिक्पतौ ।  
 विशारदः पण्डिते स्यान्निपु धृष्टे विशारदः ॥ ५१ ॥  
 पृत्वाकूटे प्रपञ्चे च मृगे शूके पदे मतम् ।  
 समर्यादं समीपे स्यान्मर्यादिन्यपि वाच्यत् ॥ ५२ ॥

तमोनुद-तमोनुद्-चंद्रमा, सूर्य, अग्नि, (पुं०)	महानाद-महाशब्द, वर्षनेवाला मेघ, सोनेवाला, हस्ती, (पुं०)
परीवाद-अपवाद ( निंदा आदि ), वीणावजानेकी वस्तु ( पुं० ) ॥ ४७ ॥	मुचुकुन्द-एकमुनि, एक दैत्य, मुचुकुन्द-पुष्पवृक्ष, ( पुं० ) ॥ ५० ॥
पृष्ठमर्द-अतिधृष्ट ( डीठा ), नाट्यकी उक्तिमें नायकका प्रिय, ( पुं० )	मेघनाद-रावणका पुत्र, वरुण, ( पुं० )
पुटभेद-नदीका वंक्, नगर, बाजाभेद ( पुं० ) ॥ ४८ ॥	विशारद-पण्डित, धृष्ट, ( त्रि० ) ॥ ५१ ॥
प्रतिपत्तु-पड़वातिथि, बुद्धि, ( स्त्री० )	प्रपंच ( जगत् ), मृग, स्याल्ल, चरण ( पुं० )
प्रियंवद-खेचर ( आकाशमें विचरनेवाला ), प्रियवचन कहनेवाला ( त्रि० ) ॥ ४९ ॥	समर्याद-समीप ( नजदीक ), ( न० ) मर्यादावाला ( त्रि० ) ॥ ५२ ॥

दपंचमम् ।

धर्मे रहस्युपनिषद्वेदान्ते पार्श्ववेश्मनि ।

सहस्रपादो मार्तण्डे कारण्डेपि च यज्वनि ॥ ५३ ॥

इति विश्वलोचने दान्तवर्गः ॥

### अथ धान्तवर्गः ।

धैकम् ।

धो धने च धनेशे च धास्तु धातरि धी मतौ ।

धद्वितीयम् ।

अन्धं स्यात्तिमिरे दृष्टिहीने त्वन्धोऽभिधेयवत् ॥ १ ॥

अन्धिर्वारानिधौ पुंसि पुंस्तेवाऽन्धिः सरोवरे ।

अर्द्धं समांशके क्लीबमर्द्धः खण्डे पुमानपि ॥ २ ॥

पुंस्याधिश्चित्तपीडायां प्रत्याशायां च बन्धके ।

व्यसने चाप्यधिष्ठाने स्यादिद्धस्त्वातपे पुमान् ॥ ३ ॥

दपंचमम् ।

उपनिषद्—धर्म, एकान्त, वेदान्त,  
पसवाङ्गाका मकान ( स्त्री० )

सहस्रपाद—सूर्य, कारण्ड ( हंसभेद ),  
यज्ञ, ( पुं० ) ॥ ५३ ॥

इस प्रकार विश्वलोचन कोशकी टीकामें  
दान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

अथ धान्तवर्गः ॥

धैकम् ।

ध-धन, ( न० ) कुबेर, ( पुं० )

धा-वद्गा, ( पुं० )

धी-बुद्धि ( स्त्री० )

धद्वितीयम् ।

अन्ध-अंधकार, ( न० ) अंधा-मनु-  
प्य, ( त्रि० ) ॥ १ ॥

अन्धि-समुद्र, सरोवर, ( पुं० )

अर्ध-वरावर अर्धभाग, ( न० ) अर्ध  
( टुकड़ा ), ( पुं० ) ॥ २ ॥

आधि-चित्तपीडा, प्रत्याशा, गिरवी-  
रखना, दुःख या शोक, अधिष्ठान  
( पुं ) धूप, ( पुं० ) ॥ ३ ॥

प्रदीप्ते त्रिषु ऋद्धं तु सम्पन्नान्नसमृद्धयोः ।  
 ऋद्धिः स्यादोषधीभेदे योगशक्तौ च बन्धने ॥ ४ ॥  
 गन्धो गन्धकसम्बन्धलेशेष्वामोदगर्वयोः ।  
 गाधः स्थानेऽपि लिप्सायां गोधा तलनिहाकयोः ॥ ५ ॥  
 दग्धा स्थितार्ककाष्ठायां दग्धं हुष्टेऽन्यलिङ्गकः ।  
 दधि स्याच्छीघ्रने क्लीबं दधि श्रीवासवासयोः ॥ ६ ॥  
 विषाक्तविशिखे दिग्धो दिग्धं लिप्तार्थकेऽन्यवत् ।  
 त्रिषु प्रपूरिते दुग्धं दुग्धं क्षीरेऽपि न द्वयोः ॥ ७ ॥  
 वत्से गोपे कवौ दोग्धा दोग्धाऽप्यर्थोपजीविनि ।  
 सज्जे संपूर्वकं नद्धं नद्धं तद्वृत्तबद्धयोः ॥ ८ ॥  
 आधिबन्धनयोर्वेधो बन्धः संपूर्वकोऽन्यवे ।  
 बन्धूकपादपे बन्धुर्वधूभ्रातरि बान्धवे ॥ ९ ॥

ऋद्ध-सिद्धहुवा अन्न, ( न० ) समृद्ध  
 ( संपत्तिवाला, ) ( त्रि० )  
 ऋद्धि-ओषधीभेद, योगशक्ति, बं-  
 धन, ( स्त्री० ) ॥ ४ ॥  
 गन्ध-गन्धक, संबंध, लेश ( सूक्ष्म-  
 अंश), सुगंध, अभिमान, ( पुं० )  
 गाध-स्थान ( स्थितहोना ), लेनेकी  
 इच्छा, ( पुं० )  
 गोधा-धनुषकी ज्याको निवारण कर-  
 नेका, जलगोह ( स्त्री० ) ॥ ५ ॥  
 दग्धा-स्थितहै सूर्य जिसमें वह दिशा,  
 ( स्त्री० ) जलाहुवा, ( त्रि० )  
 दधि-दही, सरलवृक्षका गोंद, तेजपा-  
 त, ( न० ) ॥ ६ ॥

दिग्ध-विषलगायाहुवा-बाण, ( पुं० )  
 किसीवस्तुमें लिप्तहुवा पदार्थ ( त्रि० )  
 दुग्ध-प्रपूरितकिया हुवा, ( त्रि० )  
 दध, ( न० ) ॥ ७ ॥  
 दोग्धा-बछ्छा, गोपालक, कवि,  
 पदार्थसे जीविकावाला, ( पुं० )  
 सनद्ध-कवचधारी, ( त्रि० )  
 नद्ध-निकलाहुवा, बंधाहुवा, ( त्रि० )  
 ॥ ८ ॥  
 वेध-चित्तपीडा, बंधन, ( पुं० )  
 संबंध-अन्वय, जहांतहांका इकठा-  
 होना, ( पुं० )  
 बन्धु-दुपहरिया-पुष्पवृक्ष, वधूका भ्राता  
 बांधव, ( पुं० ) ॥ ९ ॥



बाधा दुःखे निषेधे च विपूर्वा तु विहेठने ।  
 बुधस्तु सुगते धीरे सौम्ये च बुधिते त्रिषु ॥ १० ॥  
 बुधः स्यात्पण्डिते सौम्ये बुधः कापि तथागते ।  
 ऋद्धिस्तु वर्द्धने ऋद्धयौषधे मुदि कलान्तरे ॥ ११ ॥  
 वृद्धिः कुरुण्डरोगे च वृद्धिर्योगेऽपि दृश्यते ।  
 वृद्धो रूढे कवौ जीर्णे त्रिषु वृद्धं तु शैलजे ॥ १२ ॥  
 बोधिः समाधिभेदे स्याद्बोधोधिर्बोधिमहीरुहे ।  
 मधु पुष्परसे क्षौद्रे मद्यक्षीराऽप्सु न द्वयोः ॥ १३ ॥  
 मधुर्मधूके सुरभौ चैत्रे दैत्यान्तरे पुमान् ।  
 जीवाशाके स्त्रियामेवं मधु-शब्दः प्रयुज्यते ॥ १४ ॥  
 सिद्धं चित्ताभिसंक्षेपे सिद्धमालस्यनिद्रयोः ।  
 सुन्दरे वाच्यवन्मुग्धो मुग्धो मूढेऽपि वाच्यवत् ॥ १५ ॥  
 मेघः क्रतौ मतौ मेघा मेघिस्तु खलदारुणि ।  
 राधा तु वल्लवीभेदे चित्रभेदे च धन्विनाम् ॥ १६ ॥

बाधा—दुःख, निषेध, ( स्त्री० )

विबाधा—विशेषकरके पीडा, ( स्त्री० )

बुध—बुद्धदेव, धीर, सौम्य, ( पुं० )

जानाहुवा, ( त्रि० ) ॥ १० ॥

बुध—पण्डित, बुध-ग्रह, बुद्धदेव ( पुं० )

ऋद्धि—बढना, ऋद्धि औषधी, हर्ष,

कलाभेद, ( स्त्री० ) ॥ ११ ॥

वृद्धि—कुरुण्डरोग, वृद्धि-योग ( पुं० )

वृद्ध—बढाहुवा, कवि, पुराना, वृद्ध

पर्वतमें होनेवाला ( त्रि० ) ॥ १२ ॥

बोधि—समाधिभेद, पीपल-वृक्ष, ( पुं० )

मधु—पुष्परस, शहद, मदिरा, दुग्ध,  
जल, ( न० ) ॥ १३ ॥

मधु—महुवा-वृक्ष, वसंत-ऋतु, चैत्र-  
मास, एक दैत्य, ( पुं० ) जीवशाक,  
( स्त्री० ) ॥ १४ ॥

सिद्ध—चित्तव्याकुलता, आलस्य, नि-  
द्रा, ( न० )

मुग्ध—खुंदर, मूढ, ( त्रि० ) ॥ १५ ॥

मेघ—यज्ञ, ( पुं० )

मेघा—बुद्धि, ( स्त्री० )

मेघि—खोटा काष्ठ, ( पुं० )

राधा—गोपी-श्रीकृष्णपत्नी, धनुषधा-  
रियोंका चित्रभेद, ॥ १६ ॥

स्याद्विशाखातडिद्विष्णुकान्तातिप्यफलासु च ।

राधस्तु पुंसि वैशाखे लुब्धो मृगयुकाक्षिणोः ॥ १७ ॥

वधूः स्नुषायां भार्यायां वधूर्योषिन्नबोढयोः ।

शब्दां च सारिवायां च स्पृकायां च मता वधूः ॥ १८ ॥

भवेद्विधं तु सादृश्ये वेधितक्षिसयोस्त्रिषु ।

विधिवेधसि काले ना विधाने नियतौ स्त्रियाम् ॥ १९ ॥

विधा प्रकारे ऋद्धौ च गजान्ने वेतने विधौ ।

विधुः शशाङ्के विष्णौ च कर्पूरे राक्षसान्तरे ॥ २० ॥

व्याधिः स्यादामये व्याप्ये व्याधो मृगयुदुष्टयोः ।

शुद्धं तु केवले पूते श्रद्धा श्राद्धोर्ध्वकाङ्क्षयोः ॥ २१ ॥

श्राद्धं निवापे श्राद्धस्तु त्रिषु श्रद्धासमन्विते ।

सन्धा स्थितौ प्रतिज्ञायामवधानेऽपि सा स्मृता ॥ २२ ॥

विशाखा—नक्षत्र, बिजली, कोयल-  
या विष्णुकान्ता, आँवला ( स्त्री० )

राध—वैशाख—मास, ( पुं० )

लुब्ध—शिकारी, धनादिलोभवाला,  
( पुं० ) ॥ १७ ॥

वधू—पुत्रवधू, अपनी स्त्री, नवीनवि-  
वाहिता स्त्री, कचूर, सरिवन, अस-  
वरग-औषधि ( स्त्री० ) ॥ १८ ॥

विध—सदृशता ( तुल्यता ), बीधा-  
हुवा, फेंकाहुवा ( त्रि० )

विधि—ब्रह्मा, काल, विधान, भाग्य,  
( पुं० ) ॥ १९ ॥

विधा—प्रकार, ऋद्धि, हस्तीका अन्न,  
नौकरी, विधान, ( स्त्री० )

विधु—चंद्रमा, विष्णु, कपूर, राक्षस-  
भेद, ( पुं० ) ॥ २० ॥

व्याधि—रोग, कुष्ठरोग, ( पुं० )

व्याध—शिकारी, दुष्ट, ( पुं० )

शुद्ध—केवल ( एकला ), पवित्र, ( न० )

श्रद्धा—आस्तिकता, ऊँची इच्छा,  
( स्त्री० ) ॥ २१ ॥

श्राद्ध—पितरोंको पिंडआदिदान, ( न० )

श्राद्ध—श्रद्धायुक्त, ( त्रि० )

सन्धा—स्थिति, प्रतिज्ञा, स्थिरचित्त-  
ता, ( स्त्री० ) ॥ २२ ॥

सन्धिः पुंसि सुरङ्गायां रन्ध्रसंघट्टने भगे ।

सन्धिर्भागेऽवकाशेऽपि वाटसंज्ञेऽपि पुंस्ययम् ॥ २३ ॥

साधुर्वार्द्धिके पुंसि चारुसज्जनयोस्त्रिषु ।

सिद्धस्तु नित्ये निष्पन्ने प्रसिद्धे देवयोनिषु ॥ २४ ॥

योगेऽप्याङ्गिप्रभेदे च सिद्धिर्निष्पत्तियोगयोः ।

सद्वाचस्याभेषजे सिद्धिः सिद्धिवृद्ध्याख्यभेषजे ॥ २५ ॥

सिन्धुरब्धौ नदे देशभेदे ना सरिति स्त्रियाम् ।

सुधाऽमृतं सुधा मूर्वा सुहीगाङ्गेष्टिकासु च ॥ २६ ॥

सधूर्बुद्धौ गुदेऽपि स्यात्स्कन्धः कायप्रकाण्डयोः ।

बाहूमूले समूहे च समीहायां समीहतौ ॥ २७ ॥

स्कन्धो नराश्वमातङ्गवृन्दे भद्रादिकृत्यके ।

स्निग्धो वात्सल्यसंपन्ने चिक्कणेऽप्यभिधेयवत् ॥ २८ ॥

सन्धि—सुरंग, छिद्रकाजोडना, योनि,  
( पुं० )

सन्धि—भाग, अवकाश, मार्गभेद  
( पुं० ) ॥ २३ ॥

साधु—वृद्ध, ( पुं० ) सुंदर, सज्जन,  
( त्रि० )

सिद्ध—नित्य, निष्पन्न ( पूर्णहुवा ),  
प्रसिद्ध, देवयोनि ॥ २४ ॥ योग,  
आङ्गि-पक्षीभेद, ( पुं० )

सिद्धि—निष्पत्ति, योग, अच्छीव्या-  
ख्या, औषधि-मात्र, वृद्धि-औषध,  
( स्त्री० ) ॥ २५ ॥

सिन्धु—समुद्र, नद, देशभेद, ( पुं० )

सिन्धु—नदी ( स्त्री० )

सुधा—अमृत, मूर्वा चुरनहार या मरो-  
रफली, थोहर, कटशर्करालता ( एक-  
प्रकारकी वनस्पति ) ॥ २६ ॥

सधू—वृद्धि, गुद, ( स्त्री० )

स्कन्ध—शरीर, वृक्षकी मोटी शाखा,  
भुजाका मूल ( कंधा ), समूह, चेष्टा,  
चेष्टित, ॥ २७ ॥

मनुष्य अश्व और हस्तियों का  
समूह, मंगल आदि कृत्य, ( पुं० )

स्निग्ध—वत्सलतासे पूर्ण, चिकना  
( त्रि० ) ॥ २८ ॥

स्पृष्टां संहर्षणे साम्ये स्पृष्टां क्रमसमुन्नतौ ।

धृतीयम् ।

अगाधमतलस्पर्शे त्रिषु श्वन्ने नपुंसकम् ॥ २९ ॥

अवधिर्नाऽवधौ न स्यात्सीम्नि काले बिलेऽवटे ।

आनद्धं त्रिषु बद्धे स्यादानद्धं मुरजादिके ॥ ३० ॥

आबन्धः प्रेम्ण्यलङ्कारे दृढबन्धेऽपि कीर्तितः ।

आविद्धः प्रहते वकेऽप्युत्सेधः काय उच्छ्रये ॥ ३१ ॥

व्याजेऽपि चक्रेऽप्युपधिरुपाधिर्ना विशेषणे ।

कैतवे धर्मचिन्तायां कुटुम्बव्यापृतेऽपि च ॥ ३२ ॥

कबन्धस्तु हरे राहौ रक्षोभेदे मतः पुमान् ।

कबन्धं वारि न स्त्री तु गतमूर्द्धकलेवरे ॥ ३३ ॥

दुर्विधो दुःखिखलयोर्निरोधो रोधनाशयोः ।

निषधः पर्वते देशे तद्राजे कठिनेपि च ॥ ३४ ॥

स्पर्धा-अति हर्ष, समता, क्रमसे ऊँ-  
चापन, ( स्त्री० )

धृतीयम् ।

अगाध-जिसकी थाह न लगे ऐसा  
झंघा, ( त्रि० ) खड़ा, ( न० ) ॥ २९ ॥

अवधि-मीआद, सीमा, काल,  
बिल, खड़ा, ( पुं० )

आनद्ध-बँधाहुवा, ( त्रि० )

आनद्ध-मृदंगआदिक, ( न० )  
॥ ३० ॥

आबन्ध-प्रेम, आभूषण, दृढबन्धन,  
( पुं० )

आविद्ध-प्रेराहुवा, कुटिल ( टेढा ),  
( पुं० )

उत्सेध-शरीर, ऊँचाई ( पुं० ) ॥ ३१ ॥

उपधि-बहाना या मिस, रथका पहिया  
( चक्र ) ( पुं० )

उपाधि-विशेषण, छल, धर्मचिन्ता,  
कुटुम्बमें आसक्त ( पुं० ) ॥ ३२ ॥

कबन्ध-महादेव, राहु, राक्षसभेद,  
( पुं० )

कबन्ध-जल, ( न० ) मस्तक रहित  
शरीर ( पुं० न० ) ॥ ३३ ॥

दुर्विध-दुःखित-जन, खल-जन, ( पुं० )

निरोध-रोकना, नाश, ( पुं० )

निषध-पर्वत, निषध-देश, निषधका  
राजा, कठिन, ( पुं० ) ॥ ३४ ॥

न्यग्रोधस्तु वटे शम्यां न्यग्रोधो व्याममात्रके ।  
 न्यग्रोधी विषपण्यां च मोहनारुयौषधावपि ॥ ३५ ॥  
 परिधिर्यज्ञितरोः शाखायामुपसूर्यके ।  
 प्रणिधिर्याच्चाचरयोः प्रसिद्धः ख्यातभूषिते ॥ ३६ ॥  
 मागधो मगधोद्भूते क्षत्रियावैश्यजे त्रिषु ।  
 बन्दिजीरकयोः पुंसि कणायूथ्योस्तु मागधी ॥ ३७ ॥  
 पर्याहाराध्वभारेषु पण्ये विवधवीवधौ ।  
 विबुधः पण्डिते देवे विश्रब्धं तु भृशार्थकम् ॥ ३८ ॥  
 विश्रब्धः स्यात्तु विश्वस्ताऽनुद्भटेषु त्रिषु त्रिषु ।  
 लतायां विटपे वीरुत्सन्नद्धो व्यूढवर्मिते ॥ ३९ ॥  
 सन्निधिः सन्निधाने स्त्री पुमानिन्द्रियगोचरे ।  
 समाधिर्ध्याननीवाकनियमेषु समर्थने ॥ ४० ॥

न्यग्रोध—बड़-वृक्ष, शमी ( जाँट ) वृक्ष, तिरछी फैलाई हुई दोनों भु- जाओंका प्रमाण ( पुरस ) ( पुं० )	विवध—वीवध—पूतआहार, मार्ग, भार, दूकान, ( पुं० )
न्यग्रोधी—विषपर्णी-औषधि, मोहन- नाम औषधि, ( स्त्री० ) ॥ ३५ ॥	विबुध—पंडित, देवता, ( पुं० )
परिधि—यज्ञयोग्यवृक्षकी शाखा, सू- र्यके चारों ओर गोलचक्र ( पुं० )	विश्रब्ध—अतिशय, ( अत्यंत ) ( न० ) ॥ ३८ ॥
प्रणिधि—याचना, चर, ( पुं० )	विश्रब्ध—विश्वासपात्र, अनुद्भट ( नम्र ) ( त्रि० )
प्रसिद्ध—विख्यात, भूषित ( त्रि० ) ॥ ३६ ॥	वीरुत् ( धृ )—बेल, वृक्षशाखा ( स्त्री० )
मागध—मगधदेशमें होनेवाला, क्षत्रि- या और वैश्यसे उत्पन्नहुवा, ( त्रि० )	सन्नद्ध—रक्खाहुवा या इकट्टा किया- हुवा, कवचधारी, ( पुं० ) ॥ ३९ ॥
मागध—बन्दीजन, जीरा, ( पुं० )	सन्निधि—समीप, ( स्त्री० ) इंद्रियोंका विषय ( पुं० )
मागधी—पीपल, जूही-पुष्पपेड़, ( स्त्री० ) ॥ ३७ ॥	समाधि—ध्यान, धनधान्यसे मनुष्यका अतिशय आदर, नियम, समर्थन, ( पुं० ) ॥ ४० ॥

सम्बाधः सङ्कटे योनौ सङ्गरेपि सुगन्धि तु ।

शैलेयेऽभीष्टगन्धे च संरोधः क्षेपरोधयोः ॥ ४१ ॥

संसिद्धिस्तु मता श्रीमत्तिनीप्रकृतिसिद्धिषु ।

धचतुर्थम् ।

अनिरुद्धः सरसुते पुंसि चानर्गले त्रिषु ॥ ४२ ॥

अनुबन्धः प्रकृत्यादेर्नश्वरेऽप्यनुयायिनि ।

दोषोत्पादे शिशौ च स्यात्प्रवृत्तस्यानुवर्त्तने ॥ ४३ ॥

अनुबन्धी तु हिक्कायां तृष्णायामपि दृश्यते ।

अवरोधस्तु शुद्धान्तेऽप्यन्तर्द्धौ राजसञ्जनि ॥ ४४ ॥

स्यादवष्टब्ध आक्रान्तेऽप्यदूरेऽप्यविलम्बिते ।

आशाबन्धः समाश्वासे मर्कटस्य च वासके ॥ ४५ ॥

इक्षुगन्धा कोकिलाक्षे काशे क्रोष्ट्यां च गोक्षुरे ।

उग्रगन्धा वचायां स्याद्यवान्यां छिक्किः कौषधौ ॥ ४६ ॥

सम्बाध-संकट, योनि ( भग ),  
युद्ध, ( पुं० )

सुगन्धि-शिलाजीत, श्रेष्ठगन्ध, ( न० )

संरोध-फेकना, रोकना, ( पुं० )  
॥ ४१ ॥

संसिद्धि-लक्ष्मीमदवाली स्त्री, स्व-  
भाव, सिद्धि, ( स्त्री० )

धचतुर्थ ।

अनिरुद्ध-कामदेवका पुत्र, ( पुं० )

अनर्गल(नहीरुक्नेवाला), ( त्रि० )

॥ ४२ ॥

अनुबन्ध-प्रकृति आदिका नश्वरभाग,  
अनुयायी, दोषोंका उत्पादन, बा-

लक, प्रवृत्तके पश्चात् वर्तना, ( पुं० )  
॥ ४३ ॥

अनुबन्धी-हिचकी, तृष्णा, ( स्त्री० )

अवरोध-रनवास, अंतर्धान ( छुपना )  
राजाका महल, ( पुं० ) ॥ ४४ ॥

अवष्टब्ध-दवायाहुवा, समीप, नहीं  
जल्दी किया ( पुं० )

आशाबन्ध-समाश्वास ( दिलासादे-  
ना ), वानरपकड़नेका जाल, ( पुं० )

॥ ४५ ॥

इक्षुगन्धा-तालमखाना, काश, गी-  
दड़ी, गोखरू ( स्त्री० )

उग्रगन्धा-बच, अजवायन, नकली-  
कनी-औषधि ( स्त्री० ) ॥ ४६ ॥

उपलब्धिः स्त्रियां प्राप्तिमतिज्ञानेषु लक्षणे ।  
 कालस्कन्धस्तमालेऽपि तिन्दुके जीवकद्रुमे ॥ ४७ ॥  
 तीक्ष्णगन्धो मतः शिग्रौ वचाराजिकयोः स्त्रियाम् ।  
 तृणगोधा भवेच्चित्रकोलके कृकलासके ॥ ४८ ॥  
 परिव्याधः पुमान्नीरवानीरेऽपि द्रुमोत्पले ।  
 ब्रह्मबन्धुरधिक्षिप्ते निर्देशेऽब्राह्मणस्य च ॥ ४९ ॥  
 महौषधं विषाशुण्ठी शृङ्गवेरे रसोनके ।  
 समुन्नद्धः समुद्भूते पण्डितम्मन्यगर्विते ॥ ५० ॥

धपंचमम् ।

योजनगन्धा तु कस्तूर्या व्याससूसीतयोरपि ॥ ५१ ॥

इति विश्वलोचने धान्तवर्गः ॥

उपलब्धि—प्राप्ति, बुद्धि, ज्ञान, लक्ष-  
 ण, ( स्त्री० )

कालस्कन्ध—तमालवृक्ष, तैदका पेड  
 जीवक-वृक्ष, ( पुं० ) ॥ ४७ ॥

तीक्ष्णगन्ध—सहजना, ( पुं० ) तीक्ष्ण-  
 गन्धा, बच, राई, ( स्त्री० )

तृणगोधा—चित्रककोल, गिरगट,  
 ( स्त्री० ) ॥ ४८ ॥

परिव्याध—जलवेत, कर्णिकार या  
 पांगारा-वृक्ष, ( पुं० )

ब्रह्मबन्धु—शिडकाहुवा, ब्राह्मण का-  
 भेद ( अधम ), ( पुं० ) ॥ ४९ ॥

महौषध—अतीस, सोठ, अदरक,  
 हस्सन, ( न० )

समुन्नद्ध—अच्छी तरह उत्पन्नहुवा,  
 नहीं पंडित होनेपर निजको पंडित  
 माननेवाला गर्वित ( पुं० ) ॥ ५० ॥

धपंचम ।

योजनगन्धा—कस्तूरी, व्यासकी माता,  
 सीता, ( स्त्री० ) ॥ ५१ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें  
 धान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

अथ नान्तवर्गः ।

नैकम् ।

नास्तु नेतरि नावि स्त्री नकारो जिनपूज्ययोः ।

नुः स्तोतरि नुतौ स्त्री च—स्यादन्नं भक्तभक्तयोः ॥ १ ॥

नद्वितीयम् ।

इनः पत्यौ नृपे सूर्येऽप्युन्नं क्लिप्ते रत्वान्तरे ।

रणोद्योगे भवेद्दूनमूने न्यूनाऽभिधेयवत् ॥ २ ॥

निश्शेषे त्रिषु कृत्स्नं स्याकृत्स्नं स्यादुदरे जले ।

गानं गीतेऽपि शब्देऽपि गर्हणे तु विपूर्वकम् ॥ ३ ॥

घनं स्यात्कांस्यतालादिवाद्ये मध्यमताण्डवे ।

घनस्तु मेघे मुस्तायां विस्तारे लोहमुद्गरे ॥ ४ ॥

काठिन्ये चाथ कठिने सान्द्रेऽपि च घनलिपु ।

चिह्नमङ्के पताकायां ध्वजमात्रेऽपि न द्वयोः ॥ ५ ॥

अथ नान्तवर्गः ।

नैक ।

ना—प्राप्तकरनेवाला, ( पुं० )

ना—नौका, ( स्त्री० )

न( कार )—जिनदेव, पूज्य ( पुं० )

नु—स्तुतिकरनेवाला ( पुं० ) स्तुति,  
( स्त्री० )

नद्वितीय ।

अन्न—अन्न, खायाहुवा-अन्न आदि, ( न० )

॥ १ ॥

इन—पति, राजा, सूर्य, ( पुं० )

उन्न—गीला, मैथुन भेद, रणका उद्योग,  
( न० )

ऊन—कमती, न्यूनकेसमान ( त्रि० )

॥ २ ॥

कृत्स्न—संपूर्ण ( त्रि० )

कृत्स्न—उदर ( पेट ), जल, ( न० )

गान—गाना, शब्द, ( न० )

विगान—निंदा, ( न० ) ॥ ३ ॥

घन—मंजीरा घंटा आदिबाजा, मध्य-  
मृत्य, ( न० )

घन—मेघ, नागरमोथा, विस्तार, लो-  
हेका मुद्गर, ( पुं० ) ॥ ४ ॥ कर-

हापन, कठिन, गहरा, ( त्रि० )

चिह्न—लांछन, पताका, ध्वजमात्र,  
( न० ) ॥ ५ ॥



चीनो देशांशुकव्रीहितन्तुभेदे मृगान्तरे ।

रहसि च्छादिते छन्नमुत्पूर्वं छन्नमुज्ज्वले ॥ ६ ॥

छिन्नाऽमृतायां पुंश्चल्यां छिन्नं मित्रेऽभिधेयवत् ।

जनो लोके महर्लोकात्परे लोके च पामरे ॥ ७ ॥

जनी सीमन्तिनीवध्वोः स्त्रियां तु जनिरुद्धवे ।

जिनस्त्वर्हति बुद्धेऽतिवृद्धजित्वरयोस्त्रिषु ॥ ८ ॥

ज्योत्स्ना तु चन्द्रिकायां स्यात्स्याल्लतायां विभावरौ ।

ज्योत्स्नी पटोलिकायां च चन्द्रकान्वितनिश्यपि ॥ ९ ॥

ज्यानिर्हानौ तटिन्यां च तनुर्देहत्वचोः स्त्रियाम् ।

तनुः केशेऽपि विरले स्वल्पमात्रेऽपि वाच्यवत् ॥ १० ॥

दानं त्यागे गजमदे छेदे शुद्धौ च रक्षपौ ।

विक्रान्ते वाच्यवद्दानुर्दानदातरि वाच्यवत् ॥ ११ ॥

चीन—चीन-देश, वस्त्र, चीना-धान्य,  
तन्तुभेद, मृगभेद, ( पुं० )

छन्न—एकांत, ढकाहुवा, ( त्रि० )

उच्छन्न—उज्ज्वल, ( त्रि० ) ॥ ६ ॥

छिन्ना—गिलोय, व्यभिचारिणी स्त्री,  
( स्त्री० )

छिन्न—कटाहुवा, ( त्रि० )

जन—महर्लोके ऊपर लोक, जन ( म-  
नुष्यमात्र ), नीच, ( पुं० ) ॥ ७ ॥

जनी—स्त्री-मात्र, पुत्रवधू, ( स्त्री० )

जनि—उत्पत्ति ( स्त्री० )

जिन—जिनदेव, बुद्धदेव, ( पुं० ) अ-

तिवृद्ध, जीतनेके स्वभाववाला,  
( त्रि० ) ॥ ८ ॥

ज्योत्स्ना—चंद्रप्रभा, सोमलता, रात्रि  
( चाँदनी रात्रि ) ( स्त्री० )

ज्योत्स्नी—परवल-शाक, चाँदनीरात्रि,  
( स्त्री० ) ॥ ९ ॥

ज्यानि—हानि, नदी ( स्त्री० )

तनु—शरीर, त्वचा, ( स्त्री० )

तनु—केश, विरला ( कोई ), स्वल्प-  
मात्र, ( त्रि० ) ॥ १० ॥

दान—त्याग ( दानदेना ), हस्तीका-  
मद, काटना, शुद्धि, रक्षा, ( न० )

दानु—वीर, दानका देनेवाला, ( त्रि० )  
॥ ११ ॥

कातरे दुर्गते दीनो दीना मूषिकयोषिति ।  
 द्युम्नं पराक्रमे वित्ते प्रपूर्वं पुंसि मन्मथे ॥ १२ ॥  
 धनुः पुंसि प्रियालद्रौ राशिभेदेऽपि कामुके ।  
 धनं तु गोधने वित्ते धाना भृष्टयवे स्त्रियाम् ॥ १३ ॥  
 धान्याकेऽप्यङ्कुरेऽब्धौ तु धेनो धेनी सरित्यपि ।  
 नग्नस्त्रिषु विवस्त्रे स्यात्पुंसि क्षपणबन्दिनोः ॥ १४ ॥  
 न्यूनमूनेऽपि गर्हेऽपि पानं पीतौ च रक्षणे ।  
 वनं तु कानने नीरेऽप्युत्से वासप्रवासयोः ॥ १५ ॥  
 वस्त्रं तु वसने मूल्ये वेतनद्रव्ययोरपि ।  
 बुध्नः शिफायामीशाने भानुः सूर्येऽपि दीधितौ ॥ १६ ॥  
 भिन्नं वाच्यवदन्यार्थे दारिते सङ्गते स्फुटम् ।  
 मानं प्रमाणे प्रस्थादौ मानश्चित्तोन्नतौ ग्रहे ॥ १७ ॥

दीन-कायर, दरिद्र, ( पुं० )	न्यून-कमती, निम्न, ( त्रि० )
दीना-मूसेकी स्त्री अर्थात् मूसा, ( स्त्री० )	पान-जल आदिका पीना, रक्षा, ( न० )
द्युम्न-पराक्रम, द्रव्य, ( न० )	वन-वन ( कानन ), जल, स्त्रिरना, घर, प्रवास, ( न० ) ॥ १५ ॥
प्रद्युम्न-कामदेव, ( पुं० ) ॥ १२ ॥	वस्त्र-वस्त्र, मूल्य, नौकरी, द्रव्य, ( न० )
धनु-चिरोजी-वृक्ष, धन-राशि, कामी- पुरुष, ( पुं० )	बुध्न-वृक्षकी जड़, महादेव, ( पुं० )
धन-गोधन, द्रव्य, ( न० )	भानु-सूर्य, ( पुं० ) किरण, ( स्त्री० ) ॥ १६ ॥
धाना-भूनाहुवा जौ ( स्त्री० ) ॥ १३ ॥	भिन्न-अन्य, फाडाहुवा, संगत ( युक्त ) ( त्रि० )
धनियां, वृक्षका अंकुर, ( पुं० )	मान-प्रस्थ ( ६४ तोले ) आदिप्रमाण, ( न० )
धेन-समुद्र, ( पुं० )	मान-चित्तकी उन्नति, ग्रह ( ग्रहणकर- ना ) ॥ १७ ॥ पूजा, ( पुं० )
धेनी-नदी, ( स्त्री० )	
नग्न-बस्त्ररहित, ( त्रि० ) मुनि, बन्दी- जन, ( पुं० ) ॥ १४ ॥	

मानः स्यादपि पूजायां मीनो राश्यन्तरे ज्ञेये ।

मुनिर्वाचयमे बुद्धे प्रियालाङ्गस्तिर्किंशुके ॥ १८ ॥

इङ्गुद्यामपि मृत्स्ना तु तुवरीमृत्स्नयोर्मता ।

यानं बाह्यगतौ योनिर्द्वयोः स्यादाकरे भगे ॥ १९ ॥

रत्नं मणावपि श्रेष्ठे रत्नश्चक्षकचण्डयोः ।

रास्ना तु स्याद्भुजङ्गाक्ष्यामेलापण्यामपि स्मृता ॥ २० ॥

राशीनामुदये लग्नं लग्नं सक्तेऽपि लज्जिते ।

वानं शुष्कफले शुष्कस्यूतयोस्त्रिष्वथ द्वयोः ॥ २१ ॥

वन्यासुरङ्गावातोर्मिसौरभेषु कटे गतौ ।

विभ्रं ज्ञाते स्थिते लब्धे शीनोऽजगरमूर्खयोः ॥ २२ ॥

पुंसेव पत्रिणि ज्येनः ज्येनः श्वेतेऽभिधेयवत् ।

सानुः शृङ्गे बुधेऽरण्ये वात्यायां पलवे पथि ॥ २३ ॥

मीन—मीन-राशि, मच्छी, ( पुं० )

मुनि—मुनि(साधु), बुद्धदेव, चिरोजी-  
का वृक्ष, हथिया-वृक्ष, गौदी-वृक्ष  
( पुं० ) ॥ १८ ॥

मृत्स्ना—अरहर या तूर, श्रेष्ठ मृत्तिका,  
( स्त्री० )

यान—बाहरको गमन, ( न० )

योनि—स्नान, भग, ( पुं० न० ) ॥ १९ ॥

रत्न—मणि, श्रेष्ठ, ( न० )

रत्न—( पुं० )

रास्ना—सरहटी या मंडनी, रायसन,  
( स्त्री० ) ॥ २० ॥

लग्न—राशियोंका उदय, ( न० )

लग्न—आसक्त, लज्जित ( त्रि० )

वान—सूखाफल, सूखा, सीना, ( त्रि० )  
वनसमूह, सुरंग, मृगभेद, अच्छा-  
गंध, चटाई, गति, ( पुं० स्त्री० )

विभ्र—जानाहुवा, स्थित, लब्धहुवा,  
( न० )

शीन—अजगर-सर्प, मूर्ख, ( पुं० )  
॥ २१ ॥ २२ ॥

ज्येन—सिकरा-पक्षी, ( पुं० ) सफेद  
रंगवाला, ( त्रि० )

सानु—पर्वतका शृंग, बुध, वन, वायु-  
का समूह, पत्ता, मार्ग, ( पुं० )  
॥ २३ ॥

सूनः पुत्रेऽनुजे सूर्ये सूनूर्दहितरि स्त्रियाम् ।  
 सूनं प्रसूने प्रसवे सूनमुच्छ्वसिते त्रिषु ॥ २४ ॥  
 सूना पुत्र्यां वधस्थाने गलशुण्ड्यामपीप्यते ।  
 स्त्यानं लोम्नि प्रतिश्रुत्यां मता स्निग्धे तु वाच्यवत् ॥ २५ ॥  
 स्थानं स्थितौ च सादृश्ये संनिवेशाऽवकाशयोः ।  
 स्थाने स्यादव्ययं ख्यातं युक्तार्थकरणार्थयोः ॥ २६ ॥  
 स्यूनोऽर्के किरणे स्वप्नः सुसधीखापदर्शने ।  
 हनुः कपोलावयवे मृत्यौ प्रहरणेऽस्त्रियाम् ॥ २७ ॥  
 गदे हृष्टविलासिन्यां हीनं गह्वोनयोस्त्रिषु ।

नवृतीयम् ।

अङ्गनं प्राङ्गणे यानेप्यङ्गना नायिकान्तरे ॥ २८ ॥  
 अङ्गना वामनेभस्य हस्तिन्यामपि दृश्यते ।  
 अञ्जनो दिक्करीन्द्रे स्यादञ्जनं तु रसाञ्जने ॥ २९ ॥

सूनु-पुत्र, छोटाभाई, सूर्य, ( पुं० )	स्यून-सूर्य, किरण, ( पुं० )
सून-पुष्प, जन्म ( उत्पत्ति ) ( न० )	स्वप्न-सोना, स्वप्नका देखना, ( पुं० )
सून-ऊर्द्धश्वास, ( त्रि० ) ॥ २४ ॥	हनु-ठोड़ी, मृत्यु, हथियार, ॥ २७ ॥
सूना-पुत्री, जीवमारनेका स्थान, तालुके ऊपर एक छोटी जीभ ( स्त्री० )	रोगविशेष, नख-गंधद्रव्य, ( पुं० न० )
स्त्यान-लोम, ( न० ) प्रतिध्वनि, ( स्त्री० ) स्निग्ध ( स्नेहवाला, ) ( त्रि० ) ॥ २५ ॥	हीन-निदित, न्यून ( कमती ) ( त्रि० )
स्थान-स्थिति, सादृश्य, प्रवेश, अवकाश, ( न० )	नवृतीय ।
स्थाने-युक्त अर्थ, करण अर्थ, ( अव्यय ) ॥ २६ ॥	अङ्गन-आँगन, सवारी ( न० )
	अंगना-स्त्री, ॥ २८ ॥ वामननामदि-गृहस्त्रीकी हस्तिनी, ( स्त्री० )
	अञ्जन-एक दिग्गृहस्त्री, ( पुं० ) रसौत ( न० ) ॥ २९ ॥

अक्षिकज्जलसौवीरे गिरिभेदेऽप्यथाञ्जने ।  
 ज्येष्ठीभेदे मरुत्पल्यामञ्जनी लेप्ययोषिति ॥ ३० ॥  
 अध्वा वर्त्मनि संक्लेशे स्कन्दे संस्थानकालयोः ।  
 अपानो गुदवाते स्यादपानं तु गुदे मतम् ॥ ३१ ॥  
 आब्जिनी विसिनीत्यादिपदान्यञ्जसरोवरे ।  
 महासहायामाम्लानः पुंस्येव त्रिषु निर्मले ॥ ३२ ॥  
 अयनं पथि भानोश्च दक्षिणोत्तरतोगतौ ।  
 नाऽरत्निः कफणौ हस्ते प्रकोष्ठवितताङ्गुलौ ॥ ३३ ॥  
 अर्जुनः पार्थककुभकर्त्तवीर्यशिखण्डिषु ।  
 मातुरेकसुतेऽपि स्यादर्जुनो धवलेऽन्यवत् ॥ ३४ ॥  
 अर्जुनी गल्युषायांच कुट्टिनीकरतोययोः ।  
 अर्जुनं तु तृणे नेत्ररोगेऽपि क्लीबमर्जुनम् ॥ ३५ ॥

नेत्रोंका, कज्जल, कालासुरमा, प-  
 र्वतभेद, ज्येष्ठीमधु, वायुकी स्त्री,  
 ( त्रि० ) अंजनी, स्त्रीका चित्र,  
 ( स्त्री० ) ॥ ३० ॥  
 अ( ध्वन् ) ध्वा—मार्ग, संक्लेश, क्षिरना,  
 मृत्पु, काल, ( पुं० )  
 अपान—गुदाका वायु, ( पुं० )  
 अपान—गुद, ( न० ) ॥ ३१ ॥  
 अब्जिनी—विसिनी—कमल, सरो-  
 वर, ( स्त्री० )  
 अम्लान—मखवन ( पुं० ) निर्मल,  
 ( त्रि० ) ॥ ३२ ॥

अयन—मार्ग, दक्षिण और उत्तरसे  
 सूर्यगति, ( न० )  
 अरत्नि—कौहनी, अंगुलियोंसमेत फे-  
 लाहुवा हाथ ( पुं० ) ॥ ३३ ॥  
 अर्जुन—अर्जुन-पांडुराजाका पुत्र, एकवृ-  
 क्ष, सहस्रबाहु, शिखंडी, माताका-  
 एकपुत्र, ( पुं० ) श्वेतवर्ण, ( त्रि० )  
 ॥ ३४ ॥  
 अर्जुनी—गौ, उषा-बाणासुरकी पुत्री,  
 कुट्टनी, करतोया नदी, ( स्त्री० )  
 अर्जुन—तृण, नेत्ररोग, ( न० ) ॥ ३५ ॥

अर्थी स्याद्याचके यक्षे सेवके च विवादिनि ।  
 अर्वा हये पुमानर्वा कुत्सितेऽप्यभिधेयवत् ॥ ३६ ॥  
 अशोघ्नी तालपण्यी स्यादशोघ्नः शूरे पुमान् ।  
 अली तु वृश्चिके भृङ्गेऽप्यवनं रक्षणे मुदि ॥ ३७ ॥  
 अशनिस्तु द्वयोर्वज्रे तडित्यपि मताऽशनिः ।  
 असनं क्षेपणे क्लीवमसनः पीतसारके ॥ ३८ ॥  
 असिक्नी सरिति प्रेष्याशुद्धान्ताऽवृद्धयोषिति ।  
 आत्मा ब्रह्ममनोदेहस्वभावधृतिबुद्धिषु ॥ ३९ ॥  
 आत्मायत्तेऽप्यथाऽऽदानं ग्रहणे वाजिभूषणे ।  
 आपन्नस्तु विपत्प्राप्ते प्राप्ते चाप्यभिधेयवत् ॥ ४० ॥  
 आसनं द्विरदस्कन्धपीठे पीठस्थितावपि ।  
 आसनी पण्यवीथ्यां स्यादासनो जीवकटुमे । ॥ ४१ ॥

अर्थिन्—याचक, यक्ष, सेवक, विवा-  
दी, ( पुं० )

अर्वन्—अश्व, ( पुं० ) कुत्सित, ( त्रि० )  
॥ ३६ ॥

अशोघ्नी—कपूरकचरी, ( स्त्री० )

अशोघ्न—जमीकंद, ( पुं० )

अलिन्—बीछ, भौरा, ( पुं० )

अवन—रक्षा, आनंद, ( न० ) ॥ ३७ ॥

अशनि—वज्र, ( पुं० स्त्री० ) बिजली,  
( स्त्री० )

असन—फेंकना, ( न० )

असन—विजयसार, ( पुं० ) ॥ ३८ ॥

असिक्नी—नदीभेद, रनवासमें जाने-  
वाली जवानदासी, ( स्त्री० )

आत्म(न्)—ब्रह्म, मन, शरीर, स्वभा-  
व, धृति, बुद्धि, अपने अधीन  
( पुं० ) ॥ ३९ ॥

आपन्न—विपत्को प्राप्तहुआ, प्राप्तहुवा,  
( त्रि० ) ॥ ४० ॥

आसन—हस्तियोंका कंधा, हस्तियोंकी-  
पीठ, पट्टाआदि, स्थिति, ( न० )

आसनी—दुकानोंकी पंक्ति, ( स्त्री० )

आसन—जीयापोता वृक्ष, ( पुं० )  
॥ ४१ ॥

उत्तानमुन्मुखे सुसेऽप्यंगम्भीरेऽपि वाच्यवत् ।

उत्थानमुद्रमे तन्नेऽप्युद्यमे हर्षणे रणे ॥ ४२ ॥

प्राङ्गणे पौरुषे चैव मलवेगे च पुस्तके ।

उदानस्तूदरावर्त्ते कण्ठवाताहिभेदयोः ॥ ४३ ॥

उद्धानं चुल्लिकायां स्यान्मतमुद्रमनेऽपि च ।

उद्यानं क्लीवमाक्रीडे निःसृतौ च प्रयोजने ॥ ४४ ॥

कठिना तु मता स्थाल्यां शर्करायां गुडस्य च ।

खटिकायां तु कठिनी कठिनं निष्ठुरे त्रिषु ॥ ४५ ॥

कदनं युधाद्ये कामे कम्पनं कम्प्रकम्पयोः ।

कमनः कामुके चाभिरूपे चाशोककामयोः ॥ ४६ ॥

कर्म व्याप्ये क्रियायां च परे स्यादङ्गसंस्कृतौ ।

कर्त्तनं छेदने तूलतन्तुकर्मणि योषिताम् ॥ ४७ ॥

उत्तान—ऊपरको मुखकरके सोयाहुवा,  
नहींगंभीर अर्थात् ऊँचा, ( त्रि० )

उत्थान—उद्गम, तन्त्र, उद्यम, आनन्द,  
रण, ॥ ४२ ॥ आँगन, पौरुष,  
मलवेग, पुस्तक, ( न० )

उदान—उदरका चक्र, कंठमें रहनेवाला  
वायु, सर्पभेद, ( पुं० ) ॥ ४३ ॥

उद्धान—चूल्हा, ( न० ) उद्गत ( प्र-  
कटहुवा ) ( त्रि० )

उद्यान—बगीचा-घरका, निकसना,  
प्रयोजन, ( न० ) ॥ ४४ ॥

कठिना—स्थाली ( चावलआदिपकाने-  
का पात्र ) गुड़की डली, ( स्त्री० )

कठिनी—खडिया-(मिट्टी) ( स्त्री० )

कठिन—निष्ठुर ( कठोर ) ( त्रि० )  
॥ ४५ ॥

कदन—युद्धआदि, कामदेव, ( न० )

कम्पन—कम्पनेके स्वभाववाला, काँपना  
( न० )

कमन—कामीपुरुष, सुंदर-पुरुष, शो-  
करहित, काम, ( पुं० ) ॥ ४६ ॥

कर्मन्—व्याप्य, क्रिया, पर, अंगका  
संस्कार, ( न० )

कर्त्तन—कतरना, सूतकातना, ( न० )  
॥ ४७ ॥

कलग्लायान्तु कलनं कलनं बन्धनेऽपि च ।  
 कल्पनं छेदने क्लृप्तौ कल्पना गजसज्जने ॥ ४८ ॥  
 पणस्य मानदण्डस्य चतुर्थीशेऽपि काकिनी ।  
 काञ्चनो धूर्त्तपुत्रागनागकेसरचम्पके ॥ ४९ ॥  
 उदुम्बरे काञ्चनारे हरिद्रायां च काञ्चनी ।  
 क्लीबं तु काञ्चने हेम्नि केशरेऽपि च काञ्चनम् ॥ ५० ॥  
 काननं विपिनेऽपि स्याच्चतुर्मुखमुखे गृहे ।  
 व्यांसे कर्णेपि कानीनः कानीनः कन्यकासुते ॥ ५१ ॥  
 कामिनी नायिकाभेदे वन्दायामपि कामिनी ।  
 कामी तु कामुके कोके कामी पारावतेऽपि च ॥ ५२ ॥  
 कुञ्जानं तु ह्यलङ्कारे भाजने गोलकान्तरे ।  
 कुहना दम्भचर्यायामीप्यालौ दाम्भिके त्रिषु ॥ ५३ ॥

कलन-बन्धन ( न० )

कल्पन-छेदन, रचना, ( न० )

कल्पना-हस्तीसिंगारना, ( स्त्री० )  
॥ ४८ ॥

काकिनी-पैसाका चौथाहिस्सा, मान  
दंडका चौथाहिस्सा ( स्त्री० )

कांचन-धतूरा, पुत्राग-वृक्ष, नागकेसर,  
चंपा, ॥ ४९ ॥ गूलर-वृक्ष,  
कचनार-वृक्ष, ( पुं० )

कांचनी-हलदी, ( स्त्री० )

कांचन-सुवर्ण, कमल केसर, ( न० )  
॥ ५० ॥

१३

कानन-वन, ब्रह्माका मुख, घर,  
( न० )

कानीन-व्यास, कर्ण, कन्याका पुत्र,  
( पुं० ) ॥ ५१ ॥

कामिनी-स्त्रीभेद, वृक्षकी लता  
( स्त्री० )

कामिन-कामी-पुरुष, चकवा, कबूतर  
( पुं० ) ॥ ५२ ॥

कुञ्जान-आभूषण, पात्र, गोलाभेद,  
( न० )

कुहना-दम्भचर्या, ईर्ष्याकरनेवाला,  
दम्भकरनेवाला, ( त्रि० ) ॥ ५३ ॥



कृती तु पण्डिते योग्ये केतनं लाञ्छने गृहे ।  
 केतनं स्यात्पताकायां कार्ये चोपनिमग्नणे ॥ ५४ ॥  
 चीनैकदेशे कौपीनं स्याद्गुह्याकार्ययोरपि ।  
 कौलीनं तु परीवादे कुलीनत्वे कुकर्मणि ॥ ५५ ॥  
 गुह्येऽपि सङ्गरेपि श्वभुजङ्गपशुपक्षिणाम् ।  
 भवेत्क्रन्दनमाह्वाने मतमश्रुविमोचने ॥ ५६ ॥  
 खड्गी तु गण्डके पुंसि खड्गी खड्गायुधेऽपि च ।  
 गन्धनं सूचने हिंसासमुत्साहप्रकाशने ॥ ५७ ॥  
 गर्जनं तु मतं क्रोधे निखने मेघनिखने ।  
 गहनं कानने दुःखे गह्वरे कलिलेऽपि च ॥ ५८ ॥  
 गायनं स्वप्ने क्लीबं च गीतजीविनि गायने ।  
 विषदिग्धपशोर्मांसे गृञ्जनं लशुने पुमान् ॥ ५९ ॥

कृतिन्—पण्डित, योग्य, ( पुं० )  
 केतन—लालन, घर, ( न० )  
 केतन—पताका, कार्य, निमग्नण, (न०)  
 ॥ ५४ ॥  
 कौपीन—वस्त्रका खंड, गुह्य-देश, अ-  
 कार्य, ( न० )  
 कौलीन—निंदा, कुलीनत्व, कुकर्म,  
 ॥ ५५ ॥  
 गुह्यदेश, कुत्ता सर्प-पशु-पक्षियोंका  
 युद्ध, ( न० )  
 क्रन्दन—बुलाना, आसूहालना, (न०)  
 ॥ ५६ ॥

खड्गिन् गैंडा, ( पुं० ) खड्गहथिया-  
 रवाला, ( त्रि० )  
 गन्धन—सूचनकरना, हिंसा, उत्साह-  
 का प्रकाश, ( न० ) ॥ ५७ ॥  
 गर्जन—क्रोध, शब्द, मेघशब्द (न०)  
 गहन—वन, दुःख, सकड़ा, सघन,  
 ( न० ) ॥ ५८ ॥  
 गायन—स्वप्न ( न० ) गानेकी जीवि-  
 कावाला, ( त्रि० ) गाना, ( न० )  
 गृञ्जन—विषमिला पशुका मांस, (न०)  
 हस्तन, ( पुं० ) ॥ ५९ ॥

गोमी गवीश्वरे हरौ स्यान्महेष्वासकेऽपि च ।  
 गोस्तनी हारहरायां हारभेदे तु गोस्तनः ॥ ६० ॥  
 ग्रावा तु पुंसि पाषाणे गिरिवारिदयोरपि ।  
 घट्टना चलनायां स्यादावृत्त्यामपि घट्टिनी ॥ ६१ ॥  
 चक्री हरिकुलालाऽहिकोकेषु ग्रामजालिने ।  
 चन्दना कालिभेदे स्याच्चन्दनं मलयोद्भवे ॥ ६२ ॥  
 चन्दनी तु नदीभेदे चर्म स्यात्फलकत्वयोः ।  
 चर्मर्मी फलकपाणौ स्याद्भृङ्गरीटे मृदुत्वचि ॥ ६३ ॥  
 चलनं भ्रमणे कम्पे वाच्यवत्कम्पशालिनि ।  
 चलनी वस्त्रघर्षयी वारीभेदेऽपि दृश्यते ॥ ६४ ॥  
 चेतनश्चेतनायुक्ते त्रिषु संविदि चेतना ।  
 पत्रे पतत्रे छदनं छद्म शापकिलासयोः ॥ ६५ ॥

गोमिन्-गोबोका स्वामी, विष्णु, ब-  
 डाधनुष, ( पुं० )

गोस्तनी-दाख, ( स्त्री० )

गोस्तन-हारभेद, ( पुं० ) ॥ ६० ॥

ग्रावन्-पत्थर, पर्वत, मेघ, ( पुं० )

घट्टना-चलना, घट्टिनी-आवृत्ति,  
 ( स्त्री० ) ॥ ६१ ॥

चक्रिन्-विष्णु, कुम्हार, सर्प, चक्रवा,  
 ग्राममें होनेवाली तोरई, ( पुं० )

चन्दना-कालिभेद, ( स्त्री० )

चन्दन-मलयाचलमें होनेवाला काष्ठ,  
 ( न० ) ॥ ६२ ॥

चन्दनी-नदीभेद, ( स्त्री० )

चर्मन्-ढाल, त्वचा, ( न० )

चर्मिन्-ढालधारी, भृङ्गरीट ( शिव-  
 गण ) भोजपत्र, ( पुं० ) ॥ ६३ ॥

चलन-भ्रमण, कंप, ( न० ) काँपनेके  
 स्वभाववाला ( त्रि० )

चलनी-वस्त्रकी घघरी, हस्तीके पैरबों-  
 धनेकी रस्सी, ( स्त्री० ) ॥ ६४ ॥

चेतन-चेतना ( बुद्धि ) सेयुक्त, ( त्रि० )

चेतना-बुद्धि, ( स्त्री० )

छदन-पत्ता, पक्षीकी पर, ( न० )

छद्मन्-शाप, सीपरीग, ( न० )

॥ ६५ ॥

लक्ष्येऽपि छर्दनस्तु स्यान्निम्बालम्बुषवान्तिषु ।  
 छेदनं भेदने छेदे जगस्तुर्जन्तुशुष्मणोः ॥ ६६ ॥  
 जघनं वनिताश्रोणीपुरोभागे कटावपि ।  
 जयनं तु जये वाजिगजप्रभृतिकञ्चुके ॥ ६७ ॥  
 यवनो यवमात्रेऽपि यवाधिकतुरङ्गमे ।  
 देशभेदे तुरुष्केऽपि जवनः प्रजवे त्रिषु ॥ ६८ ॥  
 तपनो रविसन्तापे भल्लके नरकान्तरे ।  
 तमोग्नश्चन्द्रसूर्याऽग्निबुद्धश्रीकण्ठविष्णुषु ॥ ६९ ॥  
 तलिनं विरले स्तोके स्वच्छगम्भीरयोरपि ।  
 तलुनः पवने यूनि वाच्यवत्तलुनी स्त्रियाम् ॥ ७० ॥  
 तेमनं व्यञ्जने क्लेदे चुलिकाभिदि तेमनी ।  
 तोदनं व्यथने तोत्रे त्यागी सूर्येऽपि दातरि ॥ ७१ ॥

छर्दन—निशाना, नींव, लजालभेद, छर्दि ( त्रि० )	तपन—सूर्यसे गरम ( धूप ), भिलावा, नरकभेद, ( पुं० )
छेदन—भेदनकरना, छेदनकरना, ( न० )	तमोग्न—चंद्रमा, सूर्य, अग्नि, बुद्धदेव, महादेव, विष्णु, ( पुं० ) ॥ ६९ ॥
जगन्—जन्तु, अग्नि, ( पुं० ) ॥ ६६ ॥	तलिन—विरल ( कोई ), थोड़ा, स्वच्छ, गम्भीर, ( त्रि० )
जघन—छाँकी श्रोणियोंका अग्रभाग ( जाँघ ), और कटि, ( न० )	तलुन—वायु, ( पुं० ) जवान, ( त्रि० )
जयन—जय, अश्व ( घोड़े ) हाथी आदि का कवच ( न० ) ॥ ६७ ॥	तलुनी—जवान स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ ७० ॥
यवन—जवमात्र, जवभरजादा अश्व, देशभेद, यवन ( मुसलमान ) जाति, ( पुं० )	तेमन—व्यञ्जन ( शाक ), गीला, ( न० )
जवन—बहुतवेगवाला ( त्रि० ) ॥ ६८ ॥	तेमनी—चूल्हाभेद ( स्त्री० )
	तोदन—पीड़ा, बैलआदि हाँकनेकी पैनी, ( न० )
	त्यागिन्—शूर, दाता, ( पुं० ) ॥ ७१ ॥

पुष्पे वीरेऽपि दमनो दर्शनं दृशि दर्पणे ।

स्वप्ने वर्त्मनि बुद्धौ च शास्त्रधर्मोपलब्धिषु ॥ ७२ ॥

दंशनः शिशिरे पुंसि दंशनं कवचे रदे ।

दहने दुष्टवरिते भलाते चित्रकेऽनले ॥ ७३ ॥

दृशानस्तु गृहपतौ दृशानं ज्योतिषि स्मृतम् ।

देवनः पाशके पुंसि धन्व चापे स्थलेऽपि च ॥ ७४ ॥

धन्वी धनुर्द्धरे खिङ्गेऽप्यर्जुने चार्जुनद्रुमे ।

धमनस्त्वनले भस्ताध्मापककूरयोस्त्रिषु ॥ ७५ ॥

धमनी कंधरायां च हरिद्राशिरयोरपि ।

धाम रश्मौ गृहे देहे प्रभावस्थानजन्मसु ॥ ७६ ॥

धावनं धाविते शुद्धौ पृष्टिपर्ण्यां तु धावनी ।

स्याद्धावनी रजन्यां च धौतांजन्यां च तत्तरे ॥ ७७ ॥

दमन-दोना-पुष्प, वीर, ( पुं० )

दर्शन-दृष्टि ( नेत्र ), दर्पण ( शीशा ),

स्वप्न, मार्ग, बुद्धि, शास्त्र, धर्म,

उपलब्धि ( प्राप्ति ) ( न० ) ॥ ७२ ॥

दंशन-शिशिर-ऋतु, ( पुं० )

दंशन-कवच, दाँत, ( न० )

दहन-दुष्टवरितवाला, भिलावा, ची-

ता, अग्नि, ( पुं० ) ॥ ७३ ॥

दृशान-घरका स्वामी, ( पुं० )

दृशान-ज्योति, ( न० )

देवन-चौपदखेलनेका पासा, ( पुं० )

धन्वन्-धनुष, स्थल, ( न० ) ॥ ७४ ॥

धन्विन्-धनुषधारी, चतुरमनुष्य,

अर्जुन, अर्जुनवृक्ष, ( पुं० )

धमन-अग्नि, धमनीसे अग्निधमनेवा-

ला, कूर, ( पुं० ) ॥ ७५ ॥

धमनी-ग्रीवा, हलदी, नाडी, ( स्त्री० )

धाम-किरण, घर, शरीर, प्रभाव,

स्थान, जन्म, ( न० ) ॥ ७६ ॥

धावन-धोवना, शुद्धि, ( न० )

धावनी-पिठवन ( स्त्री० )

धावनी-रात्रि, धोयाहै अंजनजिसने

ऐसी स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ ७७ ॥

ध्वजी द्विजे रथे शैले तुरङ्गे च भुजङ्गमे ।

नन्दनो हर्षके पुत्रे नन्दनं मिश्रकावने ॥ ७८ ॥

नन्दनी तु मता देवधुनीधेनुननान्दृषु ।

नन्दी नन्दीश्वरे गर्द्भाण्डन्यग्रोधवृक्षयोः ॥ ७९ ॥

नलिनी तु सरोजिन्यां सरोजे च सरोवरे ।

व्योमगङ्गामलिकयोः नलिनं तु जलाब्जयोः ॥ ८० ॥

निदानं रोगनियमेऽप्यादिहेत्ववमानयोः ।

वत्सदाम्नि निदानं स्यान्निधनं कुलनाशयोः ॥ ८१ ॥

पत्री काण्डखगश्येननगद्रुथिके रथे ।

पद्मिनी पद्मनलिनीसरस्सु वनितान्तरे ॥ ८२ ॥

पर्वं स्यादुत्सवे ग्रन्थौ दर्शप्रतिपदोरपि ।

तत्सन्धौ विषुवादौ च प्रस्तावे लक्षणान्तरे ॥ ८३ ॥

ध्वजिन्—ब्राह्मण, रथ, पर्वत, सर्प,  
( पुं० )

नन्दन—हर्षकरनेवाला, पुत्र,

नन्दन—इंद्रका बगीचा, ( न० ) ॥ ७८ ॥

नन्दनी—गंगा, धेनु—भेद, ननद, ( स्त्री० )

नन्दिन्—नन्दीश्वर-रुद्रगण, पारसपीपल,  
बड़-वृक्ष, ( पुं० ) ॥ ७९ ॥

नलिनी—कमलिनी, कमल, सरोवर,  
आकाशगंगा, आँवला, ( स्त्री० )

नलिन—जल, कमल, ( न० )  
॥ ८० ॥

निदान—रोगोंका दूरकरना, आदिका-

रण, अपमान, बछड़ाकी रस्ती,  
( न० )

निधन—कुल, नाश, ( न० ) ॥ ८१ ॥

पत्रिन्—बाण—पक्षी, शिकरा, पर्वत,  
वृक्ष, रथरवान, रथ, ( पुं० )

पद्मिनी—कमल, कमलिनी, सरो-  
वर, स्त्रीभेद, ( स्त्री० ) ॥ ८२ ॥

पर्वन्—उत्सव, ग्रंथि, अमावस्या,  
प्रतिपदा, अमावस्या प्रतिपदाकी सं-  
धि, समानदिनरात्रिवाला काल  
आदि, प्रस्ताव, लक्षणभेद, ( न० )  
॥ ८३ ॥

पवनोऽस्त्री कुलालस्य पाकस्थानेऽनिले पुमान् ।  
 निर्विकल्पेऽपि पवनः पक्ष्म लोचनलोमनि ॥ ८४ ॥  
 पक्ष्म सूत्रादिसूक्ष्मांशे पक्ष्म स्यात्केशरेऽपि च ।  
 पावनं तु जले कृच्छ्रे पावकाध्यासयोः पुमान् ॥ ८५ ॥  
 पाठीनस्तु वदाले स्यादपि चित्रवदालके ।  
 पाठके गुग्गुलुद्रौ च प्रायश्चित्ते तु पाचनम् ॥ ८६ ॥  
 पाचनी तु हरीतक्यां पाचनो वह्निसिद्धयोः ।  
 पावनं पावयितरि त्रिषु पूतेऽपि पावनम् ॥ ८७ ॥  
 वरुणे पुंसि स्यात्पाशी पाशी पाशधरेऽन्यवत् ।  
 पिशुनो नारदे पुंसि खलसूचकयोस्त्रिषु ॥ ८८ ॥  
 पिशुनं कुङ्कुमे क्लीवं पृक्कायां पिशुना मता ।  
 पीतनः कपिचूते स्यात्पीतनं पीतदारुणि ॥ ८९ ॥

पवन-कुम्हारका पाकस्थान, वायु, निर्विकल्प, ( पुं० )	पाचनी-हरद, ( स्त्री० )
पक्ष्म-नेत्राँके लोम, ॥ ८४ ॥ सूत्र आदिका सूक्ष्म अंश, केशर, ( न० )	पाचन-अग्नि, ह्रीं, ( पुं० )
पावन-जल, कृच्छ्र-व्रत आदि, अग्नि, अध्यास, ( जैसे रज्जुमें सर्प ) ( पुं० ) ॥ ८५ ॥	पावन-पवित्र करनेवाला, पवित्र, ( त्रि० ) ॥ ८७ ॥
पाठीन-मत्स्यभेद, चितकबरामत्स्य- भेद, पढानेवाला, गूगल-वृक्ष, ( पुं० )	पाशिन-वरुण, ( पुं० ) फाँसीधार- णकरनेवाला, ( त्रि० )
पाचन-प्रायश्चित्त ( दोषदूरकरनेके- लिये पुण्यकर्म ) ( न० ) ॥ ८६ ॥	पिशुन-नारदमुनि, ( पुं० ) खल, बुगलखोर, ( त्रि० ) ॥ ८८ ॥
	पिशुन-कुङ्कुम ( केसर ) ( न० )
	पिशुना-असवरग-शाक,
	पीतन-अंबाका, पीतवृक्ष ॥ ८९ ॥

कुङ्कुमे हरिताले च पृतना राक्षसीभिदि ।

पथ्यायां चाथ पृतनाऽनीकिनीसैन्यभेदयोः ॥ ९० ॥

स्याच्चमूसेनयोश्चाथ प्रज्ञानं लाञ्छने धियि ।

प्रधनं दारुणे सङ्ख्ये प्रधानं परमात्मनि ॥ ९१ ॥

क्षेत्रज्ञधीमहामात्रेऽप्येकत्वे तूत्तमे सदा ।

प्रसूनो वाच्यवज्जाते प्रसूनं फलपुष्पयोः ॥ ९२ ॥

प्रसन्ना मदिरायां स्यात्प्रसादसहिते त्रिषु ।

प्रेत्वा तु सारसे वाते प्रेम तु स्नेहनर्मणोः ॥ ९३ ॥

फाल्गुनस्तु तपस्ये स्यादर्जुने चार्जुनद्रुमे ।

फाल्गुनः स्यान्नदीजेऽपि फाल्गुनी पूर्णिमान्तरे ॥ ९४ ॥

बन्धनं तु शतबन्धे बन्धमात्रेऽपि बन्धनम् ।

वर्द्धनं छेदने वृद्धौ वारिधान्यां तु वर्द्धिनी ॥ ९५ ॥

केसर, हरिताल, ( पुं० )	प्रेतवन्-सारस-पक्षी, वायु, ( पुं० )
पृतना-राक्षसीभेद, हरङ्ग, ( स्त्री० )	प्रेमन्-स्नेह ( प्रीति ), टट्टा, ( न० )
पृतना-सेना-मात्र, सेनाभेद, चमू ( सेनाभेद ), ( स्त्री ) ॥ ९० ॥	॥ ९३ ॥
प्रज्ञानं-लाञ्छन ( चिह्न ), बुद्धि, ( न० )	फाल्गुन-फाल्गुनमास, अर्जुन, कोह-वृक्ष, भीष्म, ( पुं० )
प्रधन-कठोर युद्ध, ( न० )	फाल्गुनी-फाल्गुनमासकी पूर्णिमा, ( स्त्री० ) ॥ ९४ ॥
प्रधान-परमात्मा, ( न० ) ॥ ९१ ॥ क्षेत्रज्ञ, बुद्धि, मंत्री, एकत्व, सदा उत्तम, ( न० )	बन्धन-शतबन्ध, बन्धमात्र, ( न० )
प्रसून-उत्पन्नहुवा, ( त्रि० )	वर्द्धन-छेदन, वृद्धि, ( न० )
प्रसून-फल, पुष्प, ( न० ) ॥ ९२ ॥	वर्द्धिनी-जलकी, मटकी ( स्त्री० )
प्रसन्ना-मदिरा, ( स्त्री० ) प्रसादयु- क्त, ( त्रि० )	॥ ९५ ॥

संपूर्वाद्धर्द्धनं पोषे वसनं छादनांशुके ।  
 वाणिनी तु मत्तानर्त्तक्योर्विदग्धायां स्त्रियामथ ॥ ९६ ॥  
 वासना वसने वारासनज्ञाने च धूपने ॥  
 वाहिनी स्यादनीकिन्यां सैन्यभेदे सरित्यपि ॥ ९७ ॥  
 गुरौ पुंसि बुधानः स्याद्बुधानः पण्डितेऽपि च ।  
 बोधनी बोधिपिप्पल्योर्बोधनं गन्धदीपने ॥ ९८ ॥  
 सुरवर्त्मनि च व्योम व्योमचारिणि च स्मृतम् ।  
 ब्रह्मा विरिञ्चे विप्रेऽपि ऋत्विक्चन्द्रार्कयोगयोः ॥ ९९ ॥  
 ब्रह्म क्लीवं श्रुतिज्ञानेऽप्यध्यात्मतपसोरपि ।  
 ब्रह्माण्यां भट्टिनी नाट्ये राजयोषिति भट्टिनी ॥ १०० ॥  
 भण्डनं तु खलीकारे युद्धसन्नाहयोरपि ।  
 भर्म स्वर्णे भृतौ सारे भवनं भावसन्नोः ॥ १०१ ॥

संवर्द्धन-पोषण, ( न० )

वसन-आच्छादन, वस्त्र, ( न० )

वाणिनी-मदोन्मत्ता स्त्री, नाचनेवाली,  
चतुरा स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ ९६ ॥

वासना-वस्त्र, शतबंधआदि, धूपदे-  
ना, ( स्त्री० )

वाहिनी-सेना, सेनाभेद, नदी,  
( स्त्री० ) ॥ ९७ ॥

बुधान-बृहस्पति, पंडित, ( पुं० )

बोधनी-पीपल-वृक्ष, पिप्पली ( औ-  
षधि ( स्त्री० )

बोधन-गन्धदीपन ( गूगल ) ( न० )  
॥ ९८ ॥

व्योमन्-आकाश, अकाशचारी, ( न० )  
ब्रह्मन्-ब्रह्मा, ब्राह्मण, यज्ञकरानेवाला,  
चंद्रसूर्यका योग, ( पुं० ) ॥ ९९ ॥

ब्रह्मन्-श्रुतिज्ञान, ब्रह्मविद्या, तप, ( न० )  
भट्टिनी-ब्राह्मणी, नाट्यमें राजाकी  
रानी ( स्त्री० ) ॥ १०० ॥

भण्डन-नहींबुराको बुरा कहना, युद्ध,  
कवच, ( न० )

भर्मन्-सुवर्ण, नौकरी, सार, ( न० )

भवन-भाव, स्थान, ( न० ) ॥ १०१ ॥



भाजनं पात्रे योग्येऽपि भावना ध्यानलेपयोः ।  
 भुवनं तु जगल्लोकसलिलेषु विहायसि ॥ १०२ ॥  
 भोगी भोगान्विते सर्पे ग्रामण्यां राज्ञि नापिते ।  
 संगृहीतस्त्रियां राजभार्याभेदेऽपि भोगिनी ॥ १०३ ॥  
 मंजनं भोजने क्लीबमलंकर्त्तरि वाच्यवत् ।  
 मदनः सरधत्तूरवसन्तद्रुमसिक्थके ॥ १०४ ॥  
 मलनः पठवासेऽपि स्यान्मलनं कर्द्दमे मतम् ।  
 पुष्पवत्यां तु मलिनी मलिनं दूषितेऽसिते ॥ १०५ ॥  
 मार्जनं तु मतं माष्टौ मार्जनो लोभ्रपादपे ।  
 मालिनी वृत्तभेदे स्याद्गङ्गामालिकयोषितोः ॥ १०६ ॥  
 गौर्या चम्पानगर्या च राशौ तु मिथुनः पुमान् ।  
 मिथुनं दम्पतीयुग्मे सम्बन्धग्राम्यधर्मयोः ॥ १०७ ॥

भाजन—पात्र, योग्य, ( न० )  
 भावना—ध्यान, लेप, ( स्त्री० )  
 भुवन—जगत्, लोक-स्वर्ग आदि,  
 जल, आकाश, ( न० ) ॥ १०२ ॥  
 भोगिन्—भोगोंसे युक्त, सर्प, ग्राममें  
 प्रधान, राजा, नाई, ( पुं० )  
 भोगिनी—विवाहके विना संग्रहकरी  
 हुई स्त्री, पाट्टरानीके विना राजाकी  
 अन्य रानी, ( स्त्री० ) ॥ १०३ ॥  
 मंजन—भोजन, ( न० ) भूषितकरने-  
 वाला ( त्रि० ) ।  
 मदन—कामदेव, धत्तूरा, वसन्तवृक्ष  
 ( आमका पेठ ), मोम, ( पुं० )  
 ॥ १०४ ॥

मलन—पढ़नेका स्थान, ( पुं० ) कीच,  
 ( न० )  
 मलिनी—रजस्वला स्त्री, ( स्त्री० )  
 मलिन—दूषित, काला ( न० ) ॥ १०५ ॥  
 मार्जन—माजना, ( न० ) मार्जन-  
 लोधका वृक्ष, ( पुं० )  
 मालिनी—छंदभेद, गंगा, मालीकी  
 स्त्री ( मालिन ) ॥ १०६ ॥  
 गौरी, चंपानगरी, ( स्त्री० )  
 मिथुन—मिथुन-राशि, ( पुं० ) स्त्रीपु-  
 रुषका जोड़ा, संबंध, स्त्रीसंग, ( न० )  
 ॥ १०७ ॥

मुण्डनं वपने त्राणे मेहनं शिश्रमूत्रयोः ।  
 मैथुनं स्यान्निधुवने मैथुनं सङ्गतावपि ॥ १०८ ॥  
 यमनं स्यादुपरमे बन्धने च यमे तथा ।  
 यापनं वर्त्तने कालक्षेपे निरसनेऽपि च ॥ १०९ ॥  
 प्रजानो ब्राह्मणेऽपि स्यात्प्रजानः सारथावपि ।  
 युवा तु तरुणे श्रेष्ठे निसर्गबलशालिनि ॥ ११० ॥  
 योजनं तु चतुःकोश्यां योगे च परमात्मनि ।  
 रजनी तु हरिद्रायां लाक्षायां नीलिकारसे ॥ १११ ॥  
 रञ्जनो रागजनके रञ्जनं रक्तचन्दने ।  
 रञ्जनी नीलिकाशुण्डामञ्जिष्ठारोचनीष्वपि ॥ ११२ ॥  
 जिह्वाकांचीरसज्ञेषु रसना रसने स्वे ।  
 सेदने मूर्छने भस्त्रावाते नासामरुत्पथे ॥ ११३ ॥

मुण्डन-संपूर्ण केशोंका क्षौर, रक्षा,  
 ( न० )

मेहनं-लिंग, मूत्र, ( न० )

मैथुन-स्त्रीसंग, संगति, ( न० )  
 ॥ १०८ ॥

यमन-उपराम, बन्धन, यम ( अष्टां-  
 गयोगका एक अंग ), ( न० )

यापन-वर्तना, कालक्षेपकरना, निकासना, ( न० ) ॥ १०९ ॥

प्रजान-ब्राह्मण, सारथि, ( पुं० )

युवन-जवान, श्रेष्ठ, स्वाभाविक बलवान्, ( पुं० ) ॥ ११० ॥

योजन-चारकोश, योग, परमात्मा,  
 ( न० )

रजनी-हलदी, लाख, नीलिका रस,  
 ( स्त्री० ) ॥ १११ ॥

रंजन-प्रसन्नकरनेवाला, ( पुं० )

रंजन-रक्त चंदन ( न० )

रंजनी-नीली, मदिरा, मँजीठ, गोरोचन, ( स्त्री० ) ॥ ११२ ॥

रसना-जिह्वा, करधनी, रसका जाननेवाला, खाना, शब्द, पसीनादि-  
 वाना, मूर्छा, धमनीका वायु, नासिकावायुका मार्ग ( स्त्री० ) ॥ ११३ ॥

रागी तु कोपने रक्ते रागयुक्तेऽपि कामिनि ।

राजा चन्द्रे नृपे शक्रे क्षत्रिये प्रभुयक्षयोः ॥ ११४ ॥

राधनं साधने प्राप्तौ तोषणेऽपि च राधनम् ।

रेचनी त्रिवृता शुण्डा रोचनी दन्तिकार्थिका ॥ ११५ ॥

रोचनो रक्तकहारे कूटशाल्मलिशाखिनि ।

अपि गोपितमङ्गलरचितस्त्रीषु रोचना ॥ ११६ ॥

रोदनं क्रन्दनेऽपि स्यादश्रुमात्रेऽपि रोदनम् ।

रोही रोहितके बोधिद्रुमे न्यग्रोधपादपे ॥ ११७ ॥

लङ्घनं क्रमणे पीडाकृतोपवसने ह्रुतौ ।

ललना तु नितम्बिन्यां जिह्वायां नाडिकान्तरे ॥ ११८ ॥

लक्ष्म चिह्ने प्रधानेऽपि लाञ्छनं नामलक्ष्मणोः ।

लेखनं तु लिपिन्यासे छर्दे भूर्जेऽपि लेखनम् ॥ ११९ ॥

रागिन्-क्रोधी, अनुरक्त, राग (प्रीति) रोदन-आवाजसे रोना, ऑसूडाल-  
वाला, कामी, ( पुं० ) ना, ( न० )

राजन्-चन्द्रमा, राजा, इन्द्र, क्षत्रिय, रोहिन्-हरीदावृक्ष, पीपल-वृक्ष, बह-  
प्रभु ( समर्थ ) यक्ष, ( पुं० ) वृक्ष, ( पुं० ) ॥ ११७ ॥

राधन-साधन, प्राप्ति, तुष्टि, ( न० ) लङ्घन-चलना, पीडामेंकिया उपवास,  
कूदना, ( न० )

रेचनी-निसोथ, मदिरा, ( स्त्री० ) ललना-स्त्री, जिह्वा, नाडीभेद, ( स्त्री० )

रोचनी-जमालगोटाकी जड, वेइया, ॥ ११८ ॥

रोचन-लालकमल, कालासेमर-वृक्ष, लक्ष्मन्-चिह्न, प्रधान, ( न० )

( पुं० ) लाञ्छन-नाम, चिह्न, ( न० )  
रोचना-गोरोचन, मंगलरचित ( चौ-  
क ) स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ ११६ ॥ लेखन-लिपिन्यासे ( लिखना ), छर्द  
( कअ ), भोजपत्र, ( न० ) ॥ ११९ ॥

वचक्कुर्वाक्पटौ विप्रे वशी सुगतशक्रयोः ।  
 वपनं मुण्डने वापे वमनं छर्दनेऽर्दने ॥ १२० ॥  
 आहतावप्यथ क्लीवं वर्जनं त्यागहिंसयोः ।  
 वर्त्तनं जीवने जीव्ये तूलनाले च वर्त्तनम् ॥ १२१ ॥  
 वर्त्तनी तर्कुपिण्डेऽपि मलिने पथि वर्त्तनी ।  
 वर्णी चित्रकरे ब्रह्मचारिलेखकयोरपि ॥ १२२ ॥  
 आकारे शोभने वर्ष्म वर्ष्म देहप्रमाणयोः ।  
 वर्त्म नेत्रच्छदे मार्गे वाग्मी वाचस्पतौ पटौ ॥ १२३ ॥  
 वाजी वाहे खगे बाणे खर्वेषु त्रिषु वामनः ।  
 वामनो विष्णुभेदे स्यादश्वे याम्यादिदिग्गजे ॥ १२४ ॥  
 विक्लिन्नस्तिमिते जीर्णे जराजीर्णेपि वाच्यवत् ।  
 विच्छिन्नस्तु समालब्धे विभक्ते कुटिलेऽन्यवत् ॥ १२५ ॥

वचक्कु-बहुतबोलनेवाला, ( त्रि० ) ब्राह्मण, ( पुं० )	वर्ष्म-आकार, सुंदर, शरीर, प्रमाण, ( न० )
वशिन्-बुद्धदेव, इंद्र, ( पुं० )	वर्त्मन्-पलक, मार्ग, ( न० )
वपन-मुण्डन, बौना-बीजआदिका ( न० )	वाग्मिन्-बृहस्पति, चतुर, ( पुं० ) ॥ १२३ ॥
वमन-छर्दन, अर्दन (पीडन) ॥ १२० ॥ जानसे मारना, ( न० )	वाजिन्-अश्व, पक्षी, बाण, ( पुं० )
वर्जन-दान, हिंसा, ( न० )	वामन-बौना, ( त्रि० ) विष्णु अव- तार ( वामन ), अश्वभेद, दक्षिण दिशाका हस्ती, ( पुं० ) ॥ १२४ ॥
वर्त्तन-जीना, आजीविका, रुईकी- नाली, ( न० ) ॥ १२१ ॥	विक्लिन्न-गलाहुवा, जीर्ण, ( पुं० ) वृद्धअवस्थासे जीर्ण ( वृद्ध ) ( त्रि० )
वर्त्तनी-कुकड़ी, मलिन, मार्ग, ( त्रि० )	विच्छिन्न-अच्छेप्रकारसे लब्ध, वि- भागकियाहुवा, कुटिल, ( त्रि० ) ॥ १२५ ॥
वर्णिन्-चित्रकार, ब्रह्मचारी, लेखक ( पुं० ) ॥ १२२ ॥	

विज्ञानं कर्मणो ज्ञाने वितानं रिक्तमन्दयोः ।  
 त्रिषु न स्त्री वितानं स्याद्विस्तारोल्लोचयोर्मखे ॥ १२६ ॥  
 वस्त्रवेश्मन्यवसरे वृत्ते च क्रतुकर्मणि ।  
 विपन्नो भुजगे पुंसि त्रिषु नष्टे विपद्गते ॥ १२७ ॥  
 विमानो व्योमयानेऽस्त्री सप्तभूमौ गृहेऽपि च ।  
 विलग्नस्त्वंगमध्ये स्यान्निष्वेव चाङ्गलम्बयोः ॥ १२८ ॥  
 विषग्नस्तु शिरीषे स्याद्रुद्धूचीत्रिवृतोः स्त्रियाम् ।  
 वृजिनं कलुषे क्लीबं केशे ना कुटिले त्रिषु ॥ १२९ ॥  
 वृषा सुरेश्वरे कर्णे वेदना ज्ञानपीडयोः ।  
 वेष्टनं कर्णशङ्कुल्यामुष्णीषे मुकुटे वृतौ ॥ १३० ॥  
 व्यञ्जनं तेमने श्मश्रुचिह्नावयवकादिषु ।  
 स्वातंत्र्यकृत्ये व्युत्थानं विरोधाचरणेऽपि वा ॥ १३१ ॥

विज्ञान—औषधियोंके योगसे उच्चाटन आदिकर्म, ज्ञान, ( न० )	विषग्न—सिरस वृक्ष, ( पुं० ) गिलोय, निसोथ ( स्त्री० )
वितान—रीता, मंद, ( त्रि० ) वि- स्तार, चँदौवा, यज्ञ, ॥ १२६ ॥ तं- बूहेरा, अवसर, वृत्तांत, यज्ञकर्म ( पुं० न० )	वृजिन—पाप, ( न० ) केश, ( पुं० ) कुटिल, ( स्त्री० ) ॥ १२९ ॥
विपन्न—सर्प, ( पुं० ) नष्ट, विपत्को प्राप्त, ( त्रि० ) ॥ १२७ ॥	वृषन्—इंद्र, कर्ण, ( पुं० ) वेदना—ज्ञान पीडा, ( स्त्री० )
विमान—आकाशमें चलनेवाला रथ, सातखना घर, ( पुं० न० )	वेष्टन—कानकी शङ्कुली, पगडी, मुकुट, चारोंतरफका घेरा ( न० ) ॥ १३० ॥
विलग्न—अंगका मध्यभाग ( कटि ), जन्मलग्न, लग्नमात्र ( मेघादि ) ( त्रि० ) ॥ १२८ ॥	व्यंजन—शाक व कडी आदि, मूँछडाढी' चिह्न, अवयव आदि, ( न० ) व्युत्थान—स्वतंत्रतासे कृत्य, विरो- धका आवरण, ( न० ) ॥ १३१ ॥

व्यसनं त्वशुभे सक्तौ पानस्त्रीमृगयादिषु ।  
 दैवानिष्टफले पाके विपत्तौ विफलोद्यमे ॥ १३२ ॥  
 सक्तिमात्रे सुचरिताद्भ्रंशे कोपजदूषणे ।  
 शकुनं मङ्गलाशंसिनिमित्ते शकुनः खगे ॥ १३३ ॥  
 शकुनिः पुंसि विहगे सौवश्वे करणान्तरे ।  
 शङ्खिनी शङ्खयूधे स्याद्भुजङ्गस्त्रीप्रभेदयोः ॥ १३४ ॥  
 शङ्खिनी वेतपुन्नागे चोरपुण्ड्यां च शङ्खिनी ।  
 शतघ्नी शस्त्रभेदेऽपि वृश्चिकालीकरञ्जयोः ॥ १३५ ॥  
 शमनस्तु यमे शान्तिवधयोः शमनं मतम् ।  
 शयनं तल्पमात्रेऽपि निद्रासुरतयोरपि ॥ १३६ ॥  
 शाखी महीरुहे वेदे तुरुष्काख्यजनेऽपि च ।  
 शास्त्राज्ञाराजदत्तोर्वीराजलेखेषु शासनम् ॥ १३७ ॥

व्यसन-अशुभ, आसक्ति, पान, स्त्री,  
 शिकार, भाग्यवशसे अनिष्टफल,  
 कर्मफल, विपत्ति, विफलउ-  
 दय, ॥ १३२ ॥ आसक्तिमात्र,  
 अच्छे चरितसे गिरना, कोपसे उत्प-  
 न्नहुवा दोष, ( न० )  
 शकुन-मंगलको कहनेवाला निमित्त,  
 ( न० ) पक्षी, ( पुं० ) ॥ १३३ ॥  
 शकुनि-पक्षी, कौरवोंका मामा, कर-  
 णभेद, ( पुं० )  
 शङ्खिनी-शंखसमूह, सर्पभेद, स्त्री-  
 भेद, ॥ १३४ ॥ सफेद-पुन्नाग

वृक्ष, चोरहुली, ( स्त्री० ) ।  
 शतघ्नी-शस्त्रभेद, वृश्चिकाली, करं-  
 जुवा, ( स्त्री० ) ॥ १३५ ॥  
 शमन-धर्मराज, ( पुं० ) शान्ति,  
 हिंसा, ( न० ) ।  
 शयन-शय्यामात्र, निद्रा, स्त्रीसंग,  
 ( न० ) ॥ १३६ ॥  
 शाखिन्-वृक्ष, वेद, तुरुष्कजाति-  
 जन, ( पुं० )  
 शासन-शास्त्र, आज्ञा, राजाकी  
 दीहुई पृथ्वी, राजाका लेख, ( न० )  
 ॥ १३७ ॥

शिखी केतुग्रहे वहौ मयूरे कुक्कुटे शरे ।  
 बलीवर्दे बके वृक्षे व्रतिभेदसचूडयोः ॥ १३८ ॥  
 शिल्पी तु वाच्यवत्कारौ नासिकायां तु शिल्पिनी ।  
 शृङ्गी नागेऽपि वृषभे पर्वतेऽपि महीरुहे ॥ १३९ ॥  
 शोभनो योगभेदे ना शोभनः सुन्दरे त्रिषु ।  
 श्रीघनः सुगते भिक्षौ श्रीघनं दधि न द्वयोः ॥ १४० ॥  
 श्लेष्मघ्नी मल्लिकायां स्यात्कम्पिलकफणिज्जयोः ।  
 श्वसनः पवने श्वासे श्वसनो मदनद्रुमे ॥ १४१ ॥  
 सन्धानं स्यादभिषवे क्लीबं सङ्घट्टनेऽपि च ।  
 सन्धिनी तु वृषाक्रान्ताऽकालदुग्धगवोः स्मृता ॥ १४२ ॥  
 समानो नाभिपवने सदेकसदृशे त्रिषु ।  
 सम्पन्नं त्रिषु सम्पत्तिसहिते साधितेऽपि च ॥ १४३ ॥

शिखिन्—केतु-ग्रह, अग्नि, मोर, मुर्गा, शर, बैल, बगला, वृक्ष, व्रति-भेद, ( पुं० ) चोटीवाला, ( त्रि० ) ॥ १३८ ॥	श्लेष्मघ्नी—मोतियाभेद कवीला, छोटे-पत्तोंकी तुलसी, ( स्त्री० )
शिल्पिन्—कारीगर, ( त्रि० )	श्वसन—वायु, श्वास, अकोट-वृक्ष, ( पुं० ) ॥ १४१ ॥
शिल्पिनी—नामिका, अडूसा—औषध, ( स्त्री० )	संधान—जोडना, घड़ना, ( न० )
शृङ्गिन्—नाग, बैल, पर्वत, वृक्ष, ( पुं० ) ॥ १३९ ॥	सन्धिनी—बैल ( सांड ) की दबाईहुई गौ, विनासमय दुग्धदेनेवाली गौ, ( स्त्री० ) ॥ १४२ ॥
शोभन—योगभेद, ( पुं० )	समान—नामिका वायु, श्रेष्ठ, एक, तुल्य, ( त्रि० )
शोभन—सुंदर, ( त्रि० )	सम्पन्न—संपत्तिसहित, साधित, ( त्रि० ) ॥ १४३ ॥
श्रीघन—बुद्ध भगवान्, भिक्षु, ( पुं० ) दही, ( न० ) ॥ १४० ॥	

संव्यानमुत्तरासङ्गे संव्यानं छादने तथा ।

सवनं यजने खाने सोमनिर्द्दमने मतम् ॥ १४४ ॥

सादी तु सारथौ वाहवाहके हस्तिवाहके ।

साधनं मेहने सैन्ये निवृत्तिगतिसिद्धिषु ॥ १४५ ॥

करणे चोपकरणे मृतसंस्करणे वधे ।

द्रवणे चानुव्रज्यायामुपाये दापने धने ॥ १४६ ॥

साधनो यज्ञकर्मन्ते यजमानप्रचेतसोः ।

मर्यादायां स्त्रियां सीमा क्षेत्रे घाटे स्थितावपि ॥ १४७ ॥

सूचनाऽभिनये दृष्टौ गन्धने व्यधनेऽपि च ।

सेचनं सेकपात्रे स्यात्सेकरक्षणयोरपि ॥ १४८ ॥

सेनापतौ तु सेनानीः सेनानीः शरजन्मनि ।

सेवनं सीवने क्लीबं सेवायामपि सेवनम् ॥ १४९ ॥

संव्यान-दुपष्टा, ढकना, ( न० )

सवन-पूजन, खान, सोमवल्लीका नि-

चोडना ( न० ) ॥ १४४ ॥

सादिन्-रथका सारथि, अश्वका, च-

लानेवाला ( सवार ), फीलवान

( पु० )

साधन-लिंग, सेना, निवृत्ति, गति,

सिद्धि, ॥ १४५ ॥ करण, उपक-

रण, मृतका संस्कार, वध ( मा-

रना ), झिरना, उपासना करना,

उपास, दिवाना, धन, ( न० )

॥ १४६ ॥

१४

साधन-यज्ञकर्मका अंत, यजमान,

वरुण, ( पुं० )

सीमन्-मर्यादा, क्षेत्र, घाट, स्थिति,

( स्त्री० ) ॥ १४७ ॥

सूचना-जनाना, दृष्टि, गन्धन, बी-

धना, ( स्त्री० )

सेचन-सींचनेका पात्र, सींचना, रक्षा

करनी, ( न० ) ॥ १४८ ॥

सेनानी-सेनापति, स्वामिकार्त्तिक,

( पुं० )

सेवन-सीना वस्त्रादिका, सेवा, ( न० )

॥ १४९ ॥



संस्थानमाकृतौ सन्निवेशे मृत्यौ चतुष्पथे ।  
 स्तननं जलदध्वाने ध्वनिमात्रेऽपि कुञ्चने ॥ १५० ॥  
 स्थापनं स्यात्पुंसवने समाधावर्षणेऽपि च ।  
 स्पर्शनः पवने पुंसि स्पर्शनं स्पर्शदानयोः ॥ १५१ ॥  
 स्यन्दनं प्रलवे नीरे स्यन्दनस्तिनिशे रथे ।  
 स्त्रंसनं रेचने पाते पृथग्भावातिसारयोः ॥ १५२ ॥  
 स्वामी प्रभौ विशाखे च हल्ली स्यात्कर्षके बले ।  
 अङ्गारधान्यां हसनी हसनं हसिते मतम् ॥ १५३ ॥  
 हस्तिनी नायिकाभेदे हस्तिनी हस्तियोषिति ।  
 हायनो वत्सरे न स्त्री व्रीहिभेदाधिषोः पुमान् ॥ १५४ ॥  
 हिण्डनं मुरते केलौ द्वादिनी वज्रविद्युतोः ।

नचतुर्थम् ।

अथर्वा द्विजभेदे स्याद्वेदेऽथर्व नपुंसकम् ॥ १५५ ॥

संस्थान—आकृति अच्छीतरह बनाहुवा वासस्थान, मृत्यु, चुराहा, ( न० )	स्वामिन्—प्रभु ( स्वामी ), स्वामिका- लिक, ( पुं० )
स्तनन—मेघका शब्द, ध्वनिमात्र, सु- कङ्कता, ( न० ) ॥ १५० ॥	हलिन्—किसान, बलदेव, ( पुं० )
स्थापन—पुंसवन, समाधि, अर्पणकरना ( न० )	हसनी—सिंगड़ी ( स्त्री० )
स्पर्शन—वायु, ( पुं० ) स्पर्शन, स्पर्- शकरना, दानकरना, ॥ १५१ ॥	हसन—हँसना ( न० ) ॥ १५२ ॥
स्यन्दन—झिरना, जल, ( न० )	हस्तिनी—स्त्रीभेद, हथिनी, ( स्त्री० )
स्यन्दन—तिनिश-वृक्ष, रथ, ( पुं० )	हायन—वर्ष, ( पुं० न० ) व्रीहिभेद, दीपआदिकी ज्वाला, ( पुं० ) १५४
स्त्रंसन—जुलाब, पङ्कना, पृथग्भाव, अतिसार ( बहुत दस्तलगना ) ( न० ) ॥ १५२ ॥	हिण्डन—स्त्रीसंग, क्रीडा, ( न० ) द्वादिनी—वज्र, बिजली, ( स्त्री० )
	नचतुर्थम् ।
	अथर्वन्—द्विजभेद, ( पुं० )
	अथर्व—वेदभेद, ( न० ) ॥ १५५ ॥

अधिष्ठानं प्रभावेऽपि पुरेऽन्यासनचक्रयोः ।  
 अनूचानो विनीतेऽपि साङ्गवेदविचक्षणे ॥ १५६ ॥  
 नयनाग्रेऽप्यनूचानः पुमानेव कचिन्मतः ।  
 अन्वासनं तु सेवायां स्नेहवस्तावुपासने ॥ १५७ ॥  
 अपाचीनं त्रिषु विपर्यस्ते दक्षिणसम्भवे ।  
 जन्मभूम्यामभिजनः कुले ख्यातौ कुलध्वजे ॥ १५८ ॥  
 अभिपन्नोऽपराद्धेऽभिद्रुते ग्रस्ते विपद्रुते ।  
 दक्षिणे स्त्रीकृतेऽपि स्यादभिपन्नोऽभिधेयवत् ॥ १५९ ॥  
 अभिमानः पुमान्गर्वेऽज्ञानेऽप्रणयहिंसयोः ।  
 अर्यमा मिहिरे सूर्यमुक्तायां पितृदैवते ॥ १६० ॥  
 अवदानं मतमिति वृत्तकर्मणि खण्डने ।  
 तनुमध्येऽवलग्नः स्यात्संलग्ने त्वभिधेयवत् ॥ १६१ ॥

अधिष्ठान-प्रभाव, पुर, स्थितहोना,  
 चक्र, ( न० )

अनूचान-विनीत, अंगसहित वेदप-  
 ढनेवाला, ( पुं० ) ॥ १५६ ॥

अनूचान-अच्छा नीतिज्ञाननेवाला,  
 ( पुं० )

अन्वासन-सेवा, स्नेहवस्ति ( वस्ति-  
 कर्म ), उपासना ( न० ) ॥ १५७ ॥

अपाचीन-विपर्यस्त ( उलटा ), द-  
 क्षिणदिशामें होनेवाला, ( त्रि० )

अभिजन-जन्मभूमि, कुल, विख्याति,  
 कुलध्वज, ( पुं० ) ॥ १५८ ॥

अभिपन्न-अपराधयुक्त, भगाहुवा,

ग्रस्तहुवा, विपत्को प्राप्तहुवा, ( पुं० )  
 चतुर, अंगीकारकियाहुवा ( त्रि० )  
 ॥ १५९ ॥

अभिमान- गर्व, अज्ञान, अप्रणय  
 ( अम्रता ), हिंसा, ( पुं० )

अर्यमन-सूर्य ( पुं० ) सूर्यकी ल्यागी-  
 हुई दिशा ( स्त्री० ) पितरोंका देव-  
 ता, ( पुं० ) ॥ १६० ॥

अवदान-वदीतहुवा, कर्म, खण्डन,  
 डुकड़ाकरना, ( न० )

अवलग्न-शरीरका बीच, अच्छीतरह,  
 लगाहुवा, ( त्रि० ) ॥ १६१ ॥

स्यादाकलनमाकाङ्क्षापरिसङ्ख्याविबन्धने ।

आच्छादनं पिधाने स्याद्वसनेनापवारणे ॥ १६२ ॥

आतञ्चनं प्रतीवापजवनाप्यायने मतम् ।

आत्मयोनिर्विरिञ्चे स्यादात्मयोनिर्मनोभवे ॥ १६३ ॥

आवेशनं शिल्पिगृहे भूतावेशे प्रवेशने ।

आयोधनं भवेद्युद्धे वधेप्यायोधनं मतम् ॥ १६४ ॥

आराधनं तु पूजायां पाकप्रापणयोरपि ।

आस्कन्दनं तिरस्कारे तथा संशोषणे रणे ॥ १६५ ॥

उत्पतनं समुत्पत्तौ भवेदूर्द्ध्वगतावपि ।

उत्सादनं समुल्लेखोद्धर्त्तनोद्धासनार्धकम् ॥ १६६ ॥

भवेदुदयनो वत्सराजे कलशसम्भवे ।

उद्धर्त्तनमुत्पतनाऽपावर्त्तनविलेपने ॥ १६७ ॥

आकलन—आकाङ्क्षा, गिन्तीकरना, विशेष करके बंधन, ( न० )

आच्छादन—छिपाना, वस्त्रसे ढका, ( न० ) ॥ १६२ ॥

आतञ्चन—प्रतीवाप ( सींचना ), वेग, तृप्ति, ( न० )

आत्मयोनि—ब्रह्मा, कामदेव, ( पुं० ) ॥ १६३ ॥

आवेशन—शिल्पीका घर, भूतका आवेश ( प्रवेश ), प्रवेश, ( न० )

आयोधन—युद्ध, वध ( मारना ) ( न० ) ॥ १६४ ॥

आराधन—पूजा, पाक ( रसोईकरना ), प्राप्त कराना, ( न० )

आस्कन्दन—तिरस्कार, शोषणकरना, रण, ( व० ) ॥ १६५ ॥

उत्पतन—उत्पत्ति, ऊर्द्ध्वगति, ( न० )

उत्सादन—उल्लेख ( लिखना ), उबटनलगाना, उजाडना, ( न० ) ॥ १६६ ॥

उदयन—वत्सराज ( चंद्रवंशका एक राजा ) अगस्त्यमुनि, ( पुं० ) ।

उद्धर्त्तन—ऊपरको उछलना, निकालना, विलेपन, ( न० ) ॥ १६७ ॥

उद्धाहनं द्विसीत्ये स्याद्रज्ज्वावुद्धाहिनी मता ।

अंशुके रूपधानं स्याद्विशेषप्रणयेपि च ॥ १६८ ॥

उपासनं शराभ्यासे शुश्रूषाहिंसयोरपि ।

कञ्चुकी सौविदलेपि सर्पे खिञ्जेऽपि जोङ्गके ॥ १६९ ॥

शिरीषाभ्रातकाश्वत्थगर्दभाण्डे कपीतनः ।

कलध्वनिः कलरवे कपीतपिकवर्हिषु ॥ १७० ॥

कलापी प्लक्षवृक्षे स्यान्मेघनादानुलासिनि ।

कात्यायनो वररुचौ गौर्या कात्यायनी स्त्रियाम् ॥ १७१ ॥

काषायवस्त्रार्द्धवृद्धविधवायामपि स्मृता ।

रक्तचन्दनपत्राङ्गद्रुमभेदे कुचन्दनम् ॥ १७२ ॥

कुण्डली वरुणे केकिमृगाहिषु सकुण्डले ।

कुम्भयोनिरगस्त्ये स्यादर्जुनस्य गुरावपि ॥ १७३ ॥

उद्धाहन—दोबार बाहाहुवा क्षेत्र, (न०)	कलापिन्—पिलखन-वृक्ष, मोर, (पुं०)
उद्धाहिनी—रज्जु (रस्सी) (स्त्री०)	कात्यायन—वररुचि, (पुं०)
॥ १६८ ॥	कात्यायनी—गौरी, ॥ १७१ ॥ गेरूके-
उपासन—बाणछोडनेका अभ्यास,	रंगे वस्त्रधारनेवाली अधबूढी विध-
शुश्रूषा, हिंसा, (न०)	वा. (स्त्री०)
कञ्चुकिन्—ज्यौढीपर रहनेवाला, सर्प,	कुचन्दन—रक्तचन्दन, पतंग-वृक्ष या
चतुरनर, अगर-वृक्ष, (पुं०)	भोजपत्र-वृक्ष, (न०) ॥ १७२ ॥
॥ १६९ ॥	कुण्डलिन्—वरुण, मोर, मृग, सर्प, कुं-
कपीतन—सिरस, अंबाड़ा, पीपल.	डलवाला, (पुं०)
बहीहरद, (पुं०)	कुम्भयोनि—अगस्त्यमुनि, अर्जुनका
कलध्वनि—मधुरशब्द, कबूतर, प-	गुरु, (पुं०) ॥ १७३ ॥
पीढा, मोर (पुं०) ॥ १७० ॥	

केशरी सिंहपुत्रागनागकेशरवाजिषु ।

क्रौञ्चादनस्तु पिप्पल्यां चिञ्चोटकमृणालयोः ॥ १७४ ॥

स्वकामिनी तु निर्दिष्टा चर्चिकाचिलयोषितोः ।

खड्गधेनुः स्त्रियां खड्गपुत्रिकागण्डकस्त्रियोः ॥ १७५ ॥

गदयित्तुस्तु जल्पाके कामकामुकयोरपि ।

गवादनीन्द्रवारुण्यां गवां घासादपाश्रये ॥ १७६ ॥

घनाघनो वर्षकाब्दे शके मत्तद्विपे घने ।

अन्योन्याद् घट्टके चैव घातुके तु घनाघनः ॥ १७७ ॥

घोषयित्तुः पिके विपे चित्रभानुरिनेऽनले ।

चोलकी नागरङ्गे स्यात्करीरे किष्कुपर्वणि ॥ १७८ ॥

वर्त्तते कङ्कक....बुधाराटेषु जलाटनः ।

जनाटनं जलभ्रान्तौ जलौकायां जलाटनी ॥ १७९ ॥

केशरिन्—सिंह, चंपा, नागकेशर,  
अश्व, ( पुं० )

क्रौञ्चादन—पिप्पली, चिञ्चोटक-नृण,  
कमल, ( पुं० ) ॥ १७४ ॥

स्वकामिनी—रोगभेद, चील्हपक्षीकी  
स्त्री ( स्त्री० )

खड्गधेनु—छुरी, गैंडाकी स्त्री, ( स्त्री० )  
॥ १७५ ॥

गदयित्तु—बहुत बोलनेवाला, काम-  
देव, कामी-पुरुष ( पुं० )

गवादनी—गड्ढा, गौबोंके घास चर-  
नेका स्थल, ( स्त्री० ) ॥ १७६ ॥

घनाघन—वर्षनेवाला मेघ, इंद्र, मत्त-  
हस्ती, मेघमात्र, आपसमें घडने-  
वाला, मारनेवाला, ( पुं० ) ॥ १७७ ॥

घोषयित्तु—कोयल, ब्राह्मण, ( पुं० )  
चित्रभानु—सूर्य, अग्नि ( पुं० )

चोलकिन्—नारंगी, कैर, ईख या  
बांस, ( पुं० ) ॥ १७८ ॥

जलाटन—...जलमें चलना ( न० )  
जलाटनी—जोक, ( स्त्री० ) ॥ १७९ ॥

जलमीनश्चिलिचिमे इञ्चाकशिशुमारयोः ।

तपोधना तु मुण्डीर्या तपस्विनि तपोधनः ॥ १८० ॥

तपस्वी तापसे चानुकम्प्ये चाथ तपस्विनी ।

मांसिकाकटुरोहिण्योस्तरस्वी वेगिशूरयोः ॥ १८१ ॥

दुर्न्नामा पङ्कशुकतौ दुर्न्नाम क्लीबमर्शसि ।

देवसेना तु गीर्वाणसेना देवेन्द्रकन्ययोः ॥ १८२ ॥

द्विजन्मा ब्राह्मणेऽपि स्याद् द्विजन्मा दशने खगे ।

करिमुद्गरिकानागयष्टचोर्नागाञ्जना स्त्रियाम् ॥ १८३ ॥

मतं भवेन्निधुवनं सुरते कम्पनेऽपि च ।

स्यान्निरासे निरसनं वधे निष्ठीवने तथा ॥ १८४ ॥

निर्वासनं तु निर्वासहिंसयोर्गतवासरे ।

निर्भत्सनं तु निर्दिष्टं खलीकारेऽप्यलक्तके ॥ १८५ ॥

जलमीन-जलका तृण (सिवाल) चर-  
नेवाली मच्छी,... शिशुमार मच्छ  
( पुं० )

तपोधना-गोरखमुंडी, ( स्त्री० )

तपोधन-तपस्वी, ॥ १८० ॥

तपस्विन्-तपस्वी, दयाकरने योग्य,  
( पुं० )

तपस्विनी-जटामांसी, कुटकी, ( स्त्री० )

तरस्विन्-वेगवाला, शूरवीर, ( पुं० )  
॥ १८१ ॥

दुर्नामन्-जोंकके समान कीचका  
जन्तु, ( स्त्री० ) दुर्नामन्-बवा-  
सीर ( न० )

देवसेना-देवताओंकी सेना, इंद्रकी  
कन्या, ( स्त्री० ) ॥ १८२ ॥

द्विजन्मन्-ब्राह्मण, दाँत, पक्षी, ( पुं० )

नागाञ्जना-हस्तियोंका मुद्गर, नाग-  
खेल, ( स्त्री० ) ॥ १८३ ॥

निधुवन-मैथुन, कंपन, ( न० )

निरसन-निकालना, मारना, थूकना,  
( न० ) ॥ १८४ ॥

निर्वासन-उजाड़ना, हिंसा, गया-  
हुवा दिन, ( न० )

निर्भत्सन-झिडकना, जाबक, ( न० )  
॥ १८५ ॥

दाने न्यासार्पणे वैरशुद्धौ निर्यातनं मतम् ।

श्रुतौ दृष्टौ निशमनं दृष्ट्यालोचे निशामनम् ॥ १८६ ॥

तपस्विनी पुनर्मांसी कटुरोहिणिकाऽपि च ।

परिज्वा तु पुमानिंदौ याज्ञिके परिचारके ॥ १८७ ॥

पलाशी राक्षसे वृक्षेऽप्यथ पुण्यजनः पुमान् ।

राक्षःसज्जनयज्ञेषु मूर्खे नीचे पृथग्जनः ॥ १८८ ॥

भवेत्प्रजननं योनौ जन्मप्रजनयोरपि ।

प्रणिधानं प्रयत्ने स्यात्समाधौ च प्रवेशने ॥ १८९ ॥

प्रतिमानं प्रतिकृतौ गजदन्तान्तरालके ।

प्रतिपन्नः प्रतिज्ञाते विज्ञातेऽप्यभिधेयवत् ॥ १९० ॥

प्रतिपन्नस्तु संस्कारे लिप्सायामप्युपग्रहे ।

प्रत्यर्थी वाच्यलिङ्गः स्याद्विद्वेषिप्रतिवादिनोः ॥ १९१ ॥

निर्यातनं—दान, धरोहड रखना, वैरका त्यागना, ( न० )	प्रजनन—योनि, जन्म, गर्भग्रहण करना, ( न० )
निशमन—सुनना, देखना, ( न० )	प्रणिधान—प्रयत्न, समाधि, प्रवेशन, ( न० ) ॥ १८९ ॥
निशामन—दृष्टिसे देखना, ( न० ) ॥ १८६ ॥	प्रतिमान—मूर्ति, हस्तिदंत, बीच, ( व० )
तपस्विनी—जटामांसी, कुटकी, ( त्रि० )	प्रतिपन्न—प्रतिज्ञाकिया हुवा, जाना-हुवा, ( त्रि० ) ॥ १९० ॥
परिज्वान्—चंद्रमा, यज्ञकरानेवाला, शुभ्रूपा करनेवाला, ( पुं० ) ॥ १८७ ॥	प्रतिपन्न—संस्कार, लाभ करनेकी इच्छा, उपग्रह, ( पुं० )
पलाशिन—राक्षस, वृक्ष, ( पुं० )	प्रत्यर्थिन्—विद्वेषी, प्रतिवादी, ( त्रि० ) ॥ १९१ ॥
पुण्यजन—राक्षस, सज्जन, यज्ञ, ( पुं० )	
पृथग्जन—मूर्ख, नीच, ( पुं० ) ॥ १८८ ॥	

प्रयोजनं मतं कार्ये हेतौ च स्यात्प्रयोजनम् ।  
 भवेत्प्रवचनं वेदे प्रकृष्टवचनेऽपि च ॥ १९२ ॥  
 प्रस्फोटनं तु सूत्रे स्यात्ताडनेऽपि प्रकाशने ।  
 प्रसाधनी कंकतिकासिद्ध्योर्वेशे प्रसाधनम् ॥ १९३ ॥  
 क्लीबं प्रहसनं भङ्गे प्रहासाक्षेपयोरपि ।  
 फलकी राजसफरे तथा फलकपाणिके ॥ १९४ ॥  
 वर्द्धमानः शरावैरण्डयोः प्रश्नान्तरेऽच्युते ।  
 दृश्यते वर्द्धमानस्तु वृद्धिमत्यपि वाच्यवत् ॥ १९५ ॥  
 वारकी द्विषि पाथोधौ पर्णाजीवे हयान्तरे ।  
 वारासनं वाःसदने शूलापद्वारपालयोः ॥ १९६ ॥  
 परमेष्ठिनि भूतात्मा भूतात्मा पिङ्गलेऽपि च ।  
 मदयिन्नुर्मतो मेघे मदयिन्नुस्तु शीधुनि ॥ १९७ ॥

प्रयोजन-कार्य, कारण, ( न० )

प्रवचन-वेद, श्रेष्ठ वचन, ( न० )  
॥ १९२ ॥

प्रस्फोटन-सूत्र, ( छाज ), ताडना,  
प्रकाशन, ( न० )

प्रसाधनी-कंघी, सिद्धि, ( स्त्री० )

प्रसाधन-वेश ( शृंगार ) ( न० )  
॥ १९३ ॥

प्रहसन-एकप्रकारका काव्य, हँसना,  
आक्षेप, ( न० )

फलकिन्-मच्छी-भेद, ढालधारी,  
( पुं० ) ॥ १९४ ॥

वर्द्धमान-मिट्टीका शराव, अरंड,  
प्रश्नभेद, विष्णु ( पुं० ) वृद्धिवाला,  
( त्रि० ) ॥ १९५ ॥

वारकिन्-शत्रु, समुद्र, पत्तोंसे आजी-  
विका करनेवाला, अश्वभेद, ( पुं० )

वारासन-जलस्थान ( न० ) त्रिशूल,  
अपद्वारपाल ( मकानकी पिछाडीकी  
रक्षावाला ) ( पुं० ) ॥ १९६ ॥

भूतात्मन्-ब्रह्मा, पिंगलवर्ण, ( पुं० )

मदयिन्-मेघ, मदिरा ( पुं० )  
॥ १९७ ॥



महाधनं महामूल्ये चारुवस्त्रेऽपि सिद्धके ।

महामुनिरगस्त्ये स्याद्धान्याकागस्त्ययोरपि ॥ १९८ ॥

महासेनो विशाखेऽपि महासेनापतावपि ।

मातुलानी तु भङ्गायां कलाये मातुलस्त्रियाम् ॥ १९९ ॥

मालुधानश्चित्रसर्पे महापद्मे लतान्तरे ।

मालुधान्यथ मेधावी वाच्यवन्मेधयान्विते ॥ २०० ॥

ब्राह्म्यां मेधाविनी ख्याता गरुडेऽपि रसायनः ।

रसायनं जराव्याधिहरे विषविडङ्गयोः ॥ २०१ ॥

राजादनं प्रियालद्रौ क्षीरिकायां च किंशुके ।

ललामवल्ललामं च चिहे रम्ये विभूषणे ॥ २०२ ॥

शृङ्गे प्रधाने लाङ्गूले प्रभावध्वजवाजिषु ।

पुण्ड्रेऽपि लाङ्गूली तु स्यान्नालिकेरे हलायुधे ॥ २०३ ॥

महाधन—वडामूल्यवाला, सुंदरवस्त्र, मेधाविनी—ब्राह्मी, ( स्त्री० )

हींग, ( न० )

महामुनि—अगस्त्य—मुनि, धनियो,

हथिया—वृक्ष, ( पुं० ) ॥ १९८ ॥

महासेन—स्वामिकार्तिक, महासेनाका

पति, ( पुं० )

मातुलानी—भंग, मटरअन्न, मामाकी

स्त्री ( मामी ) ( स्त्री० ) ॥ १९९ ॥

मालुधान—चित्रसर्प, बडाकमल ( पुं० )

मालुधानी—लताभेद, ( स्त्री० )

मेधाविन्—अच्छी बुद्धिवाला, ( त्रि० )

॥ २०० ॥

रसायन—गरुड, ( पुं० ) वृद्धता और

रोगको हरनेवाला औषध, बच्छ-

नाग, वायविडंग, ( न० ) ॥ २०१ ॥

राजादन—चिरोंजी—वृक्ष, खिरनी,

केसू ( न० )

ललामन्—ललाम—चिह्न, सुंदर,

विभूषण, ॥ २०२ ॥ सौंग, प्रधान,

पूँछ, प्रभाव, ध्वजा, अश्व, पौंडा,

( न० )

लांगलिन्—नारियल, बलदेव, ( पुं० )

॥ २०३ ॥

वनश्वा जम्बुके व्याघ्रे गन्धमार्जारकेऽपि च ।  
 विरोचनोऽर्के दहने चन्द्रे प्रह्लादनन्दने ॥ २०४ ॥  
 तरलायां लसद्वेद्याङ्गनायां च विलेपनी ।  
 विलासी भोगिनि व्याले विश्वप्सा वह्निचन्द्रयोः ॥ २०५ ॥  
 विषयि त्विन्द्रिये क्लीबं वाच्यवद्विषयान्विते ।  
 विषयी स्यान्मनसिजे लब्धे वैषयिके नृपे ॥ २०६ ॥  
 अनधीते भुजिष्ये च विषाणी शृङ्गिनागयोः ।  
 विष्वक्सेनोऽच्युते विष्वक्सेना तु फलिनीद्रुमे ॥ २०७ ॥  
 विसर्जनं परित्यागे दाने सम्प्रेषणे वधे ।  
 विस्मापनो हरिश्चन्द्रपुरे ना कुहके सरे ॥ २०८ ॥  
 मतं विहननं घाते पिञ्जने तूलधूनने ।  
 नानाविडम्बे हिंसायां मर्दनेऽपि विहेठनम् ॥ २०९ ॥

वनश्वन्-गीदङ्ग, बघेरा, गंधबिलाव, ( पुं० )	विष्वक्सेन-विष्णु, ( पुं० )
( पुं० )	विष्वक्सेना-कलिहारी-वृक्ष, ( स्त्री० )
विरोचन-सूर्य, अग्नि, चंद्रमा, प्रह्लादका पुत्र, ( पुं० ) ॥ २०४ ॥	॥ २०७ ॥
विलेपनी-यवागु, सुंदरवेश्या, ( स्त्री० )	विसर्जन-परित्याग, दान, संप्रेषण ( प्रेरण ), वध, ( न० )
विलासिन्-भोगी-पुरुष, सर्प, ( पुं० )	विस्मापन-हरिश्चन्द्रराजाका पुर, कपटी, कामदेव, ( पुं० ) ॥ २०८ ॥
विश्वप्सन्-अग्नि, चंद्रमा, ( पुं० ) ॥ २०५ ॥	विहनन-घात ( मारना ), पीनना, रूईका धुनना, ( न० )
विषयि-इंद्रिय, ( न० ) विषययुक्त, ( त्रि० ) कामदेव, लब्धहुवा, विषयमें होनेवाला, राजा ॥ २०६ ॥	विहेठन-अनेक प्रकारका विडंबन ( नकल ), हिंसा, मलना, ( न० )
विनापडा, नौकर, ( पुं० )	॥ २०९ ॥
विषाणिन्-सींगवाला, नाग, ( पुं० )	

वृक्षादनी वृक्षरुहाविदारीकन्दयोर्मता ।

वृक्षादनं मधुच्छत्रे कुठाराश्वत्थयोः पुमान् ॥ २१० ॥

वैरोचनस्तु बल्यर्कपुत्रयोः सुगतान्तरे ।

व्यवायी द्रव्यभेदे स्यात्कामुकेऽप्यभिधेवत् ॥ २११ ॥

शिखरी स्यादपामार्गे गिरौ कोट्टेऽपि शाखिनि ।

शिखण्डी शरभिद्वीप्पद्विषोः केकिकलापयोः ॥ २१२ ॥

शिखण्डिनी तु गुञ्जायां यूथिकायां शिखण्डिनी ।

शृङ्गारी चारुवेशेऽपि कामुके क्रमुके गजे ॥ २१३ ॥

मता श्रेष्मघना महयां केतकीभक्तसज्जयोः ।

सदादानोऽभ्रमातङ्गे हेरम्बे गन्धहस्तिनि ॥ २१४ ॥

सनातनो हरे विष्णौ पितृणामतिथौ स्थिरे ।

नित्येऽप्यथ समापन्नं प्राप्ते क्लिष्टसमाप्तयोः ॥ २१५ ॥

वृक्षादनी—अमरबेल, विदारीकंद,  
( स्त्री० )

वृक्षादन—मधुच्छत्र ( न० ) कुहाड़ा,  
पीपल—वृक्ष, ( पुं० ) ॥ २१० ॥

वैरोचन—बलिका पुत्र, सूर्यका पुत्र,  
बुद्ध—भगवान्, ( पुं० )

व्यवायिन्—द्रव्यभेद, कामी पुरुष  
आदि ( त्रि० ) ॥ २११ ॥

शिखरिन्—चिरचिटा, पर्वत, कोट,  
वृक्ष, ( पुं० )

शिखण्डिन्—शरभेद, भीष्मका शत्रु,  
मोर, मोरपंख, ( पुं० ) ॥ २१२ ॥

शिखण्डिनी—चोंटली ( चिरमठी ),  
जूही-पुष्पपेड, ( स्त्री० )

शृङ्गारिन्—सुंदरवेशवाला, कामीपु-  
रुष, सुपारी-वृक्ष, हस्तो, ( पुं० )  
॥ २१३ ॥

श्रेष्मघना—मालती या मोतिया,  
केतकी ( स्त्री० ) भात, कवच  
( न० )

सदादान—इंद्रहस्ती, गणेश, गंधह-  
स्ती, ( पुं० ) ॥ २१४ ॥

सनातन—महादेव, विष्णु, पितरोका  
अतिथि, स्थिर, नित्य होनेवाला,  
( पुं० )

समापन्न—प्राप्तहुवा, क्लिष्ट(क्लेशयुक्त),  
समाप्त, ॥ २१५ ॥ ( त्रि० ) बध,  
( न० )

समापन्नं वधे क्लीबं समाप्तौ तु समापनम् ।  
 समापनं परिच्छेदे समाधाने च मारणे ॥ २१६ ॥  
 समादानं समीचीनग्रहणे नित्यकर्मणि ।  
 समुत्थानं मतं रोगनिर्णयेऽपि समुद्यमे ॥ २१७ ॥  
 संमूर्च्छनमभिव्याप्तौ संमूर्च्छायां च मोहने ।  
 संवाहनं तु भारादेर्वाहनेऽप्यङ्गमर्दने ॥ २१८ ॥  
 स्यात्संवदनमालोचे संवादे च वशीकृतौ ।  
 सरोजिनी तु पद्मिन्यां सरोजे च सरोवरे ॥ २१९ ॥  
 सामयोनिस्तु सामोत्थे मातङ्गे परमेष्ठिनि ।  
 सामिधेनी ऋचि प्रोक्ता सामिधेनी समिध्यपि ॥ २२० ॥  
 मतं सारसनं काङ्क्ष्यामुरस्त्रे च तनुत्रिणाम् ।  
 सुकर्मा योगभेदेऽपि सुकर्मा देवशिल्पिनि ॥ २२१ ॥

समापन-समाप्ति, परिच्छेद ( ग्रंथ-विभाग ), समाधान, मारना, ( न० ) ॥ २१६ ॥	संवदन-देखना, संवादकरना, वशमें करना, ( न० )
समादान-अच्छीतरह ग्रहणकरना, नित्यकर्म ( न० )	सरोजिनी-कमलिनी, कमल, सरोवर, ( स्त्री० ) ॥ २१९ ॥
समुत्थान-रोगका निर्णय, अच्छे प्रकारसे उद्यम, ( न० ) ॥ २१७ ॥	सामयोनि-सामसे उत्पन्नहुवा, हस्ती, ब्रह्मा, ( पुं० )
संमूर्च्छन-अभिव्याप्ति, संमूर्च्छा, मोहन, ( न० )	सामिधेनी-वेदकृत्वा, समिधू ( पलाशी ) ( स्त्री० ) ॥ २२० ॥
संवाहन-भारआदिका वहना, अंगका मर्दन करना, ( न० ) ॥ २१८ ॥	सारसन-तगड़ी, शरीरकी रक्षाकरने-वालौका उरस्त्र, ( न० )
	सुकर्मन्-एकयोग, देवनाओंका शिल्पी ( कारीगर ) ( पुं० ) ॥ २२१ ॥

सुदर्शनं सुरपुरे हरेश्चक्रे सुदर्शनः ।

सुदर्शना मेरुजम्बवामाज्ञायामोषधीभिदि ॥ २२२ ॥

त्रिषु नेत्रानन्दकरे सुदामा त्वम्बुदे गिरौ ।

सुधन्वा धीरधानुष्के सुधन्वा विश्वकर्मणि ॥ २२३ ॥

सुपर्वा त्रिदशे वंशे शरे धूमे प्रपर्वणि ।

सुयामुनो वत्सराजे सौधेऽप्यभ्रान्तरे हरौ ॥ २२४ ॥

सौदामिनी तडिद्वेदविद्युतोरप्सरोन्तरे ।

यमपुर्या संयमनी व्रते संयमनं मतम् ॥ २२५ ॥

स्तनयितुर्धने मेघस्तने मृत्यौ गदेऽपि च ।

हर्षयितुः सुते पुंसि कनके तु नपुंसकम् ॥ २२६ ॥

नपञ्चमम् ।

अग्रजन्मा विधौ विप्रे ज्येष्ठभ्रातरि च स्मृतः ।

अतिसर्जनमिच्छन्ति वधे दानेऽपि न द्वयोः ॥ २२७ ॥

सुदर्शन—स्वर्ग, ( न० ) विष्णुका चक्र, ( पुं० ) सौदामिनी—विजली—भेद, विजली, अप्सरा-भेद, ( स्त्री० )

सुदर्शना—सुमेरुके जामनका वृक्ष, आज्ञा, औपधिभेद, ( स्त्री० ) संयमनी—धर्मराजकी पुरी, ( स्त्री० ) संयमन—व्रत ( न० ) ॥ २२५ ॥

॥ २२२ ॥ नेत्रोंको आनंदकरने-वाला, ( त्रि० )

सुदामन—मेघ, पर्वत, ( पुं० )

सुधन्वन—धीरवान, धनुषधारी, विश्व-कर्मा ( देवशिल्पी ( पुं० ) ॥ २२३ ॥

सुपर्वन—देवता, वंश, शर, धूवाँ, श्रेष्ठपर्व, ( पुं० )

सुयामुन—चंद्रवंशका एक राजा, महल, मेघभेद, विष्णु, ( पुं० )

॥ २२४ ॥

स्तनयितु—मेघ, मेघशब्द, मृत्यु, रोग, ( पुं० )

हर्षयितु—पुत्र, ( पुं० ) सुवर्ण, ( न० ) ॥ २२६ ॥

नपञ्चम ।

अग्रजन्मन्—चंद्रमा, ब्राह्मण, बडा-भ्राता, ( पुं० )

अतिसर्जन—मारना, दान, ( न० ) ॥ २२७ ॥

अनुवासनमाख्यातं स्नेहकर्मणि धूपने ।  
 अन्तेवासी तु चण्डाले शिष्यप्रान्तगयोरपि ॥ २२८ ॥  
 अपवर्जनमित्येतद् दानेऽपि परिवर्जनम् ।  
 अथ स्यादभिनिष्ठानः पुंसि चन्द्रविसर्गयोः ॥ २२९ ॥  
 स्यादुपस्पर्शनं स्पर्शे स्नाने चाचमनेऽपि च ।  
 त्रिलिंग्यामुपसंपन्नं निहितेऽपि सुसंस्कृते ॥ २३० ॥  
 कपिशायनमित्येतन्मध्ये देशान्तरे पुमान् ।  
 कामचारी तु चटके कामिखच्छन्दयोल्लिषु ॥ २३१ ॥  
 धातुवादरते कांस्यकारे कारन्धमी मतः ।  
 किष्कुपर्वा तु वंशे स्यात्कोषकारे नडे(ले)ऽपि च ॥ २३२ ॥  
 कृष्णवर्त्मा हुतवहे दुराचारे विधुन्तुदे ।  
 कोपने खरसोले च वर्त्तते खरभाञ्जनम् ॥ २३३ ॥

अनुवासन-स्नेहकर्म ( स्नेहवस्ति आदि ), धूपन(धूपसे सुगंधि करना) ( न० )	कपिशायन-मद्य, देशान्तर ( पुं० )
अन्तेवासिन्-चण्डाल, शिष्य, पासमें रहनेवाला, ( पुं० ) ॥ २२८ ॥	कामचारिन्-चिङ्गा-पक्षी, कामी, खच्छंद, ( त्रि० ) ॥ २३१ ॥
अपवर्जन-दान, परित्याग, ( न० )	कारन्धमिन्-धातुवादमें, ( धातुके कहनेमें ) तत्पर, कांसीका घड़ने- वाला, ( पुं० )
अभिनिष्ठान-चंद्रमा, विसर्ग, ( पुं० ) ॥ २२९ ॥	किष्कुपर्वन्-बाँस, कोषकार ( इक्षु- भेद या कांस ( पुं० ) ॥ २३२ ॥
उपस्पर्शन-स्पर्श, स्नान, आचमन, ( न० )	कृष्णवर्त्मन्-अग्नि, दुराचारी, राहु- ग्रह, ( पुं० )
उपसंपन्न-स्थापित कियाहुवा, अच्छी तरह संस्कार कियाहुवा ( त्रि० ) ॥ २३० ॥	खरभाजन-क्रोधी, लोहपात्र, ( न० ) ॥ २३३ ॥

स्याद्गन्धमादनः शैलभेदे भृङ्गेऽपि गन्धके ।

लतामृगप्रभेदे च सुरायां गन्धमादनी ॥ २३४ ॥

चक्रचारी मतः पोताधानके ग्रामजालिनि ।

चिरजीवी चिरायुष्के स्यादजेऽपि सकृत्प्रजे ॥ २३५ ॥

तिक्तपर्वा हिलमोचीगुडूचीमधुयष्टिषु ।

धूमकेतनशब्दोयं ग्रहभेदे हुताशने ॥ २३६ ॥

लोकेश्वरे विधौ सूर्ये धनदे पद्मलाञ्छनः ।

तारायां च सरस्वत्यां पद्मायां पद्मलाञ्छना ॥ २३७ ॥

पीतचन्दनमित्येतत्कालीयकहरिद्रयोः ।

पृष्ठशृङ्गी तु षण्डे स्याद्दंशभीरौ वृकोदरे ॥ २३८ ॥

प्रबलाकी भुजङ्गेऽपि मेघनादानुलासिनि ।

बोधने प्रतिपत्तौ च दानेऽपि प्रतिपादनम् ॥ २३९ ॥

गन्धमादन—पर्वतभेद, भौरा, गन्धक,  
लताभेद, मृगभेद, ( पुं० )

गन्धमादनी—मदिरा ( स्त्री० ) ॥ २३४ ॥

चक्रकारिन्—छोटी २ मछली, ग्राम,  
जाली ( पुं० )

चिरजीविन्—दीर्घ आयुवाला, ब्रह्मा,  
काग, ( पुं० ) ॥ २३५ ॥

तिक्तपर्वन—हुलहुल-शाक, गिलोय,  
मुलहटी, ( स्त्री० )

धूमकेतन—ग्रहभेद ( केतुतारा ), अ-  
ग्नि, ( पुं० ) ॥ २३६ ॥

पद्मलाञ्छन—लोकोंका ईश्वर ( स्वामी ),  
ब्रह्मा, सूर्य, कुबेर, ( पुं० )

पद्मलाञ्छना—तारा-देवी, सरस्वती,  
लक्ष्मी, ( स्त्री० ) ॥ २३७ ॥

पीतचन्दन—दारुहलदी, हलदी ( स्त्री० )

पृष्ठशृङ्गिन्—नपुंसक, मच्छरोंसे डर-  
नेवाला, भीमसेन, ( पुं० )  
॥ २३८ ॥

प्रबलाकिन्—सर्प मोर, ( पुं० )

प्रतिपादन—बोधन ( जनाना ), प्र-  
सिद्धि, दान, ( न० ) ॥ २३९ ॥

वनमाली हृषीकेशे वाराणां वनमालिनि ।  
 स्त्रीरत्ने च फलिन्यां च लाक्षायां वरवर्णिनी ॥ २४० ॥  
 रोचनायां हरिद्रायामपि स्याद्वरवर्णिनी ।  
 देवदारुणि कालीये दृश्यते वरचन्दनम् ॥ २४१ ॥  
 व्योमचारी विहङ्गेऽपि सुरे विद्याधरेऽपि च ।  
 वनमालिनि रोलम्बे विज्ञेयो मधुसूदनः ॥ २४२ ॥  
 शातकुम्भे कुसुम्भेऽपि महारजनमद्वयोः ।  
 कृत्तिवाससि काकोले श्रीफले मृत्युवञ्चनः ॥ २४३ ॥  
 विघ्नकारी मतो भीमदर्शनेऽपि विघातिनि ।  
 विश्वकर्मा तु मार्तण्डे मुनिभिर्देवशिल्पिनोः ॥ २४४ ॥  
 वृषपर्वा हरे दैत्ये शृङ्गारिणि कसेरुणि ।  
 मांसिकाजलपिप्पल्योर्दृश्यते शकुलादनी ॥ २४५ ॥

वनमालिन्-गोविन्द-भगवान्, वारा-  
 हीकंद, वनमाली ( वनमाला धा-  
 रणकरनेवाला, ) ( पुं० )

वरवर्णिनी-रत्नरूप स्त्री, फूलप्रियंगू,  
 लाख, ॥ २४० ॥ गोरोचन, हल-  
 दी, ( स्त्री० )

वरचंदन-देवदार, कालाचंदन ( न० )  
 ॥ २४१ ॥

व्योमचारिन्-पक्षी, देवता, विद्या-  
 धर, ( पुं० )

मधुसूदन-विष्णु-भगवान्, भौरा,  
 ( पुं० ) ॥ २४२ ॥

महारजन-सुवर्ण, कसूभा ( न० )

मृत्युवंचन-महादेव, कागभेद, बेल-  
 का पेड या खिरनीका पेड ( पुं० )  
 ॥ २४३ ॥

विघ्नकारिन्-भयंकरदर्शनवाला, मा-  
 रनेवाला, ( पुं० )

विश्वकर्मान्-सूर्य, मुनिभेद, देवता-  
 ओंका शिल्पी, ( पुं० ) ॥ २४४ ॥

वृषपर्वन्-महादेव, एक दैत्य, सुपा-  
 रीवृक्ष, कसेरुकंद, ( पुं० )

शकुलादनी-जटामांसी, जलपीपली,  
 ॥ २४५ ॥ रूई पीननेकी ताँत,  
 कुटकी ( स्त्री० )



पिञ्जन्यां कटुकायां च सम्मता शकुलादनी ।  
 शालङ्कायनशब्दः स्याद्विभेदेऽपि नन्दिनि ॥ २४६ ॥  
 शिवकीर्तनशब्दोऽयं भृङ्गरीटेऽपि माधवे ।  
 स्यादर्जुनेऽपि पीयूषधामनि श्वेतवाहनः ॥ २४७ ॥  
 श्वेतधामा सुधाधाम्नि धनसाराब्धिफेनयोः ।  
 सिन्धुरे धान्यभेदे च वर्तते षष्टिहायनः ॥ २४८ ॥  
 संप्रयोगी कलाकेलौ कामुके सुप्रयोगिनि ।  
 गोशीर्षे दैवततरौ हरिचन्दनमस्त्रियाम् ॥ २४९ ॥  
 ज्योत्स्नायां कुङ्कुमे पद्मपारगे हरिचन्दनम् ।  
 पुमानहस्करे मेघवाहने करिवाहनः ॥ २५० ॥

नषष्ठम् ।

अन्तावसायी श्वपचे नापिते च मुनोर्भेदि ।  
 कलानुनादी रोलम्बे कलविङ्के कपिञ्जले ॥ २५१ ॥

शालङ्कायन—ऋषिभेद, नन्दी-गण,  
 ( पुं० ) ॥ २४६ ॥

शिवकीर्तन—शिवका एक गण, वि-  
 ण्णभगवान्, ( पुं० )

श्वेतवाहन—अर्जुन, चंद्रमा, ( पुं० )  
 ॥ २४७ ॥

श्वेतधामन्—चंद्रमा, कपूर, समुद्र-  
 झाग, ( पुं० )

षष्टिहायन—हस्ती, धान्यभेद, ( सा-  
 ठीचावल ) ( पुं० ) ॥ २४८ ॥

संप्रयोगिन्—कलाकेली (कलाक्रीडा),

कामी, अच्छाप्रयोगकरनेवाला,  
 ( पुं० )

हरिचंदन—गोरोचन, देववृक्ष, ( पुं०  
 न० ) ॥ २४९ ॥ चाँदकी किरण,  
 केसर, कमलकेसर, ( न० )

करिवाहन—सूर्य, इंद्र, ( पुं० )  
 ॥ २५० ॥

नषष्ठ ।

अन्तावसायिन्—चंडाल, नाई, मु-  
 निभेद, ( पुं० )

कलानुनादिन्—भौरा, चिड़ा, कपि-  
 जल-पक्षी, ( पुं० ) ॥ २५१ ॥

जायानुजीवी भरते दुर्गताखिलयोर्बके ।

मतः सहस्रवेधी तु रामठे चाम्लवेतसे ॥ २५२ ॥

इति विश्वलोचने नान्तवर्गः ॥

### अथ पान्तवर्गः ।

पैकम् ।

पो वाते पा तु पाने स्यात्पास्तु पातरि वाच्यवत् ॥ १ ॥

पद्वितीयम् ।

कल्पो ब्राह्मदिने न्याये प्रलये विधिशान्तयोः ।

कूपोऽधुगर्तमृन्मानकूपके गुणवृक्षके ॥ २ ॥

कृपा दयायां व्यासे तु कृपो भारतपूरुषे ।

खष्पः क्रोधे बलात्कारे गोपो गोपालभूपयोः ॥ ३ ॥

जायानुजीविन्—नट, दुर्गत (दरिद्र),  
बगला-पक्षी, ( पुं० )

सहस्रवेधिन्—हींग, अम्लवेत, ( पुं० )  
॥ २५२ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें  
नांतवर्ग समाप्त हुवा ॥

### अथ पान्तवर्गः ।

पैक ।

प-वायु ( पुं० )

पा-पीना ( स्त्री० )

पा-रक्षाकरनेवाला ( त्रि० ) ॥ १ ॥

### पद्वितीय ।

कल्प-ब्रह्माका दिन, न्याय, प्रलय,  
विधि, शान्त, ( पुं० )

कूप-कूवाँ, खड्डा, मिट्टीका प्रमाण, नि-  
तंबोंका खड्डा, नौकाका स्तंभ, ( पुं० )  
॥ २ ॥

कृपा-दया, ( स्त्री० )

कृप-व्यास, कृपाचार्य, ( पुं० )

खष्प-क्रोध, बलात्कार, ( पुं० )

गोप-गोपाल, राजा, ॥ ३ ॥ ग्रामोंके  
समूहका अधिकारी, गोष्ठ ( गोस्था-  
न ) का अधिकारी, कुछकरनेवाला,  
( पुं० )

गोपो ग्रामौघगोष्ठाधिकारिणोश्च कचित्करौ ।

क्षुपः क्षुपे स्पर्शनेऽपि सन्ताने मारुते जुपः ॥ ४ ॥

तल्पं कलत्रे शय्यायां तल्पमट्टेऽपि न द्वयोः

सन्तापे दवथौ तापस्तापी तु सरिदन्तरे ॥ ५ ॥

त्रपा लज्जाकुलटयोस्त्रपु सीसकरद्भयोः ।

दर्पो भवेदहङ्कारे दर्पो मृगमदेऽपि च ॥ ६ ॥

नीपो वलिकदंबे स्यान्नीलबन्धुलबन्धने ।

पुष्पं रजसि नारीणां विकासे कुसुमेऽपि च ॥ ७ ॥

रूपमाकारसौन्दर्यस्वभावश्लोकनाणके ।

नाटकादौ मृगे ग्रन्थावृत्तौ च पशुशब्दयोः ॥ ८ ॥

रेपः स्यान्निन्दिते क्रूरे रोपो बाणेऽपि रोपणे ।

लेपस्तु लेपने ख्यातः सुधाजेमनयोरपि ॥ ९ ॥

क्षुप-पौधा, स्पर्शकरना, ( पुं० )

जुप-कल्पवृक्ष, वायु, ( पुं० ) ॥ ४ ॥

तल्प-स्त्री, शय्या, अटारी, ( न० )

ताप-सन्ताप, कष्ट, ( पुं० )

तापी-नदी, ( स्त्री० ) ॥ ५ ॥

त्रपा-लज्जा, कुलटा स्त्री, ( स्त्री० )

त्रपु-शीशा, रौंग, ( न० )

दर्प-अहंकार, कस्तूरी, ( पुं० ) ॥ ६ ॥

नीप-कुंद-वृक्ष, कदंब-वृक्ष, नीला

अशोक-वृक्षका नाकू, ( पुं० )

पुष्प-स्त्रियोंका रज, खिलना, पुष्प  
( फूल ) ( न० ) ॥ ७ ॥

रूप-आकार, सुंदरता, स्वभाव,  
श्लोक, पैसा रुपया आदि, नाटक  
आदि, मृग, ग्रंथकी आवृत्ति,  
पशु, शब्द, ( न० ) ॥ ८ ॥

रेप-निन्दित, क्रूर, ( पुं० )

रोप-बाण, रोपणकरना, ( पुं० )

लेप-लेपनकरना, सुधा (कली आदि),  
भोजनकरना ( पुं० ) ॥ ९ ॥

वपा तु विवरे भेदे बाष्पो नेत्रजलोष्मणोः ।

शष्पं बालतृणं क्लीबं शष्पस्तु प्रतिभाक्षये ॥ १० ॥

शपथाक्रोशयोः शापः शिष्पं कृत्योचिते श्रुवे ।

सूपो व्यञ्जनभेदेऽपि सूपकारेऽपि च स्मृतः ॥ ११ ॥

स्वापस्तु शयनाऽज्ञाननिद्रास्पर्शाज्ञातार्थकः ।

क्षेपो विलम्बे हेलायां गर्हाप्रेरणलेपने ॥ १२ ॥

पट्टतीयम् ।

पुंस्यनूपस्तु महिषे वाच्यवज्जलसङ्कुले ।

आकल्पो वेशमात्रे स्यादाकल्पः कल्पनेऽपि च ॥ १३ ॥

आवापो भाण्डे वपने परिक्षेपालवालयोः ।

आक्षेपो भर्त्सनत्यागाकर्षणे काव्यभूषणे ॥ १४ ॥

उडुपः पुंसि चन्द्रे स्यादुडुपे भेलकेऽस्त्रियाम् ।

उलपस्तृणभेदे स्यादुल्मिन्यामुलपं मतम् ॥ १५ ॥

वपा-छिद्र, भेद, ( स्त्री० )

बाष्प-नेत्रजल, बाफ, ( पुं० )

शष्प-छोटानृण, ( न० ) शष्प-  
तीक्ष्णबुद्धिकी हानि, ( पुं० ) ॥ १० ॥

शाप-सौगन, दुराशिष, ( पुं० )

शिष्प-कृत्यमें उचित, श्रुव, ( न० )

सूप-व्यंजनभेद, रसोई करनेवाला,  
( पुं० ) ॥ ११ ॥

स्वाप-सोना, अज्ञान, निद्रा, स्पर्श,  
अज्ञता ( मुख्यता ) ( पुं० )

क्षेप-विलंब ( देर ), झियोंका 'क-  
रण,' निद्रा, प्रेरणकरना, लेपन,  
( पुं० ) ॥ १२ ॥

पट्टतीय ।

अनूप-भैंसा, ( पुं० ) जलप्रायदेश  
आदि ( त्रि० )

आकल्प-वेशमात्र, कल्पन ( विचार )  
( पुं० ) ॥ १३ ॥

आवाप-भाण्ड ( बरतन या अश्व-  
भूषण ), सौर, परिक्षेप, वृक्षकी  
क्यारी, ( पुं० )

आक्षेप-क्षिप्तकना, त्यागना, खेंचना,  
काव्यभूषण ( अलंकार ) ( पुं० )  
॥ १४ ॥

उडुप-चंद्रमा, ( पुं० ) उडुप-  
नौका, ( पुं० न० )

उलप-तृणभेद ( पुं० ) फैली हुई  
बेल, ( न० ) ॥ १५ ॥

कच्छपः कमठे काष्ठे मल्लभेदेऽपि कच्छपः ।

कच्छपी तु डुलौ क्षुद्ररुग्भेदे वल्लकीभिदि ॥ १६ ॥

कलापः संहते बर्हे काव्यादौ तूणवृन्दयोः ।

भक्ते वस्त्रे च कशिपुरेकोक्त्या तूभयोरपि ॥ १७ ॥

काश्यपी तु क्षितौ मीनमुनिभेदे तु कश्यपः ।

कुटपोऽस्त्री मानभेदे कुटपो निष्कुटे मुनौ ॥ १८ ॥

विदारिकायां कुणपी पूतिगन्धौ शवे पुमान् ।

कुतपो भागिनेये स्यादष्टमांशे दिनस्य च ॥ १९ ॥

कुतपस्तपने छागकम्बले कुशवाद्ययोः ।

जिह्वापः शुनि मार्जारे व्याघ्रपादपयोरपि ॥ २० ॥

पादपः पादपीठेऽद्वौ पादगण्डे च पादपः ।

पादपा पादुकायां स्यात्प्रतापः खेदतेजसोः ॥ २१ ॥

कच्छप—कछुवा, काष्ठ, मल्लभेद,  
( पुं० )

कच्छपी—कछवी, क्षुद्ररुग्भेद, वीणा-  
भेद, ( स्त्री० ) ॥ १६ ॥

कलाप—इकट्टाहुवा, मोरपंख, कांची  
( करधनी ) आदि, बाणोंका माथा,  
वृन्द, ( पुं० )

कशिपु—अन्न, वस्त्र, अन्नवस्त्र, ( पुं० )  
॥ १७ ॥

काश्यपी—मृथ्वी, ( स्त्री० )

कश्यप—मीनभेद, मुनिभेद, ( पुं० )

कुटप—मानभेद, घरके समीप ल-  
गाया हुवा बाग, मुनि, ( पुं० )  
॥ १८ ॥

कुणपी—विदारीकंद, ( स्त्री० )

कुणप—दुर्गंधवाला मुर्दा, ( पुं० )

कुतप—भानजा, दिनका आठवां  
भाग, ॥ १९ ॥

सूर्य, बकरेके ऊनका कंबल, कुशा,  
बाजा ( पुं० )

जिह्वाप—कुत्ता, बिलाव, बघेरा, वृक्ष,  
( पुं० ) ॥ २० ॥

पादप—पादपीठ ( पैरोंकीचाँकी ),  
पर्वत, गंडसैल ( पर्वतसे गिरा  
बड़ा पत्थर ) ( पुं० )

पादपा—खड्ग, ( स्त्री० )

प्रताप—पसीना, तेज, ( पुं० ) ॥ २१ ॥

रक्तपा स्याज्जलौकायां रक्तपस्तु क्षपाचरे ।

विकल्पो विचिकित्सायां विकल्पो भ्रान्तिपक्षयोः ॥ २२ ॥

विटपोल्ली लतास्तम्बस्त्रिङ्गविस्तारपल्लवे ।

पञ्चतुर्थम् ।

अपलापोऽपलपने प्रेमापहवयोरपि ॥ २३ ॥

अभिरूपो बुधे रम्ये प्राप्तुरूपसुरूपवत् ।

अवलेपस्तु दोषे स्याद्भवे लेपे च सङ्गमे ॥ २४ ॥

उपतापो मतः पुंसि गदोत्तापत्वरार्थकः ।

उपयापो विक्षेपे स्यात्तथा भेदेऽवदारणे ॥ २५ ॥

जलकूपी पुष्करिण्यां कूपगर्भेऽपि सा स्मृता ।

नागपुष्पस्तु पुन्नागे चम्पके नागकेसरे ॥ २६ ॥

परिकम्पे मतो भीतौ परिकम्पः प्रकम्पने ।

परीवापो जलस्थाने पर्युप्तौ च परिच्छदे ॥ २७ ॥

रक्तपा-जोक, ( स्त्री० )

रक्तप-राक्षस, ( पुं० )

विकल्प-संदेह, भ्रान्ति, पक्ष, ( कल्पना ) ( पुं० ) ॥ २२ ॥

विटप-बेल, गुच्छा, कामिशिरोमणि, विस्तार, पल्लव ( पत्ते ) ( पुं० )

पञ्चतुर्थम् ।

अपलाप-खोटाबोलना, प्रेम, छुपाना, ( पुं० ) ॥ २३ ॥

अभिरूप-प्राप्तरूप-सुरूप-पंडित, सुंदर, ( पुं० )

अवलेप-दोष, अभिमान, लेपन, संगम ( मिलाप ) ( पुं० ) ॥ २४ ॥

उपताप-रोग, उत्ताप ( बहुतखेद ), शीघ्रता ( पुं० )

उपयाप-विशेष ( भेद ), विदीर्ण करना, फोटना, ( पुं० ) ॥ २५ ॥

जलकूपी-नदी, कूवाका गर्भ ( बीच ) ( स्त्री० )

नागपुष्प-पुन्नाग-वृक्ष, चंपा, नाग-केसर, ( पुं० ) ॥ २६ ॥

परिकंप-भय, काँपना ( पुं० )

परीवाप-जलस्थान, अच्छी तरह बीजबोना, परिवार, ( पुं० ) ॥ २७ ॥

पिण्डपुष्पमशोके स्याज्जवापुष्पेऽपि पंकजे ।  
 बहुरूपः स्मरहेर खभूसरटधूनके ॥ २८ ॥  
 मेघपुष्पं तु पिण्डाभे जलनादेययोरपि ।  
 विप्रलापो विरोधोक्तावपार्थवचनेऽपि च ॥ २९ ॥  
 बीजपुष्पं मरुबके मतं दमनकद्रुमे ।  
 वृकधूपस्तु सरलद्रवकृत्रिमधूपयोः ॥ ३० ॥  
 वृषाकपिर्महादेवे कृष्णपावकयोरपि ।  
 हेमपुष्पमशोके स्याज्जवापुष्पेऽपि चम्पके ॥ ३१ ॥

पपञ्चमम् ।

भवेचामरपुष्पं तु काशे चूते च केतके ॥ ३२ ॥

इति विश्वलोचने पान्तवर्गः ॥

पिण्डपुष्प—अशोक—वृक्ष, जवापुष्प,  
 कमल, ( न० )

बहुरूप—कामदेव, महादेव, विष्णु,  
 गिरगट, राल—वृक्ष, ( पुं० ) ॥ २८ ॥

मेघपुष्प—मेघ, जल, नदीमें होने-  
 वाला ( न० )

विप्रलाप—विरोधसे वचन, निरर्थक-  
 वचन, ( पुं० ) ॥ २९ ॥

बीजपुष्प—मरुवा, दौना, ( न० )

वृकधूप—सरलवृक्षका गोंद, बनाई  
 हुई धूप, ( पुं० ) ॥ ३० ॥

वृषाकपि—महादेव, कृष्ण, अग्नि  
 ( पुं० )

हेमपुष्प—अशोक ७ वृक्ष, जवापुष्प,  
 चंपा, ( न० ) ॥ ३१ ॥

पपञ्चम ।

अमरपुष्प—काश, आँब, केतकी-  
 पुष्प, ( न० ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें  
 पान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

## अथ फान्तवर्गः ।

वैकम् ।

फु मन्ने फे रुते सङ्गचे स्फा वृद्धौ फेरवे पुमान् ।

फः स्याज्झञ्झानिले पुंसि स्फूः स्फुटे फुलभाषयोः ॥ १ ॥

फद्वितीयम् ।

गुम्फो बाहोरलंकारे गिरातन्तोश्च गुम्फने ।

रफो रवर्णे पुंसेव कुत्सिते त्वभिधेयवत् ॥ २ ॥

शफं खुरे गवादीनां तरूणां चरणेऽपि च ।

शिफा जटायां नद्यां च मांसिकायां च मातरि ॥ ३ ॥

इति विश्वलोचने फान्तवर्गः ॥

## अथ वान्तवर्गः ।

वैकम् ।

वं प्रचेतंसि पुंसि स्यादुपमाने तदव्ययम् ॥ १ ॥

अथ फान्तवर्गः ।

वैक ।

फु-तंत्र ( उच्चारण करके फूकदेना ),

शब्द, युद्ध, ( पुं० )

स्फा-वृद्धि, ( स्त्री० ) गीदङ्ग, ( पुं० )

फ-वृष्टिसहित वायु, ( पुं० )

स्फू-स्फुट ( प्रकट ), फूलाहुवा,  
( पुं० ) ॥ १ ॥

फद्वितीय ।

गुम्फ-भुजाओंका आभूषण, वाणी  
और तंतुओंका गुम्फन ( गूंथना ),

रेफ-र-वर्ण, ( पुं० ) कुत्सित, ( त्रि० )

॥ २ ॥

शफ-गौआदिकोंका खुर, वृक्षोंकी जड़,  
( न० )

शिफा-वृक्षकी जड़, नदी, जटामांसी,  
माता, ( स्त्री० ) ॥ ३ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें  
फान्तवर्ग समाप्तहुवा ॥

अथ वान्तवर्गः ।

वैक ।

व-वरुण, ( पुं० ) उपमान ( अव्यय )

॥ १ ॥



वद्वितीयम् ।

स्त्री वंशांशे खजाकायां कंबिः कंबुः पुमान् गजे ।

वलये शङ्खशम्बूक कन्धरामलके स्त्रियाम् ॥ २ ॥

द्वये सङ्खचान्तरे खर्वश्चावीं स्याच्छोभनाधियोः ।

जम्बूः स्त्री मेरुसरिति द्वीपपादपभेदयोः ॥ ३ ॥

डिम्बस्तु विप्लवप्रीहफुप्फुसैरण्डभीतिषु ।

डिम्बः कलकलेऽपि स्याद्द्वीं फणखजाकयोः ॥ ४ ॥

दावीं दारुहरिद्रायां हरिद्रादेवदारुणोः ।

पुंभूमि पूर्वजेषु स्यात्पूर्वः प्रागाद्ययोस्त्रिषु ॥ ५ ॥

तिक्ततुम्बीश्रियोर्लम्बा बिम्बं स्याद्विम्बिकाफले ।

मण्डले प्रतिबिम्बे च बिम्बः पुंसि नपुंसकम् ॥ ६ ॥

शंबः शुभान्विते वज्रे मुसलाम्रस्थमण्डले ।

शुम्बो मतः पुमानेव भृशगुल्माप्रकाण्डयोः ॥ ७ ॥

वद्वितीय ।

कंबि—वंशविभाग, कडछी, ( स्त्री० )

कंबु—हस्ती ( पुं० ) कंकण, शंख,  
संखला, ग्रीवा, आँवला ( स्त्री० )

॥ २ ॥

खर्व—बौना, संख्याभेद, ( पुं० )

चावीं—सुंदरी, बुद्धि, ( स्त्री० )

जंबू—सुमेरुकी नदी, ( स्त्री० ) जंबू-  
द्वीप, जामन—वृक्ष, ( पुं० ) ॥ ३ ॥

डिंब—हलचल या नाश, तिल्ली, फुप्फुस,  
अरंड, भय, कोलाहल ( पुं० )

दबीं—सर्पकी फणा, कडछी, ( स्त्री० )

॥ ४ ॥

दावीं—दारुहलदी, हलदी, देवदार-  
वृक्ष, ( स्त्री० )

पूर्व—पहलेजन्मनेवाले ( पुं० ) बहु-  
वचनांत ) पूर्व ( पहल ) आदिमें-  
होनेवाला ( त्रि० ) ॥ ५ ॥

लंबा—कडवी तूँबी, लक्ष्मी, ( स्त्री० )

बिंब—बिंबिका ( गोहल ) फल, ( न० )  
मंडल, प्रतिबिंब, ( पुं० ) ॥ ६ ॥

शंब—शुभयुक्त, ( त्रि० ) वज्र, मूस-  
लके आगेका लोहमंडल, ( पुं० )

शुंब—सघनगुच्छा, वृक्षस्कन्ध ( वृक्ष-  
की शाख ) ॥ ७ ॥

वृत्तीयम् ।

कदम्बं निकुरुम्बे स्यान्नीपसिद्धार्थयोः पुमान् ।

गजाह्वा गजपिप्पल्यां गजाह्वं हस्तिनापुरे ॥ ८ ॥

गन्धर्वो मृगभेदे स्याद्गायने खेचरे हये ।

अन्तराभवसिद्धे च रससिद्धे च कोकिले ॥ ९ ॥

गोडुम्बः शीर्णवृक्षेऽपि गवादिन्याः फलेपि च ।

द्विजिह्वः पत्रगे पुंसि द्विजिह्वः पिशुने त्रिषु ॥ १० ॥

कटीचके नितम्बः स्याच्छिखरिस्कंधरोधसोः ।

प्रलम्बो लम्बने दैत्ये तालाङ्कुरकशाखयोः ॥ ११ ॥

प्रालम्बो हारभेदेऽपि त्रपुषेपि पयोधरे ।

भूजम्बूरपि गोडुम्बे विकङ्कतफले स्त्रियाम् ॥ १२ ॥

हेरम्बो महिषे लम्बोदरशूरत्वगर्विते ।

बचतुर्थम् ।

राजजम्बूस्तु जम्बूभिः पिण्डखर्जूरयोर्मता ॥ १३ ॥

वृत्तीय ।

कदम्ब-समूह, कदम्ब-वृक्ष, सिरसौ  
( पुं० )

गजाह्वा-गजपीपल, ( स्त्री० )

गजाह्व-हस्तिनापुर ( न० ) ॥ ८ ॥

गन्धर्व-मृगभेद, गवैया, खेचर ( गन्धर्व ), अश्व, अन्तराभवमें होने-  
वाला सिद्ध, रससिद्ध, कोकिल  
( नर-कोयल ) ( पुं० ) ॥ ९ ॥

गोडुम्ब-गिराहुवा-वृक्ष, गड्डूभा ( कडु-  
तुंबी ) ( पुं० )

द्विजिह्व-सर्प, ( पुं० ) जुगलखोर,  
( त्रि० ) ॥ १० ॥

नितम्ब-चूतङ या कटी, पर्वतकी  
ऊँची चोटी, किनारा ( पुं० )

प्रलम्ब-लम्बन ( लटकना ), प्रलम्ब  
दैत्य, तालका अंकुर और शाखा,  
( पुं० ) ॥ ११ ॥

प्रालम्ब-हारभेद, रांग, कुच, ( पुं० )  
भूजम्बू-गड्डूभा, खटाईका फल, ( स्त्री० )  
॥ १२ ॥

हेरम्ब-भैसा, गणेश, शूरतासें गर्वित,  
( पुं० ) ।

बचतुर्थ ।

राजजम्बू-जामनभेद, मैनफल-वृक्ष,  
खजूर, ( स्त्री० ) ॥ १३ ॥

ललज्जिह्वः प्रमानुष्टे शुनि हिंसेऽभिधेयवत् ।

शतपर्वा तु दूर्वायां भार्गवस्य च योषिति ॥ १४ ॥

वपश्चमम् ।

गोरक्षजम्बूगोधूमे तथा गोरक्षतंडुले ।

धूलीकदम्बस्तिनिशे कदम्बे वरुणद्रुमे ॥ १५ ॥

शृगालजम्बूगोडुम्बे कचित्तु बदरीकले ॥ १६ ॥

इति विश्वलोचने भान्तवर्गः ॥

### अथ भान्तवर्गः ।

भैकम् ।

भा स्यान्मयूषे शुकेऽपि पुंसि पुष्पंधये तु भः ।

दीप्तौ च स्थानमात्रे भा भं नक्षत्रे भये तु भी ॥ १ ॥

भूर्भुवि स्थानमात्रेऽपि स्त्रियां भवितरि त्रिषु ।

सम्बुद्धावव्ययं भो स्यात्-

ललज्जिह्व-ऊँट, कुत्ता, ( पुं० ) हि-  
साकरनेवाला, ( त्रि० ) ।

शतपर्वा-दूब ( घास ), शुक्रकी स्त्री,  
( स्त्री० ) ॥ १४ ॥

गोरक्षजंबू-गेहूं, गुलसकरी, ( पुं० )

धूलीकदंब-तिरिच्छ वृक्ष, कदंब,  
बरना-वृक्ष, ( पुं० ) ॥ १५ ॥

शृगालजंबू-गड्ढा ( कटुतुंबी ), बेर,  
( पुं० ) ॥ १६ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषा-  
टीकामें भान्तवर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ भान्तवर्गः ।

भैक ।

भा-किरण ( स्त्री० ) भ-शुक्र, भौरा,  
( पुं० ) भा-दीप्ति, स्थानमात्र,  
( स्त्री० ) नक्षत्र, ( न० ) ।

भी-भय ( स्त्री० ) ॥ १ ॥

भू-पृथ्वी, स्थानमात्र, ( स्त्री० ) होने-  
वाला ( त्रि० ) ।

भो-संबोधनकरना ( अव्यय )

भद्वितीयम् ।

—कुम्भो राश्यन्तरे घटे ॥ २ ॥

समाधौ गजमूर्द्धांशे कुम्भकर्णसुते विटे ।

कुम्भी स्यात्पाटला वारिपर्णी पिठरकटफले ॥ ३ ॥

कुम्भं गुग्गुलुवृक्षे स्यात्त्रिवृतायां च न द्वयोः ।

गर्भो भ्रूणेऽर्भके कुक्षौ सन्धौ पनसकण्टके ॥ ४ ॥

जम्भो दन्तेऽपि जम्बीरे दैत्यभेदेऽपि भक्षणे ।

जृम्भो विकासे पुंस्येव जृम्भस्तु त्रिषु जृम्भणे ॥ ५ ॥

डिम्भस्तु बालिशे पोते दम्भः कैतवकल्कयोः ।

दन्भूः सूर्ये पवौ नाभिर्ना क्षत्रे चक्रवर्त्तिनि ॥ ६ ॥

द्वयोः प्रधानचक्रान्तःप्राण्यङ्गेषु मदे स्त्रियाम् ।

निभस्तु सदृशे व्याजे संपूर्वः स्तुल्य एव सः ॥ ७ ॥

भद्वितीय ।

कुम्भ—कुम्भ-राशि, घट, ॥ २ ॥ स-

साधि, हस्तीका मस्तक-भाग, कुम्भ-

कर्णका पुत्र, कामी, ( पुं० )

कुम्भी—पाटलका-पुष्प, जलकुम्भी, ना-

गरमोथा, कायफल, ( स्त्री० ) ॥ ३ ॥

कुम्भ—गूगल-वृक्ष, निसोत, ( न० )

गर्भ—गर्भ ( भ्रूण ), बालक, कुक्षि,

सन्धि, फनसका कांटा, ( पुं० )

॥ ४ ॥

जम्भ—दांत, जम्बीरी नीबू, एक

दैत्य, भक्षण, ( पुं० )

जृम्भ—खिलना-पुष्प आदिका, ( पुं० )

जम्भाई, ( त्रि० ) ॥ ५ ॥

डिम्भ—मूर्ख, बालक, ( पुं० )

दम्भ—छल, कल्क ( तिलपीठी आदि)

( पुं० )

दन्भू—सूर्य, वज्र, ( पुं० )

नाभि—चक्रवर्ती क्षत्रिय, नाभिराजा,

॥ ६ ॥ प्रधान, चक्रका मध्य-

भाग, प्राणियोंका अंग ( सूँडी ),

कस्तूरीमद, ( स्त्री० )

निभ—संनिभ—सदृश, व्याज ( ब-

हाना ) ( पुं० ) ॥ ७ ॥

रम्भा कदल्यप्सरसो रम्भो वैणवदण्डके ।

परिपूर्वस्तु संश्लेषे विभुर्नित्ये शिवे प्रभौ ॥ ८ ॥

शुम्भः स्याद्ब्रह्मशिवयोरर्हत्यपि च केशवे ।

योगे शुभः शुभं क्षेमे शोभा कान्तीच्छयोर्मता ॥ ९ ॥

सभा सामाजिके गोष्ठ्यां धूनमन्दिरयोः सभा ।

स्तम्भो जडत्वे स्थूणायां स्वभूर्गोविन्दवेधसोः ॥ १० ॥

भतृतीयम् ।

पापेऽप्यरिष्टेऽप्यशुभमात्मभूः सरवेधसोः ।

आरम्भ उद्यमे दर्पे त्वरायां च वधेऽपि च ॥ ११ ॥

ऋषभः श्रेष्ठवृषयोरष्टवर्गौषधान्तरे ।

स्वराद्रिभेदे वराहपुच्छे रन्ध्रे च कर्णयोः ॥ १२ ॥

रम्भा—केला, अप्सरा, ( स्त्री० )

रम्भ—बांसका दंड, परिरम्भ—  
अच्छीतरह मिलना, ( पुं० )

विभु—नित्य, शिव, प्रभु, ( पुं० ) ८

शुम्भ—ब्रह्मा, शिव, अर्हत देव,  
केशव ( विष्णु ) ( पुं० )

शुभ—योग, ( पुं० ) क्षेम ( कुशल )  
( न० )

शोभा—कान्ति, इच्छा, ( स्त्री० ) ९

सभा—सामाजिक ( सहधर्मियोंकी  
सभा ), गोष्ठी, जूवा, मंदिर,  
( स्त्री० )

स्तम्भ—जडता, स्थूणा ( धून ) ( पुं० )

स्वभू—विष्णु, ब्रह्मा, ( पुं० ) ॥ १० ॥

भतृतीय ।

अशुभ—पाप, खेद, ( न० )

आत्मभू—कामदेव, ब्रह्मा, ( पुं० )

आरम्भ—उद्यम, अभिमान, शीघ्रता,  
वध, ( मारना ) ( पुं० ) ॥ ११ ॥

ऋषभ—श्रेष्ठ, बैल, अष्टवर्गकी एक  
औषधि, एक गानेका स्वर, एक  
पर्वत, सूकरकी पूँछ, कानका  
छिद्र ( पुं० ) ॥ १२ ॥

ऋषभी तु नराकारनारीविधवयोषितोः ।  
 शूकशिब्यां शिरालायां श्रेष्ठे स्यादुत्तरस्थितः ॥ १३ ॥  
 ककुभोऽर्जुनवृक्षेऽपि रागभेदे प्रसेवके ।  
 ककुब् दिक्शोभयोः शास्त्रे कम्बले चम्पकस्तजि ॥ १४ ॥  
 करभो मणिवन्धादिकनिष्ठान्ते क्रमेलके ।  
 अष्टापदेऽपि करभः शरभे च मृगान्तरे ॥ १५ ॥  
 कुसुम्भं हेमनि महारजने ना कमण्डलौ ।  
 गर्दभी रासभे गन्धभेदे क्लीबं तु कैरवे ॥ १६ ॥  
 गर्दभी खलपरुजन्तुभेदयोरथ पुंस्ययम् ।  
 दुन्दुभिर्दैत्यभेयोः स्त्री त्वक्षबिन्दुत्रिके द्वये ॥ १७ ॥  
 दुष्प्रापे वल्लभे कच्छरोगिणि त्रिषु वल्लभः ।  
 निकुम्भः कुम्भकर्णस्य पुत्रे दन्त्यामपि स्मृतः ॥ १८ ॥

ऋषभी-नराकार ( दाढीमूछवाली )  
 स्त्री, विधवा स्त्री, काँछ, कमरख  
 ( स्त्री० )

ऋषभ-शब्द किसीके आगे जोड़ा-  
 हुवा श्रेष्ठवाचक है ( पुं० )  
 ॥ १३ ॥

ककुभ-अर्जुन- ( कोह ) वृक्ष, राग-  
 भेद, बीणाकी तूँबी, ( पुं० )

ककुभ-दिशा-पूर्व आदि, शोभा,  
 शास्त्र, कंबल, चंपाकी माला,  
 ( स्त्री० ) ॥ १४ ॥

करभ-मणिबंध ( पहुँचा ) से लेकर  
 कनिष्ठाके अंततक भाग, ऊँट,

चौपड़ या सुवर्ण, शरभ ( साबर ),  
 मृगभेद ( पुं० ) ॥ १५ ॥

कुसुम्भ-सुवर्ण, कमंडलु ( जलपात्र )  
 ( पुं० )

गर्दभ-गधा, गंधभेद, ( पुं० ) श्वेत  
 कमल ( न० ) ॥ १६ ॥

गर्दभी-क्षुद्ररोग, जन्तुभेद ( स्त्री० )

दुन्दुभि-एक दैत्य, भेरी ( पुं० ) चौपड़  
 खेलनेके तीन पासे ( पुं० स्त्री० )  
 ॥ १७ ॥

वल्लभ-जो दुःखसे प्राप्त हो वह, प्रिय,  
 कच्छरोगवाला, ( त्रि० )

निकुम्भ-कुम्भकर्णका पुत्र, जमालगो-  
 टाकी जड़, ( पुं० ) ॥ १८ ॥

बल्लभो ना कुलीनाश्चे दयिताध्यक्षयोस्त्रिषु ।  
 पुनर्नवायां वर्षाभूः स्त्री ना किंचुलके प्लवे ॥ १९ ॥  
 विष्कम्भो योगभेदेऽपि बन्धभेदेऽपि योगिनाम् ।  
 रूपकाङ्गे परिष्टम्भे विस्तारप्रतियत्नयोः ॥ २० ॥  
 विष्कम्भः प्रतिबन्धेऽपि वैदर्भे विस्मृतावपि ।  
 विश्रम्भः केलिकलहे विश्वासे प्रणये वधे ॥ २१ ॥  
 वृषभस्तु वृषे शुके वृषभः पुङ्गवेऽपि च ।  
 वैदर्भं वाक्यवक्रत्वे वैदर्भः स्यान्नृपान्तरे ॥ २२ ॥  
 सनाभिः पूजने पुंसि सनाभिः सदृशे त्रिषु ।  
 सुरभिश्चम्पके चैत्रे वसन्ते गन्धके कवौ ॥ २३ ॥  
 स्वर्णे जातीफले चाब्जे त्रिषु मद्यसुगन्धयोः ।  
 ख्याते च स्त्री तु शल्लक्यां सुरभी मातृभेदयोः ॥ २४ ॥

बल्लभ—कुलीन अश्व, ( पुं० ) प्रिय, अध्यक्ष, ( त्रि० )	वृषभ—बैल, शुक्र, श्रेष्ठ, ( पुं० )
वर्षाभू—साँटी, ( स्त्री० ) केंचुवा, मेंडक, ( पुं० ) ॥ १९ ॥	वैदर्भ—वाक्यकी वक्रता, ( न० )
विष्कम्भ—योगभेद, योगियोंका बंध- भेद, रूपकाङ्ग अंग, परिष्टम्भ (अरली), विस्तार, प्रतियत्न, ॥ २० ॥ प्रति- बंध, वैदर्भ ( एक राजा ), विस्मृति ( भूलना ) ( पुं० )	वैदर्भ—एक राजा, ( पुं० ) ॥ २२ ॥
विश्रम्भ—क्रीडाकलह, विश्वास, नम्रता, वध ( मारना ) ( पुं० ) ॥ २१ ॥	सनाभि—पूजन, ( पुं० ) सदृश ( तुल्य ) ( त्रि० )
	सुरभि—चंपा, चैत्र—मास, वसंत- ऋतु, गंधक, कवि ( पुं० ) ॥ २३ ॥ सुवर्ण, जायफल, ( पुं० ) मद्य, सुगंध, विख्यात, ( त्रि० ) शल्लकी ( सेह ), गौ, मातृभेद, ( स्त्री० ) ॥ २४ ॥

भवतुर्थम् ।

वाण्यां छन्दःप्रभेदेऽपि स्यादनुष्टुबिति स्मृतः ।

अवष्टम्भः सुवर्णेऽपि प्रारम्भस्तम्भयोरपि ॥ २५ ॥

शातकुम्भं तु कनके शातकुम्भोऽश्वमारके ॥ २६ ॥

इति विश्वलोचने भान्तवर्गः ॥

### अथ मान्तवर्गः ।

मैकम् ।

मः शिवे पुंसि मश्चन्द्रे मो विधौ मां तु मातरि ।

स्त्रियां स्यान्मा रमायां च माक्षेपे मानवन्धयोः ॥ १ ॥

मा निषेधेऽव्ययं मे च ममेत्यर्थे ममाव्ययम् ।

मद्वितीयम् ।

अमो रोगेऽपि तद्वेदे स्यादपके तु वाच्यवत् ॥ २ ॥

इध्मः पुंसि वसन्ते स्यादिध्मः स्यान्मीनकेतने ।

उमा गौर्यामतस्यां च हरिद्राकान्तिकीर्तिषु ॥ ३ ॥

भवतुर्थम् ।

अनुष्टुभ्—सरस्वती, छन्दोभेद, ( स्त्री० )

अवष्टम्भ—सुवर्ण, प्रारंभ, स्तम्भ

( धंभ ) ( पुं० ) ॥ २५ ॥

शातकुम्भ—सुवर्ण, ( न० ) कनेरका

पेड, ( पुं० ) ॥ २६ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषा-

टीकामें भान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

अथ मान्तवर्गः ।

मैक ।

म—शिव, चंद्रमा, ब्रह्मा, ( पुं० )

मा—माता, लक्ष्मी, ( स्त्री० )

मा—आक्षेप, माप, बंधन, ॥ १ ॥

( स्त्री० )

मा—निषेध, ( अव्यय )

मे—मम—मम ( मेरा ) शब्दका अर्थ

( अव्यय )

मद्वितीय ।

अम—रोग, रोगभेद, ( पुं० ) अपक्व,

( त्रि० ) ॥ २ ॥

इध्म—वसंत—ऋतु, कामदेव, ( पुं० )

उमा—पार्वती—देवी, अलसी, हलदी,

कान्ति, कीर्ति, ( स्त्री० ) ॥ ३ ॥



उमस्तु स्यात्पुमानेव मतो नगरघट्टयोः ।

ऊर्मिर्द्वयोस्तरङ्गे स्याद्भङ्गे वेगप्रकाशयोः ॥ ४ ॥

वस्त्रसंकोचरेखायामुत्कण्ठापीडयोरपि ।

कामः स्मरेच्छयोः काम्ये कामं रेतो निकामयोः ॥ ५ ॥

सम्मते स्यादनुमतौ काममित्येतदव्ययम् ।

कामिः स्त्री कामकान्तायां कामिः स्यात्कामुके पुमान् ॥ ६ ॥

सर्वनाम्नि किमित्येतद्विज्ञेयमभिधेयवत् ।

किं वितर्केऽव्ययं प्रश्ने क्षेपे निन्दाप्रकारयोः ॥ ७ ॥

किर्मिः स्त्री स्वर्णपुत्र्यां स्यादपि मालापलाशयोः ।

कृमिर्ना किमिवत्कीटे लाक्षायां कृमिले खरे ॥ ८ ॥

क्रमः शक्तिपरीपाटीचलने कम्पनेऽपि च ।

खर्मः क्षौमप्रभेदेऽपि खर्म स्यादपि पौरुषे ॥ ९ ॥

उम—नगर, घाट, ( पुं० )

ऊर्मि—तरंग, भंग ( टटना ), वेग,  
प्रकाश ॥ ४ ॥ वस्त्रसंकोचकी रेखा,  
उत्कंठा ( उत्तेर ), पीडा, ( पुं०  
स्त्री० )

काम—कामदेव, इच्छा, इच्छित, ( पुं० )  
वीर्य, निकाम ( यथेच्छित ), ( न० )  
॥ ५ ॥

कामम्—सम्मति, अनुमति, ( अव्यय )  
कामि—कामदेवकी स्त्री ( रति ) ( स्त्री० )  
कामी पुरुष, ( पुं० ) ॥ ६ ॥

किम्—वितर्क, प्रश्न, क्षेप ( आक्षेप ),

निन्दा, प्रकार, ( सर्वनाम होनेपर  
त्रिलिंग और अव्यय होनेपर अलिंग )  
॥ ७ ॥

किर्मि—सनाय, असवरग—वृक्ष, ढाक-  
वृक्ष ( स्त्री० )

कृमि—किमि—कीट, लाख, जिसके  
किमि पड़ी हैं ऐसा गर्दभ, ( पुं० )  
॥ ८ ॥

क्रम—शक्ति, परीपाटी, चलना, काँपना  
( पुं० )

खर्म—रेशमी वस्त्रका भेद, पुरुषार्थ,  
( न० ) ॥ ९ ॥

गमो द्यूतान्तरे मार्गेऽप्यपर्यालोचितेऽपि च ।

गुल्मः स्तम्बे चमूरक्षासैन्ययोः ग्रीहघट्टयोः ॥ १० ॥

गुल्मी स्यादामलक्येलावनिकावस्त्रवेश्मसु ।

ग्रामः स्वरे संवसथे वृन्दे शब्दादिपूर्वकः ॥ ११ ॥

घर्मः स्यादातपे ग्रीष्मे ऊष्मस्वेदजलेऽपि च ।

जाल्मः स्यात्पामरे क्रूरे जाल्मोऽसमीक्ष्यकारिणि ॥ १२ ॥

जिह्वां तु तगरे जिह्वास्त्रिषु स्यान्मन्दवक्रयोः ।

हरिघवेऽपि हरिते तोक्मस्तोक्मं श्रुतेर्मले ॥ १३ ॥

दमस्तु दमने दण्डे दमथे कर्दमेऽपि च ।

दस्मो वैश्वानरे चौरै यजमानेऽपि च स्मृतः ॥ १४ ॥

द्रुमस्तु पादपे पारिजाते किंपुरुषेश्वरे ।

धर्मः स्यादस्त्रियां पुण्ये धर्मो न्यायस्वभावयोः ॥ १५ ॥

गम-जूवा, मार्ग, अच्छी तरह नहीं देखा हुआ, ( पुं० )	जिह्वा-तगरका वृक्ष, ( न० ) मंद, कुटिल, ( त्रि० )
गुल्म-गुच्छा, सेनाकी रक्षा, सेनाभेद, तिल्ली, घाट, ( पुं० ) ॥ १० ॥	तोक्म-हरा जव, हरा ( सबजा ), ( पुं० ) कानका मैल, ( न० ) ॥ १३ ॥
गुल्मी-आंवला, इलायची, वनी ( छोटावन ), तंबू-डोरा, ( स्त्री० )	दम-दमनकरना ( इन्द्रियोंको शांत करना ) दंडदेना, रोकना, कीचड़ ( पुं० )
ग्राम-स्वरभेद, ग्राम ( गाँव ), ग्रामके पूर्व शब्दआदि लगानेसे समूह, ( जैसे-शब्दग्राम ) ( पुं० ) ॥ ११ ॥	दस्म-अग्नि, चोर, यजमान, ( पुं० ) ॥ १४ ॥
घर्म-धूप, ग्रीष्म-ऋतु, गरमी, पसीनाका जल, ( पुं० )	द्रुम-वृक्ष, कल्पवृक्ष, कुबेर ( पुं० )
जाल्म-नीच, क्रूर, बिनाविचारे करनेवाला ( पुं० ) ॥ १२ ॥	धर्म-पुण्य, ( पुं० न० ) धर्म-न्याय, स्वभाव, ( पुं० ) ॥ १५ ॥

उपमायां यमाचारवेदान्तेऽपि धनुष्यपि ।

यागे योगेऽप्यर्हिंसायां सोमपेऽपि कचिन्मतः ॥ १६ ॥

ध्यामो गन्धतृणे पुंसि ध्यामो दमनकेऽपि च ।

श्यामवर्णे त्रिषु ध्यामो नुमा नान्नि परद्युतौ ॥ १७ ॥

नेमिः कूपत्रिकायां स्याच्चक्रान्ते तिनिशद्रुमे ।

नेमोऽर्द्धकीलसीमासु गर्तप्राकारकैतवे ॥ १८ ॥

पद्मोऽस्त्री पद्मनालेऽब्जे व्यूहसंख्यानतरे निधौ ।

पद्मके नागभेदे ना पद्मा भार्जीश्रियोः स्त्रियाम् ॥ १९ ॥

ब्राह्मी तु भारतीपङ्कगतिकाब्रह्मशक्तिषु ।

फज्जिकायां तथा सोमवल्लरीशाकयोरपि ॥ २० ॥

भामः क्रोधे रवौ भासि भीमः शम्भौ वृकोदरे ।

स्यादम्लवेतसे भीमस्त्रिषु घोरे भयानके ॥ २१ ॥

उपमा, धर्मराज, आचार, वेदान्त,  
धनुष, याग, योग, अहिंसा, अमृ-  
त पान करनेवाला, ( पुं० ) ॥ १६ ॥

ध्याम—सुगंधि तृण—विशेष, दौना  
( पुष्पपेड ) ( पुं० ) श्यामवर्ण,  
( त्रि० )

नुमा—नाम, परमकांति, ( स्त्री० )  
॥ १७ ॥

नेमि—कूपकी त्रिका ( चौखटा ),  
चक्रकी पुटी, तिरिच्छ वृक्ष, ( पुं० )

नेम—आधा, कीला, सीमा, खड्ग,  
किला, कपट, ( पुं० ) ॥ १८ ॥

पद्म—कमलनाल, कमल, सेनारचना,  
संख्याभेद, निधि, पद्माक, नाग-  
भेद, ( पुं० )

पद्मा—भारंगी, लक्ष्मी, ( स्त्री० ) १९  
ब्राह्मी—सरस्वती, मत्स्यभेद ( कीच-  
डकी मच्छी ), ब्रह्मशक्ति, धमासा,  
सोमबेल, शाकभेद, ( स्त्री० ) २०

भाम—क्रोध, सूर्य, प्रभा, ( पुं० )

भीम—महादेव, भीमसेन, अम्लवेत,  
( पुं० ) घोर, भयानक ( पुं० )

॥ २१ ॥

भीष्मस्तु हरगाङ्गेयरक्षसि त्रिषु भीषणे ।  
 स्थानमात्रे क्षितौ भूमिर्भौमस्तु नरके कुजे ॥ २२ ॥  
 भ्रमो भ्रान्तौ च कुन्दाख्ययन्त्रे च जलनिर्गमे ।  
 संयमे यमजे धर्मराजे ध्वाङ्गे युगे यमः ॥ २३ ॥  
 नित्यकर्मप्रभेदे च यमुनायां यमी स्त्रियाम् ।  
 प्रहरे संयमे यामो यामिः स्वसृकुलस्त्रियोः ॥ २४ ॥  
 प्रधमश्चापेपि संग्रामे राममाधवयोषिति ।  
 रमस्तु मन्मथे कान्ते रमोऽशोकमहीरुहे ॥ २५ ॥  
 रश्मिरंशुप्रग्रहयो रश्मिर्लोचनलोमनि ।  
 रामस्तु राघवे जामदग्नये हलधरेऽपि च ॥ २६ ॥  
 पशुभेदे सितश्याममनोजेषु तु वाच्यवत् ।  
 रामाङ्गनाहिङ्गुलिन्यो रामं वास्तुककुष्ठयोः ॥ २७ ॥

भीष्म—महादेव, भीष्मपितामह, राक्षस, ( पुं० ) भीषण, ( त्रि० )	यामि—बहन, कुलकी स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ २४ ॥
भूमि—स्थानमात्र, पृथ्वी, ( स्त्री० )	प्रधम—धनुष, संग्राम, ( पुं० )
भौम—भौमासुर ( नरकासुर ), मंगलग्रह, ( पुं० ) ॥ २२ ॥	प्रधमा—बलदेव कृष्णकी स्त्री ( स्त्री० )
भ्रम—भ्रान्ति, कुदनामक यंत्र, जलनिर्गम ( चक्राकार होकर जलोंका नीचेको जाना ) ( पुं० )	रम—कामदेव, सुंदर, अशोक-वृक्ष, ( पुं० ) ॥ २५ ॥
यम—संयम ( इंद्रियादिकोंका रोकना ), शान्ति-ग्रह, धर्मराज, काग, जोडा ॥ २३ ॥ नित्यकर्मभेद, ( पुं० )	रश्मि—किरण, घोडा आदिकोंकी रस्सी, नेत्र, लोम, ( पलख ) ( पुं० )
यमी—यमुना, ( स्त्री० )	राम—रामचंद्र, परशुराम, बलदेव, ॥ २६ ॥ पशुभेद, ( पुं० ) श्वेत, श्याम, सुंदर, ( त्रि० )
याम—प्रहर ( पहर ), संयम, ( पुं० )	रामा—स्त्री, कटेहली, ( स्त्री )
	राम—बधुवा, कूठ ( न० ) ॥ २७ ॥

मनोरमेऽभिपूर्वायां रुक्मं तु स्वर्णलोहयोः ।

रुमा सुग्रीवकान्तायां रुमा तु लवणाकरे ॥ २८ ॥

लक्ष्मीः श्रीरिव संपत्तौ पद्माशोभाप्रियङ्गुषु ।

लक्ष्मीः स्यादौषधीभेदे नजः पूर्वा तु निर्ऋतौ ॥ २९ ॥

वमिः स्यात्पावके पुंसि वमिस्तु वमने स्त्रियाम् ।

वामः सव्ये हरे कामे धने वित्ते तु न द्वयोः ॥ ३० ॥

वल्गु प्रतीपयोर्वामस्त्रिषु वामा तु योषिति ।

वामी शृगाल्यां वडवारासभीकरभीष्वपि ॥ ३१ ॥

शमी शक्तुफलायां स्याच्छिवायां वल्गुलावपि ।

शुष्मः पुमान्दिनपतौ मतं शुष्मं तु तेजसि ॥ ३२ ॥

श्यामस्तु हरिते कृष्णे प्रयागस्य वटद्रुमे ।

पिके पयोधरे वृद्धदारकेऽपि पुमानयम् ॥ ३३ ॥

अभिराम—सुंदर, ( त्रि० )	देव, कामदेव, मेघ, ( पुं० ) धन,
रुक्म—सुवर्ण, लोह, ( न० )	( न० ) ॥ ३० ॥
रुमा—सुग्रीवकी स्त्री, नमककी खान,	वाम—सुंदर, प्रतिकूल, ( पुं० )
( स्त्री० ) ॥ २८ ॥	वामा—स्त्री, ( स्त्री० )
लक्ष्मी—(श्री) संपत्ति, लक्ष्मी, शोभा,	वामी—गीदड़ी, घोड़ी, गर्दभी, ऊंटनी
फूलप्रियंगु, औषधी—भेद (ऋद्धि—	( स्त्री० ) ॥ ३१ ॥
वृद्धि—आदि ( स्त्री० )	शमी—जॉट—वृक्ष, काँछ, बाघल-पक्षी,
अलक्ष्मी—नरककी अशोभा ( स्त्री० )	( स्त्री० )
॥ २९ ॥	शुष्म—सूर्य, ( पुं० ) शुष्म—तेज,
वमि—अग्नि, ( पुं० ) वमि—वमन	( न० ) ॥ ३२ ॥
( स्त्री० )	श्याम—हरित, कृष्ण, प्रयागका वड़,
वाम—सव्य ( बायां अंग ), महा-	कोयल—पक्षी, मेघ, भिदारा ( पुं० )
	॥ ३३ ॥

श्यामवर्णे हरिद्वर्णे त्रिषु श्यामा तु वल्गुलौ ।  
 अप्रसूताङ्गनायां च श्यामा सोमलतोषधौ ॥ ३४ ॥  
 त्रिवृताशारिवागुन्द्रानिशानीलीप्रियङ्गुषु ।  
 श्यामं लवणभेदेऽपि श्यामं स्यान्मरिचेऽपि च ॥ ३५ ॥  
 श्रामस्तु मण्डपे काले विपूर्वः श्रमवञ्चने ।  
 समा वर्षे सदृक्सर्वमान्येषु च समं त्रिषु ॥ ३६ ॥  
 सीमाऽवधौ च वेलायां क्षेत्रे घाटे स्थितावपि ।  
 सूक्ष्मं तु नभसि क्षीरे सूक्ष्ममल्पेऽभिधेयवत् ॥ ३७ ॥  
 कतकाऽध्यात्मयोः सूक्ष्मं सूक्ष्मः पुंस्यणुमात्रके ।  
 सोमः सुधांशुर्कूर्पूरकुबेरपितृदैवते ॥ ३८ ॥  
 दिव्यौषधीश्यामलतावसुभिद्रातवानरे ।  
 तुषारे चन्दने शीते हिमं त्रिषु तु शीतले ॥ ३९ ॥

<p>श्यामवर्णवाला, हरितवर्णवाला (त्रि०)  <b>श्यामा</b>—बाघल—पक्षी, नहीं प्रसूति                  हुई स्त्री, सोमलता औषधि ॥ ३४ ॥                  निसोथ, अनंतमूल, भद्रमोथा, हलदी,                  लीलका पेड, फूलप्रियंगु, (स्त्री०)  <b>श्याम</b>—लवणभेद, स्याह मिरच,                  ( न० ) ॥ ३५ ॥  <b>श्राम</b>—मंडप, काल, ( पुं० )  <b>विश्राम</b>—श्रम ( खेद ) का दूरकरना,                  ( पुं० )  <b>समा</b>—वर्ष, ( स्त्री० )  <b>सम</b>—तुल्य, संपूर्ण, श्रेष्ठ, (त्रि०) ॥ ३६ ॥</p>	<p><b>सीमा</b>—अवधि, वेला ( नदीआदिका                  तीर ), क्षेत्र, घाट, स्थिति, (स्त्री०)  <b>सूक्ष्म</b>—आकाश, दुग्ध, ( न० ) अल्प                  ( त्रि० ) ॥ ३७ ॥ <b>सूक्ष्म</b>—कतक                  ( निर्मली ), अध्यात्म ( आत्म-                  विचार ) ( न० ) <b>सूक्ष्म</b>—अणु                  ( सूक्ष्ममात्र ), ( पुं० )  <b>सोम</b>—चंद्रमा, कपूर, कुबेर, पितृदेवता,                  ॥ ३८ ॥ दिव्य औषधि, सोमलता,                  वसुभेद, वायु, बंदर, ( पुं० )  <b>हिम</b>—बर्फ, चंदन, ठंडा, ( पुं० )  <b>हिम</b>—ठंडा, ( त्रि० ) ॥ ३९ ॥</p>
---	---

होमिरमौ वृते चाथ क्षितौ क्षान्तावपि क्षमा ।

क्षमं युक्ते क्षमः शक्ते हिते क्षान्त्यन्वितेऽन्यवत् ॥ ४० ॥

क्षुमाऽतसीनीलिकयोः क्षेमं स्याल्लब्धरक्षणे ।

मङ्गले चोरके वा स्त्री क्षेमा चण्डाहरस्त्रियोः ॥ ४१ ॥

क्षौमं स्यादतसीवस्त्रे क्षौममद्भुदुकूलयोः ।

मत्तृतीयम् ।

अधमः कुत्सिते न्यूनेऽप्यागमः शास्त्र आगतौ ॥ ४२ ॥

आश्रमो ब्रह्मचर्यादौ मुनिस्थाने मटे स्त्रियाम् ।

उत्तमा दुग्धिकायां स्यादुत्कृष्टे तु त्रिषूत्तमम् ॥ ४३ ॥

कलमः शालिलेखन्योश्चौरे लाक्षारसेऽपि च ।

कुसुमं पुष्पफलयोरार्चवे लोचनामये ॥ ४४ ॥

कृत्रिमं लवणे पुंसि सिंहके कृतके त्रिषु ।

गुडार्मः स्याद्गुडक्षोदे क्षीरदारुणि च स्मृतः ॥ ४५ ॥

होमि—अग्नि, घृत, ( पुं० )

क्षमा—पृथ्वी, क्षान्ति, ( स्त्री० )

क्षम—युक्त, ( न० ) समर्थ, हित ( पुं० )

क्षान्तियुक्त, ( त्रि० ) ॥ ४० ॥

क्षुमा—अलसी, नीली ( लील ) ( स्त्री० )

क्षेम—लब्धकी रक्षा, मंगल, चोरक

गंधद्रव्य, ( भटेर ) ( न० स्त्री० )

क्षेमा—चंडा—औषधी, पार्वती ( स्त्री० )

॥ ४१ ॥

क्षौम—अलसीवस्त्र, अट ( अटारी ),

रेशमीवस्त्र ( न० )

मत्तृतीय ।

अधम—निदित, न्यून ( कमती ),

( पुं० )

आगम—शास्त्र, आना, ( पुं० ) ॥ ४२ ॥

आश्रम—ब्रह्मचर्य आदि, मुनिका

स्थान, मठ ( विद्यार्थियोंका स्थान )

( पुं० न० )

उत्तमा—दूधी—औषधि, ( स्त्री० )

अत्तम—उत्कृष्ट ( श्रेष्ठ ) ( त्रि० )

॥ ४३ ॥

कलम—सॉटी—चावल, कलम, चोर,

लाखका रंग, ( पुं० )

कुसुम—पुष्प, फल, स्त्रीका रज,

नेत्रका रोग, ( न० ) ॥ ४४ ॥

कृत्रिम—लवण, हींग, ( पुं० ) नकली

वस्तु, ( त्रि० )

गुडार्म—गुडका चूर्ण, दूधवाला वृक्ष,

( पुं० ) ॥ ४५ ॥

गोधूमो व्रीहिभेदे स्यान्नारङ्गे भेषजान्तरे ।  
 गोलोमी श्वेतदूर्वायां वारस्त्रीवचयोरपि ॥ ४६ ॥  
 गौतमः शाक्यसिंहेऽपि मुनिभेदेऽपि गौतमः  
 गौतमी चण्डिकायां च रोचन्यामपि गौतमी ॥ ४७ ॥  
 तलिमं कुट्टिमे तल्पे विताने यावकेऽपि च ।  
 दाडिमः पुंसि दाडिम्ब एलायामपि दाडिमः ॥ ४८ ॥  
 निगमो हृष्टपूर्वेदकटलुण्डीषु वाणिजे ।  
 नियमो निश्चये बन्धे यन्त्रणे संविदि व्रते ॥ ४९ ॥  
 निष्क्रमो निर्गमे बुद्धिसम्पत्तौ दुष्कुलेऽपि च ।  
 नैगमः क्षुरिवेदान्तवणिग्वाणिज्यनागरे ॥ ५० ॥  
 पञ्चमो रागभेदे स्यात्पञ्चानां पूरणे त्रिषु ।  
 त्रिषु दक्षिणमेघेऽपि पञ्चमी पाण्डवस्त्रियाम् ॥ ५१ ॥

गोधूम-गेहूँ, नारंजी, औषधिभेद ( पुं० )	नियम-निश्चय, बन्ध, प्रेरणा, बुद्धि, व्रत, ( पुं० ) ॥ ४९ ॥
गोलोमी-सफेद-दूब, वेदया, बच- औषधि, ( स्त्री० ) ॥ ४६ ॥	निष्क्रम-निकसना, बुद्धिसंपत्ति, दुष्कुल ( नेष्टकुल ) ( पुं० )
गौतम-बुद्धदेव, एकमुनि, ( पुं० )	नैगम-नाई, वेदान्त, बणियां, वाणिज्य, नागर ( नगरमें होने- वाला पुरुष ) ( पुं० ) ॥ ५० ॥
गौतमी-चंडिका, गोरोचन, ( स्त्री० ) ॥ ४७ ॥	पंचम-रागभेद, ( पुं० ) पांचोंको- पूर्ण करनेवाला ( पांचवां ) ( त्रि० ) दक्षिण दिशाका मेघ, ( त्रि० )
तलिम-कुट्टिम (रचितभूमि), शय्या, चंदोवा, यावक (कुल्माष) (न०)	पंचमी-पांडवोंकी स्त्री(द्रौपदी)(स्त्री०) ॥ ५१ ॥
दाडिम-अनार, इलायची, ( पुं० ) ॥ ४८ ॥	
निगम-हाट, पुर, वेद, कट (मुर्दा), न्यायसारिणी, वाणिज, ( पुं० )	



परमस्तु त्रिषूक्तृष्टे प्रधानाद्योश्च पुंसि तु ।  
 ओंकारे परमं तु स्यादनुज्ञायामसंज्ञकम् ॥ ५२ ॥  
 प्रक्रमोऽवसरे चानुक्रमे चापक्रमे क्रमे ।  
 प्रतिमाऽनुकृतौ दन्तबन्धनेऽपि च दन्तिनाम् ॥ ५३ ॥  
 आदावपि प्रधानेऽपि प्रथमं वाच्यलिङ्गकम् ।  
 प्रहर्मः सौधकूटस्थकलशाद्रिनिमित्तम्बयोः ॥ ५४ ॥  
 मध्यमो मध्यदेशे स्यात्स्वरे मध्येऽथ मध्यमा ।  
 त्रिषु दृष्टरजोनारीराकयोर्मध्यमा स्त्रियाम् ॥ ५५ ॥  
 कर्णिकात्र्यधश्छन्दकरमध्याङ्गुलीषु च ।  
 विक्रमस्तूद्यमक्रान्तौ क्षमायां शक्तिसंपदि ॥ ५६ ॥  
 विद्रुमो रत्नवृक्षेऽपि प्रवाले नवपल्लवे ।  
 विभ्रमस्तु विलासे स्याद् विभ्रमो भ्रान्तिहावयोः ॥ ५७ ॥

परम—श्रेष्ठ, ( त्रि० ) प्रधान (मुख्य) मध्यमा—रजस्वला स्त्री, पूर्णचंद्रवाली  
 आदि, ( पुं० ) पूर्णिमा, ( स्त्री० ) ॥ ५५ ॥  
 परम—उंकार, ( न० ) आज्ञा ( अ- कर्णिका ( पुष्पकी केसर ), तीन  
 व्यय ) ॥ ५२ ॥ अक्षरोंका छंद, हाथकी मध्यम अं-  
 प्रक्रम—अवसर, अनुक्रम, अपक्रम गुली, ( स्त्री० )  
 ( उलटा क्रम ) क्रम, ( पुं० ) विक्रम—उद्यम, क्रान्ति, क्षमा, शक्ति,  
 प्रतिमा—अनुकृति ( अनुकरण ), संपत्, ( पुं० ) ॥ ५६ ॥  
 हस्तियोंका दंतबंधन, ( स्त्री० ) ५३  
 प्रथम—आदि, प्रधान, ( त्रि० ) विद्रुम—रत्नवृक्ष, मूंगा, नवीन पत्ता,  
 ( पुं० )  
 प्रहर्म—महलकी शिखरका कलश, पर्वतका नितंब, ( पुं० ) ॥ ५४ ॥ विभ्रम—विलास, भ्रान्ति, हाव ( स्त्री-  
 मध्यम—मध्यदेश, मध्यम-स्वर, ( पुं० ) करणभेद ) ( पुं० ) ॥ ५७ ॥

विलोमो विपरीतेऽपि भुजङ्गेऽङ्गुलिरोमनि ।  
 विलोमी तु व्यवस्थायां विलोममरघट्टके ॥ ५८ ॥  
 व्यायामो दुर्गसंचारे वियामे पौरुषे श्रमे ।  
 सङ्क्रमः सङ्क्रमणेऽस्त्री तु वारिसंचारयन्त्रके ॥ ५९ ॥  
 त्रिषूत्तमे पूज्यतमे साधीयसि च सत्तमः ।  
 सम्भ्रमस्त्वादरे पुंसि संवेगे साध्वसेऽपि च ॥ ६० ॥  
 सुषमं चारुसमयोऽस्त्रिषु स्यात्सुषमा द्युतौ ।  
 अतिद्युतौ च सुषमा सुषीमः पन्नगान्तरे ॥ ६१ ॥  
 सुषीमं शिशिरे क्लीबं चारुशीतलयोऽस्त्रिषु ।

मचतुर्थम् ।

सुन्दरेऽप्युपमाशून्ये भवेदनुपमोऽन्यवत् ॥ ६२ ॥  
 गौरीनायकदिङ्नागयोषित्यनुपमा मता ।  
 अभ्यागमोऽन्तिके घाते विरोधेऽप्युद्गमे युधि ॥ ६३ ॥

विलोम-विपरीत, सर्प, अंगुलियोके रोम, ( पुं० )	सुषम-सुंदर, सम ( तुल्य ), ( त्रि० )
विलोमी-व्यवस्था, ( स्त्री० )	सुषमा-कान्ति, अतिकान्ति, ( स्त्री० )
विलोम-अरहट ( न० ) ॥ ५८ ॥	सुषीम-सर्पभेद, ( पुं० ) शिशिर, ( न० ) सुंदर, शीतल, ( त्रि० ) ॥ ६१ ॥
व्यायाम-दुर्गसंचार, संयम, पौरुष, परिश्रम, ( पुं० )	मचतुर्थम् ।
संक्रम-संक्रमण, ( पुं० ) जलमें संचारका यंत्र, ( पुं० न० ) ॥ ५९ ॥	अनुपम-सुंदर, उपमाशून्य, ( त्रि० ) ॥ ६२ ॥
सत्तम-उत्तम, पूज्यतम, अतिश्रेष्ठ, ( पुं० )	अनुपमा-ईशान कोणके हाथीकी हथिनी, ( स्त्री० )
सम्भ्रम-आदर, संवेग, भय, ( पुं० ) ॥ ६० ॥	अभ्यागम-समीप, घात, विरोध, उद्गम, युद्ध, ( पुं० ) ॥ ६३ ॥

उपक्रमश्चिकित्सायामुपधाने च विक्रमे ।  
 भवेदुपगमः पार्श्वगमनेऽङ्गीकृतावपि ॥ ६४ ॥  
 जलगुल्मो जलावर्त्तजलचत्वरकच्छपे ।  
 दण्डयामस्तु दिवसे कीनाशे कुम्भसम्भवे ॥ ६५ ॥  
 पराक्रमस्तु सामर्थ्ये विक्रमोद्योगयोरपि ।  
 प्लवङ्गमः कपौ भेके महापद्मं तु मानके ॥ ६६ ॥  
 महापद्मः पुमान्सङ्ख्यानिधिनागान्तरे मतः ।  
 यातयामो मतो जीर्णे परिभुक्तोज्झिते त्रिषु ॥ ६७ ॥  
 सार्वभौमस्तु दिग्भागभेदे सर्वमहीपतौ ।  
 अभ्युपगमः स्वीकारे समीपागमनेऽपि च ॥ ६८ ॥

इति विश्वलोचने मान्तवर्गः ॥

उपक्रम—चिकित्सा ( इलाज ), उ- पधा, विक्रम, ( पुं० )	महापद्म—संख्याभेद, निधिभेद, ना- गभेद, ( पुं० )
उपगम—समीपजाना, अंगीकार, ( पुं० ) ॥ ६४ ॥	यातयाम—जीर्ण, अच्छीतरह भोगा- हुवा, त्यागाहुवा, ( त्रि० ) ॥ ६७ ॥
जलगुल्म—जलका भँवर, जलचौक, कछुवा ( पुं० ) ।	सार्वभौम—दिग्दृस्तीभेद, संपूर्णपृ- थ्वीका राजा, ( पुं० )
दण्डयाम—दिन, धर्मराज, अगस्त्य मुनि, ( पुं० ) ॥ ६५ ॥	अभ्युपगम—अंगीकार, समीपमें आना, ( पुं० ) ॥ ६८ ॥
पराक्रम—सामर्थ्य, विक्रम, उद्योग, ( पुं० ) ।	इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषामें मान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥
प्लवङ्गम—बन्दर, मेंढक, ( पुं० )	
महापद्म—प्रमाण, ( न० ) ॥ ६६ ॥	

## अथ यान्तवर्गः ।

यैकम् ।

यो वातयशसोः पुंसि या यानत्यागयातृषु ।

यद्वितीयम् ।

अन्योऽसमाने भिन्ने च स्यादन्त्योऽन्तभवेऽधमे ॥ १ ॥

अथर्यो बुधे त्रिषु न्याय्ये शिलाजतुनि न द्वयोः ।

अर्घार्थं यत्तदर्थं स्यात्त्रिषु यश्चार्धमर्हति ॥ २ ॥

अर्घ्यः स्याद्योग्यमात्रेऽपि स्यादर्थः स्वामिवैश्ययोः ।

पुंस्यार्यः सौविदले स्यादार्थस्त्वभ्यर्हिते त्रिषु ॥ ३ ॥

आस्या स्थितौ मुखे चास्यं मुखमध्ये मुखोद्भवे ।

इज्यो गुरौ पुमानिज्या दानार्चासङ्गमेष्टिषु ॥ ४ ॥

### अथ यान्तवर्गः ।

यैक ।

य—वायु, यश, ( पुं० )

या—यान ( सवारी ), त्याग, गमन  
करनेवाला, ( पुं० )

### यद्वितीय ।

अन्य—असमान, भिन्न ( त्रि० )

अन्त्य—अन्तमें होनेवाला, अधम,  
( त्रि० ) ॥ १ ॥

अथर्य—पंडित, ( पुं० ) न्याय्य  
( न्याययुक्त ) ( त्रि० ) शिलाजीत  
( न० )

अर्घ्य—जो अर्घके लिये द्रव्य है वह,  
जिसको अर्घ दियाजाय वह  
( त्रि० ) ॥ २ ॥

अर्घ्य—योग्यमात्र, ( पुं० )

अर्थ—स्वामी, वैश्य, ( पुं० )

आर्य—कंचुकी, ( रत्नवासका पहरे  
दार ) ( पुं० ) पूज्य, ( त्रि० )  
॥ ३ ॥

आस्या—स्थिति, ( स्त्री० )

आस्य—मुख, मुखमध्य, मुखसे उ-  
त्पन्न, ( त्रि० )

इज्य—गुरु ( बृहस्पति ) ( पुं० )

इज्या—दान, अर्चा ( पूजा ), संगम,

इष्टि ( यज्ञ ) ( स्त्री० ) ॥ ४ ॥

इभ्य आढ्यं भवेदिभ्या करेण्वामपि शल्लकौ ।  
 कन्या कुमारिकानार्यो राशिभेदौषधीभिदोः ॥ ५ ॥  
 प्रातर्होदिनयोः कल्यं कल्यो नीरोगदक्षयोः ।  
 सज्जेऽपि त्रिषु कल्या तु मद्ये कल्या च वाचि च ॥ ६ ॥  
 कश्यं मद्ये कशार्हे च कश्यं मध्ये च वाजिनाम् ।  
 कक्ष्या बृहत्तिकाकाञ्चोर्मध्यबन्धे च दन्तिनाम् ॥ ७ ॥  
 हर्म्यादीनां प्रकोष्ठे तु कांस्यं स्यात्पानभाजने ।  
 तैजसद्रव्यभेदेऽपि वाद्यभेदेऽपि न द्वयोः ॥ ८ ॥  
 कायो वर्म स्वभावे च सङ्घे लक्ष्ये कदैवते ।  
 कार्यं मनुष्यतीर्थे स्यात्कार्यं हेतौ प्रयोजने ॥ ९ ॥  
 काव्यः शुक्रग्रहे पुंसि काव्या स्यात्पूतनाधियोः ।  
 काव्यं ग्रन्थान्तरे क्लीबं कुड्यं भित्तौ विलेपने ॥ १० ॥

इभ्य—धनी ( पुं० )

इभ्या—हयिनी, शल्लकी ( सालई )

वृक्ष ( स्त्री० )

कन्या—कुमारी, स्त्रीमात्र, राशिभेद,  
 औषधिभेद, ( स्त्री० ) ॥ ५ ॥

कल्य—प्रातःकाल, कलका दिन, ( न० )

कल्य—नीरोग, चतुर, सज्ज ( कवच )  
 आदिसे सजाहुवा ( त्रि० )

कल्या—मदिरा, वाणी, ( स्त्री० ) ॥ ६

कश्य—मद्य ( मदिरा ), चाबुक लगाने  
 योग्य, ( त्रि० ) घोड़ोंका मध्यभाग  
 ( न० )

कक्ष्या—कटेहली, करधनी, हस्तियोंका  
 मध्यबन्ध, ( नाडी ) ॥ ७ ॥

हर्म्य ( महल ) आदिकोंका प्रकोष्ठ  
 ( कोठा ) ( स्त्री० )

कांस्य—जलआदि पीनेका पात्र, तैजस  
 द्रव्यभेद, वाद्य ( बाजा ) भेद,  
 ( न० ) ॥ ८ ॥

काय—शरीर, स्वभाव, समूह, निशाना  
 क ( प्रजापति ) देवतावाला, ( पुं० )  
 कार्य—हेतु, प्रयोजन ( न० ) ॥ ९ ॥

कार्य—मनुष्यतीर्थ, ( न० )

काव्य—शुक्र—ग्रह, ( पुं० )

काव्या—पूतना, बुद्धि, ( स्त्री० )

काव्य—ग्रन्थ, ( न० )

कुड्य—दीवार, विलेपन ( लीपना )  
 ( न० ) ॥ १० ॥

कुल्यो मान्ये कुलोद्भूतकुलातिहितयोस्त्रिषु ।  
 कुल्यं स्यादामिषे शूर्पेऽप्यष्टद्रोण्यां च क्रीकसे ॥ ११ ॥  
 कुल्याऽल्पकृत्रिमनदीनदीजीवासु निश्चरे ।  
 कृत्या क्रियादेवतयोस्त्रिषु भेदे धनादिभिः ॥ १२ ॥  
 विद्विष्टकार्ययोश्चायं कृत्यास्तव्यादिषु स्मृताः ।  
 क्रिया कर्मणि चेष्टायां करणे संप्रधारणे ॥ १३ ॥  
 उपायारम्भशिक्षार्चाचिकित्सानिष्कृतिष्वपि ।  
 गव्यं नपुंसकं ज्यायां गवां क्षीरादिकेऽपि च ॥ १४ ॥  
 रागद्रव्येऽपि गव्या तु गोकुले गोहिते त्रिषु ।  
 गुह्यं रहस्युपस्थे च गुह्यो दम्भेऽपि कच्छपे ॥ १५ ॥  
 गृह्या शाखापुरे गृह्यस्त्वसक्तमृगपक्षिणोः ।  
 गुह्यं पुरीषमार्गेऽपि गृह्यमस्रैरिपक्षयोः ॥ १६ ॥

कुल्य-मान्य-पुरुष ( पुं० ) कुलमें  
 उत्पन्नहुवा, कुलका अतिहित, ( त्रि० )

कुल्य-मांस, छाज, अष्ट द्रोणी, अस्थि  
 ( हाड ) ( न० ) ॥ ११ ॥

कुल्या-छोटी कृत्रिमनदी, नदी,  
 जीवन्ती-औषधि, झिरना, ( स्त्री० )

कृत्या-क्रिया, देवता, ( स्त्री० ) धन  
 आदिकरके भेद्य, ॥ १२ ॥

शत्रु, कार्य, ( त्रि० )

कृत्य-तव्य आदि प्रत्यय, ( पुं० )

क्रिया-कर्म, चेष्टा, करण, संप्रधारण  
 ( अच्छेप्रकार धारण ) ॥ १३ ॥

उपाय, आरंभ, शिक्षा, पूजा,  
 चिकित्सा, निकालना, ( स्त्री० )

गव्य-धनुषकी ज्या, गौवोंका दूध दधि  
 आदि ॥ १४ ॥ रंगनेका द्रव्य, ( न० )

गव्या-गोकुल, गोहित, ( त्रि० )

गुह्य-रहस्य ( गुप्तसलाह ), स्त्रीपुरुष-  
 का योनि और शिश्र, ( न० ) दंभ,  
 कछुवा, ( पुं० ) ॥ १५ ॥

गृह्या-शाखानगर ( एकपुरमाहँसे ब-  
 साहुवा दूसरा नगर ), ( स्त्री० )

गृह्य-घरमें हिलाहुवा मृग और पक्षी,  
 ( पुं० ) गुद, ( न० ) रोकहुवा,  
 पक्षकरने योग्य, ( त्रि० ) ॥ १६ ॥

गेयस्तु त्रिषु गातव्ये गेयः स्याद्गायने पुमान् ।

गोप्यो दास्या अपत्ये स्याद्रक्षणीयेऽपि वाच्यवत् ॥ १७ ॥

ग्राम्यो जने त्रिषु ग्राम्यं त्वश्लीलरतबन्धयोः ।

चयस्त्वाहरणे वृन्दे प्राकारे मूलबन्धने ॥ १८ ॥

चव्यं तु चविके यच्च चव्या दूर्वोर्ग्रगन्धयोः ।

चित्या मृतचितायां स्याच्चित्यं मृतकचैत्यके ॥ १९ ॥

चैत्यमायतने क्लीबं स्याच्चिताचूडकेऽपि च ।

बुद्धबिम्बे पुमांश्चैत्यश्चैत्यं उद्देश्यपादपे ॥ २० ॥

चोद्यं प्रश्नेऽद्भुते चोद्यं वाच्यवच्चोदनोचिते ।

छाया स्यादातपाभावे सत्कान्त्युत्कोचकान्तिषु ॥ २१ ॥

प्रतिबिम्बेऽर्ककान्तायां तथा पङ्क्तौ च पालने ।

जन्यस्ताते वरवधूजातिभृत्यप्रियेहिते ॥ २२ ॥

गेय—गानके योग्य, ( त्रि० ) गायन ( पुं० ) चैत्य—यज्ञस्थान, चिताका चिह्न, ( न० ) बुद्धदेवकी मूर्ति, उद्देश्य (प्रसिद्ध) वृक्ष

गोप्य—दासीकी संतान, रक्षाकरने (जिन सभाका वृक्ष) ( पुं० ) ॥ २० ॥ योग्य, ( त्रि० ) ॥ १७ ॥

ग्राम्य—ग्राममें होनेवाला जन, ( त्रि० ) चोद्य—प्रश्न, अद्भुत ( न० ) प्रेरणाके योग्य, ( त्रि० ) अश्लील, रतबन्ध, ( न० )

चय—इकट्ठाकरना, समूह, किला, छाया—भूषका अभाव, अच्छी कान्ति, जड़का बांधना, ( पुं० ) ॥ १८ ॥ खिलना, शोभा, ॥ २१ ॥ प्रति-

चव्य—चव्य, ( न० ) बिंब, सूर्यकी स्त्री, पंक्ति, पाल- चव्या—दूब, अजमोद, ( स्त्री० ) नकरना, ( स्त्री० )

चित्या—मृतककी चिता, ( स्त्री० ) जन्य—पिता, वरवधू, शाति, भृत्य, चित्य—मृतकका चौतरा, ( न० ) प्रिय, हित ( हित् ) ॥ २२ ॥

जन्यस्तु जननीये स्यान्निषु जन्यं तु संयुगे ।  
 परीवादेऽपि हृष्टेऽपि जन्या मातृसखीमुदोः ॥ २३ ॥  
 जन्युः प्राणिनि वह्नौ च जन्युः स्यात्परमेष्ठिनि ।  
 जयो जयन्ते विजये जया तिथ्यन्तरोमयोः ॥ २४ ॥  
 उमासखीजयन्त्योश्च पथ्यायामग्निमन्थके ।  
 जात्यं कुलीने श्रेष्ठेऽपि ताक्षर्योऽनूरुमुपर्णयोः ॥ २५ ॥  
 रथेऽथे चाश्वकर्णद्रौ मतं ताक्षर्यं रसाञ्जने ।  
 तिप्यः पुप्ये कलौ तिप्या घात्र्यां तिप्यैव पुप्यवत् ॥ २६ ॥  
 त्रयी त्रिवेद्यां त्रितये पुरन्ध्यां सुमतावपि ।  
 दस्युर्विद्विषि चौरै च दायः सोल्लुण्ठभाषिते ॥ २७ ॥  
 यौतकादिधने दाने भागार्हपितृवस्तुनि ।  
 दिव्यं तु शपथे बाले लवङ्गकुसुमेऽपि च ॥ २८ ॥

जननेके योग्य, ( त्रि० )	ताक्षर्य-रमोत-आँषधि ( न० )
जन्य-युद्ध, परिवाद, हाट, ( न० )	तिप्य-पुप्य-पुष्य-नक्षत्र, कलि युग,
जन्या-माताकी सखी, आनंद ( स्त्री० )	( पुं० )
॥ २३ ॥	तिप्या-आँवला, ( स्त्री० ) ॥ २६ ॥
जन्यु-प्राणी, अग्नि, ब्रह्मा, ( पुं० )	त्रयी-त्रिवेदी ( तीनवेद ), तीन अव-
जय-जयन्त ( इन्द्रपुत्र ), विजय	यवोंवाला, पतिपुत्रवाली स्त्री, श्रेष्ठ-
( जीतना ) ( पुं० )	बुद्धि, ( स्त्री० )
जया-तिथिभेद, पार्वती, ॥ २४ ॥	दस्यु-शत्रु, चोर, ( पुं० )
पार्वतीकी सखी, जयंती या अनेधु	दाय-हास्य सहित भाषण ॥ २७ ॥
पुष्पवृक्ष, हरड, अरडूँ, ( स्त्री० )	वरवधूको देनेका द्रव्य, दान, भाग-
जात्य-कुलीन, श्रेष्ठ, ( त्रि० )	करने योग्य पिताकी वस्तु, ( पुं० )
ताक्षर्य-अरुण, गरुड, ॥ २५ ॥	दिव्य-सौगन, बालक, लौंग, पुष्प,
रथ, अश्व, साल-वृक्षभेद, ( पुं० )	( न० ) ॥ २८ ॥



दिव्याऽऽमलक्यां दिव्यं तु वल्गौ दिविभवेऽन्यवत् ।

दूष्यं वस्त्रगृहे वस्त्रे दूषणीये तु वाच्यवत् ॥ २९ ॥

दैत्या सुरामुराचण्डौषधीषु दितिजे पुमान् ।

द्रव्यं तु पित्तले वित्ते द्रुविकारे जतुन्यपि ॥ ३० ॥

भेषजे च पृथिव्यादौ त्रिषु भव्यविलेपयोः ।

धन्या धान्यामलक्योः स्याद्धन्यः पुण्यवति त्रिषु ॥ ३१ ॥

धान्यं व्रीहिषु धान्याके धिण्यः स्यादनले पुमान् ।

धिण्यं सन्ननि नक्षत्रे स्थाने शक्तौ च न द्वयोः ॥ ३२ ॥

नयो द्यूतान्तरे नीतौ व्यञ्जके त्वभिपूर्वकः ।

नाट्यं तौर्यत्रिके लास्ये नित्यं तु सतते ध्रुवे ॥ ३३ ॥

हरीतक्यां मता पथ्या मतं पथ्यं हिते त्रिषु ।

पद्यः शूद्रे पुमान्पद्यं श्लोके पद्या तु वर्त्मनि ॥ ३४ ॥

दिव्या—ऑवला, ( स्त्री० )

धान्य—व्रीहि ( धान ), धनियाँ, ( न० )

दिव्य—सुन्दर, आकाश या स्वर्गमें  
होनेवाला, ( त्रि० )

धिण्य—अग्नि, ( पुं० ) मकान,  
नक्षत्र, स्थान, शक्ति, ( न० )

दूष्य—वस्त्रका घर ( तंबूडरा ), वस्त्र,  
( न० ) दूषणीय ( निदनीय ) ( त्रि० )  
॥ २९ ॥

॥ ३२ ॥

नय—द्यूतभेद, नीति, ( पुं० )

अभिनय—हाथ आदिके इशारेसे वा-  
तका समझाना, ( पुं० )

दैत्या—मदिरा, कपूरकचरी, चोर  
नामक गंध—द्रव्य, ( स्त्री० )

नाट्य—नाचना-गाना-बजाना, नाचना,  
( न० )

दैत्य—दितिके पुत्र, ( असुर ) ( पुं० )

नित्य—निरंतर, ध्रुव ( स्थिर ) ( न० )  
॥ ३० ॥ औषधि, पृथिवी आदि,  
॥ ३३ ॥

द्रव्य—पीतल, धन, वृक्षविकार, लाख,  
॥ ३० ॥ औषधि, पृथिवी आदि,  
कल्याण, विलेप, ( त्रि० )

पथ्या—हरड, ( स्त्री० )

धन्या—धाय ( बच्चोंको दूध पिलाने-  
वाली ), ऑवला, ( स्त्री० )

पथ्य—हित भोजनादि, ( त्रि० )

पद्य—शूद्र, ( पुं० ) श्लोक ( न० )

धन्य—पुण्यवान्, ( त्रि० ) ॥ ३१ ॥

पद्या—मार्ग ( स्त्री० ) ॥ ३४ ॥

नपुंसकं तु पाक्यं स्याद्यवक्षारे विडाह्वये ।

पाद्यं पयसि निन्दे च पीयुः कालार्कपेचके ॥ ३५ ॥

पुण्यं तु सुकृते धर्मे त्रिषु मध्यमनोज्ञयोः ।

श्वशुरे पुंसि पूज्यः स्यात्पूज्यो वन्द्योऽभिधेयवत् ॥ ३६ ॥

पेयं पातव्यपयसोः पेया श्राणाच्छमण्डयोः ।

प्रायः पुमाननक्षने मृत्युबाहुल्ययोस्तथा ॥ ३७ ॥

प्रियस्तु त्रिषु हृद्ये स्याद्धवे वृद्धौषधे पुमान् ।

वन्द्यं त्रिषु वनोद्भूते वन्द्या वृन्दे वनाम्भसोः ॥ ३८ ॥

अप्रजातस्त्रियां वन्ध्या वन्ध्यस्त्रिषु हलिद्रुमे ।

वत्स्यं प्रधानधातौ स्याद्वत्स्यं बलकरे त्रिषु ॥ ३९ ॥

वरेण्ये वाच्यवद्वर्यो वर्यः पञ्चशरे पुमान् ।

विन्ध्या त्रुटौ लवल्यां च विन्ध्यो व्याधाद्रिभेदयोः ॥ ४० ॥

पाक्य-जवाखार, विड-नमक, ( न० )	प्रिय-मनोरम, ( त्रि० ) पति, वृद्धि-
पाद्य-जल, निन्द, ( न० )	नामक औषधि, ( पुं० )
पीयु-काल, सूर्य, उद्, ( पुं० ) ॥ ३५ ॥	वन्द्य-वनमें उत्पन्न होनेवाला, ( त्रि० )
पुण्य-सुकृत ( अच्छा कर्म करना ), धर्म, ( न० ) मध्य, सुंदर, ( त्रि० )	वन्द्या-वनका और जलका समूह ( स्त्री० ) ॥ ३८ ॥
पूज्य-समुद्र ( पुं० ) वंदनाके योग्य, ( त्रि० ) ॥ ३६ ॥	वन्ध्या-अप्रसूता स्त्री, ( स्त्री० ) वन्ध्य कलिहारी-वृक्ष ( पुं० )
पेय-पीनेके योग्य, दुग्ध, ( न० )	वत्स्य-प्रधान-धातु ( वीर्य ) ( न० ) बल करनेवाला ( त्रि० ) ॥ ३९ ॥
पेया-पकायाहुवा पतला अन्न, खच्छ- मौड, ( स्त्री० )	वर्य-श्रेष्ठ, ( त्रि० ) कामदेव, ( पुं० )
प्रायः-अन्नजलका त्यागना, मृत्यु, बाहुल्य ( जियादहपना ) ( पुं० )	विन्ध्या-छोटो-इलायची, हरफा रेवडी, ( स्त्री० )
॥ ३७ ॥	विन्ध्य-व्याध, पर्वत-भेद, ( पुं० ) ॥ ४० ॥

वीर्यं प्रभावे शुके च तेजःसामर्थ्ययोरपि ।  
 वेश्या तु गणिकायां स्याद् वेश्यं वेश्यानिकेतने ॥ ४१ ॥  
 भयं घोरे प्रतिभये प्रसूने कुब्जवीरुधः ।  
 कर्मरङ्गतरौ भव्यो भव्या करिकणोमयोः ॥ ४२ ॥  
 भाग्यं शुभात्मकविधौ स्याच्छुभाशुभकर्मणि ।  
 भृत्यो दासे भृतौ भृत्या मत्स्यो मीने जनान्तरे ॥ ४३ ॥  
 विष्णोर्मूर्त्यन्तरे मत्स्यो विराटान्ये च यादवे ।  
 मध्यं न्याय्येऽवकाशे च मध्यं मध्यस्थिते त्रिषु ॥ ४४ ॥  
 लग्नकेऽप्यधमे मध्यमस्त्रियामवलग्नके ।  
 मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रोधे वामवे तु शतात्परः ४५ ॥  
 मयः शिल्पिनि दैत्यानां करभेऽश्वतरे मयः ।  
 मयुर्मृगे किंपुरुषे मायः पीताम्बरेऽसुरे ॥ ४६ ॥

वीर्यं—प्रभाव, शुक ( वीर्य ), तेज, मत्स्य—मछली, जनभेद, ॥ ४३ ॥  
 सामर्थ्य, ( न० ) विष्णुका अवतार, विराट—देश,  
 वेश्या—गणिका, ( स्त्री० ) यादव, ( पुं० )  
 वेश्यं—वेश्याका घर, ( न० ) ॥४१॥ मध्य—न्याय्य ( युक्त ), अवकाश,  
 भयं—भयानक, ( त्रि० ) भय, कूजा ( न० ) मध्यमे स्थित ॥ ४४ ॥  
 बेलका पुष्प, ( न० ) जामिन, अधम, ( त्रि० ) शरी-  
 भव्य—कमरख—वृक्ष, ( पुं० ) रका मध्यभाग, ( पुं० न० )  
 भव्या—गजपीपल, पार्वती, ( स्त्री० ) मन्यु—दानता, यज्ञ, क्रोध, शतमन्यु-  
 ॥ ४२ ॥ ट्ट, ( पुं० ) ॥ ४५ ॥  
 भाग्यं—शुभात्मक विधि ( भाग्य ), मय—दैत्योका कारीगर, ऊट, खिच्चर,  
 शुभअशुभ कर्म, ( न० ) ( पुं० )  
 भृत्य—दास ( नौकर ) ( पुं० ) मयु—मृग, किन्नर, ( पुं० )  
 भृत्या—नौकरी, ( स्त्री० ) माय—पीताम्बर, असुर, ( पुं० ) ॥४६॥

माया दम्भे कृपायां च स्यान्माया शाम्बरीधियोः ।  
 माल्यं पुष्पेऽपि मालायां मूल्यं वेतनवस्त्रयोः ॥ ४७ ॥  
 मृत्युः स्यान्मरणे दैवे मेध्यं पूतेऽपि मेदुरे ।  
 मेध्या रक्तवचायां च रोचनायामपि स्त्रियाम् ॥ ४८ ॥  
 क्लीवं स्यादाश्रमे मेध्यं ययुः क्रतुहये हये ।  
 याम्याऽपाच्यां भरण्यां च याम्योऽगस्त्येऽपि चन्दने ॥ ४९ ॥  
 योग्यः प्रवीणयोगार्हशक्तोपायिषु वाच्यवत् ।  
 योग्याऽभ्यासेऽर्ककान्तायां योग्यमृद्ध्याभ्यभेपजे ॥ ५० ॥  
 रथ्या तु विशिखायां स्याद्रथौघे पथि चत्वरि ।  
 मतो रथोद्वहे रथ्यो रथ्यं त्रिषु मनोरमे ॥ ५१ ॥  
 रम्या विभावरी रम्यः पुंसि चम्पकपादपे ।  
 रूप्यं स्यादाहतस्वर्णरजते रजते तथा ॥ ५२ ॥

माया-दम्भ, कृपा, वाजीगरकी विद्या, बुद्धि, ( स्त्री० )	योग्य-प्रवीण (चतुर), योगके योग्य, समर्थ, उपायवाला ( त्रि० )
माल्य-पुष्प, पुष्पमाला, ( न० )	योग्या-अभ्यास, सूर्यकी स्त्री, (स्त्री०)
मूल्य-नौकरी, वस्तुका मोल (कीमत) ( न० ) ॥ ४७ ॥	योग्य ऋद्धि-औषध (न०) ॥ ५० ॥
मृत्यु-मरना, धर्मराज, ( पुं० )	रथ्या-गली, रथोंका समूह, मार्ग, घरका आँगन, ( स्त्री० )
मेध्य-पवित्र, सघन सचिक्कण, ( त्रि० )	रथ्य-रथको बहनेवाला अश्व आदि ( पुं० )
मेध्या-रक्तबच, गोरोचन, ( स्त्री० ) ॥ ४८ ॥	रम्य-सुंदर, ( त्रि० ) ॥ ५१ ॥
मेध्य-आश्रम ( न० )	रम्या-रात्रि, ( स्त्री० )
ययु-यज्ञके लिये अश्व, अश्व-मात्र, ( पुं० )	रम्य-चंपाका वृक्ष, ( पुं० )
याम्या-दक्षिण दिशा, भरणी-नक्षत्र, ( स्त्री० )	रूप्य-घड़ाहुवा ( सिक्का ) सुवर्ण या रजत ( चाँदी ) का, चाँदी-मात्र, ( न० ) ॥ ५२ ॥
याम्य-अगस्त्य-मुनि, चन्दन ( पुं० ) ॥ ४९ ॥	

त्रिषु प्रशस्तरूपेऽपि लभ्यं लब्धव्यमुक्तयोः ।  
 लयो नृत्यादिसाम्ये स्याद्विनाशाश्लेषयोर्लयः ॥ ५३ ॥  
 सङ्ख्याशरव्ययोर्लक्ष्यं लक्ष्यं स्याच्छब्दनि स्मृतः ।  
 अथ तौर्यत्रिके लास्यं लास्यं स्त्रीनृत्यनृत्ययोः ॥ ५४ ॥  
 वाच्यं दोषेऽपि वक्तव्ये वचोर्हे कुत्सितेऽन्यवत् ।  
 वीक्ष्योऽविलासके वीक्ष्यो द्रष्टव्याद्भुतयोस्त्रिषु ॥ ५५ ॥  
 वर्गप्रस्थानयोर्ब्रज्या ब्रज्या पर्यटनेऽपि च ।  
 शयः शय्याहिहस्तेषु शय्या तु शयनीयके ॥ ५६ ॥  
 शब्दगुम्फेऽपि शल्यस्तु श्वाविन्मदनवृक्षयोः ।  
 शल्यं शङ्कौ शरे वंशकर्णिकायां च तोमरे ॥ ५७ ॥  
 शुन्या तु नलिकायां स्याच्छून्यं तु त्रिषु निर्जने ।  
 मतं शौर्यं तु शूरत्वे चारभत्र्यां च तन्मतम् ॥ ५८ ॥

श्रेष्ठरूपवाला, ( त्रि० )	ब्रज्या—वर्ग, प्रस्थान, धूमना, ( स्त्री० )
लभ्य—लब्ध होनेके योग्य, युक्त, ( त्रि० )	शय—शय्या, सर्प, हाथ, ( पुं० )
लय—नृत्य आदिकी समता, विनाश, मिलना, ( पुं० ) ॥ ५३ ॥	शय्या—पलंग, शब्द-गुम्फ ( रचना ) ( स्त्री० ) ॥ ५६ ॥
लक्ष्य—संख्याभेद, निशाना, सिम ( बहाना ) ( न० )	शल्य—मेह, मैनफल-वृक्ष, ( पु० )
लास्य—नाचना—गाना-बजाना, ये मिले हुए तीनों, स्त्री-नृत्य, नृत्य, ( न० ) ॥ ५४ ॥	शल्य—शंकु ( कीला ), शर, वंशकर्णिका, तोमर-शस्त्र, ( न० ) ॥ ५७ ॥
वाच्य—दोष, कहनेयोग्य, वचनके योग्य, कुत्सित, ( त्रि० )	शून्या—बॉस आदिकी नली, ( स्त्री० )
वीक्ष्य—अश्व, नाचनेवाला, ( पुं० )	शून्य—निर्जनस्थानादि, ( त्रि० )
देखने योग्य, अद्भुत, ( त्रि० ) ॥ ५५ ॥	शौर्य—शूरता, निडरपना, ( न० ) ॥ ५८ ॥

सङ्ख्यं तु सङ्गरे क्लीबं सङ्ख्यैकत्वादिचर्चयोः ।  
 तपोलोकात्परे सत्यं सत्यं सत्यप्रगर्तयोः ॥ ५९ ॥  
 दिव्येपि सत्या पामायां सत्यं तु त्रिषु तद्वति ।  
 सन्ध्या साये सरिद्वेदे सन्धाने कुसुमान्तरे ॥ ६० ॥  
 प्रतिज्ञायां च चिंतायां मर्यादायामपि स्त्रियाम् ।  
 वामदक्षिणयोः सव्यं सद्यं शस्त्रकले गुणे ॥ ६१ ॥  
 सद्यः शैलेऽपि सोढव्ये नैरुज्ये सद्यमद्वयोः ।  
 साध्यन्तु योगभेदे स्यात्साध्योऽपि गणदैवते ॥ ६२ ॥  
 वाच्यवत्साधनीयेऽपि सायः काण्डाऽपराहयोः ।  
 सूर्योऽर्के तत्प्रियायां तु सूर्या म्यादोषधीभिदि ॥ ६३ ॥  
 सेव्यं त्रिलिङ्गं सेवाहं सेव्यं तु नलदे द्वयोः ।  
 सेनायां समवेते तु सैन्यः सैन्यं बले मतम् ॥ ६४ ॥

संख्य-युद्ध, ( न० )	एक पर्वत, ( पुं० ) महनेके योग्य,
संख्या-एक आदि-गिन्ती, विचार,	( त्रि० ) नीरोगता ( न० )
( स्त्री० )	साध्य-योगभेद, गणदेवता, ( पुं० )
सत्य-तप लोकमे ऊपर लोक, सत्य,	॥ ६२ ॥ साधनेके योग्य ( त्रि० )
प्रगर्त ( गहरा खड़ा ) ( न० )	साय-बाण, अपराह काल ( दिनका
॥ ५९ ॥ सौगन, ( न० ) पाम	तृतीय प्रहर ) ( पुं० )
( स्त्री० ) मल्यवाला ( त्रि० )	सूर्य-मूर्य, ( पुं० )
सन्ध्या-सायंकाल, नदीभेद, स्मरण,	सूर्या-सूर्यकी स्त्री, औषधिभेद,
पुष्पभेद, ॥ ६० ॥	( स्त्री० ) ॥ ६३ ॥
प्रतिज्ञा, चिंता, मर्यादा, ( स्त्री० )	सेव्य-सेवाके योग्य, ( त्रि० )
सव्य-वाम ( बामा ) अंग, दक्षिण	सेव्य-खस, ( पुं० स्त्री० )
( दहना ) अंग, ( न० )	सैन्य-सेना, सैनिक, ( पुं० )
सद्य-शस्त्रकी कलावाली रज्जु ( रस्ती )	सैन्य-बल ( न० ) ॥ ६४ ॥
( न० ) ॥ ६१ ॥	

इल्वलासु स्त्रियः सौम्या बुधे सौम्योऽथ वाच्यवत् ।

बौद्धे मनोरमेऽनुग्रे पामरे सोमदैवते ॥ ६५ ॥

विवादपक्षनिर्णेत्यपि स्थेयः पुरोहिते ।

स्थेयं स्याद्व्यमात्रेऽपि पुंसि गर्वेऽद्भुते स्मयः ॥ ६६ ॥

हार्यो बिभीतकीवृक्षे हर्त्तव्ये हार्यमन्यवत् ।

हृद्यस्तु वशकृद्वेदमन्त्रे वृद्ध्याख्यभेषजे ॥ ६७ ॥

स्याच्छ्वेतजीरके हृद्यं हृत्प्रिये हृद्वे त्रिषु ।

क्षयोऽपचयकल्पान्तनिवासेषु रुगन्तरे ॥ ६८ ॥

यत्तीयम् ।

अत्ययो दूषणे कृच्छ्रेऽतिक्रमे नाशदण्डयोः ।

अधृष्यस्तु प्रगल्भे स्यादधृष्या सरिदन्तरे ॥ ६९ ॥

अनयो व्यसनानीतिदैवाशुभविपत्तिषु ।

अपत्यं पुत्रयोः क्लीबमभयो निर्भये त्रिषु ॥ ७० ॥

सौम्या—इल्वला ( मृगशिरके ऊप- ) हृद्य—मफेद जीरा, ( न० ) हृदयको  
रकी पांच तारा ) ( स्त्री० ) प्रिय, हृदयमें प्राप्त ( त्रि० )

सौम्य—बुध, ( पुं० ) बौद्ध ( बुद्ध- ) क्षय—कमहोना, कल्पका अन्त, निवास,  
शास्त्र ) सुंदर, नाम्न, पामर, सोमहं रोगभेद ( पुं० ) ॥ ६८ ॥

देवता जिसका वह ( त्रि० ) ॥ ६५ ॥

यत्तीय ।

स्थेय—विवादपक्षका निर्णेता, पुरोहित, अन्यय—दूषण, कृच्छ्र ( कट ), उल्लंघन,  
( पुं० ) द्रव्यमात्र, ( त्रि० ) नाश, दंड ( पुं० )

स्मय—गर्व, अद्भुत, ( पुं० ) ॥ ६६ ॥ अधृष्य—प्रगल्भ ( धृष्ट ) ( त्रि० )

हार्य—बहेडाका—वृक्ष, ( पुं० ) हडने अधृष्या—नदीभेद, ( स्त्री० ) ॥ ६९ ॥  
योग्य, ( त्रि० ) अनय—व्यसन ( फिराक ), अनीति,

हृद्य—वशमें करनेवाला वेदमन्त्र, ( पुं० ) दैव, अशुभ, विपत्ति, ( पुं० )

हृद्या—वृद्धिनामक औषधि, ( स्त्री० ) अपत्य—पुत्री, पुत्र, ( न० )

॥ ६७ ॥

अभय—निर्भय, ( त्रि० ) ॥ ७० ॥

मताऽभया तु पथ्यायामभयं स्यादुशीरके ।  
 अभिख्या तु यशःकीर्तिशोभाविख्यातिनामसु ॥ ७१ ॥  
 त्रिष्ववध्यं वधानर्हे क्लीबेऽनर्थकभाषिते ।  
 स्यादवन्ध्यं तु सफले त्रिषु त्रिष्वफलेग्रहौ ॥ ७२ ॥  
 अश्वीयमश्वसङ्घातेऽश्वीयमश्वहिते त्रिषु ।  
 अहल्याप्सरसोभेदे तथा गौतमयोपिति ॥ ७३ ॥  
 अहार्यः पर्वते पुंसि स्यादहार्यः स्थिरे त्रिषु ।  
 आतिथ्यमातिथेयेभ्योऽदातिथ्यस्त्वनिधौ पुमान् ॥ ७४ ॥  
 आत्रेयी पुष्पवत्यां स्यादात्रेयी निम्नगान्तरे ।  
 आत्रेयस्तु मुनेर्भेदे स्यादादित्यः सुरे रवौ ॥ ७५ ॥  
 आम्नाय उपदेशेऽपि स्यादांम्नायः श्रुतावपि ।  
 आशयः स्यादभिप्रायेऽप्याधारं पनसं धने ॥ ७६ ॥

अभया-हरड, ( स्त्री० )	अहार्य-पर्वत, ( पुं० ) स्थिर, ( त्रि० )
अभय-खस, ( न० )	आतिथ्य-जो वस्तु अतिथिके लिये
अभिख्या-यश, कीर्ति, शोभा, विख्याति, नाम, ( स्त्री० ) ॥ ७१ ॥	हो वह, ( त्रि० ) अतिथि ( पुं० ) ॥ ७४ ॥
अवध्य-वधके अयोग्य, ( त्रि० )	आत्रेयी-रजखला, नदीभेद, ( स्त्री० )
अनर्थक भाषण, ( न० )	आत्रेय-मुनिभेद ( पुं० )
अवन्ध्य-सफल, ( त्रि० ) कालके अनुकूल फलोंको धारण करनेवाला वृक्ष, ( त्रि० ) ॥ ७२ ॥	आदित्य-देवता, सूर्य, ( पुं० ) ॥ ७५ ॥
अश्वीय-अश्वोंका समूह, ( न० )	आम्नाय-उपदेश, वेद, ( पुं० )
अश्वोंका हित, ( त्रि० )	आशय-अभिप्राय, आधार, पनस-
अहल्या-अप्सरामेद, गौतमऋषिकी, ( स्त्री० ) ॥ ७३ ॥	वृक्ष, धन ॥ ७६ ॥



कोष्ठागारेऽप्यजीर्णेऽपि किंपचानेऽपि चाशयः ।  
 इन्द्रियं रेतसि क्लीबमिन्द्रियं विषयीन्द्रिये ॥ ७७ ॥  
 पुंसि स्यादुदयः पूर्वपर्वतेऽपि समुन्नतौ ।  
 उपायः सामभेदादावुपायः स्यादुपागतौ ॥ ७८ ॥  
 ऊर्णायुरेडके मेषकम्बलक्षणभङ्गयोः ।  
 एणेयमेण्याश्चर्माद्ये रतबन्धान्तरे स्त्रियाः ॥ ७९ ॥  
 औचित्यमुचितत्वे स्यादौचित्यं सत्ययोग्ययोः ।  
 अस्त्री कषायो निर्यासे रसे रक्ते विलेपने ॥ ८० ॥  
 अङ्गरागे सुगन्धे तु त्रिषु स्याल्लोहितेऽपि च ।  
 कालेयो दैत्यभेदे स्यात्कालेयं कालखण्डकम् ॥ ८१ ॥  
 कुलायो नीडवत्पक्षिनिलयस्थानयोः पुमान् ।  
 कौकृत्यमनुतापे स्यादयुक्तकरणेऽपि च ॥ ८२ ॥

कोष्ठागार (शरीरके भीतरकी पोल, अजीर्ण, धनलोभी, ( पुं० )	औचित्य—उचितपना, सत्य, योग्य, ( न० )
इन्द्रिय—वीर्य, विषयि ( चक्षुआदि ) इन्द्रिय, ( न० ) ॥ ७७ ॥	कषाय—काटा, रस, रक्त, विलेपन, ( पुं० ) ॥ ८० अंगरग, सुगंध, लोहित, ( त्रि० )
उदय—पूर्वपर्वत, समुन्नति ( ऊँचापना ) ( पुं० )	कालेय—दैत्यभेद, ( पुं० ) कालखंड, ( न० ) ॥ ८१ ॥
उपाय—साम भेद आदि, समीपमें आना, ( पुं० ) ॥ ७८ ॥	कुलाय ( नीड )—पक्षीका घूसला, स्थान, ( पुं० )
ऊर्णायु—भेड, भेडीके ऊनका कंबल, क्षणभंग ( मकड़ी ) ( पुं० )	कौकृत्य—पश्चात्ताप, अयुक्त करना, ( न० ) ॥ ८२ ॥
एणेय—मृगीका चर्म आदि, स्त्रीका रतबंध, ( न० ) ॥ ७९ ॥	

गाङ्गेयस्तु महासेने भीष्मे गङ्गाभवे त्रिषु ।  
 चक्षुष्यः केतके पुण्डरीकवृक्षे रसाञ्जने ॥ ८३ ॥  
 अस्त्री स्त्री तु कुलथ्यां स्यादयुक्तकरणेऽपि च ।  
 गाङ्गेयं मुस्तकवर्णकसेरुषु नपुंसकम् ॥ ८४ ॥  
 गाङ्गेयस्तु महासेने भीष्मे गङ्गोद्भवे त्रिषु ।  
 चक्षुष्यः केतके पुंसि शुभगेऽक्षिहिते त्रिषु ॥ ८५ ॥  
 चाम्पेयश्चम्पके नागकेसरे पुष्पकेसरे ।  
 स्वर्णे क्लीवं जघन्यं तु निन्द्ये चरमशिश्वयोः ॥ ८६ ॥  
 जटायुः पक्षिभेदे स्यात्पुंसि गुग्गुलपादपे ।  
 तपस्या व्रतचर्यायां तपस्यः फाल्गुने पुमान् ॥ ८७ ॥  
 देवयुर्द्धार्भिके देवयात्रिकेऽप्यभिधेयवत् ।  
 द्वितीया तिथिभित्पत्न्योः पूरणेऽपि द्वयोस्त्रिषु ॥ ८८ ॥

गाङ्गेय—स्वामिकार्तिक, भीष्म, (पुं०) गंगासे होनेवाला, ( त्रि० )	अच्छे भाग्यवाला, नेत्रोंका हित- कारी ( त्रि० ) ॥ ८५ ॥
चक्षुष्य—केतकी ( पुष्पवृक्ष ), दौना पुष्पवृक्ष, कमल-वृक्ष, रसोत, ॥ ८३ ॥ ( पुं० न० ) कुलथी, ( स्त्री० ) अलग करना ( न० )	चांपेय—चंपा, नागकेर, पुष्पकेसर, ( पुं० ) सुवर्ण, ( न० ) जघन्य—निन्द्य, पिछला, शिश्न (लिंग) ( न० ) ॥ ८६ ॥
गाङ्गेय—नागरमोथा, सुवर्ण, कसेरु- कंद, ( न० ) ॥ ८४ ॥	जटायु—पक्षिभेद, गुग्गुल-वृक्ष, (पुं०) तपस्या—व्रतचर्या, ( स्त्री० ) तपस्य—फाल्गुन—मास, (पुं०) ॥ ८७ ॥
गाङ्गेय—स्वामिकार्तिक, भीष्म, (पुं०) गंगामें होनेवाला ( त्रि० )	देवयु—धर्मात्मा, देवयात्रिक, ( त्रि० ) द्वितीया—तिथिभेद, पत्नी ( स्त्री० ) दोनोंको पूरण करनेवाला, ( त्रि० ) ॥ ८८ ॥
चक्षुष्य—केतक ( केतक ) ( पुं० )	

नादेयी नीरवानीरे भूजम्बूनागरङ्गयोः ।  
 जपाजयन्त्योर्व्यङ्गुष्ठे निकायस्त्वात्मवेश्मनोः ॥ ८९ ॥  
 सधर्मिनिवहे लक्ष्ये संहतानां च मेलके ।  
 रङ्गभूमौ तु नेपथ्यं नेपथ्यं च प्रसाधने ॥ ९० ॥  
 पयस्या क्षीरकाकोल्यां स्वर्णक्षीर्यामपि स्मृता ।  
 पयस्या दुग्धिकायां च पयोहितभवेऽन्यवत् ॥ ९१ ॥  
 पर्जन्यो वासवे मेघध्वनौ च ध्वनदम्बुदे ।  
 पर्यायः क्रमनिर्वाणप्रकारावसरे पुमान् ॥ ९२ ॥  
 पेयवारिणि पानीयं पारुष्यस्तु बृहस्पतौ ।  
 पारुष्यं परुषत्वे स्यादपि शक्रस्य कानने ॥ ९३ ॥  
 पौलस्त्यः किन्नराधीशे पौलस्त्यो दशकन्धरे ।  
 प्रकीर्यः पूतिकरजे विनिकीर्णे तु वाच्यवत् ॥ ९४ ॥

नादेयी—जलबेत, भूईजामन, नारंगी, पर्जन्य—इंद्र, मेघध्वनि, गर्जताहुवा  
 जपा ( अलमी ), जैन-पुष्पवृक्ष, मेघ, ( पुं० )  
 व्यंगुष्ठ ( अंगूठाहीन ) ( स्त्री० ) पर्याय—क्रम, निर्वाण ( मोक्ष ), प्रकार,  
 निकाय—परमात्मा, स्थान ॥ ८९ ॥ अवसर, ( पुं० ) ॥ ९२ ॥  
 सधर्मियोंका समूह, लक्ष्य, संहतोंका पानीय—पीनेके योग्य ( त्रि० ), जल,  
 मिलाप, ( पुं० ) ( न० )  
 नेपथ्य—रंगभूमि, अलंकृतकी शोभा पारुष्य—बृहस्पति, ( पुं० ) पारुष्य—  
 ( न० ) ॥ ९० ॥ कठोरता, इंद्रका वन, ( न० ) ॥ ९३ ॥  
 पयस्या—क्षीरकाकोली, एक प्रकारकी पौलस्त्य—कुबेर, रावण, ( पुं० )  
 कटेहरी, दूधी, दुग्धका हित, दूधसे प्रकीर्य—काँटाकरंज ( करंजुवा ), ( पुं० )  
 उत्पन्नहुवा, ( त्रि० ) ॥ ९१ ॥ बिखराहुवा, ( त्रि० ) ॥ ९४ ॥

प्रणयः प्रेमविश्रम्भप्रश्रयप्रसरेऽर्थने ।

प्रणाय्योऽसंमते तृष्णावर्जितेऽप्यभिधेयवत् ॥ ९५ ॥

प्रत्ययः शपथे हेतौ ज्ञानविश्वासनिश्चये ।

सन्नाद्यधीनरन्ध्रेषु ख्यातत्वाचारयोरपि ॥ ९६ ॥

प्रलयो मृत्युकल्पान्तमूर्च्छासु विदितः पुमान् ।

प्रसव्यमन्यलिङ्गं स्यात्प्रतिकूलानुकूलयोः ॥ ९७ ॥

वलयः कङ्कणे न स्त्री बलाकण्ठरुजोरपि ।

वालेयः फञ्जिकायां स्यात्त्वरे बालहिते मृदौ ॥ ९८ ॥

ब्रह्मण्यस्तु शर्ना यूप्ते ब्रह्मसाधौ तु वाच्यवत् ।

ब्राह्मण्यं ब्राह्मणत्वे स्याद्ब्राह्मणानां च संहतौ ॥ ९९ ॥

भुजिष्यन्तु सहायेऽपि हस्तसूत्रेऽप्यथ त्रिषु ।

अनधीते भुजिष्या तु वेश्याचेटिकयोर्मता ॥ १०० ॥

प्रणय-प्रेम, विश्राम, नम्रता, प्रमद ( फलना ), याचना ( पुं० ) बालेय-भारंगी, गर्दभ, बालहित, कोमल, ( पुं० ) ॥ ९८ ॥

प्रणाय्य-असंमत ( नहीं मानाहुवा ), तृष्णासे रहित, ( त्रि० ) ॥ ९५ ॥ ब्रह्मण्य-शर्नश्चर, यूप्, ( पुं० ) ब्रह्ममें साधु ( श्रेष्ठ ) ( त्रि० )

प्रत्यय-सौगन, हेतु ( कारण ), ज्ञान, विश्वास, निश्चय, सन् आदि-प्रत्यय, अधीन, छिद्र, विख्यात, ब्राह्मण्य-ब्राह्मणपना, ब्राह्मणोंका समूह, ( न० ) ॥ ९९ ॥ आचार, ( पुं० ) ॥ ९६ ॥

प्रलय-मृत्यु, कल्पान्त, मूर्छा, ( पुं० ) भुजिष्य-दास ( नौकर ), हस्तसूत्र ( मंगलसूत्र ) ( पुं० ) विनापडा ( त्रि० )

प्रसव्य-प्रतिकूल, अनुकूल, ( त्रि० ) ॥ ९७ ॥ वलय-कंगन, खरैटी, कंठरोग, भुजिष्या-वेश्या, दासी, ( स्त्री० ) ( पुं० न० ) ॥ १०० ॥

भुवयुः स्याद्दृहद्भानुभानुशीतलभानुषु ।  
 भ्रातृव्यो भ्रातृतनये त्रिषु पुंसि तु विद्विषि ॥ १०१ ॥  
 मङ्गल्यं दक्षि मङ्गल्यं तत्रसाधौ मनोहरे ।  
 मङ्गल्यः श्रीफले स्वच्छे मसूरत्रायमाणयोः ॥ १०२ ॥  
 मङ्गल्या रोचनायां स्यात्प्रियङ्गुशतपुष्पयोः ।  
 मल्लिगन्धि च यत्कृष्णागुरु तत्रापि सा स्मृता ॥ १०३ ॥  
 अधःपुष्पीशमीखण्डपुष्पीश्वेतवचामु च ।  
 मलयः पुंसि देशाद्रिभेदयोः पर्वतांशके ॥ १०४ ॥  
 आरामे चन्दने चाथ मलया तृवृतौषधौ ।  
 मृगयुर्व्रह्मणि प्रोक्तो गोमायुव्याधयोरपि ॥ १०५ ॥  
 रहस्यं वाच्यवद्गोप्ये रहस्या तु नदीभिदि ।  
 लौहित्यं रक्ततायां स्यात्पुंसि ब्रीहौ नदान्तरे ॥ १०६ ॥  
 वक्तव्यः कुत्सिते हीनेऽप्यधीने वाच्यवत्त्रिषु ।  
 वदान्यस्तु सुवाग्दात्रोर्विजयो जयपार्थयोः ॥ १०७ ॥

भुवन्यु—अग्नि, सूर्य, चंद्रमा, ( पुं० )	भाग, ( पुं० ) ॥ १०४ ॥
भ्रातृव्य—भाईका पुत्रआदि ( त्रि० )	निमांत, ( स्त्री० )
शत्रु, ( पुं० ) ॥ १०१ ॥	मृगयु—ब्रह्म, गौंदह, व्याधा ( शिकारी )
मंगल्य—दही ( न० ) मंगलकरने-	( पुं० ) ॥ १०५ ॥
वाला, सुंदर, ( त्रि० )	रहस्य—गोप्य, ( त्रि० )
मंगल्य—बेलका—वृक्ष, निर्मल, मसूर,	रहस्या—नदीभेद, ( स्त्री० )
त्रायमाणा, ( पुं० ) ॥ १०२ ॥	लौहित्य—रक्तता, ( न० ) धान,
मंगल्या—गोरोचन, फूलप्रियंगु, सौंफ,	नदभेद, ( पुं० ) ॥ १०६ ॥
मल्लिका ( मोगरा ) सरीखी गंध-	वक्तव्य—निर्दिन, हीन, अधीन,
वाला काला अगर, ( स्त्री० ) ॥ १०३ ॥	( त्रि० )
गोभी, जांट, खंडपुष्पी ( शाखा-	वदान्य—अच्छी वाणीवाला, दान-
हुली ), सफेद बच, ( स्त्री० )	शील ( बहुत देनेवाला ) ( पुं० )
मलय—देशभेद, पर्वतभेद, पर्वतका	विजय—जय, अर्जुन, ( पुं० ) ॥ १०७ ॥

विजया तु मता गौर्या तत्सखीतिथिभेदयोः ।  
 विनयस्तु नतौ नीतौ शिक्षायां विनयो द्वयोः ॥ १०८ ॥  
 विशल्याऽग्निशिखादन्तीगुडूचीतृवृत्ति स्त्रियाम् ।  
 वाच्यवद्रतशल्ये स्याद्विस्मयोऽद्भुतगर्वयोः ॥ १०९ ॥  
 विषयो गोचरे देशे इन्द्रियार्थेऽपि नीवृत्ति ।  
 प्रबन्धाद्यस्य यो ज्ञातः स तस्य विषयः स्मृतः ॥ ११० ॥  
 व्यवायः सुरतेन्तर्द्धौ व्यवायं तेजसि स्मृतम् ।  
 शाण्डिल्यो मुनिभेदेऽपि श्रीफले पावकान्तरे ॥ १११ ॥  
 शालेयः शतपुष्पायां त्रिषु शाल्युद्धवोचिते ।  
 शीर्षण्यः पुंसि विशदे कचे क्लीत्रं तु शीर्षके ॥ ११२ ॥  
 शैलेयं सिन्धुलवणे तालपण्यां च शैलजे ।  
 मृङ्गे पुंसि श्वशुर्यस्तु देवरे श्यालकेऽपि च ॥ ११३ ॥

विजया—गौरी, गौरीकी	सखी,	व्यवाय—स्त्रीसंग, व्यवधान, ( पुं० )
तिथिभेद, ( स्त्री० )		व्यवाय—तेज, ( न० )
विनय—नति, नीति, शिक्षा, ( पुं० )	शाण्डिल्य—एकमुनि, ब्रिन्व-वृक्ष, अ- स्त्री० ) ॥ १०८ ॥	मिभेद, ( पुं० ) ॥ १११ ॥
विशल्या—कलिहारी, जमालगोटाकी	शालेय—सौंप, ( पुं० ) शालि ( चा- जड, गिलोय, निसोत, ( स्त्री० )	वल ) की उत्पत्तिवाला क्षेत्र ( त्रि० )
शल्यरहित ( त्रि० )		
विस्मय—अद्भुत, गर्व, ( पुं० ) ॥ १०९ ॥	शीर्षण्य—श्वेत, केश, ( पुं० ) शि- रकी रक्षाकरनेवाला, ( न० ) ११२	
विषय—गोचर ( समक्ष ), देश, शब्द स्पर्श आदि, जनपद, ( मनु- प्यके नामसे विख्यात देश ), जिसके प्रबंधसे जो जाना है वह उसका विषय कहा है ( पुं० ) ॥ ११० ॥	शैलेय—समुद्रलवण, तालपण्यां ( मु- सली ), पत्थरका फूल, ( न० ) भौरा, ( पुं० )	श्वशुर्य—देवर, साला, ( पुं० ) ११३

पृष्ठस्थायिबले नीतौ समवायेऽपि सन्नयः ।

समयः पुंस्ि सिद्धान्तशपथाचारसंविदि ॥ ११४ ॥

कालसिद्धान्तनिर्देशक्रियाकारेषु सङ्गमे ।

मेलके योगियोगिन्योः समयः कापि दृश्यते ॥ ११५ ॥

सरण्युर्वारिदे वाते सामर्थ्यं योग्यताबले ।

सौकर्यं स्यादनायासे क्रियायां सूकरस्य च ॥ ११६ ॥

सौभाग्यं सुभगत्वे स्याद्योगभेदे पुमानयम् ।

सौरभ्यं तु सुगन्धत्वे गुरुत्वे गुणगौरवे ॥ ११७ ॥

संस्त्यायः सन्निवेशेऽपि संस्थाने विस्मृतौ गणे ।

हरिण्यमक्षये द्रव्ये वराटे स्वर्णरेतसि ॥ ११८ ॥

घटिताऽघटितस्वर्णरूप्ययोर्मानभियपि ।

बुक्तायां हृदयं ज्ञेयं हृदयं हृदि वक्षसि ॥ ११९ ॥

**सन्नय**—पिछाई स्थितहुई सेना, **सौभाग्य**—सुभगपना ( न० ) योग-  
नीति, समूह, ( पुं० ) भेद, ( पुं० )

**समय**—सिद्धान्त, मौगन, आचार, **सौरभ्य**—सुगंधपना, गुरुपना, गुणोंसे  
बुद्धि ॥ ११४ ॥ काल, सिद्धान्त, वडप्पन, ( न० ) ॥ ११७ ॥

बुद्धि ॥ ११४ ॥ काल, सिद्धान्त, **संस्त्याय**—अच्छीतरह बनाहुवा वाम-  
निर्देश, क्रियाकार, संगम, कहीं ध्यान, अच्छीतरह स्थिति, विस्तार,  
योगी और योगिनीके मिलाप मे ( पुं० )  
भी समय देखा है ( पुं० )  
॥ ११५ ॥

**सरण्यु**—मेघ, वायु, ( पुं० )

**सामर्थ्य**—योग्यता, बल, ( न० )

**सौकर्य**—विनापरिश्रम, सूकरकी क्रिया **हृदय**—हृदयके अंदर कमलाकार  
( न० ) ॥ ११६ ॥ मांसभेद, हृदय, छाती, ( न० )  
॥ ११९ ॥

तनौ स्त्रियां क्षिपण्युः स्यात्क्षिपण्युः सुरभौ नरि ।

परदाररताऽसाध्यरोगयोः क्षेत्रियः पुमान् ॥ १२० ॥

अन्यदेहे चिकित्साहं क्लीवं क्षेत्रतृणेपि च ।

यचतुर्थम् ।

दीर्घद्वेषानुतापानुबन्धेष्वनुशयः पुमान् ॥ १२१ ॥

अन्तशय्या तु मरणे भूमिशय्याश्मशानयोः ।

अपसव्यमवामे स्यात्प्रतिकूले तु वाच्यवत् ॥ १२२ ॥

गर्वेऽपि तुहिनेपि स्यादवश्यायः पुमानयम् ।

उपकार्या नृपावासेऽप्युपकारोचितेऽन्यवत् ॥ १२३ ॥

उपक्रयश्चिकित्सायामारम्भवधयोरपि ।

काद्रवेयः पुमान्नागे तथा सीमकरङ्गयोः ॥ १२४ ॥

चन्द्रोदयो विताने स्यात्स्त्रियामेवोषधीभिदि ।

जलाशयो जलाधारे जलदे तु जलाशयम् ॥ १२५ ॥

क्षिपण्यु-शरीर ( स्त्री० ) क्षिपण्यु- अवश्याय-अभिमान, पाला या वर्फ  
मुगंधि द्रव्य ( त्रि० ) ( पु० )

क्षेत्रिय-परस्वामे रत, असाध्य रोग, उपकार्या-गजभवन, ( स्त्री० )  
( पुं० ) ॥ १२० ॥ दूसराका उपकारके योग्य, ( त्रि० ) ॥ १२३ ॥  
शरीर, चिकित्साके योग्य, क्षेत्रका उपक्रय-चिकित्सा, आरंभ, वध  
तृण, ( न० ) ( मारना ) ( पुं० )

यचतुर्थम् ।

अनुशय-बहुतदिनोंका बैर, पिछ- काद्रवेय-नाग ( सर्प ), शीशा,  
ताना, प्रकृति-प्रत्यय-आगम-आ- रांग, ( पुं० ) ॥ १२४ ॥

देशमें विनश्वर, ( पुं० ) ॥ १२१ ॥ चन्द्रोदय-चंदोवा, ( पुं० ) औषधी-  
अन्तशय्या-मरना, भूमिशय्या, श्म- भेद ( स्त्री० )  
शान ( मरघट ) ( स्त्री० )

अपसव्य-दहना-हाथ आदि, प्राति- जलाशय-नालाब आदि, ( पुं० )  
कूल, ( त्रि० ) ॥ १२२ ॥ खस, ( न० ) ॥ १२५ ॥



तण्डुलीयो विडङ्गद्रावल्पमारिषताप्ययोः ।

तृणशून्यं तु केतक्याः फले मह्यां च निस्तृणे ॥ १२६ ॥

धनजंयोऽग्नौ ककुभे नागदेहानिलेऽर्जुने ।

निरामयं हुडुके स्यात्कल्पे त्रिषु निरामयः ॥ १२७ ॥

परिधायो जलस्थाने नितम्बे च परिच्छदे ।

पाञ्चजन्यो हरेः शङ्खे शङ्खपोटगलेऽनले ॥ १२८ ॥

पौरुषेयस्तु पुरुषविकारेऽपि पदान्तरे ।

पुंसः समूहवधयोः पुरुषेण कृते त्रिषु ॥ १२९ ॥

क्लीबं प्रतिभयं भीतौ वाच्यवत्तु भयानके ।

प्रतिश्रयः सभायां स्यादाश्रयेऽपि प्रतिश्रयः ॥ १३० ॥

फलानामुदये लाभे त्रिदिवेऽपि फलोदयः ।

मतो विलेशयः पुंसि मूषिकेऽपि भुजङ्गमे ॥ १३१ ॥

तण्डुलीय—वायविडंग—वृक्ष, चोलाई  
शाक, सोनामाखी, ( पुं० )

तृणशून्य—केतकीका फल, मल्लिका  
( मोतिया ) ( न० ) तृणरहित  
( त्रि० ) ॥ १२६ ॥

धनजय—अग्नि, कोह-वृक्ष, सर्प, श-  
रीरका वायु, अर्जुन, ( पुं० )

निरामय—वाद्यभेद(एक बाजा), (न०)  
समर्थ (नीरोग) ( त्रि० ) ॥ १२७ ॥

परिधाय—जलस्थान, नितम्ब, परि-  
कर, ( पुं० )

पाञ्चजन्य—विष्णुका शंख, शंख-मात्र,

काश या देवनल, अग्नि ( पुं० )  
॥ १२८ ॥

पौरुषेय—पुरुषविकार, पदान्तर,  
( त्रि० ) समूह, वध, ( पुं० )  
पुम्पका कियाहुवा ( त्रि० ) ॥ १२९ ॥

प्रतिभय—भय, ( न० ) भयानक,  
( त्रि० )

प्रतिश्रय—सभा, आश्रय, ( पुं० )  
॥ १३० ॥

फलोदय—फलोंका उदय, लाभ,  
स्वर्ग, ( पुं० )

विलेशय—मूसा, सर्प, ( पुं० )  
॥ १३१ ॥

भागधेयं स्मृतं भाग्ये पुंसि स्यात्करभागयोः ।  
 भूतेन्द्रियं तु करणशब्दगोचरसंहतौ ॥ १३२ ॥  
 महोदयः समुदये कान्यकुब्जापवर्गयोः ।  
 महालयो विहारेऽपि तीर्थेऽपि परमात्मनि ॥ १३३ ॥  
 महामूल्यं पद्मरागे महार्धे त्वभिधेयवत् ।  
 मार्जारीयस्तु शूद्रे स्याद्विडाले कायशोधने ॥ १३४ ॥  
 रौहिणेयः प्रलम्बघ्ने बुधे वत्से तु वाच्यवत् ।  
 वैनतेयस्तु कथितो गरुडे गरुडाग्रजे ॥ १३५ ॥  
 उत्सेधेऽपि विरोधेऽपि पुमानेव समुच्छ्रयः ।  
 मतः समुदयो वृन्दे संयुगे समुपक्रमे ॥ १३६ ॥  
 समुदायः समूहे स्यात्समुद्भूतौ रणेऽपि च ।  
 संपरायस्तु सङ्ग्रामे विपदुत्तरकालयोः ॥ १३७ ॥  
 समाह्वयो रणे नाम्नि क्रीडायां पशुपक्षिभिः ।  
 स्थूलोच्चयस्त्वसाकल्ये गण्डोपलवरण्डयोः ॥ १३८ ॥

भागधेय-भाग्य, ( न० ) कर (दंड), विभाग, ( पुं० )	रौहिणेय-शूद्र, बुध-ग्रह, ( पुं० ) प्रिय, ( त्रि० )
भूतेन्द्रिय-करण ( इन्द्रिय ), शब्द आदि गोचर, समूह ( न० ) ॥ १३२ ॥	वैनतेय-गरुड, अरुण, ( पुं० ) ॥ १३५ ॥ समुच्छ्रय-ऊँचापन, विरोध, ( पुं० ) समुदाय-समूह, युद्ध, प्रारंभ या उद्गम ( पुं० ) ॥ १३६ ॥
महोदय-अच्छे प्रकारसे उदय, कान्यकुब्ज, मोक्ष, ( पुं० )	समुदाय-समूह, उद्भव, रण, ( पुं० )
महालय-विहार ( क्रीडा ), तीर्थ, परमात्मा, ( पुं० ) ॥ १३३ ॥	संपराय-संग्राम, विपत्, उत्तर- काल, ( पुं० ) ॥ १३७ ॥
महामूल्य-पुष्करराज, ( न० ) बहु- त कीमतवाला, ( त्रि० )	समाह्वय-रण, नाम, पशुपक्षियों करके क्रीडा, ( पुं० )
मार्जारीय-शूद्र, विलाष, शरीरशो- धन, ( पुं० ) ॥ १३४ ॥	स्थूलोच्चय-असंपूर्णता, पर्वतसे गिरा भंग, मुखरोग, ॥ १३८ ॥

स्थूलोच्चयो मतङ्गानां स्यान्मध्यमगतेऽपि च ।

हिरण्मयः स्वर्णमये लोकधात्रन्तरे पुमान् ॥ १३९ ॥

यपञ्चमम् ।

कालानुसार्यं कालेये शैलेये शिशपाद्रुमे ।

मतं तु दुग्धतालीयं दुग्धाम्रे दुग्धफेनके ॥ १४० ॥

स्याद्दुग्धचमसेऽप्येतत्खण्डकीटे पुमानयम् ॥

त्रिषु प्रवचनीयं स्यात्प्रवाच्येऽपि प्रवक्तरि ॥ १४१ ॥

वृषाकपायी श्रीगौरीजीवन्तीषु शतावरौ ।

यषष्ठम् ।

प्रत्युद्गमनीयमुपस्थेये धौतांशुकद्वये ।

विष्वक्सेनप्रिया तु स्यात्कमलात्रायमाणयोः ॥ १४२ ॥

इति विश्वलोचने यान्तवर्गः ॥

हस्तियोंका मध्यम गमन, ( पुं० )  
हिरण्मय—सुवर्णमय, लोकधानृ  
( ब्रह्मा ) ( पुं० ) ॥ १३९ ॥

यपञ्चम ।

कालानुसार्य—कालमें होनेवाला,  
शिलाजीत, सीसम—वृक्ष, ( न० )  
दुग्धतालीय—दुग्ध-आम्र, दुग्धका  
फेन ( ज्ञाग ) ॥ १४० ॥ दुग्ध-  
पीनेका पात्र, ( न० ) शक्करका  
कीट ( पुं० )  
प्रवचनीय—कहनेके योग्य, कहने-  
वाला, ( त्रि० ) ॥ १४१ ॥

वृषाकपायी—लक्ष्मी, गौरी, जीवन्ती,  
शतावरी, ( स्त्री० )

यषष्ठ ।

प्रत्युद्गमनीय—आगेसे उठनेके योग्य  
या धौतवस्त्रजोड़ा ( न० )

विष्वक्सेनप्रिया—लक्ष्मी, त्रायमाण-  
औषधि, ( स्त्री० ) ॥ १४२ ॥

इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें  
यान्तवर्ग समाप्त हुआ ॥

## अथ रान्तवर्गः ।

रैकम् ।

रस्तु कामाऽनले वह्नौ तीक्ष्णे रास्त्वर्थरुक्मयोः ।

रुर्ना शब्दे भये भागे रीः श्रोतरि भुवि स्त्रियाम् ॥ १ ॥

क्रेतरि क्रीः क्रये तु स्त्री घ्रा घ्राणे घ्रातरि स्मृतः ।

द्रुर्वृक्षेऽपि द्रुमेऽपि स्याद्द्रुः स्वर्णे कामरूपिणि ॥ २ ॥

श्रीलक्ष्मीभारतीशोभाप्रभासु सरलद्रुमे ।

वेशत्रिवर्गसम्पत्तौ शेषापकरणे मतौ ॥ ३ ॥

स्रुः स्रवे निर्झरे चाथ ह्रीर्व्रीडे लज्जिते त्रिषु ।

रद्वितीयम् ।

अग्रं त्रिषु प्रधाने स्यादग्रं मूर्द्धाधिकादिषु ॥ ४ ॥

पुरस्तात्पलमाने च व्रातेप्यालम्बनान्तयोः ।

अङ्घ्रिः पुंस्येव चरणे मूलेऽपि च महीरुहे ॥ ५ ॥

अथ रान्तवर्गः ।

रैक ।

र-कामाग्नि, अग्नि, तीक्ष्ण, (पुं०)

रा-द्रव्य, सुवर्ण, ( पुं० )

रु-शब्द, भय, भाग, ( पुं० )

री-श्रोता (पुं०) पृथ्वी, (स्त्री०) ॥१॥

क्री-खरीदनेवाला, ( पुं० ) खरी-

दना, ( स्त्री० )

घ्रा-नासिका, ( स्त्री० ) सूषनेवाला,

( पुं० )

द्रु-वृक्ष, कल्पवृक्ष, सुवर्ण, यथेच्छरूप

धारण करनेवाला, (पुं०) ॥ २ ॥

श्री-लक्ष्मी, सरस्वती, शोभा, प्रभा,

(स्त्री०) सरल-वृक्ष, वेश (शृंगार),

त्रिवर्गसंपत्ति, शेषका नहीं करना,

बुद्धि, ( स्त्री० ) ॥ ३ ॥

स्रु-स्रव (झिरना), निर्झर (फुँवारा),

ह्री-लज्जा, ( स्त्री० ) लज्जावान्, (त्रि०)

रद्वितीय ।

अग्र-आदि, ( त्रि० ) मस्तक, अधिक

आदि, ॥ ४ ॥ अगाड़ी, पल

( ४ तोला प्रमाण ) समूह, आल-

म्बन, अन्त, ( न० )

अङ्घ्रि-पाँव, जङ्घ, वृक्ष, ( पुं० ) ॥५॥

अद्रिः शैले द्रुमे सूर्येऽप्यभ्रं खे गिरिजेऽम्बुदे ।  
 स्वर्गेऽप्यथाऽरं शीघ्रे स्याच्चक्राङ्गे शीघ्रगे त्रिषु ॥ ६ ॥  
 अस्त्रं तु शोणिते लोभेऽप्यस्त्रः स्यात्कोणकेशयोः ।  
 अस्त्रं प्रहरणे चापेऽप्यार्द्रा भे स्तिमिते त्रिषु ॥ ७ ॥  
 आरा तु चर्मवेधन्यामारो भौमे शनैश्चरे ।  
 आरुर्ना द्रुमभेदे स्यादपि कर्कटदंष्ट्रिणोः ॥ ८ ॥  
 इन्द्रः शक्रात्मसूर्येषु योगेऽपीन्द्रा फणिज्जके ।  
 इरा तु मदिरावारिभारव्यसनभूमिषु ॥ ९ ॥  
 उग्रस्तीव्रे त्रिषु क्षात्राच्छूद्रापुत्रे हरे पुमान् ।  
 उग्रा वचाछिक्रिकयोरुष्ट्रस्तु स्यात्क्रमेलके ॥ १० ॥  
 उट्ठी गोलकिकायां स्यादुट्ठी करभयोपिति ।  
 उस्त्रा गव्युपचित्रायामुस्त्रस्तु किरणे पुमान् ॥ ११ ॥

अद्रि—पर्वत, वृक्ष, सूर्य, ( पुं० )	आरु—वृक्षभेद, कर्कट ( केकड़ा ) प्राणी, डाढोंवाला-प्राणी, ( पुं० ) ॥ ८ ॥
अभ्र—आकाश, धातुभेद, मेघ, स्वर्ग, ( न० )	इन्द्र—इन्द्र, आत्मा, सूर्य, योग, ( पुं० )
अर—शीघ्र, चक्रका अंग ( अरा ) ( न० )	इन्द्रा—छोटपत्तोंकी तुलसी ( स्त्री० )
शीघ्रचलनेवाला, ( त्रि० ) ॥ ६ ॥	इरा—मदिरा, जल, भार, व्यसनभूमि, ( स्त्री० ) ॥ ९ ॥
अस्त्र—रुधिर, लोभ, ( न० )	उग्र—तीव्र, ( त्रि० ) क्षत्रियसे शूद्राका पुत्र, महादेव, ( पुं० )
अस्त्र—कोण, केश ( बाल ) ( पुं० )	उग्रा—बच, नकलीकनी, ( स्त्री० )
अस्त्र—फेंककर मारनेका हथियार, धनुष, ( न० )	उष्ट्र—ऊँट ( पुं० ) ॥ १० ॥
आर्द्रा—एक नक्षत्र, ( स्त्री० ) गीला, ( त्रि० ) ॥ ७ ॥	उट्ठी—चावलआदिके धोनेका उपयोगी पात्र, ऊँटनी, ( स्त्री० )
आरा—चर्मवेधनी ( धार ) ( स्त्री० )	उस्त्रा—गौ, चीता-औषधि, ( स्त्री० )
आर—भौम, शनैश्चर, ( पुं० )	उस्त्र—किरण, ( पुं० ) ॥ ११ ॥

ऐन्द्रिः काके जयन्ते स्यादोङ्गा जनपदान्तरे ।  
 ओङ्गो जने जवावृक्षे देशे पुष्पे तु न द्वयोः ॥ १२ ॥  
 अंघ्रिः पादे च बुधे च कद्रुः कनकपिङ्गले ।  
 तद्वति त्रिषु कद्रुः स्यात्कद्रुः स्त्री नागमातरि ॥ १३ ॥  
 करस्तु पाणिप्रत्यायशुण्डारश्मिघनोपले ।  
 कारो वधे तुषाराद्रौ निश्चये यतियलयोः ॥ १४ ॥  
 वलावप्यथ कारा स्याद्वन्धनागारवन्धयोः ।  
 सुबन्ते कारिकापीडादृतिकामु प्रसेवके ॥ १५ ॥  
 कारुः शिल्पिनि शिल्पे च कारके विश्वकर्मणि ।  
 कारिः क्रियानापिताद्योः कीरो जनपदे शुके ॥ १६ ॥  
 कुरुर्नृपान्तरे भक्ते कुरुः श्रीकण्ठजाङ्गले ।  
 कृच्छ्रं तु कष्टे पापे च तथासान्तपनादिके ॥ १७ ॥

ऐन्द्रि-काग, जयत ( इन्द्रपुत्र )	बलि, ( पुं० )
( पुं० )	कारा बन्धनका स्थान, बन्धन,
ओङ्ग-जनपद ( देशविशेष ) ( पुं० )	सुबन्त, कारिका, पीडा, दूती,
बहुवचनांत )	वीणाकी तूँबी, ( स्त्री० ) ॥ १५ ॥
ओङ्ग-जन, जया वृक्ष, देश, ( पुं० )	कारु-शिल्पी, शिल्प, करनेवाला,
पुष्प, ( न० ) ॥ १२ ॥	विश्वकर्मा, ( पुं० )
अंघ्रि-चरण, वृक्षकी जड, ( पुं० )	कारि-क्रिया, ( स्त्री० ) नाई आदि,
कद्रु-सुवर्ण, कुछेक पीला रंग, ( पुं० )	( त्रि० )
कुछपीलारंगवाला ( त्रि० ) नाग-	कीर-देशविशेष, ( पुं० बहुवचनांत )
माता ( स्त्री० ) ॥ १३ ॥	मूवा-पक्षी, ( पुं० ) ॥ १६ ॥
कर-हस्त, निश्चय, हस्तीकी सूँड,	कुरु-नृपभेद, अन्न, महादेव, जांगल-
किरण, ओला, ( पुं० )	देश, ( पुं० )
कार-मारना, हिमाद्रि (पर्वत), निश्चय,	कृच्छ्र-कष्ट, पाप, सान्तपन आदि-
यति, यत्न, ॥ १४ ॥	व्रत, ( न० ) ॥ १७ ॥

क्रूरस्त्रिषु नृशसे स्यादपि निर्दयघोरयोः ।  
 क्रोष्टी शृगालिकाक्षीरविदारीलाङ्गलीप्वथ ॥ १८ ॥  
 देवताडे द्वये तीक्ष्णे त्रिषु ना गर्दभे खरः ।  
 खरुर्दशन ईशेऽश्वे दर्पे पुंसि सिते त्रिषु ॥ १९ ॥  
 खुरः शफे कोलदले खङ्गादेश्वरणेऽपि च ।  
 गरो विषे चोपविषे गरं करणरोगयोः ॥ २० ॥  
 गात्रं गजाग्रजङ्घादिविभागेऽप्यङ्गदेहयोः ।  
 गिरिर्गीर्णो गिरियकग्रावनेत्रगदेषु ना ॥ २१ ॥  
 गिरिः पूज्येऽन्यलिङ्गः स्याद्भारत्यां भाषणे च गीः ।  
 गुरुनिषेकादिकरे पित्रादिमुरमन्त्रिणोः २२ ॥  
 गुरुस्त्रिषु स्यान्महति दुर्जरे वाऽलघुन्यपि ।  
 गुन्द्रस्तेजनके गुन्द्रा मुस्तके भद्रमुस्तके ॥ २३ ॥

क्रूर—हिंसाकरनेवाला, निर्दय, भयंकर ( पुं० )  
 क्रोष्टी—गीदड़ी, क्षीरविदारीकंद, कलि-  
 हारी, ( स्त्री० ) ॥ १८ ॥  
 खर—देवताड, ( पुं० स्त्री० ) तीक्ष्ण,  
 ( त्रि० ) गर्दभ, ( पुं० )  
 खरु—दांत, महादेव, अश्व, अभिमान,  
 ( पुं० ) सफेदरंगवाला, ( त्रि० ) ॥ १९ ॥  
 खुर—पशुका खुर, नख नामका गंधद्रव्य,  
 गैडा आदिका चरण, ( पुं० )  
 गर—विष, उपविष ( धतूरा आदि )  
 ( पुं० )  
 गर—करण, रोग, ( न० ) ॥ २० ॥  
 गात्र—गजका अग्रभाग, जंघा आदि-  
 विभाग, अंग, शरीर, ( न० )  
 गिरि—निगलना, खिन्न, पर्वत, नेत्ररोग  
 ( पुं० ) ॥ २१ ॥  
 गिरि—पूज्य, ( त्रि० )  
 गिर—मरम्बती, भाषण, ( स्त्री० )  
 गुरु—निषेक ( गर्भाधान ) आदि  
 संस्कार करानेवाला, पिता आदि,  
 देवताओंका मंत्री, ( पुं० ) ॥ २२ ॥  
 गुरु—महान्, दुर्जर, भारी, ( त्रि० )  
 गुन्द्र—सरकंडा, ( पुं० )  
 गुन्द्रा—मोथा, भद्रमोथा, ॥ २३ ॥

कुटनटे प्रियङ्गौ च गृध्रो लुब्धे खगान्तरे ।

गोत्रः क्षोणीधरे गोत्रं कुले क्षेत्रे च नाम्नि च ॥ २४ ॥

सम्भावनीयबोधेऽपि वित्ते वर्त्मनि कानने ।

गोत्रा भुवि गवां वृन्दे गौरः पुंसि निशाकरे ॥ २५ ॥

गौरः पीतारुणश्चेतविशुद्धेष्वभिधेयवत् ।

गौरी तु पार्वतीनमकन्ययोर्वरुणस्त्रियाम् ॥ २६ ॥

नदीभिद्यामिनीपिङ्गारोचनीक्षमाप्रियङ्गुषु ।

गौरं तु विशदे श्वेतसर्पे पद्मकेसरे ॥ २७ ॥

घस्रोऽहि हिंसे घोरस्तु हरे भीमेऽभिधेयवत् ।

अथ पुंस्येव चक्रः स्याच्चक्रवाकसमूहयोः ॥ २८ ॥

चक्रं सैन्ये रथाङ्गेऽपि आम्रजालेऽम्भसाम्भ्रमे ।

कुलालकृत्यनिष्पत्तिभाण्डे राष्ट्रस्त्रभेदयोः ॥ २९ ॥

अरल् या टेंट-वृक्ष, कूलप्रियंगू,  
( स्त्री० )

नदीभेद, रात्रि, पीलारंगवाली, गो-  
रोचन, पृथ्वी, कूलप्रियंगु, ( स्त्री० )

गृध्र-व्याध, पक्षिभेद, ( पुं० )

गौर-स्वच्छ ( सफेद ) ( त्रि० )

गोत्र-पर्वत, ( पुं० )

सफेद सरसों, कमलकेसर, ( न० )

गोत्र-कुल, क्षेत्र, नाम, ॥ २४ ॥

॥ २७ ॥

संभावनीय बोध, धन, मार्ग, वन,  
( न० )

घस्र-दिन, हिंसाकरनेवाला, ( पुं० )

गोत्रा-पृथ्वी, गौवाँका समूह, ( स्त्री० )

घोर-महादेव, ( पुं० ) भयंकर,  
( त्रि० )

गौर-चंद्रमा, ( पुं० ) ॥ २५ ॥

गौर-पीला, लाल, सफेद, स्वच्छ,  
( त्रि० )

चक्र-चक्रवा-पक्षी, समूह, ( पुं० ) २८

चक्र-सेना, रथका पहिर्यो, आम्रजाल,

गौरी-पार्वती, नहीं उत्पन्न हुवा है

जलोंका भ्रमण, कुम्हारके कृत्यके-

रजस् जिसके ऐसी कन्या, वरुणकी

लिये पात्र, देशभेद, अस्त्रभेद, ( न० )

स्त्री, ॥ २६ ॥

॥ २९ ॥



**चन्द्रः** सुधांशुकर्पूरस्वर्णकम्पिलवारिषु ।  
**चरश्चारे** चले द्यूतप्रभेदे जङ्गमेऽपि च ॥ ३० ॥  
**चरुर्भाण्डेपि** हव्यान्ने चारश्चरपियालयोः ।  
 गतौ बन्धेऽपि चित्रं तु कर्बुराद्भुतयोस्त्रिषु ॥ ३१ ॥  
**चित्रमालेख्यतिलकव्योमसु** स्यान्नपुंसकम् ।  
**चित्राऽक्षवन्तीनक्षत्रभुजङ्गाऽप्सरसाम्भिदि** ३२ ॥  
**चित्राऽखुपर्णागिण्डुंबासुमद्रादन्तिकासु** च ।  
**चीरं** तु वस्त्रे चूडायां त्रपुण्यालेखरेखयोः ॥ ३३ ॥  
**चीरी** कच्छाटिकाशिलयोश्चुक्रस्त्वम्लेऽम्लवेतसे ।  
**चुक्री** चाङ्गेरिकायां स्याच्चुक्रं वृक्षाम्लके मतम् ३४ ॥  
 मासाद्रिभेदयोश्चैत्रश्चैत्रं मृतकचैत्यके ।  
**चौरश्चौरे** मुगन्धे च छत्रमातपवारणे ॥ ३५ ॥

<b>चन्द्र</b> —चंद्रमा, कपूर, सुवर्ण, कवीला- आपधि, जल, ( पुं० )	<b>चित्रा</b> —मूसाकत्री, गहूँभा, सरिवन, जमालगोटाकी जड़ ( स्त्री० )
<b>चर</b> —चार ( फिरताहुवा ) पुरुष, हि- लताहुवा, जूवाभेद, जंगम, ( पुं० ) ॥ ३० ॥	<b>चीर</b> —वस्त्र, चोटी, सीसा, लेखभेद, रेखा, ( न० ) ॥ ३३ ॥
<b>चरु</b> —भांड ( पात्र ), हव्यअन्न ( देवान्न ) ( पुं० )	<b>चीरी</b> —धोतीकी कच्छ, भैंसीरी ( वर्षा- ऋतुमें झीं झीं बोलनेवाला प्राणी ) ( स्त्री० )
<b>चार</b> —राजाका गुप्त पुरुष, चरोंजी, गमन, बंधन, ( पुं० )	<b>चुक्र</b> —खट्टा—द्रव्य, अम्लवेत, ( पुं० ) <b>चुक्री</b> —अम्ललोना ( स्त्री० )
<b>चित्र</b> —कबरा, अद्भुत, ( त्रि० ) ॥ ३१ ॥	<b>चुक्र</b> —चूका-वृक्ष, ( न० ) ॥ ३४ ॥
<b>चित्र</b> —आलेख्य ( चित्रनिकालना ), तिलक, आकाश, ( न० )	<b>चैत्र</b> —चैत्र—मास, पर्वतभेद, ( पुं० ) <b>चैत्र</b> —मृतकका चौतरा, ( न० )
<b>चित्रा</b> —नदी, नक्षत्र, सर्प, और अप्सरा ओंका भेद, ( स्त्री० ) ॥ ३२ ॥	<b>चोर</b> —चोर, सुगंध-द्रव्य, ( पुं० ) <b>छत्र</b> —छत्र, ( न० ) ॥ ३५ ॥

छत्रा मधुरिकायां स्यात्कुस्तुम्बुरुशिलीन्द्रयोः ।

जारस्तूपपतौ जारी मता वश्यौषधीभिदि ॥ ३६ ॥

जीरस्तू जीरे खङ्गे च टारो लिङ्गतुरङ्गयोः ।

तत्रं प्रधाने सिद्धान्ते श्रुतिशाखान्तरेऽपि च ॥ ३७ ॥

कुटुम्बधारणे शास्त्रे कारणे च परिच्छदे ।

इतिकर्तव्यतायां च सूत्रवायेऽगदोत्तमे ॥ ३८ ॥

तत्रं द्विसाधके पात्रे तन्त्री स्याद्वल्लकी गुणे ।

शिरायां च गुडूच्यां च तन्द्री निद्राप्रमीलयोः ॥ ३९ ॥

वस्त्रादिपेटके नावि दशायां च तरिः स्त्रियाम् ।

ताम्रं शुल्बे त्रिष्वरुणे तारोऽत्युच्चध्वनौ त्रिषु ॥ ४० ॥

तारो मुक्तादिसंशुद्धौ तरुणे शुद्धमौक्तिके ।

तारं तु रजते तारा सुग्रीवगुरयोषितोः ॥ ४१ ॥

छत्रा-सौफ, धनियॉ, छत्राक ( भौ-  
फोडू ) ( स्त्री० )

जार-उपपति, ( पुं० )

जारी-वशीभूत करनेवाली औषधीभेद  
( स्त्री० ) ॥ ३६ ॥

जीर-जीरा, खङ्ग, ( पुं० )

टार-लिंग, अश्व, ( पुं० )

तत्र-प्रधान, सिद्धान्त, वेदशाखाभेद,  
॥३७॥ कुटुम्बधारण, शास्त्र, कारण,  
सामग्री, निश्चित करना, सूत्रबुनने-  
वाला, उत्तम औषधी, ( न० )  
॥ ३८ ॥

तत्र-दोयोंका साधक, पात्र, ( न० )

तन्त्री-वीणाका तार, नाडी, गिलोय,  
( स्त्री० )

तन्द्री-निद्रा, आलस्य, ( स्त्री० ) ॥३९॥

तरि-वस्त्रआदिकी पेट्टी, नौका, वस्त्रका  
पल्ला, ( स्त्री० )

ताम्र-तांबा, ( न० ) रक्तवर्णवाला,  
( त्रि० )

तार-अति उच्चध्वनि, ( त्रि० ) ॥४०॥

तार-मोती आदिकी संशुद्धि, जवान,  
स्वच्छमोती, ( पुं० )

तार-चाँदी, ( न० )

तारा-सुग्रीवकी स्त्री, बृहस्पतिकी  
स्त्री ( स्त्री० ) ॥ ४१ ॥

बुद्धदर्शनदेव्यां च दृग्मध्यतारके न ना ।

तीरस्त्रपौ नटे तीरं तटे प्रादुत्तरं च तत् ॥ ४२ ॥

तीव्रमत्यन्तकटुके नितान्ते तद्वतोस्त्रिषु ।

तीव्रा तु कटुरोहिण्यामासुरीगण्डदूर्वयोः ॥ ४३ ॥

वेणुके प्राजने तोत्रं दरोऽस्त्री भीतिगर्तयोः ।

दरी स्यात्कन्दरे स्त्री तदीषदर्थे दराऽव्ययम् ॥ ४४ ॥

दस्त्रः खरेऽप्याश्विनेये दारु स्याद्देवदारुणि ।

अस्त्री त्वारेऽप्यथ क्लीवं द्वारं द्वाराऽभ्युपाययोः ॥ ४५ ॥

धरः कच्छपनाथे स्याद्भिरौ कर्प्पासतूलके ।

धरा धरण्यां स्त्रीणां च गर्भाधारेऽपि मेदसि ॥ ४६ ॥

धात्री त्वामलकीक्षित्योरुपमातरि मातरि ।

धारस्तु धारासम्पातवर्षणे स्यादृणेऽपि च ॥ ४७ ॥

बुद्धधर्मकी देवी, ( स्त्री० ) नेत्रका	दस्त्र—गर्दभ, अश्विनीकुमार, ( पुं० )
तारा ( स्त्री० न० )	दारु—देवदार—वृक्ष ( न० ) पीतल
तीर—रांग, नट, ( पुं० ) तीर	( पुं० न० )
तीर—प्रतीर—तट—नदी आदिका,	द्वार—दरवाजा, अभ्युपाय ( अंगीकार
( न० ) ॥ ४२ ॥	या उपाय ) ( न० ) ॥ ४५ ॥
तीव्र—अत्यन्त चर्चरा, अत्यर्थ, ( न० )	धर—कूर्माधिप ( बड़ा कछुवा ), पर्वत,
कटुरसवाला, अत्यर्थवाला ( त्रि० )	कपासकी रुई, ( पुं० )
तीव्रा—कुटकी, राई, गाँडर दूब, ( स्त्री० )	धरा—पृथ्वी, स्त्रियोंका गर्भाशय, मेद,
॥ ४३ ॥	( स्त्री० ) ॥ ४६ ॥
तोत्र—बाबुक, पैनी, ( न० )	धात्री—आँवला, पृथ्वी, धाय ( स्तन
दर—भय, खड्डा, ( पुं० न० )	प्यानेवाली ), माता ( स्त्री० )
दरी—गुफा, ( स्त्री० )	धार—धारापूर्वक वरसना, ऋण,
दर—ईषत्का अर्थ ( थोड़ा ) ( अ-	( पुं० ) ॥ ४७ ॥
व्यय ) ॥ ४४ ॥	

धारा पङ्क्तौ द्रवद्रव्यसवेऽश्वगतिपञ्चके ।  
 खङ्गादीनां मुखे सेनाग्रिमस्कन्धपुरान्तरे ॥ ४८ ॥  
 भृङ्गारादेश्च नालायां धाराभ्यासे नुतावपि ।  
 हरिद्रानिशयोश्चाथ धीरः स्यात्पुंसि पण्डिते ॥ ४९ ॥  
 धैर्यशालिनि मन्दे च त्रिषु धीरं तु कुङ्कुमे ।  
 नक्रस्तु पुंसि कुम्भीरे नक्रं घ्राणेऽग्रदारुणि ॥ ५० ॥  
 नरः पार्थाजयोर्मर्त्ये रामकर्पूरके नरम् ।  
 नारस्तु तन्दुके नीरे नीध्रः पुंसि निशापतौ ॥ ५१ ॥  
 नीध्रं वलीके नेमौ च रेवतीतारके वने ।  
 नेत्रं विलोचने वृक्षमूले वस्त्रे गुणे मथि ॥ ५२ ॥  
 नेत्रं रथेऽपि नद्यां च नेत्रो नेतरि वाच्यवत् ।  
 पत्रं पर्णे च पक्ष्मे च नृत्योद्यतनटेपि च ॥ ५३ ॥

धारा—पङ्क्ति, पतला द्रव्य (जलआदि)  
 का क्षिरना, अश्वकी पाँच गति,  
 खड्गआदिकी धार, सेनाका अग-  
 लाभाग, पुरभेद, ॥ ४८ ॥ झारी-  
 आदिकी, नालीमें धारानिरंतरता,  
 स्तुति, हलदी, रात्रि, ( स्त्री० )  
 धीर—पंडित, ॥ ४९ ॥ धैर्यवान्, ( पुं० )  
 मन्द ( त्रि० ) केसर ( न० )  
 नक्र—प्राहविशेष ( नाका ), नासिका,  
 थंभोंके ऊपरका काष्ठ ( न० )  
 ॥ ५० ॥  
 नर—अर्जुन, विष्णु, मनुष्य, ( पुं० )

नृणविशेष ( रोहिससोधिया )  
 ( न० )  
 नार—सिरसों, जल, ( पुं० )  
 नीध्र—चंद्रमा, ( पुं० ) ॥ ५१ ॥ छप्प-  
 रका अंत ( आलाती ), कृष्णकी  
 रस्सीआदि रखनेका यत्र, रेवती  
 नक्षत्र, वन, ( न० )  
 नेत्र—नेत्र, वृक्षकी जड़, वस्त्रभेद, दधि  
 आदिमथनेकी रस्सी, ॥ ५२ ॥ रथ,  
 नदी, ( न० ) लेजानेवाला ( त्रि० )  
 पत्र—पत्ता, नेत्रकी पलक, नृत्यमें उद्यत  
 नट ( पुं० ) ॥ ५३ ॥

ऋत्विगादौ पात्रं स्यात्पारः ? एरंजयन्तमाः ।

कर्करीपूरयोः पारी पारी पूरपरागयोः ॥ ५४ ॥

हस्तिनः पादरज्ज्वां च पुण्ड्राः स्युर्नवृदन्तरे ।

पुण्ड्रो वासन्तिकायां च दिक्षु दैत्यप्रभेदयोः ॥ ५५ ॥

पुण्ड्रस्तिलकभेदेऽपि पुण्डरीके कृमावपि ।

पुरं पाटलिपुत्रे स्याद्बृहोपरिगृहे गृहे ॥ ५६ ॥

पुरं देहे गुग्गुलौ तु पुरः पुरि पुरं न ना ।

दशपूर्वस्तु वालेये पूर्वकाले पुराऽव्ययम् ॥ ५७ ॥

पुरुः स्वर्गे परागे च पुरुः प्राज्यनृपान्तरे ।

पूरो वारिप्रवाहे स्यात्पूरः स्यात्पिष्टकान्तरे ॥ ५८ ॥

पोत्रं वज्रे मुखाम्रे च सूकरस्य हलस्य च ।

पौरः पुरभवे वाच्यलिङ्गं पौरं तु कत्तृणे ॥ ५९ ॥

पात्र—ऋत्विक् आदि, ( न० )

पार—.....( पुं० )

पारी—शारी, जलकी वृद्धि, व्रणशुद्धि,  
पुष्पकी रज, ॥ ५४ ॥ हस्तीके पाँ-  
वकी रस्सी, ( स्त्री० )

पुण्ड्र—देशविशेष ( पुं० बहुवचनांत )  
जूही-पुष्पबेल, इक्षुभेद, दैत्यभेद,  
॥ ५५ ॥ तिलकभेद, कमल, कृमि  
( कीड़ा ) पुं० )

पुर—पटना शहर, घरके ऊपर घर,  
घर, ॥ ५६ ॥ शरीर, ( न० )

पुर—गूगल, ( पुं० )

दशपुर—गर्दभ, ( पुं० )

पुरा—पूर्वकाल, ( अव्यय ) ॥ ५७ ॥

पुरु—स्वर्ग, पुस्कराज, बहुत, एक राजा,  
( पुं० )

पूर—जलप्रवाह, पिष्टभेद, ( पुं० )  
॥ ५८ ॥

पोत्र—वज्र, सूकरके मुखका अग्रभाग,  
हलका अग्रभाग, ( न० )

पौर—पुरमें होनेवाला मनुष्यआदि,  
( त्रि० ) सुगंधिक तृण, ( रोहिंस ) .  
( न० ) ॥ ५९ ॥

वक्रः शनैश्चरे वक्रं पुटभेदेऽथ वाच्यवत् ।

वक्रः स्यात्कुटिले क्रूरे वध्रं त्रपुवरत्रयोः ॥ ६० ॥

बभ्रुर्मुनौ कृशानौ च नकुले च हरीशयोः ।

पिङ्गलेऽपि विशालेऽपि बभ्रुः स्यादभिधेयवत् ॥ ६१ ॥

त्रिफलायां वरा प्रोक्ता शतावर्या मता वरी ।

वारः सूर्यादिदिवसे द्वारेऽप्यवसरे हरे ॥ ६२ ॥

कुञ्जवृक्षे च गन्धे च वारं स्यान्मद्यभाजने ।

वारी तु गजबन्धन्यां घटिकायामपि स्मृता ॥ ६३ ॥

वारिः सरस्वतीदेव्यां वारि द्वीवेरनीरयोः ।

वास्त्रः पुंसि दिने वास्त्रं मन्दिरेऽपि चतुष्पथे ॥ ६४ ॥

वीरस्तु सुभटे श्रेष्ठे वीरं शृङ्गचां नते त्रिषु ।

वीरा तु रम्भागम्भारीतामलक्यैलबालुषु ॥ ६५ ॥

वक्र-शनैश्चर-प्रह, ( पुं० ) पुट ( पत्र-  
पात्र ) भेद, ( न० )

वक्र-कुटिल, क्रूर, ( त्रि० )

वध्र-सीसा, बाधी ( चर्मरज्जु ) ( न० )  
॥ ६० ॥

बभ्रु-मुनिभेद, अग्नि, नौला, ( पुं० )  
विष्णु, महादेव, ( पुं० )

बभ्रु-पिङ्गलवर्णवाला, विशाल ( बड़ा )  
( त्रि० ) ॥ ६१ ॥

वरा-त्रिफला, ( स्त्री० )

वरी-सतावर, ( स्त्री० )

वार-सूर्य आदिका दिन, द्वार, अवसर,  
महादेव, ॥ ६२ ॥

चिरचिरा-वृक्ष, गन्ध, ( पुं० ) मदि-  
रापात्र, ( न० )

वारी-गजबन्धनी, हाथीको बाँधनेकी  
जगह, कलशी, ( स्त्री० ) ॥ ६३ ॥

वारि-सरस्वती देवी, ( स्त्री० )

वारि-नेत्रवाला, जल, ( न० )

वास्त्र-दिन, ( पुं० ) मन्दिर, चौपट-  
रास्ता, ( न० ) ॥ ६४ ॥

वीर-योधा, श्रेष्ठ ( पुं० ), काकड़ासींगी,  
( न० ) तगर ( त्रि० )

वीरा-केला, कंभारी, भुईआँवला,  
एलवा, ( स्त्री० ) ॥ ६५ ॥

स्त्री सुराक्षीरकाकोलीपतिपुत्रवतीष्वपि ।  
 गोष्ठोदुम्बरिकाक्षीरविदार्योरपि सा स्मृता ॥ ६६ ॥  
 वृत्रो दानवशक्रादिध्वान्तवारिदवैरिषु ।  
 भद्रो हरे रामबले वृषे मेरुकदम्बके ॥ ६७ ॥  
 लक्ष्मणाद्योऽवशः शीघ्रं यः प्रकुप्यति कोपितः ।  
 गजे तत्राऽपि भद्रः स्याद्वाच्यवच्छ्रेष्ठसाधुनोः ॥ ६८ ॥  
 भद्रं तु करणप्रीतिमुस्तकक्षेमहेमसु ।  
 भद्रा तु जाह्नवीरास्त्राकृष्णानन्तासु कट्फले ॥ ६९ ॥  
 भद्रा भद्रालिकायां च गम्भार्या हेमदुग्धके ।  
 भरस्त्वतिशये भारे भरुर्मर्तरि काञ्चने ॥ ७० ॥  
 भारस्तु वीवधे स्वर्णपलानामयुतद्वये ।  
 वाच्यवत्कातरे भीरु भीरुरिन्द्रीवरीस्त्रियोः ॥ ७१ ॥

मदिरा, क्षीरकाकोली, पतिपुत्रवाली स्त्री, गोमा, वृषविदारी कंद ( स्त्री० ) ॥ ६६ ॥	भद्रा—आकाशगंगा, रायसल, पीपल, अनंतमूल, कायफल, ॥ ६९ ॥ गंधाली या पसरन, कंभारी, गूलर- वृक्ष, ( स्त्री० )
वृत्र—एक दानव, इंद्रादि, अंधकार, मेघ, शत्रु, ( पुं० )	भर—अत्यंत भार, ( पुं० )
भद्र—महादेव, रामचंद्र, बलदेव, बैल, सुमेरुका कदंब वृक्ष, ॥ ६७ ॥ जो लक्ष्मणसे कुपित कियाहुवा शीघ्र अवशहुवा प्रकोपको प्राप्त हुवा वह अर्थात् परशुराम, ( पुं० ) श्रेष्ठ, साधु ( अच्छा ) ( त्रि० ) ॥ ६८ ॥	भरु—भर्ता, सुवर्ण, ( पुं० ) ॥ ७० ॥ भार—धानआदिका संग्रह या मार्ग, सुवर्ण पलोंका २० सहस्र पल ( ८००० तोला सुवर्ण ) ( पुं० )
भद्र—करण, प्रीति, नागरमोथा, मंगल, सुवर्ण, ( न० )	भीरु—डरपोर, शतावर या कटेहली, स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ ७१ ॥

भूरि प्राज्ये सुवर्णे च भूरिर्ब्रह्मेशशौरिषु ।  
 मन्त्रो वेदान्तरे गुप्तवादे देवादिसाधने ॥ ७२ ॥  
 मरुर्धन्वनि शैले च मात्रं कात्स्न्येऽवधारणे ।  
 मात्रा परिच्छदे वित्ते मानेऽल्पे कर्णभूषणे ॥ ७३ ॥  
 अक्षिभागेऽप्यथो मारो विघ्ने मृत्यौ स्मरे वृषे ।  
 मारी जनक्षये चण्ड्यां मित्रं सख्यौ रवौ पुमान् ॥ ७४ ॥  
 मीरोन्विशैलनीरेषु मुरो दैत्ये मुरौषधे ।  
 यात्राऽनुवृत्तौ गमने यापने देवतोत्सवे ॥ ७५ ॥  
 विषयोत्पातयो राष्ट्रमस्त्री दैत्ये मृगे रुहः ।  
 रेत्रं रेतसि पीयूषे पारदे पटवासके ॥ ७६ ॥  
 रोध्रः सावरके लोभ्रो रोध्रं पापापराधयोः ।  
 रौद्री तु चण्ड्यां रौद्रस्तु त्रिषु तीव्रे भयानके ॥ ७७ ॥

भूरि-बहुत ( त्रि० ) सुवर्ण, ( न० )	मीर-समुद्र, पर्वत, जल, ( पुं० )
भूरि-ब्रह्मा, महादेव, कृष्ण, ( पुं० )	मुर-दैत्य, ( पुं० )
मन्त्र-वेदभेद, गुप्तसलाह, देवआ- दिकोका साधन, ( पुं० ) ॥ ७२ ॥	मुरा-कपूरकचरी, ( स्त्री० )
मरु-मारवाड देश, पर्वत, ( पुं० )	यात्रा-अनुवर्तन, गमन, भोजना, देव- ताका उत्सव ( स्त्री० ) ॥ ७५ ॥
मात्र-संपूर्णता, निश्चय ( न० )	राष्ट्र-देश, उत्पात, ( पुं० न० )
मात्रा-उपकरण ( सामान ), द्रव्य, परिमाण, अल्प, कर्णभूषण, नेत्र- भाग, ( स्त्री० ) ॥ ७३ ॥	रुह-दैत्यविशेष, मृगविशेष, ( पुं० )
मार-विघ्न, मृत्यु, कामदेव, बैल, ( पुं० )	रेत्र-वीर्य, अमृत, पारा, बकुचा, ( न० ) ॥ ७६ ॥
मारी-जनोंका नाश, चंडी ( देवी ) ( स्त्री० )	रोध्र-लोभ्र-लोभ, ( पुं० )
मित्र-सखा, ( न० ) सूर्य, ( पुं० )	रोध्र-पाप, अपराध, ( न० )
॥ ७४ ॥	रौद्री-चंडी ( देवी ) ( स्त्री० )
	रौद्र-तीव्र, भयानक, ( त्रि० ) ॥ ७७ ॥



रौद्रं स्यादातपे क्लीबं रौद्रो नाट्यरसान्तरे ।  
 छन्दोभेदे मुखे वक्रं स्याद्वज्रा तंत्रिकौषधौ ॥ ७८ ॥  
 वज्रोऽस्त्री हीरके शम्भे वज्रो योगान्तरे पुमान् ।  
 क्लीबं स्यादारनालेऽपि वक्रं वामेऽलकेऽपि च ॥ ७९ ॥  
 वप्रस्तातेऽस्त्रियां तीरे तु क्षेत्रचयरेणुषु ।  
 वेरं शरीरकाश्मीरवार्त्ताकीषु नपुंसकम् ॥ ८० ॥  
 व्याकुलशक्तयोर्व्यग्रो व्याघ्रो द्वीपिकरज्जयोः ।  
 शरस्तेजनके काण्डे शरं नीरे नपुंसकम् ॥ ८१ ॥  
 छुरिकायां मता शस्त्री शस्त्रमायुधलोहयोः ।  
 शारस्तु शबले वाते शारिः शाकुनिकान्तरे ॥ ८२ ॥  
 युद्धार्थगजपर्याणे नाऽक्षोपकरणे पणे ।  
 आज्ञायामागमे शास्त्रं शिशुः काक्षीवशाकयोः ॥ ८३ ॥

रौद्र—वृष, ( न० )	व्यग्र—व्याकुल, अशक्त, ( पुं० )
रौद्र—नाट्यभेद, रसभेद, ( पुं० )	व्याघ्र—वधेरा, करंजुवा ( पुं० )
वक्र—छन्दभेद, मुख ( न० )	शर—गरकंठा, बाण, ( पुं० ) जल
वज्रा—गिलोय, ( स्त्री० ) ॥ ७८ ॥	( न० ) ॥ ८१ ॥
वज्र—हीरा, वज्र—आयुध, ( पुं० न० )	शस्त्री—छुरी, ( स्त्री० )
वज्र—एकयोग ( पुं० ) काजी, ( न० )	शस्त्र—आयुध ( हथियार ), लोह
वक्र—टेढा, जुलफ, ( न० ) ॥ ७९ ॥	( न० )
वप्र—तात, तीर, क्षेत्र, चय ( ढेर ),	शार—कबरा ( त्रि० ) वायु ( पुं० )
रेणु, ( पुं० न० )	शारि—पक्षीभेद, ( स्त्री० ) ॥ ८२ ॥
वेर—शरीर, कंभारी, बैंगन, ( न० )	युद्धके लिये हस्तीका साजना, चौ-
॥ ८० ॥	पटकी सार, जूवा ( पुं० )
	शिशु—सहैजना, शाकमात्र ॥ ८३ ॥

चक्राङ्गोशीरयोः शीघ्रं तूर्णेपि त्रिषु तद्वति ।  
 शुक्रः काव्येऽनले ज्येष्ठे शुक्रं रेतोऽक्षिरोगयोः ॥ ८४ ॥  
 शुक्लेऽपि शुभ्रं त्वभ्रे स्यात्प्रदीप्तश्चेतयोस्त्रिषु ।  
 शूरः शूरे भटे ख्यातः शूरः सूर्येपि दृश्यते ॥ ८५ ॥  
 सत्रं यज्ञे सदादाने कैतवे वसने वने ।  
 शरो हारे शरे पुंसि दध्यग्रेऽपि शरः पुमान् ॥ ८६ ॥  
 क्लीबं तु कानने सान्द्रं सान्द्रं त्रिषु घने मृदौ ।  
 सारः स्यान्मज्जनि बले स्थिरांशेऽपि पुमानयम् ॥ ८७ ॥  
 सारं न्याय्ये जले वित्ते सारं स्याद्वाच्यवद्वरे ।  
 निदाघसलिले सिप्रः सिप्रा तु सरिदन्तरे ॥ ८८ ॥  
 सीरस्तु लाङ्गले पुंसि सीरो दिनपतावपि ।  
 सुरो देवे सुरा तु स्यान्मदिरापानपात्रयोः ॥ ८९ ॥

शीघ्र-चक्रका अंग, खस, जल्दी, सान्द्र-वन, ( न० )  
 ( न० ) शीघ्रतावाला, ( त्रि० ) सान्द्र-सघन, कोमल ( त्रि० )  
 शुक्र-भागव, अग्नि, ज्येष्ठ-मान, ( पुं० ) सार-मज्जा, बल, स्थिरभाग, ( पुं० )  
 शुक्र-वीर्य, नेत्ररोग ( न० ) ॥ ८४ ॥ ॥ ८७ ॥ न्याय्य ( युक्त ), जल,  
 शुक्रवर्ण, ( पुं० ) द्रव्य ( न० ) श्रेष्ठ ( त्रि० )  
 शुभ्र-भोडर, ( न० ) उदीप्त, स- सिप्र-प्रोष्णकृतुका जल ( पमीना )  
 फेदरंगवाला, ( त्रि० ) ( पुं० )  
 शूर-एक यादव, योधा, सूर्य, ( पुं० ) सिप्रा-एक नदी, ( स्त्री० ) ॥ ८८ ॥  
 ॥ ८५ ॥ सीर-हल, सूर्य, ( पुं० )  
 सत्र-यज्ञ, सदादान, कपट, वस्त्र, सुर-देवता ( पुं० )  
 वन, ( न० ) सुरा-मदिरा, जलआदिपीनेका पात्र,  
 शर-हार, बाण, ( पुं० ) ( स्त्री० ) ॥ ८९ ॥  
 शर-दधिकी मलाई, ( पुं० ) ॥ ८६ ॥

सूत्रं तु सूचनाग्रन्थे सूत्रं तंतुव्यवस्थयोः ।  
 स्थिरस्तु निश्चले मोक्षे शालपर्णीभुवोः स्थिरा ॥ ९० ॥  
 स्फारः स्याद्विकटे स्फारः करटादेश्च बुद्बुदे ।  
 स्वरोऽकाराद्युदात्तादिमध्यमादिषु निस्वने ॥ ९१ ॥  
 स्वरो नासासमीरेऽपि स्वैरं स्वच्छन्दमन्दयोः ।  
 स्वरुर्वज्रे शरे यज्ञे यूपस्वण्डेऽपि च स्वरुः ॥ ९२ ॥  
 हरिर्गोविन्दवारीन्द्रचन्द्रवातेन्द्रभानुषु ।  
 यमाऽहिकपिभेकाश्वशुके शोकान्तरे त्विषि ॥ ९३ ॥  
 त्रिषु पिङ्गेऽपि हरिते हारो मुक्तावलौ युधि ।  
 हिंसा काकादनीमांस्योर्हिंस्रः स्याद्घातकेऽन्यवत् ॥ ९४ ॥  
 रक्तैरण्डेऽप्यथ व्याघ्री स्पृश्या श्रेष्ठे परस्थितः ।  
 शक्रः पुलोमजाकान्ते कुटजेऽर्जुनपादपे ॥ ९५ ॥

सूत्र—सूचनाग्रन्थ, तंतु ( सूत ), व्यव-  
 स्था ( नं० )  
 स्थिर—निश्चल, मोक्ष, ( पुं० )  
 स्थिरा—शालपर्णी—आँषधि, पृथ्वी,  
 ( स्त्री० ) ॥ ९० ॥  
 स्फार—विकट (सकड़ा), ओलाआदिका  
 बुद्बुदा, ( पुं० )  
 स्वर—अकार आदि, उदात्तआदि,  
 मध्यम षड्ज आदि, शब्द (ध्वनि)  
 ( पुं० ) ॥ ९१ ॥  
 स्वर—नासिकाका वायु ( पुं० )  
 स्वैर—स्वच्छन्द, मन्द, ( त्रि० )  
 स्वरु—वज्र, बाण, यज्ञ, यज्ञस्तंभका  
 टुकड़ा ( पुं० ) ॥ ९२ ॥  
 हरि—विष्णु, वरुण, चंद्रमा, वायु, इंद्र,

सूर्य, ॥ ९३ ॥ धर्मराज, सर्प, व-  
 न्दर, मेंडक, अश्व, मूवा ( तोता ),  
 शोकभेद, कान्ति, ( पुं० ) पिंगल वर्ण-  
 वाला, हरितवर्णवाला ( त्रि० )  
 हार—मोतियोंकी लकी, युद्ध, ( पुं० )  
 ॥ ९४ ॥  
 हिंसा—काकादनी—वृक्ष या कौआ-  
 ठोडी, जटामांसी, ( स्त्री० )  
 हिंस्र—घातक ( जीव मारनेवाला )  
 ( त्रि० ) रक्तअरंड, ( पुं० )  
 व्याघ्री—कटेहली, ( स्त्री० ) व्याघ्र-  
 शब्द अन्यशब्दके आगे जुड़ाहुवा  
 श्रेष्ठवाचक कहा है, ( पुं० )  
 शक्र—इंद्र, कुडा-वृक्ष, अर्जुन-वृक्ष,  
 ( पुं० ) ॥ ९५ ॥

शद्रिः शचीपतौ मेघे स्वरुः कुलिशकोपयोः ।  
 हीरा पिपीलिकालक्ष्म्योर्हीरो वज्रेऽपि शङ्करे ॥ ९६ ॥  
 होरा रेखान्तरे शास्त्रभेदे राश्यर्द्धलम्बयोः ।  
 क्षरो मेघे क्षरं नीरे क्षारः स्याद्भस्मकाचयोः ॥ ९७ ॥  
 चूर्णादौ धूर्तलवणे रसभेदेऽपि दृश्यते ।  
 क्षीरं नीरेऽपि दुग्धेऽपि वटादीनां पयस्यपि ॥ ९८ ॥  
 क्षुद्रः खल्पाऽधमक्रूरकृपणेष्वभिधेयवत् ।  
 क्षुद्रा वेद्यानटीव्यङ्गासरघावृहतीष्वपि ॥ ९९ ॥  
 चाङ्गेर्या कण्टकार्या च हिंसामक्षिकयोरपि ।  
 नापितस्योपकरणे गोक्षुरे च क्षुरे क्षुरः ॥ १०० ॥  
 क्षेत्रं शरीरे दारेषु केदारे सिद्धसंश्रये ।  
 क्षौद्रं तु माक्षिके क्लीवं मतं क्षौद्रं पयस्यपि ॥ १०१ ॥

शद्रि-इंद्र, मेघ, ( पुं० )	क्षीर-जल, दूध, वह्नादिकोंका दूध, ( न० ) ॥ ९८ ॥
स्वरु-वज्र, कोप, ( पुं० )	क्षुद्र-खल्प, अधम, क्रूर, कृपण, ( त्रि० )
हीरा-चीटी, लक्ष्मी, ( स्त्री० )	क्षुद्रा-वेद्या, नटी, अंगहीना, मधु- मक्खी, बड़ी कटेहली, ( स्त्री० )
हीर-वज्र, महादेव, ( पुं० ) ॥ ९६ ॥	॥ ९९ ॥ चूका, कटेहली, जटामांसी, माक्षिकामात्र, ( स्त्री० )
हीरा-रेखाभेद, शास्त्रभेद, राशिका अर्द्धभाग, लम्ब ( स्त्री० )	क्षुर-नाईका उस्तरा, गोखरु, ताल- मखाना, ( पुं० )
क्षर-मेघ, ( पुं० )	क्षेत्र-शरीर, कुटुंबिनी स्त्री, खेत, सिद्धोंकी पृथ्वी, ( न० ) ॥ १०० ॥
क्षर-जल, ( न० )	क्षौद्र-शहद, जल, ( न० ) ॥ १०१ ॥
क्षार-भस्म, काच, ॥ ९७ ॥ चूर्ण आदि, बिरियासंचर नौन, रसभेद ( पुं० )	

रतृतीयम् ।

अगुरु स्याच्छिशपायां जोङ्गके लघुनि त्रिषु ।  
 अङ्कुरः स्यादभिनवोद्भिदि रोम्प्यप्सु शोणिते ॥ १०२ ॥  
 अङ्गारस्तूलमुके न स्त्री पुंस्यङ्गारो महीमुते ।  
 वातेऽजिरः प्राङ्गणाङ्गविषये दर्दुरेऽजिरः ॥ १०३ ॥  
 अन्तरं तु विशेषे स्यादुत्तरीयावकाशयोः ।  
 आत्मात्मीयविनांऽतर्द्धिबहिर्मध्यावधिष्वपि ॥ १०४ ॥  
 तादर्थ्येऽवसरे रन्ध्रेऽप्यन्यार्थेऽपि तथान्तरम् ।  
 अपरा तु जरायौ स्यादर्वाचीनेऽपरं त्रिषु ॥ १०५ ॥  
 अपरं त्वधुनार्थेऽपि पश्चाद्वात्रेऽपि दन्तिनाम् ।  
 अवरा हिमवत्पुत्र्यां चरमे त्ववरं त्रिषु ॥ १०६ ॥  
 अवीरा निष्पतिसुता स्त्रियां शौर्योज्झिते त्रिषु ।  
 अमरस्तु सुरेऽप्यस्थिसंहारे कुलिशद्रुमे ॥ १०७ ॥

रतृतीय ।

मध्य, अवधि, तादर्थ्य, अवसर,

अगुरु—शिशपा ( सीसम—वृक्ष ), अ- छिद्र, अन्यार्थ ( न० ) ॥ १०४ ॥  
 गर, ( न० ) लघु ( छोटा ) अपरा—जरायु ( जेर ) ( स्त्री० )  
 ( त्रि० ) अपर—अर्वाचीन ( उरे होनेवाला )  
 अङ्कुर—वृक्षआदिका नया अंकुर, रोम, ( त्रि० ) ॥ १०५ ॥ अधुना  
 जल, रुधिर, ( पुं० ) ॥ १०२ ॥ ( अव ) का अर्थ, हस्तियोंके शरीरका  
 अङ्गार—मुराड ( पुं० न० ) मंगल- पिछला भाग, ( न० )  
 ग्रह, ( पुं० ) अचरा—पावेती, ( स्त्री० )  
 अजिर—वायु, आँगन, अंग, देश, अवर—उरे होनेवाला, ( त्रि० ) १०६  
 मेंडक ( पुं० ) ॥ १०३ ॥ अधीरा—पतिपुत्ररहिता स्त्री, ( स्त्री० )  
 अन्तर—विशेष ( भेद ), दुपट्टा, अव- वीरतासे रहित, ( त्रि० )  
 काश, आत्मा, आत्मीय, विना, अमर—देवता, हडशंकरी—अपधि,  
 आच्छादन ( ढकना ), बाहिर, यूद्ध, ( पुं० ) ॥ १०७ ॥

अमरा त्विन्द्रनगरीदूर्वास्थूणागुड्वचिषु ।  
 अम्बरं रसकर्प्पासव्योमरागसुगन्धके ॥ १०८ ॥  
 गृहे कपाटेऽप्यररमशिरोऽर्काग्निराक्षसे ।  
 असुरो दानवे सूर्ये निशाराश्योर्मताऽसुरा ॥ १०९ ॥  
 अक्षरं न द्वयोर्मोक्षे ब्रह्मणि व्योमवर्णयोः ।  
 उत्पत्तिस्थाननिवहश्रेष्ठेषु ख्यात आकरः ॥ ११० ॥  
 आकार इङ्गितेऽपि स्यात्स्यात्स्थानाह्वानयोरपि ।  
 स्यादाधारोऽधिकरणेऽप्यालबालेऽम्बुधारणे ॥ १११ ॥  
 आसारस्तु प्रसरणे धारावृष्टौ मुहद्वले ।  
 आह्वरं तिमिरे युद्धे स्वावलायां स्वसाध्वसे ॥ ११२ ॥  
 आहारो भोजने पुंसि स्यादाहरणहारयोः ।  
 इतरः पामरेऽन्यस्मिन्नित्वरो गत्वरेऽन्यवत् ॥ ११३ ॥

अमरा-इन्द्रनगरी, दूर्वा, लोहेका मूर्ति या खंभा, गिलोय, ( स्त्री० )	आकार-चेष्टित, स्थान, बुलाना, ( पुं० )
अम्बर-रस, कपाम, आकाश, राग, सुगन्धद्रव्य, ( न० ) ॥ १०८ ॥	आधार-अधिकरण, वृक्षकी क्यारी, जलका धारणकरना, ( पुं० ) १११
अरर-वर, किवाड़, ( न० )	आसार-फैलना, बेगसे वर्षा, मित्र- वल ( पुं० )
अशिर-सूर्य, अग्नि, राक्षस, ( पुं० )	आह्वर-अधकार, युद्ध, अपनी स्त्री, अपना भय, ( न० ) ॥ ११२ ॥
असुर-दानव, सूर्य, ( पुं० )	आहार-भोजन, हरना, हार, ( पुं० )
असुरा-रात्रि, राशि, ( स्त्री० ) २०९	इतर-नीच, अन्य ( दूसरा ) ( त्रि० )
अक्षर-मोक्ष, ब्रह्म, आकाश, वर्ण, ( न० )	इत्वर-गमनशीलवाला, ॥ ११३ ॥
आकर-उत्पत्तिस्थान, समूह, श्रेष्ठ, ( पुं० ) ॥ ११० ॥	

इत्वरौ दुर्विधे नीचे पथिके कूरकर्मणि ।

ईश्वरो धनसम्पन्ने शिवे व्याधिनि मन्मथे ॥ ११४ ॥

ईश्वरी स्वामिनीगौरीश्वरा स्कन्दमातरि ।

उत्तरं प्रतिवाक्ये स्याद्विराटतनये पुमान् ॥ ११५ ॥

उत्तरा तु मतोदीच्यामूर्द्धोदीच्योत्तमे त्रिषु ।

उदरो जठरे युद्धेऽयुद्धारस्तूद्धृतौ रणे ॥ ११६ ॥

उदारो दातृमहतोर्दक्षिणस्थूलयोस्त्रिषु ।

सर्वशस्याढ्यमेदिन्यां मेदिन्यामपि चोर्वरा ॥ ११७ ॥

ऋक्षरं वारिधारायां पुंसि ऋत्विजि ऋक्षरः ।

एकाग्रमन्यलिङ्गं स्यादेकतानेऽप्यनाकुले ॥ ११८ ॥

औशीरं चामरे दण्डेऽप्येकोत्तया शयनाशने ।

कर्बुरं पामरेऽपि स्यात्पुंश्चलेऽप्यथ कर्बुरा ॥ ११९ ॥

दरिद्र, नीच, पथिक (बटाऊ), कूर- कर्मवाला, ( त्रि० )	उद्धार-उद्धार ( उबारना ), रण, ( पुं० ) ॥ ११६ ॥
ईश्वर-धनसम्पन्न, महादेव, व्याधि- वाला, कामदेव, ( पुं० ) ॥ ११४ ॥	उदार-दाना, महान् ( बड़ा ), चतुर, स्थूल ( मोटा ) ( त्रि० )
ईश्वरी-स्वामिनी, गौरी, ( स्त्री० )	उर्वरा-संपूर्ण शम्य ( कृषि ) संयुक्त भूमि, भूमि-मात्र, ( स्त्री० ) ११७
ईश्वरा-पार्वती ( स्त्री० )	ऋक्षर-जलकी धारा, ( न० )
उत्तर-प्रतिवाक्य ( जवाब ) ( न० ) विराटका पुत्र ( पुं० ) ॥ ११५ ॥	ऋक्षर-ऋत्विज् ( यज्ञकरानेवाला ) ( पुं० )
उत्तरा-उत्तर दिशा, ( स्त्री० )	एकाग्र-अनन्यश्रुति, अनाकुल ( व्या- कुलतारहित ( त्रि० ) ॥ ११८ ॥
उत्तर-ऊर्ध्व ( ऊपर ) होनेवाला, उत्तर दिशामें होनेवाला, उत्तम, ( त्रि० )	औशीर-चँवर, डंडा, मोना और भोजनकरना, ( न० )
उदर-जठर ( पेट ), युद्ध, ( पुं० )	कर्बुर-नीच, व्यभिचारी, ( पुं० )
	कर्बुरा-॥ ११९ ॥

दुरालभायां दुःस्पर्शाशूकशिबीशटीषु च ।

कुञ्जरो वारणे सूर्ये विरञ्चिमुनिकुक्षिषु ॥ १२० ॥

कङ्करं तु मतं तके कङ्करं कुत्सिते त्रिषु ।

कटमू रक्षसीशेऽक्षदेवने सत्ययौवने ॥ १२१ ॥

कटित्रं कटिवस्त्रे स्यात्काञ्चीचर्म्राङ्गयोरपि ।

कडारः पिङ्गले दासे पिङ्गवर्णे तु वाच्यवत् ॥ १२२ ॥

कणेरुः करिणीवेश्याकर्णिकारे गणेरुवत् ।

कदरः श्वेतखदिरे रुग्भेदे क्रकचे सृणौ ॥ १२३ ॥

वा स्त्री तु कन्दरो दर्यामङ्कुशे पुंसि कन्दरः ।

कन्धरः पुंसि जलदे प्रीवायां कन्धरा स्त्रियाम् ॥ १२४ ॥

कवरं लवणेऽम्ले च शाककेशभिदोः स्त्रियाम् ।

नपुंसकं तु कर्वूरं शटीकाञ्चनयोर्मतम् ॥ १२५ ॥

असवरग, जवाँसा, कौच, कचूर, कणेरु-गणेरु-हथिनी, वेश्या, क-  
( स्त्री० ) णिकार-वृक्ष या पांगारा ( स्त्री० )

कुञ्जर-हस्ती, सूर्य, ब्रह्मा, एक मुनि, कदर-सफेद-खैर, रोगभेद, करोत,  
कुक्षि, ( पुं० ) ॥ १२० ॥ अङ्कुश, ( पुं० ) ॥ १२३ ॥

कङ्कर-छाछ, कुत्सित, ( त्रि० ) कन्दर-गुफा- ( पुं० स्त्री० )

कटमू-राक्षस, महादेव, पासोसे खेल- कन्दर-अङ्कुश ( पुं० )

नेवाला, सत्य बोलना, यौवन ( पुं० ) कन्धर-मेघ ( पुं० )

॥ १२१ ॥ कन्धरा-प्रीवा ( गरदन ) ( स्त्री० )

कटित्र-कटिवस्त्र, करधनी, चर्मभेद, ॥ १२४ ॥

( न० ) कवर-नमक, सद्या, ( न० )

कडार-पिङ्गल वर्णवाला, दास, ( पुं० ) कवरी-शाकभेद, केशविन्यास, ( स्त्री० )

पिङ्गल वर्ण, ( त्रि० ) ॥ १२२ ॥ कर्वूर-कचूर, सुवर्ण, ( न० ) १२५



कर्परस्तु कपाले स्यादस्त्रभेदकटाहयोः ।

कररः खगभित्तिश्च करीरः क्रकचार्थकः ॥ १२६ ॥

वंशाङ्कुरे करीरोऽस्त्री पुंसि वृक्षान्तरे घटे ।

करीरी चीरिकायां च दन्तमूले च दन्तिनाम् ॥ १२७ ॥

कर्करी तु गलन्त्यां स्यात्कर्करो दर्पणे दृढे ।

कर्बुरो राक्षसे पापे जले हेम्नि च कर्बुरम् ॥ १२८ ॥

कर्बुरा कृष्णवृन्तायां कर्बुरं शबलेऽन्यवत् ।

कर्बरी तु शिवायां स्याद्द्व्याघ्रे पुंस्येव कर्बुरः ॥ १२९ ॥

कलत्रं भूभुजां दुर्गास्थानेऽपि श्रोणिर्भाययोः ।

कान्तार उपसर्गादौ कोशकारान्तरे पुमान् ॥ १३० ॥

कान्तारं दुर्गमार्गेऽपि महारण्येऽपि न स्त्रियाम् ।

कावेरी तु नदीभेदे हरिद्रापण्ययोपितोः ॥ १३१ ॥

कर्पर—कपाल, अस्त्रभेद, कटाह, (पुं०)	कर्बुरा—पाडर—वृक्ष या मयवन, (स्त्री०)
करर—पक्षीभेद, (पुं०)	कर्बुर—कबरारंगवाला (त्रि०)
करीर—करौत, ॥ १२६ ॥ वंशका अंकुर, (पुं० न०) कैर—वृक्ष, घट, (पुं०)	कर्बरी—गोदई, (स्त्री०)
करीरी—ची, चीं, बोलनेवाला पंखो-वाला कोट, हस्तियोंके दाँतोंका मूल, (स्त्री०) ॥ १२७ ॥	कर्बुर—बधेरा (पुं०) ॥ १२९ ॥
कर्करी—चावलआदिको धोनेका पात्र, (स्त्री०)	कलत्र—गजाओका दुर्ग (किलाआदि) स्थान, कमर, स्त्री, (न०)
कर्कर—दर्पण (शीशा), दृढ, (पुं०)	कान्तार—उत्पातआदि, कोशकारभेद, (पुं०) ॥ १३० ॥
कर्बुर—राक्षस, पापी, (पुं०)	कान्तार—कठिनमार्ग, बड़ा वन, (पुं० न०)
कर्बुर—जल, सुवर्ण (न०) ॥ १२८ ॥	कावेरी—नदीभेद, हलदी, वेदया (स्त्री०) ॥ १३१ ॥

काश्मीरं कुङ्कुमेऽपि स्यादृक्पुष्पकरमूलयोः ।

किंशारुर्विशिखे सस्यशूके कङ्काख्यपक्षिणि ॥ १३२ ॥

किम्मीरो दैत्यकन्यादभेदयोः कर्बुरे त्रिषु ।

वर्णमात्रेऽपि किम्मीरः किशोरो वाजिबालके ॥ १३३ ॥

सूर्येऽपि तरुणावस्थे तैलपर्ण्यामपि स्मृतः ।

कुक्कुरः सारमेये स्याद्वन्थिपर्णे तु कुक्कुरम् ॥ १३४ ॥

कुञ्जरो हस्तिकरयोर्धातव्यां पाटलौ स्त्रियाम् ।

कुठरं मैथिले क्लीबं कुठरं कवलेऽपि च ॥ १३५ ॥

कुठारः पादपेऽपि स्यात्कर्मठेऽपि पुमानयम् ।

कुमारो बालके स्कन्दे युवराजेऽश्ववारके ॥ १३६ ॥

कीरे च वरुणद्रौ च कुमारं जात्यकाञ्चने ।

कुमारी कन्यकागौर्योर्नैवमहयां नदीभिदि ॥ १३७ ॥

काश्मीर-केसर, राजआमवृक्ष, पो- कुंजर-हस्ती, कर ( हाथीकी मूँड )  
हकरमूल, ( न० ) ( पुं० )

किंशारु-बाण, सस्यका तीखाभाग, कुंजरा-धायके फूल, पाडर-पुष्पवृक्ष,  
कंक ( संफेद चाल ) पक्षी, ( पुं० ) ( स्त्री० )

॥ १३२ ॥

किम्मीर-दैत्यभेद, राक्षसभेद, ( पुं० ) कुठर-मैथिल, प्रास ( न० ) ॥ १३५ ॥  
कबरावर्णवाला ( त्रि० ) वर्णमात्र, कुठार-वृक्ष, कर्मकरानेवाला ( पुं० )  
( पुं० ) कुमार-बालक, स्वामिकांतिक, युव-

किशोर-घोडाका बच्चा ॥ १३३ ॥ राज, घोड़ा फेरनेवाला, ॥ १३६ ॥  
तरुण अवस्थावाला, सूर्य, मरलका सूबा ( तोता ) पक्षी, वरुणा-वृक्ष,  
गौद या शिलारस, ( पुं० ) ( पुं० )

कुक्कुर-कुत्ता, ( पुं० ) कुमार-अच्छा सुवर्ण, ( न० )

कुक्कुर-गठिवन या धनहर नामका सु- कुमारी-कन्या, गौरी, नेवारी-पुष्प-  
गंधद्रव्य ( न० ) ॥ १३४ ॥ वृक्ष, नदीभेद ॥ १३७ ॥

सहायराजिताजम्बूद्वीपेषु च मता स्त्रियाम् ।  
 कूर्परो जानुमात्रेऽपि कफोणावपि कूर्परः ॥ १३८ ॥  
 कुबेररुयंवकसखे नदीवृक्षे कुविग्रहे ॥ १३९ ॥  
 कुहरः कोटरे छिद्रे नागराजविशेषयोः ।  
 कूबरः कुब्जके चारौ त्रिषु पुंसि युगन्धरे ॥ १४० ॥  
 केदार आलवालेऽद्रौ क्षेत्रभूभेदशम्भुषु ।  
 केनारः कुम्भिनरके शिरःकपालसन्धिषु ॥ १४१ ॥  
 केसरो बकुले सिंहच्छटायां नागकेसरे ।  
 पुत्रागेऽस्त्री तु किंजल्के स्यात्तु हिङ्गुनि केसरम् ॥ १४२ ॥  
 कौटिरुर्नकुले शके शक्रगोपेऽपि दृश्यते ।  
 कोटरो नागरे कूपे पुष्करिण्याश्च पाटके ॥ १४३ ॥  
 खण्डाभ्रं योषितां हस्तक्षतभेदेऽभ्रलेशके ।  
 खदिरी शाकभेदे स्यात्खदिरो बालपुत्रके ॥ १४४ ॥

धौकुंवार, हारमिंगार, जम्बूद्वीप ( स्त्री० )    केसर—बौलध्री, सिंहका स्कंधके केश,  
 कूर्पर—घुटना, कौहनी ( पुं० ) ॥ १३८    नागकंजर, पुष्पाग—वृक्ष, ( पुं० )  
 कुबेर—यक्षराजा, नदीवृक्ष, कुत्सित-    पुष्परज, ( पुं० न० ) हींग ( न० )  
 शरीरवाला ( पुं० ) ॥ १३९ ॥    ॥ १४२ ॥  
 कुहर—वृक्षथोथ, छिद्र, नागभेद, राज-    कौटिरु—नौला, इद्र, वर्षामें होनेवाला  
 भेद, ( पुं० )    लाल कीट ( पुं० )  
 कूबर—कूबड़ा, सुंदर, ( त्रि० ) जूवाको    कोटर—नगरमें होनेवाला जन, कूबा,  
 धारनेवाला काष्ठ ( पुं० ) ॥ १४० ॥    नदीका पाट ॥ १४३ ॥  
 केदार—वृक्षकी क्यारी, पर्वत, क्षेत्र-    खंडाभ्र—स्त्रियोंके हाथका व्रणभेद,  
 भेद, पृथ्वीभेद, महादेव, ( पुं० )    मेघका लेश ( न० )  
 केनार—कुंभीपाक नामका नरक, शिर,    खदिरी—शाकभेद ( स्त्री० )  
 कपाल, संधि ( जोड़ ) ( पुं० ) ॥ १४१ ॥    खदिर—खैर—वृक्ष ( पुं० ) ॥ १४४ ॥

खपुरः क्रमुके भद्रमुस्तके लसके पुमान् ।  
 खपुरं तूद्वसपुरे खर्जूरस्तु द्वयोर्द्विमे ॥ १४५ ॥  
 द्रुणे धूर्तेऽपि खर्जूरः खर्जूरं रजते मतम् ।  
 पिण्डपूर्वस्तु खर्जूरो मतः क्षमापालकाम्बके ॥ १४६ ॥  
 खर्परस्तम्करे भिक्षापात्रे धूर्तकपालयोः ।  
 खिङ्गिराश्च स्त्रियां भूम्नि खिङ्गिरा च शिवान्तरे ॥ १४७ ॥  
 भिक्षाभाण्डेऽपि भिक्षाणां खट्वाङ्गे वारिवालके ।  
 गर्गरो मीनभेदे स्यान्मन्थन्यां गर्गरी स्त्रियाम् ॥ १४८ ॥  
 गङ्गरस्तु गुहायां स्याद्गहने कुञ्जदम्भयोः ।  
 गान्धारस्तु खरे देशे गान्धारं रक्तवालुके ॥ १४९ ॥  
 वनेऽपि स्यात्तु गान्धारी धृतराष्ट्रस्य योषिति ।  
 गायत्री खदिरे स्त्री स्याच्छन्दोवेदप्रभेदयोः ॥ १५० ॥

- |                                      |  |
|--------------------------------------|--|
| खपुर—सुपारी—वृक्ष, भद्रमोथा, (पुं०)  | गर्गर—मीन ( मच्छी ) भेद, ( पुं० )        |
| उजड़ा हुआ पुर, ( न० )                | गर्गरी—मंथनी ( दधिमथनेका पात्र )         |
| खर्जूर—खजूरका वृक्ष ( पुं० स्त्री० ) | ( स्त्री० ) ॥ १४८ ॥                      |
| ॥ १४५ ॥                              |  |
| खर्जूर—बीछ, धूर्त, ( पुं० )          | गङ्गर—गुफा, वन, कुंज ( लताओंकी           |
| खर्जूर—चौदी ( न० )                   | कुटी ) दम्भ ( पुं० )                     |
| पिण्डखर्जूर—पिण्डखजूर ( पुं० ) १४६   | गान्धार—गानेका एक खर. एक देश,            |
| खर्पर—चोर, भिक्षापात्र, धूर्त, कपाल  | ( पुं० )                                 |
| ( पुं० )                             |  |
| खिङ्गिरा ( स्त्री० बहुवचन )          | गान्धार—सिंदूर, वन, ( न० ) ॥ १४९ ॥       |
| खिङ्गिरा—गीदरी, ॥ १४७ ॥ भिक्षा-      | गान्धारी—धृतराष्ट्रकी स्त्री ( स्त्री० ) |
| भाँडा, भिक्षाओंका पात्र, सुगंध-      | गायत्री—खैर—वृक्ष, छंदोभेद, वेद-         |
| वाला, ( स्त्री० )                    | भेद ( गायत्रीमंत्र ) ( स्त्री० ) ॥ १५० ॥ |

कैवर्तीमुस्तके द्वारि पुरद्वारे तु गोपुरम् ।  
 घर्घरस्तु चलद्वारिशब्दे घूके नदान्तरे ॥ १५१ ॥  
 चमरं चामरे वह्यां चमरी मञ्जरौ मृगे ।  
 चातुरश्चातुरकवच्चक्रगण्डौ नियन्तरि ॥ १५२ ॥  
 दृगोचरे चाटुकारे चिकुरश्चञ्चले कचे ।  
 गृहे बभ्रौ भुजङ्गे च शैले पक्षिद्रुमान्तरे ॥ १५३ ॥  
 छित्त्वरं छेदनद्रव्ये छित्त्वरो धूर्तविद्विषोः ।  
 छिदिरस्तु बृहद्भानुखङ्गरज्जुपरश्वधे ॥ १५४ ॥  
 जठरं कठिने वृद्धे त्रिषु स्यादुदरेऽस्त्रियाम् ।  
 जम्बीरः पुंसि जम्बीरपादपप्रस्थपुष्पयोः ॥ १५५ ॥  
 जर्जरं वाच्यवज्जीर्णं जर्जरं वासवध्वजे ।  
 जलेन्द्रो वरुणे सिन्धौ जलेन्द्रो जम्भले मतः ॥ १५६ ॥

गोपुर—केवटीमोथा, दरवाजा, पुरदर-  
 वाजा, ( न० )  
 घर्घर—चलताहुवा जलका शब्द,  
 उल्लू—पक्षी, नदभेद ( घाघर नदी )  
 ( पुं० ) ॥ १५१ ॥  
 चमर—चवैर, बेल ( न० )  
 चमरी—मंजरी, मृगभेद ( स्त्री० )  
 चातुर—चातुरक—चक्रगंड ( कपोल-  
 पर ) चक्रवाला, प्रेरणावाला, ॥ १५२ ॥  
 नेत्रगोचर, चाटुकार ( खुशामद )  
 ( पुं० )  
 चिकुर—चंचल, केश, घर, नौला,  
 सर्प, पर्वत, पक्षिभेद, वृक्षभेद,  
 ( पुं० ) ॥ १५३ ॥  
 छित्त्वर—छेदनद्रव्य ( न० )  
 छित्त्वर—धूर्त, शत्रु, ( पुं० )  
 छिदिर—अग्नि, खड्ग, रस्मी, फरसा  
 ( पुं० ) ॥ १५४ ॥  
 जठर—कठिन, वृद्ध ( त्रि० )  
 जठर—उदर ( पेट ) ( पुं० न० )  
 जम्बीर—जंभीरी नींबूवृक्ष, मरुवा,  
 ॥ १५५ ॥  
 जर्जर—वृद्ध ( त्रि० )  
 जर्जर—इंद्रध्वज, ( न० )  
 जलेन्द्र—वरुण, समुद्र, जंभीरी नींबू  
 ( पुं० ) ॥ १५६ ॥

जमुरिः पुंसि वज्रे स्याज्जमुरिः पावके पुमान् ।  
 झर्झरः स्यात्कलियुगे वाद्यभेदे नदान्तरे ॥ १५७ ॥  
 झलरी झलरी च द्वे हुडुके बालचक्रके ।  
 टगरष्टङ्गणे टैरे हेलविभ्रमगोचरे ॥ १५८ ॥  
 टङ्कारः शिञ्जिनीध्वाने प्रसिद्धौ विस्मयेऽपि च ।  
 डिङ्गरो वाच्यवत्क्षेपे डिङ्गरो डङ्गरे पुमान् ॥ १५९ ॥  
 तिमिरं दृग्गदे ध्वान्ते तीवरो लुब्धकेऽम्बुधौ ।  
 तुम्बरी तु मता गुन्यामार्द्रधान्याकयोरपि ॥ १६० ॥  
 तुषारो हिमतद्वेदशीकरे तद्वति त्रिषु ।  
 कषायशृङ्गवृषयोः श्मश्रुपुंसि तु तूवरः ॥ १६१ ॥  
 स्यात्त्वक्पत्री तु कारव्यां त्वक्पत्रं तु वराङ्गके ।  
 दण्डारः कुम्भकृच्चके वहने मत्तवारणे ॥ १६२ ॥

जमुरि-वज्र ( पुं० )

जमुरि-अग्नि ( पुं० )

 झर्झर-कलियुग, वाद्यमाण्ड, एक नद,  
 ( पुं० ) ॥ १५७ ॥

 झलरी-झलरी-हुडुक्-बाजा, बा-  
 लोंका चक्र, ( स्त्री० )

 टगर-मुहागा, काणा, हेल ( लीला )  
 विभ्रम ( स्त्रीकरण ) विषय, ( पुं० )  
 ॥ १५८ ॥

 टङ्कार-धनुषकी ज्याका शब्द, प्रसिद्धि,  
 आश्चर्य, ( पुं० )

डिङ्गर-क्षेप ( फेंकनेकी वस्तु ) ( त्रि० )

डिङ्गर-डङ्गर ( पुं० ) ॥ १५९ ॥

तिमिर-नेत्ररोग, अंधकार, ( न० )

तीवर-व्याधा, समुद्र, ( पुं० )

 तुंबरी-कुत्ती, अदरक, धनियां  
 ( स्त्री० ) ॥ १६० ॥

 तुषार-हिम ( पाला ), हिमभेद,  
 शाकर ( जलकण ) ( पुं० ) इन  
 वाला ( त्रि० )

 तूवर-कसैला रस, बड़े सोंगोंवाला-  
 बेल, बडी मूलडादीवाला पुरुष  
 ( पुं० ) ॥ १६१ ॥

त्वक्पत्री-हींगपत्री, ( स्त्री० )

त्वक्पत्र-झीकी योनि ( न० )

 दंडार-कुम्हारका चाक, सबारी,  
 उन्मत्तहस्ती, ॥ १६२ ॥

शरयन्ने दन्तुरस्तु विषमोन्नतदन्तयोः ।

दहरो मूषिकायां स्यात्स्वल्पभ्रातरि बालके ॥ १६३ ॥

दर्हरः शैलभेदे स्यात्किञ्चिद्भमे तु वाच्यवत् ।

दर्दुरो भेकघनयोर्वाद्यभाण्डाद्रिभेदयोः ॥ १६४ ॥

दर्दुरा हरकान्तायां ग्रामजाले तु दर्दुरम् ।

दासेरो दासिकापत्ये त्रिषु पुंसि क्रमेलके ॥ १६५ ॥

दीनारो नाणके स्वर्णमानभेदेऽपि दृश्यते ।

दुर्द्धरं त्रिषु दुर्द्धर्ये पुमांस्तु ऋषभौषधौ ॥ १६६ ॥

दैत्यारिस्त्रिदिवे विष्णौ द्वापरः संशये युगे ।

धूसरस्तु खरे स्वरूपपाण्डुरे तद्वति त्रिषु ॥ १६७ ॥

नरेन्द्रः पृथिवीनाथे विषवैद्येऽपि वार्तिके ।

गजादौ सरलादयोर्निष्कलायां च नर्मरा ॥ १६८ ॥

शरयन्त्र, ( पुं० )  
दन्तुर—उँचानीचा, उँचे दाँतोंवाला ( पुं० )  
दहर—छोटा मूसा, छोटा भ्राता, बालक ( पुं० ) ॥ १६३ ॥  
दर्हर—पर्वतभेद ( पुं० ) कुछेक फूटा-हुवा पात्र आदि ( त्रि० )  
दर्दुर—मैंडक, मेघ, वाद्यभेद, पर्वत-भेद, ( पुं० ) ॥ १६४ ॥  
दर्दुरा—पार्वती, ( स्त्री० )  
दर्दुर—ग्रामजाल, ( न० )  
दासेर—दासीकी संतान ( त्रि० ) ऊँट ( पुं० ) ॥ १६५ ॥

दीनार—नाणा ( द्रव्यमात्र ), स्वर्णमा-नभेद, ( पुं० )  
दुर्द्धर—दुःखसे धारनेके योग्य, ( त्रि० )  
दुर्द्धर—आँषधि ( पुं० ) ॥ १६६ ॥  
दैत्यारि—देवता, विष्णु, ( पुं० )  
द्वापर—संदेह, द्वापर—युग ( पुं० )  
धूसर—गर्दभ, थोड़ापीला रंग, ( पुं० )  
धोड़ापीलारंगवाला ( त्रि० ) १६७  
नरेन्द्र—राजा, विषवैद्य, वृत्ति ( आ-जीविका ) देनेवाला, हस्तीआदि, ( पुं० )  
नर्मरा—त्रिधारा, गुफा, कलारहिता ( स्त्री० ) ॥ १६८ ॥

नागरो नगरोद्भूते विदग्धेऽप्यभिधेयवत् ।

नागरं मस्तके शुण्ठ्यां रतभेदेऽपि नागरम् ॥ १६९ ॥

निकरो निवहे सारे न्यायदेयधनान्तरे ।

निकारः स्यात्परिभवे धानस्योत्क्षेपणेऽपि च ॥ १७० ॥

सूर्याश्चे फेनकर्पासतुषवह्विषु निर्झरः ।

निर्झरस्त्रिदशे त्यक्तजराके त्वभिधेयवत् ॥ १७१ ॥

निर्जरा तु गुडूच्यां स्यात्तालपट्यां च दृश्यते ।

निर्वरं निखपे सारे निर्भये कठिनेऽपि च ॥ १७२ ॥

निष्ठुरः कठिनेऽपि स्यात्त्रपाशून्येऽपि निष्ठुरः ।

स्यान्नीवरो वाणिजके वास्तव्ये त्रिषु नीवरः ॥ १७३ ॥

पङ्कारः सेतुसोपानशैवले जलकुञ्जके ।

पञ्जरस्तु शरीरे स्यात्पक्षिपाशे तु पञ्जरम् ॥ १७४ ॥

नागर-नगरमें होनेवाला, चतुर,  
( त्रि० )

नागर-नागरमोथा, सोंठ, मैथुनभेद  
( न० ) ॥ १६९ ॥

निकार-समूह, सार, न्यायसे देनेयो-  
ग्य धन, ( पुं० )

निकार-तिरस्कार, धान्यका पिछो-  
वना, ( पुं० ) ॥ १७० ॥

निर्झर-सूर्यका घोडा, झाग, कपास,  
तुणोंकी अग्नि, ( पुं० )

निर्झर-देवता, ( पुं० ) वृद्धावस्थार-  
हित ( त्रि० ) ॥ १७१ ॥

निर्जरा-गिलोय, तालपर्णी, ( स्त्री० )  
निर्वर-निर्लज्ज, सार, निर्भय, कठिन  
( त्रि० ) ॥ १७२ ॥

निष्ठुर-कठिन, लज्जारहित, ( त्रि० )  
नीवर-वाणिजकरनेवाला ( पुं० )  
बसनेवाला, ( त्रि० ) ॥ १७३ ॥

पङ्कार-पुल, पैड़ी, सिवाल, काई ( पुं० )

पञ्जर-शरीर ( पुं० )

पञ्जर-पक्षीका पिंजरा ( न० ) १७४



पादालिन्दे पदारः स्यात्पदारः पादधूलिषु ।

पवित्रमुपवीतांबुताम्रे दर्भेऽपि धर्मेणि ॥ १७५ ॥

मेध्ये त्रिष्वथ पाटीरः केदारे तितउन्यपि ।

मूलके वार्तिके वङ्गे वेणुसारेऽपि बारिदे ॥ १७६ ॥

पाण्डुरं स्यान्मरुबके वर्णे ना तद्वति त्रिषु ।

पामरो वाच्यवन्नीचे मूर्खे स्वस्थेऽपि पामरः ॥ १७७ ॥

राजयक्ष्मणि कीनाशे भक्तशिक्षेपि पार्परः ।

पाप्परो भस्ममात्रेऽपि जठरे नीपकेसरे ॥ १७८ ॥

पिञ्जरं कनके पीते त्रिषु पुंसि हयान्तरे ।

पिठरस्तु मतः स्थाल्यां पिठरं मन्थमुस्तयोः ॥ १७९ ॥

पिण्डारो महिषीपाले क्षेपक्षपणशाखिषु ।

पीवरः कच्छपे पुंसि पीनेषु त्रिषु पीवरः ॥ १८० ॥

पदार—पादालिन्द, पावोंकी धूलि  
( पुं० )

या मृत्यु, जटार ( जटावाला ),  
कदंबकेसर, ( पुं० ॥ १७८ ॥

पवित्र—यज्ञोपवीत, जल, तौबा, कुशा,  
धर्म ( न० ) पवित्र ( त्रि० ) ॥ १७५ ॥

पिंजर—मुवर्ण ( न० ) पीलारंगवाला  
( त्रि० ) अश्वमेद ( पुं० )

पाटीर—खेत, चलनी, मूली, वार्तिक  
( वृत्तिकरनेवाला ), राँगा, सरलका  
गोंद, मेघ, ( पुं० ) ॥ १७६ ॥

पिठर—चावल आदि पकानेका वर्तन,  
( पुं० ) दधिआदिमथनेका दंड,  
नागरमोथा, ( न० ) ॥ १७९ ॥

पांडुर—मरुवा ( न० ) श्वतरंग ( पुं० )  
श्वतरंगवाला ( त्रि० )

पिंडार—भैंसोंका पालनेवाला, क्षेप  
( फेंकनेका द्रव्य ), भिक्षुक, वृक्ष,  
( पुं० )

पामर—नीच, मूर्ख, स्वस्थ ( प्रकृतिमें  
स्थित ) ( त्रि० ) ॥ १७७ ॥

पीवर—कछुवा, ( पुं० ) मोटा ( स्थूल )  
( त्रि० ) ॥ १८० ॥

पार्पर—राजयक्षा रोग, धर्मराज

पुष्करं व्योम्नि पानीये हस्तिहस्ताग्रपद्मयोः ।  
 रोगोरगौषधिद्वीपतीर्थभेदेऽपि सारसे ॥ १८१ ॥  
 काण्डे खड्गफले वाद्यभाण्डवक्त्रे च पुष्करम् ।  
 प्रकरो निकुरुम्बे स्यात्प्रकीर्णकुसुमादिषु ॥ १८२ ॥  
 प्रकरं जोङ्गके ज्ञेयं प्रकरी चत्वरान्वौ ।  
 प्रकारः सदृशे भेदे प्रखरोऽतिखरे त्रिषु ॥ १८३ ॥  
 प्रखरः स्यात्तुरङ्गादिसन्नाहेऽश्वतरे शुनि ।  
 प्रदरः स्त्रीरुजो भेदे प्रदरः शरभङ्गयोः ॥ १८४ ॥  
 प्रान्तरं दूरशून्याऽध्ववनयोरपि कोटरे ।  
 प्रवीरः सुभटेऽपि स्यात्प्रवीरः कचिदुत्तरे ॥ १८५ ॥  
 प्रवरं सन्ततौ गोत्रे प्रवरम्बु वनेऽन्यवत् ।  
 प्रकारः सङ्गरे वेशे प्रसरः प्रणयेऽपि च ॥ १८६ ॥

पुष्कर—आकाश, जल, हस्तीकी सूँ- डका अग्रभाग, कमल, रोगभेद, सर्पभेद, औषधिभेद ( कूट ), पुष्करनामक द्वीप, पुष्करतीर्थ, सार- स-पक्षी, ( त्रि० ) ॥ १८१ ॥ बाण, खड्गकी मूठ, वाद्यभांडका मुख ( पुं० न० )	अश्वआदिका कवच, खिचर, कुत्ता ( पुं० ) प्रदर—स्त्रीका रोगभेद ( पैरा ), बाण, भंग, ( पुं० ) ॥ १८४ ॥ प्रान्तर—लंबा और जलआदिसे शून्यमार्ग, वनवृक्षके भीतरकी थोथ, ( न० )
प्रकर—समूह, बिखरेहुए पुष्पआदि, ( पुं० ) ॥ १८२ ॥	प्रवीर—अच्छा योद्धा, उत्तर ( पुं० ) ॥ १८५ ॥
प्रकर—अगर ( न० ) प्रकरी— औंगनकी भूमि ( स्त्री० )	प्रवर—सन्तति, गोत्र, ( न० ) प्रवर—श्रेष्ठ ( त्रि० )
प्रकार—सदृश ( तुल्य ), भेद ( पुं० )	प्रकार—संप्राम, वेश, ( पुं० )
प्रखर—अतितीक्ष्ण ( त्रि० ) ॥ १८३ ॥	प्रसर—नम्रता, ( पुं० ) ॥ १८६ ॥

प्रस्तरः पुंसि पाषाणे मणौ च प्रस्तरः पुमान् ।  
 वण्ठरस्तु करीरस्य कोषे स्यात्तालपल्लवे ॥ १८७ ॥  
 वकोटे स्थगिकारज्जौ लाङ्गूले कुक्कुरस्य च ।  
 बदरी कोलिकार्पास्योर्बदरं तु फले तयोः ॥ १८८ ॥  
 एलापर्ण्यां तु बदरा विष्णुकान्तौषधावपि ।  
 बन्धूरबन्धुरौ रम्ये नम्रे त्रिष्वथ बन्धुरः ॥ १८९ ॥  
 बन्धूके विहगे हंसे बन्धुरं तून्नतानते ।  
 बन्धुरा पण्ययोषायां वरत्रा बधिकान्ययोः ॥ १९० ॥  
 बर्वरः केशविन्यासे पारसीकेऽपि पामरे ।  
 बर्वरा फञ्जिकायां च बर्वरा शाकपुष्पयोः ॥ १९१ ॥  
 वागरो निर्नरे शाणे वारके वारवेष्टयोः ।  
 वागरो विगतातङ्के मुमुक्षौ च विशारदे ॥ १९२ ॥

प्रस्तर—पत्थर, मणि, ( पुं० )	बन्धुर—ऊंचानीचा ( न० )
वण्ठर—कैरका कोश, ताडके पल्लव ( पते ) ( पुं० ) ॥ १८७ ॥ कुत्तकी पूछ ( पुं० )	बन्धुरा—वेद्या, ( स्त्री० )
बदरी—बेरी—वृक्ष, कपास ( स्त्री० )	वरत्रा—चर्मरज्जु, अन्यरज्जु, ( स्त्री० ) ॥ १९० ॥
बदर—बेर या कपासका फल ( न० ) ॥ १८८ ॥	बर्वर—केशोंकी रचना, पारसीक—देश, नीच, ( पुं० )
बदरा—रायसन—औषधि, विष्णुकान्ता औषधि ( स्त्री० )	बर्वरा—भारंगी, शाकभेद, पुष्पभेद, ( स्त्री० ) ॥ १९१ ॥
बन्धू(न्धु)र—रमणीक, नम्र, ( त्रि० )	वागर—मनुष्यरहित स्थल, कसौटी, आसवार,.....
बन्धुर— ॥ १८९ ॥ विजयसार, या दुपहरिया—वृक्ष, पक्षी, हंस, ( पुं० )	आतंक ( रोगादि ) रहित, मुमुक्षु, विशारद ( बुद्धिमान् ) ( पुं० ) ॥ १९२ ॥

वासरो दिवसे पुंसि नागभेदेऽपि वासरः ।

वासुरा वासितायां स्यान्निशाभूम्योश्च वासुरा ॥ १९३ ॥

भार्यारुः क्रीडया यस्य पुत्रोऽभूत्परयोषिति ।

तस्मिन्मृगाद्रिभेदे च भास्करो वह्निसूर्ययोः ॥ १९४ ॥

भृङ्गारी शिलिकायां स्याद्भृङ्गारः कनकालुके ।

भ्रमरः कामुके भृङ्गे भ्रामरं माक्षिकाश्मयोः ॥ १९५ ॥

मकरस्तु मराले स्यान्निधिराशिप्रभेदयोः ।

मकुरो मुकुरश्चैव दर्पणे वकुलद्रुमे ॥ १९६ ॥

मत्सरोऽन्यशुभद्वेषे मात्सर्यं क्रधि मत्सरः ।

त्रिषु तद्वत्कृपणयोर्मक्षिकायां तु मत्सरा ॥ १९७ ॥

मन्दारः सिन्धुरे धूर्त्ते मधुद्रौ भृङ्गकामिनोः ।

मधुरस्तु रसे पुंसि मधुरं तु विषान्तरे ॥ १९८ ॥

वासर-दिन ( पुं० ) नागभेद, भ्रामर-शहद, पत्थर ( न० )  
( पुं० ) ॥ १९५ ॥

वासुरा-हथिनी, रात्रि, पृथ्वा, मकर-हंस-पक्षी, निधिभेद, राशिभेद,  
( स्त्री० ) ॥ १९३ ॥ ( पुं० )

भार्यारु-क्रीडाकरते जिसके परस्त्रीमें मकुर-मुकुर-दर्पण, नौलश्रीका-वृक्ष,  
पुत्र हुवा है वह, मृगभेद, पर्वतभेद, ( पुं० ) ॥ १९६ ॥

भास्करो-अग्नि, सूर्य, ( पुं० ) ॥ १९४ ॥ मत्सर-दसरेके शुभका द्वेष, मत्सरता,  
क्रोध ( पुं० )

भृङ्गारी-शिलिका ( भी, भी, बोलनेवाला मत्सरता वाला, कृपण ( त्रि० )

कीटविशेष ) ( स्त्री० ) मत्सरा-मक्खी ( स्त्री० ) ॥ १९७ ॥

भृङ्गार-हारी ( पुं० ) मन्दार-हत्ती, धूर्त्त, महुवा-वृक्ष,

भ्रमर-कामी-पुरुष, भौरा, ( पुं० ) भौरा, कामीपुरुष, ( पुं० ) ॥ १९८ ॥

मधुरो रसवत्त्वादुप्रियेषु त्रिषु वाच्यवत् ।

मधुरा मधुकुक्कुट्यां शतपुष्पाऽपुरीभिदोः ॥ १९९ ॥

मिश्रेयाशुक्रयोर्मैदामधुलीयष्टिकासु च ।

मन्थरः सूचके कोशे मन्थानेऽप्यथ मन्थरम् ॥ २०० ॥

कुसुंभ्यां मन्थरस्तु स्यान्मन्दे वक्त्रे पृथौ त्रिषु ।

मन्दारः स्वर्गमन्दारमन्थशैलेषु पुंस्ययम् ॥ २०१ ॥

मन्दरस्तु मतो मन्दे बहलेऽप्यभिधेयवत् ।

मन्दिरं नगरेऽगारे मन्दिरो मकरालये ॥ २०२ ॥

मंदारो देववृक्षे स्यात्पारिभद्रार्कपर्णयोः ।

मन्दुरा वाजिशालायां शयनीयार्थवस्तुनि ॥ २०३ ॥

मयूरः शिख्यपामार्गशिखिचूडासु दृश्यते ।

मर्मरौ वल्लभेदेऽपि पत्रभेदेऽपि मर्मरः ॥ २०४ ॥

मधुर—मधुर रसवाला, (पुं०) विप- मन्थपर्वत, (पुं०) ॥ २०१ ॥

भेद (न०) स्वादिष्ट, प्रिय, (त्रि०) । मन्दर—मन्द, बहुत (त्रि०)

मधुरा—एकप्रकारका नीबू, सौंफ, मन्दिर—नगर, घर, (न०) मन्दिर—  
पुरीभेद (मधुरा) ॥ १९९ ॥ मगरका स्थान, (पुं०) ॥ २०२ ॥

सोआ, चीता-वृक्ष, महामेदा, राई, मन्दार—देव-वृक्ष, निंब-वृक्ष, आकका  
जेठीमध (स्त्री०) पत्ता, (पुं०)

मन्थर—सूचना करनेवाला, कोश मन्दुरा—अश्वशाला, शय्याकी उप-  
(खजाना) (पुं०) योगी वस्तु (स्त्री०) ॥ २०३ ॥

मन्थर—दधिमथनेका डंडा, (न०) मयूर—मोर, चिरचिटा, मोरशिखा,  
॥ २०० ॥ (पुं०)

मन्थर—कुसुंभी, (.....) मन्द, मर्मर—वल्लभेद, पत्रभेद, अर्थात्  
टेडा, स्थूल (त्रि०) वल्ल व पत्रका शब्द, (पुं०)

मन्दार—स्वर्ग, मन्दार-वृक्ष (देवतरु), ॥ २०४ ॥

मर्मरी दारुवर्णिन्यां पीतदारौ च मर्मरी ।  
 मसुरो मसुरश्चैव व्रीहिमित्पण्ययोषितो ॥ २०५ ॥  
 मसूरा मसूरा चात्र मसूरी पापरुग्भिदि ।  
 मिहिरस्तपने बुद्धे महेन्द्रे वासवे गिरौ ॥ २०६ ॥  
 स्यात्पारिपार्थिके भानोर्द्विजभेदेऽपि माठरः ।  
 मायूरं चापि मार्जारं क्रीडाबन्धे च तद्गणे ॥ २०७ ॥  
 मार्जार ओतौ खट्वाशे मुदिरः कामुकेऽम्बुदे ।  
 लोष्टादिभेदनोपाये मल्लीभेदेऽपि मुद्गरम् ॥ २०८ ॥  
 मुर्मुः सूर्यतुरगे तुषवह्नौ च मन्मथे ।  
 मुहिरः पुंसि मदने मूर्खे तु मुहिरस्त्रिषु ॥ २०९ ॥  
 रुधिरं कुङ्कुमे रक्ते रुधिरो भूमिनन्दने ।  
 वठरः कमठेऽपि स्याद्वठरः शठवस्त्रयोः ॥ २१० ॥

मर्मरी-दारुवर्णिनी (.....) देव, दारु ( स्त्री० )	मार्जार-बिलाव ( मार्जार ), खट्वाश ( वनमार्जार ) ( पुं० )
मसूर-मसुर-व्रीहिभेद, ( पुं० )	मुदिर-कामीपुरुष, मेघ, ( पुं० )
मसूरा-मसूरा-वेद्या ( स्त्री० ) ॥ २०५ ॥	मुद्गर-डला आदिके फोड़नेका अस्त्र, मल्लिका ( मोतिया ) भेद ( न० ) २०८
मसूरी-पाप और रोगभेद, ( स्त्री० )	मुर्मु-सूर्यका अश्व, तुषकी अग्नि, कामदेव ( पुं० )
मिहिर-सूर्य, बुद्ध भगवान् ( पुं० )	मुहिर-कामदेव, ( पुं० ) मूर्ख ( त्रि० ) ॥ २०९ ॥
महेन्द्र-इंद्र, पर्वत, ( पुं० ) ॥ २०६ ॥	रुधिर-केसर, लोही, ( न० ) रुधिर- मंगल-ग्रह ( पुं० )
माठर-सूर्यके समीप होनेवाला एक ग्रह, द्विज ( ब्राह्मण ) भेद ( पुं० )	वठर-कछुवा, शठ, वस्त्र ( पुं० ) ॥ २१० ॥
मायूर-मार्जार-क्रीडाबन्ध, (...) और क्रमसे मयूर व मार्जारों ( बिलाओं ) का समूह ( न० ) ॥ २०७ ॥	

वर्करस्तरुणे वाच्यलिङ्गो मेघे तु वर्करः ।

वल्लूरं त्रिषु संशुष्कमांसे मांसे च दंष्ट्रिणः ॥ २११ ॥

वल्लूरस्तूपरे क्लीबं वनक्षेत्रेऽपि वाहने ।

वल्लरी वल्लरं चैव मञ्जर्यामथ वल्लरः ॥ २१२ ॥

शाद्वले निर्झरस्थाने बिल्वक्षेत्रनिकुञ्जयोः ।

वशिरः सिन्धुलवणकिणिहीभकणार्थकः ॥ २१३ ॥

वार्द्धरं दक्षिणावर्तशङ्खे वारि च वार्द्धरम् ।

वार्द्धरं रक्तगुञ्जायां बीजेपि कृमिजेऽपि च ॥ २१४ ॥

धूपेऽपि पक्षिवासाय गृहकुम्भेऽपि वासतुः ।

विकारो विकृतौ रोगे विदारो दारणे रणे ॥ २१५ ॥

विदुरः पण्डिते खिञ्जे कौरवाणां च मन्त्रिणि ।

विधुरं तु प्रविश्लेषे प्रत्यवायेऽपि तन्मतम् ॥ २१६ ॥

व(ब)र्कर—जवान (त्रि०) मेंढा (पुं०)	वार्द्धर—दक्षिणावर्त शंख, जल, लाल
वल्लूर—सूखा मांस, सूकरका मांस,	धुधुचीके बीज, बायाविडंग ॥ २१४ ॥
(न०) ॥ २११ ॥	वासतु—धूप, क्यूतरआदिपक्षियोंके
वल्लर—ऊपर—भूमि, वनक्षेत्र, वाहन,	निवासके लिये घरमें गाडाहुवा कुंभ
(न०)	(पुं०)
वल्लरी—वल्लर—मंजरी, (स्त्री० न०)	विकार—विकृति, रोग (बीमारी)
॥ २१२ ॥	(पुं०)
वल्लर—हरितनृणवाली भूमि, झिरना,	विदार—फाडना, रण, (पुं०)
बिल्वक्षेत्र (एक क्षेत्र), निकुञ्ज	॥ २१५ ॥
(लताकुटी)	विदुर—पण्डित, विदग्ध, कौरवोंका
वशिर—समुद्र नौन, चिरचिरा (अपा	मंत्री, (पुं०)
मार्ग), गजपीपल, (पुं०)	विधुर—अत्यंत वियोग, दोष, (न०)
॥ २१३ ॥	॥ २१६ ॥

विधुरा तु रसालायां विधुरं विकलेन्यवत् ।  
 विवरं वर्तते गर्ते दोषेऽपि छिद्ररन्ध्रवत् ॥ २१७ ॥  
 विसरः प्रसरे पुंसि विसरो निकुरम्बके ।  
 विस्तरः पुंसि विस्तारे प्रपञ्चे प्रणयेऽपि च ॥ २१८ ॥  
 विस्तारः पुंसि विटपे विस्तारो विस्तृतावपि ।  
 विष्टरः कुशमुष्टौ स्यादासनेऽपि महीरुहे ॥ २१९ ॥  
 विहारो भ्रमणे स्कन्धे सुगतालयलीलयोः ।  
 छन्दोभेदे नदीभेदे मेखलायां च शक्करी ॥ २२० ॥  
 शङ्करः पार्वतीनाथे त्रिषु कल्याणकारिणि ।  
 शणीरं शोणमध्यस्थपुलिने दर्दरीतटे ॥ २२१ ॥  
 शर्करा शर्करायुक्तदेशे स्यात्कर्परांशके ।  
 शकले खण्डविकृतावुपलायां च तद्भिदि ॥ २२२ ॥

विधुरा-दाख, या सिखरन, (ली०)।	नका मंदिर, लीला (पुं०)
विधुर-विकल, (त्रि०)	शक्करी-छदोभेद, नदीभेद, मेखला
विवर-खड़ा, दोष, (न०) (ऐसे	(तागडी) (स्त्री०) ॥ २२० ॥
ही छिद्र-रन्ध्र-जानना ॥ २१७ ॥	शंकर-महादेव (पुं०) कल्याण
विसर-फैलना, समूह (पुं०)	करनेवाला (त्रि०)
विस्तर-विस्तार, प्रपंच, नम्रता	शणीर-शोणनदके मध्यका टीला,
(पुं०) ॥ २१८ ॥	(नदीभेद) का किनारा (न०)
विस्तार-वृक्षकी टहनी आदि,	॥ २२१ ॥
विस्तार (पुं०)	शर्करा-शर्करा (उली) युक्त स्थल,
विष्टर-कुशमुष्टि, आसन, वृक्ष (पुं०)	खप्परका टुकड़ा, टुकड़ामात्र,
॥ २१९ ॥	खाँडका विकार (शक्कर), पत्थरभेद,
विहार-भ्रमणा, स्कन्ध, बुद्धभगवा-	(स्त्री०) ॥ २२२ ॥



शर्वरी तु त्रियामायां हरिद्रायोषितोरपि ।  
 श(व)वरो म्लेच्छभेदेऽपि शवरः शङ्करे जले ॥ २२३ ॥  
 शङ्करस्तु बलीवर्दे छन्दोभेदे तु शाङ्करम् ।  
 शाङ्करिर्विघ्नपे स्कन्दे शारीरो देहजे वृषे ॥ २२४ ॥  
 शार्करो दुग्धफेने स्याद्वाच्यवच्छर्करावति ।  
 शार्वरं त्वन्धतमसे घातुके त्रिषु शार्वरम् ॥ २२५ ॥  
 शालारं स्याद्धस्तिनखे सोपाने पक्षिपञ्जरे ।  
 शावरो लोघवृक्षे स्यात्तथा पापाऽपराधयोः ॥ २२६ ॥  
 शावरी शूकशिम्ब्यां च तद्ववे त्रिषु शावरम् ।  
 शिखरं शैलवृक्षाग्रे कक्षापुलककोटिषु ॥ २२७ ॥  
 पक्वदाडिमबीजाभमाणिक्यशकलेऽपि च ।  
 शिलीन्ध्रस्तु पुमान्मीनभेदे वृक्षप्रभेदयोः ॥ २२८ ॥

शर्वरी—रात्रि, हलदी, स्त्री ( स्त्री० )	शालार—पुरदरवाजाका खड्गजा,
शव(व)र—म्लेच्छभेद, महादेव, जल	पैडो, पक्षोका पिंजरा ( न० )
( पुं० ) ॥ २२३ ॥	
शङ्कर—बैल ( पुं० )	शावर—लोघ-वृक्ष, पाप, अपराध,
शाङ्कर—छन्दोभेद ( न० )	( पुं० ) ॥ २२६ ॥
शाङ्करि—गणेश, स्वामिकात्तिक,	शावरी—काँछ, ( स्त्री० ) शावर—
( पुं० )	काँछकी फली आदि ( त्रि० )
शारीर—शरीरसे उत्पन्न होनेवाला	शिखर—पर्वत या वृक्षकी चोटी,
( त्रि० ) बैल ( पुं० ) ॥ २२४ ॥	धुंधुची, मुरदासंग या हरताल
शार्कर—दूधके झाग ( पुं० ) शर्करा	कोटि (असवरग) ( न० ) ॥ २२७ ॥
( डलियों ) वाला देश ( त्रि० )	पकेहुए अनारके बीजोंके तुल्य
शार्वर—अंधकार, ( न० )	माणिक्यका टुकड़ा ( न० )
शार्वर—जीवोंको मारनेवाला ( त्रि० )	शिलीन्ध्र—मीन ( मच्छी ) भेद,
॥ २२५ ॥	वृक्षभेद ( पुं० ) ॥ २२८ ॥

शिलीन्ध्रं कवके रम्भापुष्पत्रिपुटयोरपि ।  
 शिलीन्ध्री विहगीभेदे तथा गण्डूपदीमृदि ॥ २२९ ॥  
 शिशिरस्तु ऋतौ पुंसि तुषारे शीतलेऽन्यवत् ।  
 शीकरः शरले वाते निःसृताम्बुकणेषु च ॥ २३० ॥  
 शुषिरं विवरे वाचे नाऽग्नौ रन्ध्रवति त्रिषु ।  
 शृङ्गारः सुरते नाख्यरसे द्विरदभूषणे २३१ ॥  
 शृङ्गारं चूर्णसिन्दूरे लवङ्गकुसुमे मतम् ।  
 सङ्कारोऽग्निचटत्कारे सम्भारजन्यपमार्जिते ॥ २३२ ॥  
 नरदूषितकन्यायां सङ्करी कचिदिष्यते ।  
 सङ्गरस्तु प्रतिज्ञाजिक्रियाकारे विषापदोः ॥ २३३ ॥  
 सङ्गरं स्यात्फले शम्याः सम्भारः सम्भृतौ गणे ।  
 संवरस्तु मृगक्षमाभृदैत्यमत्स्यजिनान्तरे ॥ २३४ ॥

शिलीन्ध्र-कवक (मत्स्यभेद) केलाका पुष्प, मटर, ( न० )	संकार-अग्निका चटत्कार ( शब्द ), झाइसे इकठाकिया कूडा, ( पुं० ) ॥ २३२ ॥
शिलीन्ध्र-पक्षिभेद-मादीन, गिडो एकी मिट्टी ( स्त्री० ) ॥ २२९ ॥	संकरी-मनुष्यसे दूषितहुई कन्या ( स्त्री० )
शिशिर-शिशिर-ऋतु ( पुं० ) पाला, ठंडा ( त्रि० )	संगर-प्रतिज्ञा, युद्ध, क्रियाकरनेवाला विष, विपत् ( पुं० ) ॥ २३३ ॥
शीकर-सरल-वृक्ष, वायु, वायुके प्रेरणहुए जलकण ( पुं० ) ॥ २३० ॥	संगर-जांटकी फली ( सौंगर ) ( न० )
शुषिर-भूमिछिद्र, बाजा, अग्नि ( पुं० ) छिद्रवाला ( त्रि० )	संभार-सामग्री, समूह ( पुं० )
शृंगार-मैथुन, शृंगार रस, हस्तीका आभूषण ( पुं० ) ॥ २३१ ॥	संवर-मृग, पर्वत, एक दैत्य, मच्छी, जिन भगवान् ( पुं० ) ॥ २३४ ॥
शृंगार-चूर्ण ( पिसा हुआ ) सिंदूर, लौंगका पुष्प ( न० )	

संबरं सलिले बौद्धव्रतभेदे घनेऽपि च ।  
 संबरी त्रौषधीभेदे सामुद्रं त्वङ्गलक्षणे ॥ २३५ ॥  
 सामुद्रं स्यात्समुद्रीयलवणादिषु वाच्यवत् ।  
 सावित्री देवताभेदे सावित्रः पार्वतीपतौ ॥ २३६ ॥  
 सिन्दूरस्तरुभेदे ना सिन्दूरं रक्तवालुके ।  
 सिन्दूरमपि सिन्दूरयुक्तलेखे महीभृताम् ॥ २३७ ॥  
 सिन्दूरी धातकीरक्तचेलिकारोचनीष्वपि ।  
 सुन्दरी नायिकाभेदे तरुभेदेऽपि सुन्दरी ॥ २३८ ॥  
 सुनारस्तु शुनीस्तन्ये सर्पाण्डकलविङ्कयोः ।  
 सैरिन्ध्री परवेश्मस्थशिल्पकृत्स्ववशस्त्रियाम् ॥ २३९ ॥  
 वर्णसङ्करजायादौ वधाद्यां च महल्लके ।  
 सौवीरं काञ्चिके स्रोतोञ्जने बदरदेशयोः ॥ २४० ॥  
 संस्कारः पुंस्यनुभवे सङ्कल्पप्रतियल्योः ।  
 संस्तरः प्रस्तरे पुंसि पुंसि यज्ञेऽपि संस्तरः ॥ २४१ ॥

संबर—जल, बौद्धव्रतभेद, घन (न०)	सिन्दूरी—धायके पुष्प, रक्तचोलीवाली
संबरी—औषधीभेद ( स्त्री० )	स्त्री, गोरोचन ( स्त्री० )
समुद्र—अंगोका शुभाशुभ लक्षण ( न० ) ॥ २३५ ॥	सुन्दरी—नायिकाभेद, वृक्षभेद, ( स्त्री० ) ॥ २३८ ॥
सामुद्र—समुद्रमें होनेवाला लवण ( नमक ) आदि ( त्रि० )	सुनार—कुत्तीका दूध, सर्पिणीका अंडा, चिडा—पक्षी ( पुं० )
सावित्री—देवताभेद, ( स्त्री० )	सैरिन्ध्री—दूसरेके घरमें स्थितहुई भी स्त्री अपने वश रहकर शिल्प-करनेवाली ( स्त्री० ) ॥ २३९ ॥
सावित्र—पार्वतीपति ( महादेव ) ( पुं० ) ॥ २३६ ॥	सौवीर—कौजी, सीसा, बेर, सौवीर-देश ( न० पुं० ) ॥ २४० ॥
सिन्दूर—वृक्षभेद ( पुं० )	संस्कार—अनुभव, संकल्प, जतन ( पुं० )
सिन्दूर—रक्तवालुक ( सिन्दूर ), राजा-ओका सिन्दूरयुक्त लेख ( न० ) २३७	संस्तर—पत्थर, यज्ञ ( पुं० ) ॥ २४१ ॥

हिण्डीरस्तु पुमान्फेने तथा वातिङ्गने नरि ।

रचतुर्थम् ।

अकूपारः सवन्तीनां नाथे कर्मठनायके ॥ २४२ ॥

अग्निहोत्रो मतो वहौ वह्निहोत्रे हविष्यपि ।

अनुत्तरं त्रिषु श्रेष्ठे प्रतिवाक्यविवर्जिते ॥ २४३ ॥

उपर्युदीच्यश्रेष्ठानां विपर्यासे त्वनुत्तरः ।

वधे युद्धेऽप्यभिमरः खबलादपि साध्वसे ॥ २४४ ॥

अभिहारोऽभियोगे स्याच्चौर्ये सन्नहनेऽपि च ।

अरुष्करस्तु भलाते व्रणकारिणि वाच्यवत् ॥ २४५ ॥

अर्द्धचन्द्रस्तु खण्डेन्दौ गलहस्ते शरान्तरे ।

चन्द्रकेऽप्यर्द्धचन्द्रः स्यादर्द्धचन्द्रा त्रिवृद्धिदि ॥ २४६ ॥

अलङ्कारस्तु भूषायामुपमादिगुणेषु च ।

भवेदवसरः पुंसि मतः प्रस्ताववर्षयोः ॥ २४७ ॥

हिण्डीर-समुद्रस्नाग, बैंगन, (पुं०)

रचतुर्थम् ।

अकूपार-समुद्र, कर्मठोंका अधिपति  
(पुं०) ॥ २४२ ॥

अग्निहोत्र-अग्नि, अग्निहोत्र, हवि  
(होमकरनेका द्रव्य) (पुं०)

अनुत्तर-श्रेष्ठ (त्रि०) उत्तर नहीं  
देना (न०) ॥ २४३ ॥

अनुत्तर-नहीं ऊपर (आगे), नहीं  
उदीची (उत्तर), नहीं अश्रेष्ठ (त्रि०)

अभिमर-वध, युद्ध, अपनीसेनासे  
भय (पुं०) ॥ २४४ ॥

अभिहार-कबाईमें पुकारना, चोरी,

कवच धारण करना (पुं०)

अरुष्कर-भिलावा (पुं०) व्रण  
(घाव) करनेवाला (त्रि०)  
॥ २४५ ॥

अर्द्धचन्द्र-आधाबिबवाला चंद्रमा, ग-  
लहस्त (तर्जनी अंगूठा फैलाया हुआ  
हाथसे प्रीठाके धक्का देकर निका-  
लना), बाणभेद, मोरकी पंख, (पुं०)

अर्द्धचंद्रा-निसोतभेद (स्त्री०)  
॥ २४६ ॥

अलंकार-आभूषण, उपमाआदि  
गुण (पुं०)

अवसर-प्रस्ताव, वर्षा, (पुं०) २४७

अवतारोऽवतरणे तीर्थं खातादिकेपि च ।

अवहारः पुमान्प्राप्ते युद्धयुतादिविभ्रमे ॥ २४८ ॥

निमग्नोपनेतव्ये द्रव्ये चौरै च सम्मतः ।

अवस्करः पुमान्गूथे गुह्येऽपि स्यादवस्करः ॥ २४९ ॥

भवेदश्वतरो वेगसरे नागाधिपान्तरे ।

असिपत्रः पुमान्कोषकारेऽपि नरकान्तरे ॥ २५० ॥

आडम्बरः करीन्द्राणां गर्जिते तूर्यनिस्वने ।

समारम्भे प्रपञ्चे च रचनायां च दृश्यते ॥ २५१ ॥

आत्मवीरो महाप्राणे श्यालपुत्रे विदूषके ।

इन्दीवरं कुवले वर्यामिन्दीवरी स्त्रियाम् ॥ २५२ ॥

उदुम्बरो जन्तुफले देहल्यां लघुमेढ्रके ।

उदुम्बरं कुष्ठभेदे ताम्रेऽपि स्यादुदुम्बरम् ॥ २५३ ॥

अवतार—अवतरण, तीर्थ, खात ( खोदाहुवा ) आदिक ( पुं० )	आडम्बर—हस्तियोंका गर्जना, तूर्यका शब्द, समारंभ, प्रपञ्च ( फैलाव ), रचना ( पुं० ) ॥ २५१ ॥
अवहार—प्राप्तभेद, युद्धयुवाआदिसे विभ्रम, ॥ २४८ ॥ शर्कराआदिसे स्वादिष्ट किया द्रव्य, चोर ( पुं० )	आत्मवीर—बहुतपराक्रमवाला, सा- लाका पुत्र, विदूषक ( नाटकका मँडुवा ) ( पुं० )
अवस्कर—विष्ट, गुह्य ( गुप्त ) ( पुं० ) ॥ २४९ ॥	इन्दीवर—नीलाकमल ( न० ) इन्दीवरी—शतावर ( औषधि ), ( स्त्री० ) ॥ २५२ ॥
अश्वतर—वेगसर ( खचरा ), नागोंका स्वामी, ( पुं० )	उदुम्बर—गूलर-वृक्ष, देहली, नपुंसक ( पुं० )
असिपत्र—कोशकार ( कीट ), नरक भेद, ( पुं० ) ॥ २५० ॥	उदुम्बर—कुष्ठभेद, ताँबा ( न० ) २५३

उद्दन्तुरः स्यादुत्तुङ्गे करालोत्कटदन्तयोः ।

उपकारो मतः कीर्णकुसुमायुधकृत्ययोः ॥ ५२४ ॥

उपहरं समीपे स्याद्रहोमात्रेऽप्युपहरम् ।

औदुम्बरः श्राद्धदेवे रोगभेदे नपुंसकम् ॥ २५५ ॥

कटम्भरा प्रसारिण्यां रोहिणीकरियोषितोः ।

कलम्बिकायां गोलायां वर्षाभूमूर्वयोरपि ॥ २५६ ॥

करवीरोऽश्वमारे स्याद्वैत्यभेदकृपाणयोः ।

सपुत्रादेवसूत्रेष्ठगवीषु करवीर्यपि ॥ २५७ ॥

मल्लिकाप्रतिहार्योस्तु करवीरी कचिन्मता ।

कर्णिकारो मतः पुंसि शम्याके च द्रुमोत्पले ॥ २५८ ॥

कर्णपूरं कुवलयेऽप्यवतंसशिरीषयोः ।

त्रिषु कर्मकरो भृत्ये भृतिजीविनि कर्षके ॥ २५९ ॥

उद्दन्तुर-कैचा, भयंकर, भयंकर करवीरी-पुत्रवाले स्त्री, देवमाता  
दोतोवाला ( त्रि० ) ( अदिति ), श्रेष्ठ गौ, ॥ २५७ ॥

उपकार-विखराहुवा पुष्पआदि, मल्लिका ( मोतियाभेद ), द्वारपा-  
हथियारसे कृत्य ( पुं० ) ॥ २५४ ॥ लिनी ( स्त्री० )

उपहर-समीप, एकान्तमात्र ( न० ) कर्णिकार-अमलतास, छोटा संदल,  
औदुम्बर-धर्मराज ( पुं० ) रोग- ( पुं० ) ॥ २५८ ॥

भेद, ( न० ) ॥ २५५ ॥ कर्णपूर-कमल, कर्णआभूषण या शिर-  
कटम्भरा-पसरन, कुटकी, हथिनी, आभूषण, सिरस-वृक्ष ( न० )

कलवी-शाक, मनसिल, साँठी, कर्मकर-नौकर, नौकरीकी आजीवि-  
मरोरफली, ( स्त्री० ) ॥ २५६ ॥ कावाला, किसान ( खेतीकरनेवाला )

करवीर-कनेर, दैत्यभेद, तलवार ( त्रि० ) ॥ २५९ ॥

मूर्वायां बिम्बिकायां च स्त्रियां कर्मकरी कचित् ।

कलिकारस्तु धूम्याटे पीतमुण्डे करञ्जके ॥ २६० ॥

कादम्बरस्तु दध्यग्रे मद्यभेदेऽपि न द्वयोः ।

कादम्बरी परभृतासीधुगीःसारिकास्त्वपि ॥ २६१ ॥

कालंजरो योगिचक्रमेलके भैरवे गिरौ ।

देशभेदेऽपि पार्वत्यां भवेत्कालञ्जरी मता ॥ २६२ ॥

कुम्भकारः कुलाले स्यात्कुलथ्यां तु स्त्रियामपि ।

कृष्णसारो मृगे पुंसि स्नुहीशिशपयोः स्त्रियाम् ॥ २६३ ॥

गङ्गाधरो गिरिसुतानाथे नाथे च पाथसाम् ।

गिरिसारस्तु लौहे स्यान्मलयाचललिङ्गयोः ॥ २६४ ॥

कम्बलच्छन्नदोलायां कुन्थाङ्गेऽपि गृहाम्बरः ।

घनसारोऽप्यु कर्पूरे दक्षिणावर्त्तपारदे ॥ २६५ ॥

कर्मकरी—चुरनहार या मरोरफली,  
कन्दूरी, ( स्त्री० )

कलिकार—छुटकबडैया—पक्षी, गुर-  
सल-पक्षी, करंजुवा ( पुं० ) २६०

कादम्बर—दहीकी मलाई ( पुं० )  
मद्यभेद ( न० )

कादम्बरी—कोयल, सीधु ( वारुणी ),  
वाणी, मैना—पक्षी ( स्त्री० )  
॥ २६१ ॥

कालंजर—योगिचक्रका मिलाप, भैरव,  
एकपर्वत, देशभेद, ( पुं० )

कालंजरी—पार्वती ( स्त्री० ) २६२

कुम्भकार—कुम्हार, ( पुं० ) कुम्भकारी—  
कुलथी ( स्त्री० )

कृष्णसार—मृग ( पुं० )

कृष्णसारा—धोहर, शिशपा—वृक्ष  
( स्त्री० ) ॥ २६३ ॥

गंगाधर—महादेव, समुद्र ( पुं० )

गिरिसार—लोहा, मलयाचल-पर्वत,  
लिङ्ग ( पुं० ) ॥ २६४ ॥

गृहाम्बर—कम्बलसे ढकीहुई डोली,  
गुदसीवाला मनुष्य, ( पुं० )

घनसार—जल, कपूर, दक्षिणावर्त्त  
पारा ( पुं० ) ॥ २६५ ॥

भवेच्चक्रधरो विष्णौ मुजङ्गे ग्रामजालिनि ।

चराचरं तु भुवने स्यादिङ्गे जङ्गमे त्रिषु ॥ २६६ ॥

चर्मकारः पुमान्पादकृति चर्मकषौषधौ ।

चर्मकारी स्त्रियां चित्राटीरस्तु रजनीपतौ ॥ २६७ ॥

घण्टाकर्णवलिहृतच्छागास्तिलकेऽपि च ।

जटाटीरो जटायां स्यादोकणे पार्वतीपतौ ॥ २६८ ॥

वरोहे पादपानां च समावेदोक्तवैजवे ।

रण्डायां तालपत्री स्यात्तालपत्रं तु कुण्डले ॥ २६९ ॥

तुङ्गभद्रा नदीभेदे तुङ्गभद्रो मदोत्कटे ।

तुण्डिकेरी तु कर्पास्यां विम्बिकायामपि स्त्रियाम् ॥ २७० ॥

तुलाधारस्तुलाराशौ तुलाधारो वणिक्प्वपि ।

भवेत्तोयधरो मेघे मुस्तके सुनिषण्णके ॥ २७१ ॥

चक्रधर-विष्णु, सर्प, ... ( पुं० )

चराचर-जगत्, अभिप्रायके अनु-  
रूप चेष्टा, जंगम ( चलनेवाला ),  
( त्रि० ) ॥ २६६ ॥

चर्मकार-चमार-जाति ( पुं० )

चर्मकारी-थोहरका भेद ( स्त्री० )

चित्राटीर-चंद्रमा, घंटाकर्णयक्षकी  
बलिके लिये माराहुवा बकराके  
रुधिरका जिसने तिलक किया है  
वह, ( पुं० ) ॥ २६७ ॥

जटाटीर-जटा, महादेव, ( पुं० )

॥ २६८ ॥ वृक्षकी जड़से चलकर

आगेतक गई हुई शाखा ( पुं० )

तालपत्री-रंडा स्त्री, ( स्त्री० )

तालपत्र-कुंडल ( न० ) ॥ २६९ ॥

तुंगभद्रा-नदीभेद ( स्त्री० )

तुंगभद्र-मदोन्मत्त ( पुं० )

तुंडिकेरी-कपास, कन्दूरी, ( स्त्री० )

॥ २७० ॥

तुलाधार-तुला-राशि, वणिगां, ( पुं० )

तोयधर-मेघ, नागरमोया, चौप-

तिया या सिरिआरी शाक, ( पुं० )

॥ २७१ ॥



यमे नृपे दण्डधरो दण्डधारो यमे नृपे ।

दण्डयात्रा दिग्विजये संयानवरयात्रयोः ॥ २७२ ॥

क्रीवं दशपुरं देशे पुरगोनर्दयोरपि ।

दिगम्बरस्तु क्षपणे नम्रे ध्वान्ते च शूलिनि ॥ २७३ ॥

दरोदरं पणे द्यूते द्यूतकारे दुरोदरः ।

देहयात्रा मता मृत्यौ देहयात्राऽपि भोजने ॥ २७४ ॥

द्वैमातुरो जरासन्धे द्वैमातुर इभानने ।

धराधरश्चक्रधरे क्षमाधरे च धराधरः ॥ २७५ ॥

भवेद्धाराधरो वारिवाहिनिर्लिशयोः पुमान् ।

धाराङ्कुरस्तु ना सीरे करकायां च शीकरे ॥ २७६ ॥

धार्तराष्ट्रोऽसितैश्चञ्चुपदैर्हसेऽपि कौरवे ।

सर्पेऽप्यथो धवतरौ धूर्वहे च धुरन्धरः ॥ २७७ ॥

गरी-

दण्डधर-धर्मराज, राजा, ( पुं० ) देहयात्रा-मृत्यु, भोजन, (

दण्डधार-धर्मराज, राजा, ( पुं० ) ॥ २७४ ॥

दण्डयात्रा-दिग्विजय, अच्छीतरह-द्वैमातुर-जरासन्ध, गणेश, ( पुं०

यात्रा, श्रेष्ठ यात्रा, ( स्त्री० ) २७२ धराधर-विष्णु, पर्वत, ( पुं० ) २७

दशपुर-देश, पुर, केवटीमोथा, धाराधर-मेघ, खड्ग, ( पुं० )

( न० ) । धाराङ्कुर-हल, ओला, वायुप्रेरित

जलबिन्दु, ( पुं० ) ॥ २७६ ॥

दिगम्बर-मुनि, नम्र, अन्धकार, धार्तराष्ट्र-श्यामचोंच चरणोंवाला

महादेव, ( पुं० ) ॥ २७३ ॥ हंस, कौरव, सर्पभेद, ( पुं० )

दुरोदर-पण, जुवा, ( न० ) जूवाकर-धुरन्धर-धव-वृक्ष, धुरको बहनेवाला

नेवाला, ( पुं० ) धूर्व-बैलआदि, ( पुं० ) ॥ २७७ ॥

धुन्धुमारः शक्रगोपे गृहधूमे पदालिके ।

धृतराष्ट्रस्त्वांशिकेये पक्षिभेदे सुराज्ञि च ॥ २७८ ॥

धृतराष्ट्री मता हंसपदीनामौषधान्तरे ।

नभश्चरो घने विद्याधरे वाते विहङ्गमे ॥ २७९ ॥

निशाचरः फेरवभूतरक्षोभुजङ्गधूकेषु निशाचरी तु ।

भवेदसत्यां हि निषद्वरः स्यात्पङ्के निशायां तु निषाद्वरी स्यात्

परम्परः प्रपौत्रादौ मृगभेदे परम्परः ।

परम्परा तु सन्ताने खङ्गकोशे परिच्छदे ॥ २८१ ॥

भवेत्परिसरो दैवोपात्ते मृत्युप्रदेशयोः ।

यूथभ्रष्टपृथकारिगजे पक्षचरो विधौ ॥ २८२ ॥

पात्रटीरो जरत्पात्रे मुक्तव्यापारमन्त्रिणि ।

सिङ्घाणे लौहकांस्ये च जतुपात्रे च पाठके ॥ २८३ ॥

धुन्धुमार-बीरबहुटी, गृहधूम ( घर-  
का धुवां ), ( पुं० )

धृतराष्ट्र-अंबिकाका पुत्र ( धृतराष्ट्र-  
राजा ), पक्षिभेद, श्रेष्ठराजा, ( पुं० )  
॥ २७८ ॥

धृतराष्ट्री-लालरंगका लज्जाल ( स्त्री० )

नभश्चर-मेघ, विद्याधर, वायु, पक्षी,  
( पुं० ) ॥ २७९ ॥

निशाचर-गीदह, भूत, राक्षस,  
सर्प, उल्लू-पक्षी, ( पुं० )

निशाचरी-कुलटा स्त्री ( स्त्री० )

निषद्वर-कीच, ( पुं० ) निषद्वरी-  
रात्रि ( स्त्री० ) ॥ २८० ॥

परम्पर-प्रपौत्र आदि, मृगभेद,  
( पुं० )

परम्परा-सन्तान ( वंश ), तलवारका  
म्यान, डकनेवाला, ( स्त्री० ) ॥ २८१ ॥

परिसर-भाग्यवशसे प्राप्त, मृत्यु,  
प्रदेश, ( प्रान्त ) ( पुं० )

पक्षचर-समूहसे विच्छिन्नकर अलग  
विचरनेवाला हस्ती, चंद्रमा, ( पुं० )  
॥ २८२ ॥

पात्रटीर-व्यापाररहित मंत्री, नासि-  
काका मल, लोहेका पात्र, काँसीका-  
पात्र, लाखका पात्र, अभि, ( पुं० )  
॥ २८३ ॥

पारावारः सरिन्नाथे पारावारं तटद्वये ।

पारिभद्रः पुमान्निम्बतरौ मन्दारपादपे ॥ २८४ ॥

मतः पीताम्बरश्चक्रपाणौ पीताम्बरो नटे ।

पीतसारस्तु गोमेदे मणौ मलयसम्भवे ॥ २८५ ॥

पूर्णपात्रं तु सम्पूर्णपात्रे वर्धापकेऽपि च ।

यात्रायां पटहे चैव पूर्णपात्रमिति स्मृतम् ॥ २८६ ॥

द्वारि द्वाःस्थे प्रतीहारः प्रतीहारी त्वनन्तरा ।

पुंसि प्रतिसरो माल्ये चमूपृष्ठेऽपि कङ्कणे ॥ २८७ ॥

भूषायां व्रणशुद्धौ च नियोज्याऽऽरक्षयोरपि ।

मन्त्रभेदे स्त्रियां पुंसि हस्तसूत्रेऽपि न स्त्रियाम् ॥ २८८ ॥

समे प्रतिक्रियायां च प्रतीकारो भटेऽपि च ।

प्रभाकरोर्के दहने वक्रनक्रः शुके खले ॥ २८९ ॥

पारावार—समुद्र ( पुं० ) पारावार-  
दोनो तट ( न० )

पारिभद्र—नीब—वृक्ष, कल्पवृक्षभेद  
( देवतरु ), ( पुं० ) ॥ २८४ ॥

पीताम्बर—विष्णु, नट, ( पुं० )

पीतसार—गोमेद—मणि, मलयज  
( चंदन ), ( पुं० ) ॥ २८५ ॥

पूर्णपात्र—पूर्णहुवा पात्र, वृद्धिकरने-  
वाला, यात्रा, पट्ट ( बाजा ), ( न० )  
॥ २८६ ॥

प्रतीहार—द्वार, द्वारपाल, ( पुं० )

प्रतीहारी—द्वारपालनी ( स्त्री० )

प्रतिसर—माला, सेनापीठ, कंकण,  
॥ २८७ ॥ आभूषण, व्रणशुद्धि,  
प्रेरणके योग्य, हस्तिके ललाटका  
मर्म, मन्त्रभेद, ( स्त्री० पुं० )  
हस्तसूत्र ( पुं० न० )

प्रतीकार—सम ( तुल्य ), प्रतिक्रिया  
( बदला ), भट ( योद्धा ), २८८

प्रभाकर—सूर्य, अग्नि, ( पुं० )

वक्रनक्र—सूबा, खल-पुरुष, ( पुं० )  
॥ २८९ ॥

बलभद्रा कुमार्या स्वात्रायमाणे बले पुमान् ।  
 वार्वटीरक्षपौ चूतास्थङ्कुरे गणिकासुते ॥ २९० ॥  
 उकणे वारकीरः स्यान्नीराजितहयेऽपि च ।  
 वीरभद्रोऽश्वमेधाश्चे महावीरेऽपि वीरणे ॥ २९१ ॥  
 क्लीबं वीरतरं वीरश्रेष्ठे वीरणगुन्द्रयोः ।  
 मणिच्छिद्रा तु मेदायामृषभाख्यौषधावपि ॥ २९२ ॥  
 महावीरस्तु गरुडे शूरे कण्ठीरवे पवौ ।  
 महावीरः पिके चाश्वमस्त्राग्नौ च जराटके ॥ २९३ ॥  
 महामात्रो हस्तिपके समूहामात्ययोरपि ।  
 रथकारस्तु माहिष्यात्करणीजेऽपि तक्षणि ॥ २९४ ॥  
 रागसूत्रं तुलासूत्रे पट्टसूत्रेऽपि न द्वयोः ।  
 वसन्तकङ्कणाभिख्यशङ्खे नोगण्डिपट्टके ॥ २९५ ॥

बलभद्रा—धीकुमार, त्रायमान, (स्त्री०)  
 बलभद्र—बलदेव ( पुं० ) ॥ २९० ॥

वार्वटीर—सीसा, या राँगा, आमकी  
 गुठली और अंकुर, वैश्याका पुत्र,  
 ( पुं० ) ॥ २९१ ॥

वारकीर—...आरती कियाहुवा अश्व,  
 ( पुं० )

वीरभद्र—अश्वमेध यज्ञका अश्व, महा-  
 वीर, ( पुं० ) वीरनमूल ( न० )  
 ॥ २९२ ॥

वीरतर—वीरश्रेष्ठ, वीरनमूल, शर,  
 ( पुं० )

मणिच्छिद्रा—मेदा—औषधि, ऋष-  
 भाख्य औषधि, ( स्त्री० ) ॥ २९३ ॥

महावीर—गरुड, शूर, सिंह, वज्र,  
 कोयल—पक्षी, अश्वमेधयज्ञका अग्नि,  
 ( पुं० ) ॥ २९३ ॥

महामात्र—फौलवान, समूह, मंत्री,  
 ( पुं० )

रथकार—वैश्याके क्षत्रियसे उपजे  
 पुरुषसे शूरीके वैश्यसे उपजी स्त्रीमें  
 उत्पन्नहुवा, ( बढई ) ( पुं० ) ॥ २९४ ॥

रागसूत्र—तराजूका सूत्र, पाटका सूत्र,  
 ( न० ) वसन्तकङ्कण नाम शङ्ख,  
 हस्तीका पट्टा, ( पुं० ) ॥ २९५ ॥

दग्धदीपदशाण्वेष मतो लङ्गंश्चतुः पुमान् ।

लम्बोदरः स्यादुष्माने हेरम्बे लम्बकुक्षिके ॥ २९६ ॥

लक्ष्मीपुत्रस्तु कन्दर्पे लक्ष्मीपुत्रस्तुरङ्गमे ।

वातपुत्रो महाधूर्ते हनूमद्भीमयोरपि ॥ २९७ ॥

बिन्दुतन्त्रः पुमान्शारिफलके चतुरङ्गके ।

विभाकरो बृहद्भानौ चित्रभानौ विभाकरः ॥ २९८ ॥

विभावरी तमस्विन्यां हरिद्रायां विभावरी ।

विवाहवस्त्रगुण्ठ्याञ्च कुट्टिन्यां वक्रयोषिति ॥ २९९ ॥

विश्वम्भरो हरौ शक्रे स्त्रियां विश्वम्भरा भुवि ।

विश्वकद्रुः खले ध्वाने स्यादाखेटिकुकुरे ॥ ३०० ॥

वीतिहोत्रो बृहद्भानौ वीतिहोत्रो दिवाकरे ।

भवेद्व्यतिकरः पुंसि व्यसनव्यतिषङ्गयोः ॥ १ ॥

व्यवहारो व्यवहृतौ वृक्षभेदे स्थितावपि ।

शतपत्रो राजकीरे दार्वाघाटे शिखण्डिनि ॥ २ ॥

लम्बोदर—जलंधर रोगवाला, गणेश,

लंबापेटवाला, ( पुं० ) ॥ २९६ ॥

लक्ष्मीपुत्र—कामदेव, अश्व ( पुं० )

वातपुत्र—महाधूर्त, हनूमान, भीम-

सेन, ( पुं० ) ॥ २९७ ॥

बिन्दुतन्त्र—चौपटखेलनेका पट, चतु-

रंग—खेल, ( पुं० )

विभाकर—अग्नि, सूर्य, ( पुं० )

॥ २९८ ॥

विभावरी—रात्रि, हल्दी, कुट्टिनी—स्त्री,

वक्र स्त्री ( स्त्री० ) ॥ २९९ ॥

विश्वंभर—विष्णु, इंद्र, ( पुं० )

विश्वंभरा—पृथ्वी, ( स्त्री० )

विश्वकद्रु—खल—पुरुष, शब्द, शिकारी

कुत्ता, ( पुं० ) ॥ ३०० ॥

वीतिहोत्र—अग्नि, सूर्य, ( पुं० )

व्यतिकर—शौक ( मदिरापानआदि),

उलटा, ( पुं० ) ॥ १ ॥

व्यवहार—व्यवहार, वृक्षभेद, स्थिति

( ठहरना ), ( पुं० )

शतपत्र—राजकीर ( बडा-सूवा ), सु-

रगा, मोर, ( पुं० ) ॥ २ ॥

शतपत्रं तु राजीवे वरीशुण्ड्योः शतावरी ।  
 शिशुमारो जलकपौ तारात्मकहरावपि ॥ ३ ॥  
 समुद्रारुर्मतः सेतुबन्धे ग्राहे तिमिङ्गिले ।  
 संप्रहारो मृतौ युद्धे शिण्ड्यां सहचरी द्वयोः ॥ ४ ॥  
 स्याद्वयस्ये सहचरस्त्रिषु प्रतिकृतौ पुमान् ।  
 सालसारो मतो हिङ्गौ सालसारो महीरुहे ॥ ५ ॥  
 सुकुमारस्तु पुण्ड्रेक्षौ कोमले त्वभिधेयवत् ।  
 सूत्रधारो मतः शिल्पिप्रभेदेऽपि पुरन्दरे ॥ ६ ॥  
 नान्यनन्तरसञ्चारिपात्रभेदेऽपि स स्मृतः ।  
 स्थिरदंष्ट्रो भुजङ्गे स्याद्बराहाकृतिकेशवे ॥ ७ ॥

रपञ्चमम् ।

उत्पलपत्रं तूत्पलच्छदे योषित्रसक्षते ।  
 स्वर्गनद्यां तु कपिलधारा तीर्थान्तरे पुमान् ॥ ८ ॥

शतपत्र-कमल ( न० )  
 शतावरी-शतावर, सौंठ, ( स्त्री० )  
 शिशुमार-जलजंतु ( मकरभेद ),  
 तारात्मक विष्णु, ( पुं० ) ॥ ३ ॥  
 समुद्रारु-सेतुबन्ध, ग्राह, तिमिङ्गिल  
 ( मकरभेद ), ( पुं० )  
 संप्रहार-मृत्यु, युद्ध, ( पुं० )  
 सहचरी-कटसरैया वृक्ष ( पुं० स्त्री० )  
 ॥ ४ ॥  
 सहचर-समानउमरवाला, ( त्रि० )  
 मूर्ति ( पुं० )  
 सालसार-हींग, वृक्ष, ( पुं० ) ॥ ५ ॥

सुकुमार-पौंडा ( जस ) ( पुं० )  
 कोमल ( त्रि० )  
 सूत्रधार-शिल्पिभेद, इंद्र, ॥ ६ ॥  
 नांदीके पीछे आनेवाला नाटकका  
 पात्रभेद, ( पुं० )  
 स्थिरदंष्ट्र-सर्प, वराह अवतार, ( पुं० )  
 ॥ ७ ॥

रपञ्चम ।

उत्पलपत्र-कमलपत्र, लीके नखसे  
 हुवा घाव, ( न० )  
 कपिलधारा-स्वर्गनदी ( स्त्री० )  
 कपिलधार-तीर्थभेद ( पुं० ) ॥ ८ ॥

तमालपत्रं तिलके तापिच्छे पत्रकेऽपि च ।  
 तालीशपत्रं तालीशे तामलक्यां च न द्वयोः ॥ ९ ॥  
 सैकते करके छागे पिप्पले पादचत्वरः ।  
 परदीपप्रकाशैकतत्परेऽपि मतो नरे ॥ ३१० ॥  
 क्लीबं तु पीतकाबेरं पित्तले कुङ्कुमेऽपि च ।  
 स्यात्पांशुचामरो धूलीगुच्छकेऽपि प्रशंसने ॥ ११ ॥  
 वर्द्धापके पुरोटौ च दूर्वाश्चिततटीभुवि ।  
 बकुले वेधके नागकुसुमे नागकेसरः ॥ १२ ॥  
 स्याद्राजबदरं रक्तमलके लवलीफले ।  
 रोमगुच्छे च मन्तौ च रोमकेसर इष्यते ॥ १३ ॥  
 वस्वौकसारा श्रीदस्य नलिन्यामलकापुरि ।  
 विप्रतीसारः कौकृत्ये रोषेऽप्यनुशयेऽपि च ॥ १४ ॥

तमालपत्र—तिलक—पुष्पवृक्ष, तमा-  
 ल—वृक्ष, तेजपात, ( न० )  
 तालीशपत्र—तालीशपत्र, भुंई आँव-  
 ला ( न० ) ॥ ९ ॥  
 पादचत्वर—रेतीवाला—स्थल, ओला  
 ( वर्षाका पत्थर ), बकरा, पीपल-  
 वृक्ष, दूसरेके दोष प्रकाशितकरना-  
 एक इसी काममें तत्पर मनुष्य,  
 ( पुं० ) ॥ ३१० ॥  
 पीतकाबेर—पीतल, केसर, ( न० )  
 पांशुचामर—धूलीगुच्छ, प्रशंसा ११  
 वर्धापक ( ..... ), पुरोटि

( ..... ) दूब जमे हुये तट-  
 वाली पृथ्वी, ( पुं० )  
 नागकेसर—बौलश्री, अम्लबेत, नाग-  
 केसर ( पुं० ) ॥ १२ ॥  
 राजबदर—लालआँवला, हरपारेबड़ी-  
 का फल, ( न० )  
 रोमकेसर—रोमोंका गुच्छा, अपराध,  
 ( पुं० ) ॥ १३ ॥  
 वस्वौकसारा—कुबेरकी अलका  
 नामकी पुरी, कमलिनी, ( स्त्री० )  
 विप्रतीसार—क्रोध, पछताना, ( पुं० )  
 ॥ १४ ॥

मतः समभिहारस्तु पौनःपुन्ये भृशार्थके ।  
 पुंसेव सर्वतोभद्रः काव्यचित्रे गृहान्तरे ॥ १५ ॥  
 निम्बेऽथ सर्वतोभद्रा गम्भार्या नटयोषिति ॥ ३१६ ॥  
 इति विश्वलोचनेऽपराभिधानायां मुक्तावल्यां रेफान्तवर्गः समाप्तः॥

### अथ लान्तवर्गः ।

लैकम् ।

ल इन्द्रे ला तु दाने स्यादाश्लेषेऽपि लयेऽपि च ।  
 अपि लूरुश्लेदके पुंसि लवणे लूरपि स्मृता ॥ १ ॥  
 लद्वितीयम् ।

अम्लो रसप्रभेदे स्यादम्ली चाङ्गेरिकौषधौ ।  
 अलिर्भृङ्गे सुरायां स्त्री स्यादालिः पिण्डले स्त्रियाम् ॥ २ ॥  
 सख्यां पङ्क्तावपि ख्याता वाच्यवद्विशदाशये ।  
 आलुर्गलन्तिकायां स्त्री क्लीवे भेलककन्दयोः ॥ ३ ॥

समभिहार—बारबार, अत्यंत (पुं०)  
 सर्वतोभद्र—काव्य-चित्रबंध, गृह  
 (घर) भेद ॥ १५ ॥ नींब वृक्ष (पुं०)  
 सर्वतोभद्रा—कंभारी, नटकी स्त्री,  
 ( स्त्री० ) ॥ ३१६ ॥  
 ॥ इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषा  
 टीकामें रान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

### अथ लान्तवर्गः ।

लैक ।

ल-इन्द्र (पुं०)  
 ला दान, मिलना, प्रलय, (पुं०)

लू-काटनेवाला, (पुं०) लू-नमक  
 ( स्त्री० ) ॥ १ ॥

### लद्वितीय ।

अम्ल-रसभेद (पुं०)  
 अम्ली-चूका-औषधि ( स्त्री० )  
 अलि-भौरा (पुं०) मदिरा (स्त्री०)  
 आलि-पुल, ॥ २ ॥ सखी, पंक्ति,  
 ( स्त्री० ) स्वच्छहृदयवाला ( त्रि० )  
 आलु-झारी ( स्त्री० ) भेलक  
 ( नदीतैरनेको पूलाआदि ), कन्द,  
 ( न० ) ॥ ३ ॥



इला गोभूमिपीयूषे भारत्यां सौम्ययोषिति ।  
 ओल्लस्तु सूरणे पुंसि स्यादाद्रे त्वभिधेयवत् ॥ ४ ॥  
 कलस्तु मधुरान्यक्तशब्देऽजीर्णे कलं सिते ।  
 कला तु षोडशांशे स्यादिन्दोरप्यंशमात्रके ॥ ५ ॥  
 मूलार्थवृद्धौ शिल्पादौ कलनाकालभेदयोः ।  
 कलिरन्त्ययुगे कन्दे कन्दले सुभटे पुमान् ॥ ६ ॥  
 कालस्तु समये मृत्यौ महाकाले यमे शितौ ॥  
 कृष्णे त्रिष्वथ काली स्यात्कालिकामातृभेदयोः ॥ ७ ॥  
 गौर्या नवाम्बुदानीके क्षीरकीटापवादयोः ।  
 काला तु कृष्णत्रिवृत्ति नीलीमञ्जिष्ठयोरपि ॥ ८ ॥  
 कीला कफोणिघाते स्यात्कीले शङ्कौ च कीलवत् ।  
 कुलं सजातीयगणे गोत्राङ्गगृहनीवृत्ति ॥ ९ ॥

इला—गौ, भूमि, अमृत, वाणी (सरस्वती), बुधग्रहकी स्त्री, ( स्त्री० )	काल—समय, मृत्यु, महाकाल, धर्म-राज, नीला रंग, ( पुं० ) काला रंगवाला ( त्रि० )
ओल्ल—जमीकंद ( पुं० ) गीला ( त्रि० ) ॥ ४ ॥	काली—काला रंगवाली, मातृभेद ( देवी भेद ), ( स्त्री० ) ॥ ७ ॥ गौरी, नवीनमेघकी घटा, दुग्धका कीट, निंदा, ( स्त्री० )
कल—मधुर और अप्रकट शब्द, ( पुं० ) अजीर्ण ( त्रि० )	काला—काली निसोध, नीली, मँजीठ, ( स्त्री० ) ॥ ८ ॥
कल—वीर्य ( न० )	कीला—कील—कौहनीसे मारना, अम्रितेज, शंकु ( कीला ), ( स्त्री० पुं० )
कला—सोलहवाँ भाग, चंद्रमाकी कला, ॥ ५ ॥ मूलद्रव्यकी वृद्धि, शिल्पआदि, कलना ( संख्या-जोड़ना ), कालभेद, ( स्त्री० )	कुल—सजातीयसमूह, गोत्र, शरीर, घर, देश, ( न० ) ॥ ९ ॥
कलि—कलियुग, कन्द, कंदल ( नवीन अंकुर ), योद्धा, ( पुं० ) ॥ ६ ॥	

कूलं प्रतीरे सैन्यस्य पृष्ठे स्तूपतडागयोः ।  
 कोलोक्कपालावुत्सङ्गे क्रोडे भेलकचित्रयोः ॥ १० ॥  
 खल्ले कोलं तु कुवले कोला पिप्पलिचव्ययोः ।  
 खलः शठेऽधमे नीचे त्रिषु स्यात्तु खलं भुवि ॥ ११ ॥  
 खलं स्थानेऽपि कल्केऽपि सस्यस्थानेऽपि न द्वयोः ।  
 खल्ला चर्मणि निम्नेऽपि वस्त्रभेदेऽपि चातके ॥ १२ ॥  
 खल्ली तु हस्तपादावमर्दनाख्यरुजि स्त्रियाम् ।  
 खिलं भवेदप्रहते सारसङ्क्षिप्तवेधसोः ॥ १३ ॥  
 गलः कण्ठे सर्ज्जरसे गलः स्कन्धे महीरुहे ।  
 गोला गोदावरीसख्योर्गोला पत्राञ्जने मता ॥ १४ ॥  
 कुनत्थ्यामपि गोलं तु मणिके मण्डलेऽपि च ।  
 चलश्चलाचले कम्पे कमलाविद्युतोश्चला ॥ १५ ॥

कूल-तीर-नदीआदिका, सेनाकी पीठ, बङ्गाआदि, तालाब, (न०)	खल्ली-हाथपैरोमें अवमर्दन नामका रोग, (स्त्री०)
कोल-गोदका सिरा या धाय, गोद, सूकर, नदीतरनेका पूलाआदि, चीता औषधि ॥ १० ॥ लँगडा, (पुं०)	खिल-नवीन, सारसंक्षिप्त, (त्रि०) ब्रह्मा (पुं०) ॥ १३ ॥
कोल-बेर (न०)	गल-कंठ, रालवृक्ष, कंधा, वृक्ष, (पुं०)
कोला-पीपल, चव्य, (स्त्री०)	गोला-गोदावरी-नदी, सखी, तेजपात, मनसिल, (स्त्री०)
खल-मूर्ख, अधम, नीच, (त्रि०)	गोल-बडाकुंभ, गोल आकारवाला मंडल, (न०) ॥ १४ ॥
खल-पृथ्वी, ॥ ११ ॥ स्थान, तिल-आदिकी खली, तृणस्थान, (न०)	चल-चलनेके खभाववाला, काँपना, (त्रि०)
खल्ला-चर्म, खडा, वस्त्रभेद, पपीहा (स्त्री०) ॥ १२ ॥	चला-लक्ष्मी, बिजली, (स्त्री०) ॥ १५ ॥

चालश्छदिषि पुंसेव चालः स्यात्कम्पनेऽपि च ।  
 क्लिन्नाक्षितायिनोश्चिल्लश्चिल्ली स्यात्क्षुद्रवास्तुके ॥ १६ ॥  
 क्लिन्ननेत्रयुते तु स्याच्चिल्लः खुल्लश्च वाच्यवत् ।  
 चुल्लः क्लिन्नेऽक्षिण चुल्ली तु चितावुद्धानवाद्ययोः ॥ १७ ॥  
 चेलं स्यादंशुके नीचे गर्हितेऽप्यभिधेयवत् ।  
 छल्ली तु वल्कले पुष्पभेदे सन्नतिवीरुधोः ॥ १८ ॥  
 छलं तु स्वलितेऽपि स्याद्याजेऽपि छलमद्वयोः ।  
 जलं शोकरवे नीरे ह्रीवरेऽपि जडे त्रिषु ॥ १९ ॥  
 जालस्तु क्षारकानायगवाक्षे दम्भवृक्षयोः ।  
 जाली पटोलिकायां स्याज्जालो नीपमहीरुहे ॥ २० ॥  
 झला स्यादातपस्योर्मौ तथा पुत्रीसुलक्षयोः ।  
 झिल्ली त्वातपरुग्वन्धां झीरुकोद्वर्त्तनांशयोः ॥ २१ ॥

चाल—छप्पर, काँपना ( पुं० )

चिल्ल—चिड़पड़ानेत्रवाला, चील्ह—पक्षी ( पुं० )

चिल्ली—छोटा बधुवा ( स्त्री० ) ॥ १६ ॥

चिल्ल—खुल्ल—चिड़पड़ानेत्रवाला ( त्रि० )

चुल्ल—चिड़पड़ानेत्र ( पुं० )

चुल्ली—चिता, चूल्हा, बाजा ( स्त्री० )

॥ १७ ॥

चेल—वल्क ( न० ) नीच, निंदित, ( त्रि० )

छल्ली—वृक्षका बकला, पुष्पभेद, संतति ( संतान ), बेल, ( स्त्री० ) ॥ १८ ॥

छल—छलना, बहना, ( न० )

जल—शोक का शब्द, पत्नी, नेत्रवाला, ( न० ) जड ( त्रि० ) ॥ १९ ॥

जाल—जवाखार, जाल, जाली झरोखा, दम्भ, वृक्ष, ( पुं० )

जाली—परवल—शाक ( स्त्री० )

जाल—कदंब—वृक्ष ॥ २० ॥

झला—धूपकी लहरी, पुत्री, ( स्त्री० )

झिल्ली—आतपकांति, इन्दी, चिरी-कीट, ( स्त्री० )

झीरुका—उबटना, विभाग, ( पुं० ) ॥ २१ ॥

तलस्ताले तलं खड्गमुष्टौ ज्याघातवारणे ।  
 वने चपेटे न स्त्री तु स्वरूपाऽऽधारयोस्तलम् ॥ २२ ॥  
 तल्ली तरुण्यां तल्लस्तु विले पुंसि नपुंसके ।  
 तालो द्रुमान्तरेङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां च सम्मिते ॥ २३ ॥  
 गीतकालक्रियाभावे तालः खड्गादिमुष्टिषु ।  
 तालः स्यात्कांस्परचित्वाद्यभाण्डान्तरे तथा ॥ २४ ॥  
 करास्फारे करतले तालं तु हरितालके ।  
 तुला राशौ पलशते तुल्यतामानभेदयोः ॥ २५ ॥  
 बन्धाय गृहदारूणां पीठिकायां सभाजने ।  
 तूलः पिचौ पुमांस्तूलमाकाशे ब्रह्मदारुणि ॥ २६ ॥  
 अपद्रव्ये छदोच्छ्रायखण्डे शस्त्रीछदे दलम् ।  
 डुलिः पुंसि मुनेर्भेदे कमट्यां तु स्त्रियां डुलिः ॥ २७ ॥

तल-ताड-वृक्ष ( पुं० ) तल-  
 खड्गकी मूठ, धनुषके ज्याघातको  
 रोकनेवाला, वन, थप्पड, ( पुं०  
 न० ) स्वरूप, आधार, ( न० )  
 ॥ २२ ॥

तल्ली-जवान स्त्री ( स्त्री० ) तल्ल-  
 हींग ( पुं० न० )  
 ताल-अंगूठा और मध्यमा अँगुलीका  
 प्रमाण, ॥ २३ ॥ गानेकी  
 कालक्रियाका मान, खड्ग आदिकी  
 मूठ, काँसीका बजानेका पात्र  
 ॥ २४ ॥ दोनों हाथ फैलाकर  
 प्रमाण, ( पुरस् ) हथेली, ( पुं० )  
 हरिताल ( न० )

तुला-तुला-राशि, सौ ( १०० )  
 तोले, तुल्यता, तोलभेद, ॥ २५ ॥  
 घरका काठ बाँधनेके लिये पी-  
 ठिका ( चौकीरूप काष्ठ ), सत्कार,  
 ( स्त्री० )

तूल-रुईका गीला फोया, ( पुं० )  
 तूल-आकाश, ब्रह्मदारु, ( न० )  
 ॥ २६ ॥

दल-अपद्रव्य ( खराब वस्तु ), पत्ता,  
 ऊँचा, टुकड़ा, छुरीको निवारण  
 करनेवाला द्रव्य, ( न० )

डुलि-मुनिभेद ( पुं० ) डुलि-  
 कछवी ( स्त्री० ) ॥ २७ ॥

दोला यानान्तरे नील्यां धूलिः शङ्खचान्तरे रजे ।

नलः पोटगले राशि कपीशे पितृदेवते ॥ २८ ॥

नली मनःशिलायां स्यान्नलं तु सरसीरुहे ।

पद्मदण्डे न ना नाला नाली शाककदम्बके ॥ २९ ॥

नाला पानकरङ्गादिरन्ध्रे नालस्तु पञ्जरे ।

नीलस्तु कृष्णवर्णे स्यात्त्रिषु नीलः कपीश्वरे ॥ ३० ॥

नीलो नगान्तरे कृष्णे नीलं वृक्षाङ्गभेदयोः ।

पल्ली तु कुट्यां कुग्रामे पल्लः स्थूलकुसूलयोः ॥ ३१ ॥

पलं मांसं तथोन्माने पालिः पङ्क्तिप्रदेशयोः ।

प्रस्थे कर्णलताग्रेश्चे यूकासश्मश्रुयोषितोः ॥ ३२ ॥

इन्द्रादेर्देयभागे च विश्राम्य चागतज्वरे ।

अश्रौ चिह्ने च पिल्लस्तु क्लिप्तेऽक्षिण त्रिषु तद्वति ॥ ३३ ॥

दोला—सवारीभेद ( डोली ), नीली,  
( स्त्री० )

धूलि—संख्याभेद, रज ( धूल ), ( स्त्री० )

नल—कास या देवनल, नल—राजा,  
वानरोंका राजा, पितृदेव, ( पुं० ) २८

नली—मनसिल ( स्त्री० ) नल—कमल  
( न० )

नाला—कमलकी डंडी ( स्त्री० न० )

नाली—शाकका समूह ( स्त्री० )  
॥ २९ ॥

नाला—पीना, हड्डीआदिका छिद्र,  
( स्त्री० )

नाल—पिंजरा ( पुं० )

नील—काला रंग ( त्रि० ) नील—  
कपीश्वर ( पुं० ) ॥ ३० ॥

नील—पर्वतभेद, काला द्रव्य, ( पुं० )

नील—वृक्ष, अंकभेद, ( न० )

पल्ली—कुटिया, कुग्राम, ( स्त्री० )

पल्ल—बड़ा, कुटला, ( पुं० ) ॥ ३१ ॥

पल—मांस, उन्मान ( तोल ), चार  
तोल, ( न० )

पालि—पंक्ति, प्रदेश ( स्थल ),

६४ तोला, कर्णलताका अग्रभाग,  
विभाग, जूं, डाढीमुखोंवाली स्त्री

॥ ३२ ॥ इन्द्रआदिको देनेयोग्य  
भाग, विश्राम करके आयाहुवा

ज्वर, कोण चिह्न, ( त्रि० )

पिल्ल—चिह्नपडा नेत्र, चिह्नपडानेत्र-  
वाला, ( त्रि० ) ॥ ३३ ॥

पीलुर्दुमे गजे पुष्पे काण्डतालास्थिखण्डयोः ।  
 अणुमात्रेऽप्यथ पुलः पुलके विपुले त्रिषु ॥ ३४ ॥  
 फलं तु सस्ये हेतुत्थे फलके व्युष्टिलाभयोः ।  
 जातीफलेऽपि कङ्कोले मार्गणाग्रेऽपि न द्वयोः ॥ ३५ ॥  
 स्यात्फलं त्रिफलायां च फलिन्यां तु फली क्षियाम् ।  
 फालं सीरस्य लौहे स्यात्कर्पासादेश्च वाससि ॥ ३६ ॥  
 बलो हलिनि दैत्येऽङ्गे काके बलिनि वाच्यवत् ।  
 बलं गन्धरसे सैन्ये स्थामनि स्थौल्यरूपयोः ॥ ३७ ॥  
 बला वाट्यालके प्रोक्ता बलिः पुंस्यसुरान्तरे ।  
 बलिश्चामरदण्डेऽपि करपूजोपहारयोः ॥ ३८ ॥  
 सैन्धवेऽपि बलिः स्त्री तु जरसा श्लथचर्मणि ।  
 कुक्षिभागविशेषे च गृहकाष्ठान्तरे द्वयोः ॥ ३९ ॥

पीलु-पीलु ( जाल ) वृक्ष, हस्ती,  
 पुष्प; दंड या बाण, ताडकी गुठ-  
 लीका टुकड़ा, अणुमात्र, ( पुं० )

पुल-फूलना, विपुल ( बहुत ),  
 ( त्रि० ) ॥ ३४ ॥

फल-वृक्षआदिका फल, किसीकार-  
 णसे उत्पन्नहुवा, ढाल, फल या  
 समृद्धि, लाभ, जायफल, कंकोल,  
 बाणका अग्रभाग, ( पुं० न० )  
 ॥ ३५ ॥

फल-त्रिफला, ( न० ) फली-  
 प्रियंगु-वृक्ष, ( स्त्री० )

फाल-हलका लोहा ( कुस ), कपास

आदिका वज्र, ( न० ) ॥ ३६ ॥

बल-बलदेव, एक दैत्य, अंग, काग,  
 ( पुं० ) बलवान ( त्रि० )

बल-गोपरस, सेना, स्थिरभाव, मोटा-  
 पन, रूप, ( न० ) ॥ ३७ ॥

बला-खरँहटी ( स्त्री० )

बलि-असुरभेद ( बलि ), चँवरकी  
 डाँडी, राजाका कर, पूजामें भेट  
 ॥ ३८ ॥ सेंधा-नमक, ( पुं० )

बलि-वृद्धता करके क्षिथिलहुवा शरी-  
 रचर्म ( स्त्री० ) उदरका एक भाग,  
 बरका काष्ठभेद, ( न० ) ॥ ३९ ॥

बह्नी स्यादजमोदायां लतायां कुसुमान्तरे ।

बालः पुंसि शिशौ केशे वाजिवारणबालधौ ॥ ४० ॥

मूर्खेऽपि बालो बालं तु हीबेरे पुंनपुंसकम् ।

बिलं गुहायां रन्ध्रे च विलस्त्विन्द्रहये पुमान् ॥ ४१ ॥

वेला कालेऽपि सीमायामीश्वराणां च भोजने ।

दत्तमांसेऽधिवेला स्यात्पयोनाशेऽपि नीरधेः ॥ ४२ ॥

तन्नीरेऽक्लिष्टमरणे राशौ वाचि बुधस्त्रियाम् ।

भल्लो बाणेऽपि भल्लूके भल्ली भल्लातबाणयोः ॥ ४३ ॥

भालं तु न द्वयोरेव ललाटमहसोर्मतम् ।

ऋषिभेदे प्लवे भेलो भेलं भीरुहृदि त्रिषु ॥ ४४ ॥

मलस्त्रिप्वेव कृपणे न स्त्री विट्किट्टकिल्विषे ।

मलः पात्रे कपाले च मत्स्यभेदे कपालिनि ॥ ४५ ॥

बह्नी—अजमोद, बेल, पुष्पभेद (स्त्री०)

बाल—शिशु (छोटा लडका), (त्रि०)

केश ( बाल ), घोडे और हस्तीका

केशसमूहयुक्त पूँछ, (पुं०) ॥ ४० ॥

मूर्ख ( त्रि० )

बाल—नेत्रवाला ( पुं० न० )

बिल—गुफा, छिद्र, ( न० ) बिल-

इंद्रका अश्व ( उच्चैःश्रवा ) ( पुं० )

॥ ४१ ॥

वेला—काल, सीमा, राजाआदिकोंका

भोजन, दत्तमांस (दियाहुवा मांस),

अधिवेला—समुद्रके जलका नाश,

समुद्रका जल, एकांतका मरण,

राशि ( समूह ), वाणी, बुधकी

स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ ४२ ॥

भल्ल—बाण ( भाला ), रीछ, ( पुं० )

भल्ली—भिलावा, बाण ( भाला ),

( स्त्री० ) ॥ ४३ ॥

भाल—मस्तक, (ललाट), तेज, (न०)

भेल—ऋषिभेद, छोटी नौका, ( पुं० )

भेल—डरपोकहृदय ( त्रि० ) ॥ ४४ ॥

मल—कृपण ( कंजूस ) ( त्रि० )

मल—विष्ठा, कानआदिका मल, पाप,

( पुं० न० )

मल्ल—पात्र, कपाल, मत्स्यभेद, कपा-

लवाला, ( पुं० ) ॥ ४५ ॥

मल्लो बलाढ्ये सुभगे मल्ली तु कुसुमान्तरे ।

मालुः पत्रलतायां स्याद्वनितायामपि स्त्रियाम् ॥ ४६ ॥

मालं क्षेत्रे जने मालो माला पुष्पादिदामनि ।

मूलमाद्यशिफापार्श्वकुञ्जे मूलेऽपि तारके ॥ ४७ ॥

मसिमेलकयोर्मैला मौलिर्धम्मिलचूडयोः ।

किरीटेऽपि द्वयोरेव पुंसि वञ्जुलपादपे ॥ ४८ ॥

लीला हावान्तरे स्त्रीणां केलौ खेलाविलासयोः ।

लोला जिह्वाश्रियोर्लोलः सतृष्णचलयोस्त्रिषु ॥ ४९ ॥

व्यालः शठे भुजङ्गे च श्वापदे दुष्टदन्तिनि ।

शलं तु शलकीलोमि शलो भृङ्गिगणे विधौ ॥ ५० ॥

शालो मत्स्यान्तरे वृक्षसामान्ये हालभूभुजि ।

शाला वेश्मनि वेश्मैकप्रदेशे स्कन्धशाखयोः ॥ ५१ ॥

मल्ल-पहलवान्, अच्छ ऐश्वर्यवाला, ( पुं० )

मल्ली-पुष्पभेद, ( मोतिया-भेद ) ( स्त्री० )

मालु-पान-बेल, स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ ४६ ॥

माल-क्षेत्र, ( न० )

माल-जन ( पुं० )

माला-पुष्पआदिकी लडी, ( स्त्री० )

मूल-आदिमें होनेवाला, वृक्षकी जड़, समीप, कुंज ( लताकुटी ), मूल-नक्षत्र ( न० ) ॥ ४७ ॥

मैला-स्याही ( अंजन ), मिलना ( स्त्री० )

मौलि-केशवेश, चोटी, मुकुट ( पुं० स्त्री० ) अशोक-वृक्ष ( पुं० ) ॥ ४८ ॥

लीला-स्त्रियोंका हावभेद, क्रीडा, खेलना कूदना, विलास, ( स्त्री० )

लोला-जीभ, लक्ष्मी, ( स्त्री० )

लोल-तृष्णावाला, चंचल ( त्रि० ) ॥ ४९ ॥

व्याल-शठ ( मूर्ख ), सर्प, वनजीव. खोटाहस्ती ( पुं० )

शल-सेहकी शूल ( न० ) भृङ्गिनामका गण, चंद्रमा ( पुं० ) ॥ ५० ॥

शाल-मत्स्यभेद, वृक्षमात्र, हाल नामका राजा, ( पुं० )

शाला-मकान, मकानका एक हिस्सा, डाहला, शाखा ( टहनी ) ( स्त्री० ) ॥ ५१ ॥



शालुः कषायद्रव्येपि शालुश्चोरास्यभेषजे ।

मतः शालिः पुमान् गन्धमार्जारैः कलमादिषु ॥ ५२ ॥

शिला कुनट्यां द्वाराधोदारुणि ग्रावणि स्त्रियाम् ॥

शिलमुञ्छशिले क्लीवं गण्डूष्यां शिली मता ॥ ५३ ॥

शीलं स्वभावे सद्रृते शुक्ले धवलयोगयोः ।

शुक्लं तु रूप्यके शुक्लां त्रिषु शुक्लगुणान्विते ॥ ५४ ॥

शूलं मृत्यौ ध्वजे ना तु योगे न स्त्री रुगस्त्रयोः ।

शूला तु पण्ययोषायां दुष्टनाशाय कीलकः ॥ ५५ ॥

शैलः क्षमाभृति शैलं तु शैलेये तार्क्ष्यशैलके ।

शालः स्याद्वरणे हाले पादपे सर्जपादपे ॥

स्थालं भाजनभेदे स्यात्स्थाली स्यात्पाटलोत्पयोः ॥ ५६ ॥

शालु—कसैला द्रव्य, असवर्गन या, शुक्ल—चर्दी ( न० )

भट्टर औषधि ( पु० )

शुक्ल—सफेदरंगवाला ( त्रि० ) ॥ ५२ ॥

शालि—गंधमार्जार, ( गंधविलाव )

शूल—मृत्यु, ( न० ) ध्वजा, योग

कलम ( नाँटी चावल ) ( पुं० )

( पुं० ) रोग, अस्त्र ( पुं० न० )

॥ ५३ ॥

शूला—घंट्या, दुष्टोंके मारनेकेलिये

शिला—मनशिल, द्वारके नीचेका

बोला ( शूल ) ( स्त्री० )

काष्ठ, पत्थर ( शिला ) ( स्त्री० )

॥ ५५ ॥

शिल—उंछ ( दुकानआदिसे पड़ा )

शैल—पर्वत, ( पुं० )

अन्नका इकट्ठाकरना, खेतमें से अन्न

शैल—शिलाजीत, रसोत ( न० )

लेना, ( न० )

साल—सम्बुवा वृक्ष, साल वृक्ष,

शिली—गिँडोवा, ( स्त्री० ) ॥ ५३ ॥

रालका वृक्ष ( पुं० ) ।

शील—स्वभाव, श्रेष्ठवृत्तांत, ( न० )

स्थाल—पात्रभेद ( थाल ), स्थाली—

शुक्ल—श्वेत ( सफेद ), योग ( पुं० )

पाठरि, बटलोई ( स्त्री० ) ॥ ५६ ॥

स्थूलस्तु वाच्यवत्पीने कूटनिम्प्रज्ञयोरपि ।

हाला मद्ये नृपे हालो हेलाऽवज्ञाविलासयोः ॥ ५७ ॥

लतृतीयम् ।

स्यादङ्गुली तु मातङ्गकर्णिकाकरशाखयोः

अचलः पर्वते कीले निश्चलेऽप्यचला भुवि ॥ ५८ ॥

अञ्जलिः पुंसि कुडवे करसंपुटकेऽञ्जलिः ।

अनलो वसुभेदेऽभावनिलो वसुवातयोः ॥ ५९ ॥

अवेलः पूगरागेऽपि रवतोयचशालयोः ।

अपलापेऽप्यवेलं स्यादवेला पूगचूर्णयोः ॥ ६० ॥

अमला कमलायां स्यादमलं विशदेऽभ्रके ।

स्यादरालः पुमान्सर्जे मत्तेभे कुटिलेऽन्यवत् ॥ ६१ ॥

स्थूल-मोटा ( त्रि० ) ढेर, बुद्धिहीन, अंजलि-कुडव ( १६ तोला ),  
( पुं० ) हाथोंका संपुट ( अंजलि ) ( पु० )

हाला-मदिरा, ( स्त्री० )

हाल-एकराजा ( पुं० )

हेला-तिरस्कार, स्त्रियोंका विलास  
( स्त्री० ) ॥ ५७ ॥

लतृतीय ।

अङ्गुली-हस्तीकी कर्णिका ( सँड ),  
हाथकी शाखा ( अङ्गुली ) ( स्त्री० )

अचल-पर्वत, कीला, निश्चल ( नहीं  
चलनेवाला ) ( पुं० )

अचला-पृथ्वी ( स्त्री० ) ॥ ५८ ॥

अनल-वसुभेद, अग्नि, ( पुं० )

अनिल-वसु, वायु ( पुं० ) ॥ ५९ ॥

अवेल-सुपारीका रंग,..... ( पुं० )

अवेल-गोप्य ( न० )

अवेला-सुपारी, चूना ( स्त्री० )

॥ ६० ॥

अमला-लक्ष्मी, ( स्त्री० )

अमल-निर्मल ( त्रि० ) भोडल

( न० )

अराल-राल-वृक्ष, उन्मत्त हस्ती

( पुं० ) कुटिल ( त्रि० ) ॥ ६१ ॥

अन्तःकपाटयोर्दण्डे कल्लोलेऽप्यर्गलं त्रिषु ।

आभीलं न द्वयोः कष्टे त्रिष्वाभीलं भयानके ॥ ६२ ॥

मृगशीर्षशिरस्ताराखिल्वलाः स्युरथेत्वलः ।

मीने दैत्यप्रभेदे च शृङ्गार उज्ज्वलः पुमान् ॥ ६३ ॥

उज्ज्वलो वाच्यवद्दीप्ते परित्यक्तविकाशिषु ।

उत्तालो मर्कटे श्रेष्ठे विकरालोत्कटे त्रिषु ॥ ६४ ॥

उत्पलं कुवले कुष्ठे निर्ममीसे तु त्रिषूत्पलम् ।

उत्फुल्लः करणे स्त्रीणामुत्ताने विकचेऽन्यवत् ॥ ६५ ॥

उत्ताल उद्गते श्रेष्ठेऽप्यूर्ध्वनालेऽपि वाच्यवत् ।

उपला शर्करायां म्यादुपलो ग्रावरत्नयोः ॥ ६६ ॥

कदलीभपताकायां पताकायां मृगान्तरे ।

रम्भायां चाथ कदली पृश्न्यां डिम्ब्यां च शाल्मलौ ॥ ६७ ॥

अर्गल—भीतरका किवाडोंका उंडा  
( अरली ), तरंग ( त्रि० )

आभील—कष्ट ( न० ) भयानक  
( त्रि० ) ॥ ६२ ॥

इल्वला—मृगशिरनक्षत्रके शिरऊप-  
रकी तारा, ( स्त्री० )

इल्वल—मच्छी, दैत्यभेद, ( पुं० )

उज्ज्वल—शृंगार ( पुं० ) ॥ ६३ ॥

उज्ज्वल—दीप्त, प्रकट, प्रकाशवाला  
( त्रि० )

उत्ताल—बन्दर, श्रेष्ठ, विकराल  
( भयंकर ), उत्कट ( तेज )  
( त्रि० ) ॥ ६४ ॥

उत्पल—कमल या बदरीफल ( बेर )  
( न० ) मांसरहित ( त्रि० )

उत्फुल्ल—त्रियोंका कारण ( हाव )  
भावादि ( पुं० ) सीधा, खिला-  
हुवा ( त्रि० ) ॥ ६५ ॥

उत्ताल—ऊपरको प्राप्त, श्रेष्ठ, ऊप-  
रकी नालवाला ( त्रि० )

उपला—शर्करा ( शकर ) ( स्त्री० )

उपल—पत्थर, रत्न ( पुं० ) ॥ ६६ ॥

कदली—हस्तीकी ध्वजा, ध्वजामात्र,  
मृगभेद, केला, पृश्नि ( एडी ),  
मारी, साल-वृक्ष, ( स्त्री० )  
॥ ६७ ॥

कन्दलं कलहे युद्धे नवाङ्कुरकपालयोः ।  
 कलध्वनौ चाथ तरौ मृगभेदेऽपि कन्दली ॥ ६८ ॥  
 कपिलो मुनिभेदेऽग्नौ शुनि पिङ्गे तु वाच्यवत् ।  
 कपिला शिशपागोत्रभिद्वहिदिग्दन्तयोपिति ॥ ६९ ॥  
 रेणुकायां च कपिला कपालोऽस्त्री शिरोस्थनि ।  
 घटादिशकले कुष्ठरोगभेदे व्रजेऽपि च ॥ ७० ॥  
 कमलं जलजे नीरे क्लोम्नि तोषे च भेषजे ।  
 कमलो मृगभेदे स्यात्कमला श्रीवरस्त्रियाम् ॥ ७१ ॥  
 कम्बलो नागराजे ना सास्त्रायां च कुथे कृमौ ।  
 अपि स्यादुत्तरामङ्गे क्लीबं पयसि कम्बलम् ॥ ७२ ॥  
 करालो दन्तुरे तुङ्गे भीषणेऽप्यभिधेयवत् ।  
 करालो धूनतैले स्यात्करालं तु कुंठरके ॥ ७३ ॥

कंदल-कलह, युद्ध, नवीन अंकुर, कपाल, मधुरध्वनि ( न० )	कमल-कंबल, जल, फेफडा, संतोष, औपधि ( न० )
कन्दली-केला, मृगभेद ( स्त्री० )	कमल-मृगभेद, ( पुं० )
॥ ६८ ॥	कमला-लक्ष्मी, श्रेष्ठ स्त्री, ( स्त्री० )
कपिल-कपिल-मुनि, अग्नि, कुत्ता, ( पुं० ) कपिलवर्णवाला ( त्रि० )	॥ ७१ ॥
कपिला-सीसम-वृक्ष, पर्वतभेद, अग्निकोणके हाथीकी हथनी (स्त्री०)	कंबल-नागराज, गौंके गलकी चर्म, हस्तीकी पीठपर बिछानेका कपडा, कृमि, डुपडा, ( पुं० )
॥ ६९ ॥	कंबल-जल ( न० ) ॥ ७२ ॥
कपिला-रेणुका, ( स्त्री० )	कराल-बड़ेदाँतोवाला, ऊँचा, भयंकर ( त्रि० )
कपाल-शिरकी खोपरी, घडाआदिका डुकडा, कुष्ठरोग-भेद, समूह ( पुं० न० ) ॥ ७० ॥	कराल-रालका तेल, ( पुं० )
	कराल-सफेदवनतुलसी ( न० ) ॥ ७३ ॥

कल्लोलः ख्यात उल्लोलः प्रमोदपरिपन्थिषु ।  
 काकोलो द्रोणकाके स्याद्विषभेदकुलालयोः ॥ ७४ ॥  
 अपि काकोलकाकोल्यौ स्यातामोषधिभेदयोः ।  
 काकीलस्तु कलाजीवे कामकेलिप्रणालयोः ॥ ७५ ॥  
 अपाश्रयमनोहारितरुच्छायार्थकोप्ययम् ।  
 कामलः कामुके रोगभेदे मरुवसन्तयोः ॥ ७६ ॥  
 काहली तु तरुण्यां स्यात्काहलं भृशशुष्कयोः ।  
 काहला वाद्यभाण्डस्य विशेषे काहलः खले ॥ ७७ ॥  
 किट्टालस्ताम्रकलशे लोहगूथेऽप्ययं पुमान् ।  
 कीलालं रुधिरेऽपि स्यात्पानीयेऽपि नपुंसकम् ॥ ७८ ॥  
 कुकूलं शङ्कुसङ्कीर्णश्वश्रे पुंसि तुषानले ।  
 कुचेला विद्वकर्ण्यां स्यात्कुचेलो मलिनांशुके ॥ ७९ ॥

कल्लोल—भारीतरंग, आनंद, शत्रु, ( पुं० )	काहला—अलंन, सूखा ( न० )
काकोल—कागभेद, विषभेद कुम्हार ( पुं० ) ॥ ७४ ॥	काहला—वाद्यभाण्डभेद ( स्त्री० )
काकोल—काकोली—औषधिभेद ( कमसे पुं० स्त्री० )	काहल—खल—पुरुष ( पुं० ) ॥ ७७ ॥
काकील—कलासे आजीविका करने- वाला, कामकेलि, प्रणालि ( जल- निर्गमस्थान ) ( पुं० ) ॥ ७५ ॥	किट्टाल—ताम्रकलश, लोहेका मल, ( पुं० )
आश्रयारहित, सुंदर वस्तु, वृक्षछाया ( पुं० )	कीलाल—रुधिर, जल ( न० ) ॥ ७८ ॥
कामल—कामी पुरुष, रोगभेद, मरु- स्थल, वसंत—ऋतु ( पुं० ) ७६ ॥	कुकूल—शंकु ( कीलाआदि ) से- कियाहुवा खड़ा, तुषका अग्नि ( पुं० )
काहली—जवान स्त्री, ( स्त्री० )	कुचेला—सोनापाठा ( स्त्री० )
	कुचेल—मलिनवस्त्रवाला ( त्रि० ) ॥ ७९ ॥

कुटिलं वाच्यवद्गुणं कुटिला निम्नगान्तरे ।

कुण्डलं कर्णभूषायां तथा वलयपाशयोः ॥ ८० ॥

काञ्चनद्रौ गुडूच्यां च कुण्डली वर्तते स्त्रियाम् ।

कुदालो युगपत्रे स्यात्कुदालो भूमिदारणे ॥ ८१ ॥

कुन्तलाः स्युर्जनपदे देशे केशे च कुन्तलः

कुन्तलो लाङ्गलेऽपि स्याद्यवे भालेऽपि दृश्यते ॥ ८२ ॥

श्लोकच्छायाहरे चौरै र्याले मीने च कुम्भिलः ।

कुरलः पक्षिभेदे स्यात्कुरलश्चूर्णकुन्तले ॥ ८३ ॥

कुलालः कुम्भकारेऽपि कुक्कुभे कौशिकेऽपि च ।

कुवलं तूत्पले मुक्ताफलेऽपि बदरीफले ॥ ८४ ॥

कुशलं धर्मपर्याप्तिक्षेमेऽपि त्रिषु शिक्षिते ।

वाच्यवत्केवलस्त्वेककृत्स्नयोः कुहनेऽपि च ॥ ८५ ॥

कुटिल-दुर्गमस्थानआदि ( त्रि० )

कुटिला-नदी, ( स्त्री० )

कुण्डल-कर्णांका आभूषण, कंकण,  
पाश ( फौशी ) ( न० ) ॥ ८० ॥

कुण्डली-सुवर्णवृक्ष ( नागकेशर ),  
गिलोय, ( स्त्री० )

कुदाल-कचनार, खुदाल ( पु० )  
॥ ८१ ॥

कुन्तल-जनपद देशभेद ( पुं० बहु-  
वचनान्त ) कुन्तल-केश ( बाल ),  
हल, जव, भाला, ( पुं० ) ॥ ८२ ॥

कुम्भिल-श्लोककी छायाहरनेवाला,  
चोर, साला, मच्छ, ( पुं० )

कुरल-पक्षिभेद, कुल्फके बाल, ( पुं० )  
॥ ८३ ॥

कुलाल-कुम्हार, वनमुर्गा, उडू-पक्षी  
( पुं० )

कुवल-कमल, मोती, बेर ( न० )  
॥ ८४ ॥

कुशल-धर्म, सामर्थ्य, क्षेम, ( न० )  
कुशल-शिक्षित ( त्रि० )

केवल-एक, संपूर्ण ( त्रि० ) कुहन  
( ठगनेकेलिये तपआदि करनेवाला )  
( पुं० ) ॥ ८५ ॥

निर्णीते केवलं ज्ञानभेदे स्यात्केवली न ना ।  
 मतः कौ वारिके केशद्रुमजातेऽपि कैशिलः ॥ ८६ ॥  
 कोमलं मृदुले नीरे मुनौ मद्ये च कोहलः ।  
 गन्धोली वरटायां स्याद्भद्राश्वोरपि स्मृता ॥ ८७ ॥  
 विषे मानेऽपि गरलं गरलं तृणपूलके ।  
 गोकिलो मुसले सीरे गोपालो गोपभूपयोः ॥ ८८ ॥  
 गैरिलो लोहचूर्णे स्याद्गौरिलो गौरसर्पे ।  
 ग्रन्थिलस्त्रिपु संग्रन्थौ ना करीरे विकङ्कते ॥ ८९ ॥  
 चञ्चला च तडिलक्ष्म्योश्चञ्चलश्चलकामिनोः ।  
 वाते पुंस्यथ चत्वालः स्याद्गर्भे हेमकुण्डले ॥ ९० ॥  
 चन्द्रिलश्चन्द्रमौलौ च वास्तूके नापितेऽपि च ।  
 चपलः क्षणिके शीघ्रे चञ्चलेऽप्यभिधेयवत् ॥ ९१ ॥

केवल-निर्णयकियाहुवा, ( न० )	गौरिल-लोहचूर्ण, सफेद-सरसों
केवली ज्ञानभेद ( स्त्री० )	( पुं० )
कैशिल-पृथ्वी, जल, केशसमूह, वृक्षसमूह ( पुं० ) ॥ ८६ ॥	ग्रन्थिल-गोटोंवाला, ( त्रि० ) कैर-वृक्ष, कटाई या विक्रंक्रत-वृक्ष ( पुं० ) ॥ ८९ ॥
कोमल-सुकुमार, जल, ( न० )	चंचला-बिजली लक्ष्मी ( स्त्री० )
कोहल-मुनि, मद्य ( पुं० )	चंचल-चलायमान, कामी ( पुं० )
गन्धोली-हंसी, पीपलरायसनआदि, कचूर ( स्त्री० ) ॥ ८७ ॥	चत्वाल-वायु, गर्भ, मुत्रर्ण-कुंडल ( पुं० ) ॥ ९० ॥
गरल-विष, प्रमाण, तृणका पूला ( न० )	चन्द्रिल-महादेव, बधुवा-शाक, नाई ( पुं० )
गोकिल-मूसल, हल ( पुं० )	चपल-अस्थिर बुद्धिवाला, शीघ्रता-वाला, चंचल, ( त्रि० ) ॥ ९१ ॥
गोपाल-गोप, राजा ( पुं० ) ॥ ८८ ॥	

चपलः पारदे मीने शिलाभेदेऽपि चोरके ।

चपला कमला विद्युत्पुंश्चलीपिप्पलीष्वपि ॥ ९२ ॥

चूडाला चकलायां स्याद्वाच्यवच्चूडयान्विते ।

छगली छागयोषायां छगली वृद्धदारके ॥ ९३ ॥

छगलस्तु मतश्छागे छगलं नीलवाससि ।

जगलो मेदके मद्ये कैतवे मदनद्रुमे ॥ ९४ ॥

जङ्गलस्त्रिषु निर्वारिदेशेऽस्त्री जङ्गलं पले ।

जटिलस्तु जटायुक्ते जटिला मांसिकौषधौ ॥ ९५ ॥

जम्भलः पुंसि जम्बीरे जम्भलो देवतान्तरे ।

जम्बूलो जम्बुविटपे जम्बूलः क्रकचच्छदे ॥ ९६ ॥

जम्बालः शैवले पङ्के जाङ्गलस्तु कपिञ्जले ।

वाच्यवजङ्गलोद्भूते शूकशिम्ब्यां तु जाङ्गली ॥ ९७ ॥

चपल-पारा, मच्छ, शिलाभेद, चोर,  
( पुं० )

चपला-लक्ष्मी, विजली, पुंश्चली  
स्त्री, पीपल, ( स्त्री० ) ॥ ९२ ॥

चूडाला-निर्विषी-घास, ( स्त्री० )  
चोटीवाला ( त्रि० )

छगली-बकरी, भिदारा-औषधि  
( स्त्री० ) ॥ ९३ ॥

छगल-बकरा ( पुं० )

छगल-नीला वस्त्र ( न० )

जगल-मेदक ( जगल ), भिदरा,  
कपट, मौलसिरी या मैनफल-वृक्ष  
( पुं० ) ॥ ९४ ॥

जंगल-जलरहितदेश ( त्रि० )

जंगल-मांस ( पुं० न० )

जटिल-जटावाला, ( त्रि० )

जटिला-जटामांसी-औषधि ( स्त्री० )  
॥ ९५ ॥

जम्भल-जम्बीरी-नीवू, देवताभेद  
( पुं० )

जम्बूल-जामन-वृक्ष, शाक-वृक्ष  
( पुं० ) ॥ ९६ ॥

जम्बाल-सिवाल, कीच, ( पुं० )

जांगल-कपिञ्जल-पक्षी, ( पुं० )  
जंगलमें होनेवाला ( त्रि० )

जांगली-कौवकी फली ( स्त्री० )  
॥ ९७ ॥



जाङ्गुली विषविद्यायां जाङ्गुलं जालिनीफले ।

स्यात्तण्डुलस्तु धान्यादिनिकरेऽपि विडङ्गके ॥ ९८ ॥

तमालः खङ्गे तापिच्छे तिलके वरुणद्रुमे ।

तरलश्चञ्चले खङ्गे भासुरे त्रिषु पुंसि तु ॥ ९९ ॥

हारमध्यमणौ मद्ययवाग्वोस्तरला स्त्रियाम् ।

ताम्बूली नागवह्यां स्यात्ताम्बूलं क्रमुके मतम् ॥ १०० ॥

तुमुलं रणसङ्घटे तुमुलस्तु कलिद्रुमे ।

तैतिलो गण्डके पुंसि तैतिलं करणान्तरे ॥ १०१ ॥

दुकूलमद्वयोः क्षौमे दुकूलः सूक्ष्मवाससि ।

धवलः सुन्दरे श्वेते त्रिषु पुंसि महावृषे ॥ १०२ ॥

धवली सौरभेय्यां स्यान्नकुलः पाण्डवान्तरे ।

वभ्रौ च नकुली तु स्यात्कुक्कुट्यां मांसिकौषधौ ॥ १०३ ॥

जाङ्गुली—विषविद्या ( स्त्री० )

जाङ्गुलं झिमनी तोरईके फल ( न० )

तण्डुल—धान्यआदिका समूह, बाय-  
विडंग ( पुं० ) ॥ ९८ ॥

तमाल—खङ्ग, तमाल—वृक्ष, तिलक—  
पुष्पवृक्ष, वरना—वृक्ष ( पुं० )

तरल—चंचल, खङ्ग, ( पुं० ) तेज-  
वाला ( त्रि० ) ॥ ९९ ॥

हारकी मध्यमणि, ( पुं० )

तरला—मदिरा, यवागू ( पतला रंधा  
हुवा अन्न ( स्त्री० )

ताम्बूली—नागरबेल, ( स्त्री० )

ताम्बूल—सुपारी ( न० ) ॥ १०० ॥

तुमुल रणसंघट ( रणसमूह, ) ( न० )

तुमुल—वहेडा—वृक्ष ( पुं० )

तैतिल—गैंडा ( पुं० )

तैतिल—करण ( न० ) ॥ १०१ ॥

दुकूल—रेशमीवस्त्र ( न० )

दुकूल—बारीकवस्त्र ( पुं० )

धवल—सुंदर, श्वेत ( सफेद ) ( त्रि० )

बडाबैल ( पुं० ) ॥ १०२ ॥

धवली—गौ, ( स्त्री० )

नकुल—एक पांडव, नौला ( पुं० )

नकुली—सेमर—वृक्ष, जटामांसी

( औषधि ) ( स्त्री० ) ॥ १०३ ॥

नाकुली कुकुटीकन्दे नाकुली चव्यराख्योः ।  
 नाभीलं नाभिगर्भाण्डे वङ्कणे चोत्तमस्त्रियः ॥ १०४ ॥  
 निचुलस्तु निचोले स्यान्निचुलो हिज्जलद्रुमे ।  
 निम्माल्येऽप्यभ्रके क्लीबं विमले त्रिपु निर्मलम् ॥ १०५ ॥  
 निष्कलस्तु कलाशून्ये नष्टबीजेऽपि वाच्यवत् ।  
 निष्कला तु मता तस्यां या नारी विगतार्त्तवा ॥ १०६ ॥  
 वर्तुलेऽपि चलेऽपि स्यान्निस्तलं वाच्यलिङ्गकम् ।  
 नैपाली नवमाल्यां स्यात्कुनटीमुवहाख्ययोः ॥ १०७ ॥  
 पञ्चाली पुत्रिकागीत्योः पञ्चालो जनदेशयोः ।  
 पटलं तु छदिर्नेत्ररुक्पटके परिच्छदे ॥ १०८ ॥  
 न पुंसि वृन्दे पटलं पटोलं कर्कशच्छदे ।  
 पटोलं वस्त्रभेदे स्याज्ज्योत्स्निकायां पटोल्यपि ॥ १०९ ॥

नाकुली-कुकुटीकंद, चव्य, रायमन ( स्त्री० )	निस्तल-गोल आकार, चल ( अ-स्थिर ) ( त्रि० )
नाभील-श्रेष्ठस्त्रीकी नाभि ( टुंडी ) के भीतरका अंडा, जंघा की संधि ( न० ) ॥ १०४ ॥	नैपाली-नेवारी, मनसिल, काले फूलवाली निर्गुंडी ( स्त्री० ) ॥ १०७ ॥
निचुल-अंगरखा, हिज्जल ( जलवेत ) का भेद ( पुं )	पंचाली-पुनर्ली, गीति, ( स्त्री० )
निर्मल-निर्माल्य ( भोगीहुईवस्तु ), भोटल, ( न० ) मलरहित ( त्रि० ) ॥ १०५ ॥	पंचाल-जन, देश ( पुं० )
निष्कल-कलारहित, नष्टबीज ( नष्ट-वीर्य ) पुरुषआदि ( त्रि० )	पटल-परदा, नेत्ररोग, पिटारी, टकना, ( न० ) ॥ १०८ ॥
निष्कला-रजस्वलाहोनेसे चंदहुई स्त्री ( स्त्री० ) ॥ १०६ ॥	पटल-समूह ( स्त्री० न० )
	पटोल-परवल, वस्त्रभेद, ( न० )
	पटोली-सफेद फूलकी तोरई या रे-णुका ( स्त्री० ) ॥ १०९ ॥

तिलचूर्णे पले पङ्के पललं राक्षसे पुमान् ।

पाकलं कुष्ठमैषज्ये पाकलः कुञ्जरज्वरे ॥ ११० ॥

कुटपूर्वश्च तत्रैव नवपाके तु पाकली ।

पाचलो राधनद्रव्ये दहने पवनेऽपि च ॥ १११ ॥

पाटला पाटलितरौ पुष्पे स्यात्पाटला न ना ।

पाटली पाटलायां स्यादाशुव्रीहौ तु पाटलः ॥ ११२ ॥

पाटलः श्वेतरक्तेऽपि तद्वति त्रिषु पाटलम् ।

मृत्पात्रभेदे वामायां वागुरायां च पातिली ॥ ११३ ॥

पातालं भूतलेऽप्यौर्वे वन्धक्यां भुवि पांशुला ।

पांशुलः पुंश्चले शम्भुखट्वाङ्गे पांशुसंयुते ॥ ११४ ॥

पिङ्गलो मुनिभेदेऽग्नौ चण्डांशोः पारिपार्श्विके ।

निधिभेदे कपौ रुद्रे पिङ्गलः कपिलेऽन्यवत् ॥ ११५ ॥

पलल-तिलचूर्ण, पल ( कालमान )  
कीच ( न० )

पलल-राक्षस, ( पुं० )

पाकल-कूट-औषधि, ( न० )

पाकल-हस्तीका ज्वर ( पुं० )  
॥ ११० ॥

कुटपाकल-हस्तीका ज्वर ( पुं० )

पाकली-नवीन-पाक ( स्त्री० )

पाचल-राधन ( सिद्ध ) द्रव्य,  
अग्नि, पवन, ( पुं० ) ॥ १११ ॥

पाटला-पाटल-वृक्ष, पाटलके पुष्प  
( स्त्री० न० )

पाटली-मोखा या पाटल, ( स्त्री० )

पाटल-आशुधान ( पुं० ) ॥ ११२ ॥

पाटल-श्वेतमिश्रित रक्तवर्ण, ( पुं० )  
श्वेतरक्तवर्णवाला ( त्रि० )

पातिली-मिट्टीके पात्रका भेद, स्त्री-  
भेद, मृगबंधिनी ( बावर ) ( स्त्री० )  
॥ ११३ ॥

पाताल-पृथ्वीका तलभाग, वडवानल  
( पुं० )

पांशुला-व्यभिचारिणी स्त्री, पृथ्वी  
( स्त्री० )

पांशुल-व्यभिचारी-पुरुष, शिवका  
खट्वांग ( पुं० ) धूलियुक्त ( त्रि० )  
॥ ११४ ॥

पिंगल-मुनिभेद, अग्नि, सूर्यका सर्मा-  
पवर्ती, निधिभेद, नंदर, रुद्र,  
( पुं० ) पिंगलवर्णवाला ( त्रि० )  
॥ ११५ ॥

स्त्रियां करायिकावेश्या कुमुदस्त्रीषु पिङ्गला ।  
 पिचुलो श्वबुके पुंसि निचुले वारिवायसे ॥ ११६ ॥  
 पिच्छिला शाल्मलौ सिन्धुभेदेशिशपयोः स्त्रियाम् ।  
 स्त्रियामुपोदिकायां च पिच्छिलो विजिले त्रिषु ॥ ११७ ॥  
 पिङ्गलं कुशपत्रे स्यात्पीतेऽपि त्रिषु पिङ्गलम् ।  
 पित्तलं तैजसद्रव्ये पित्तयुक्ते तु वाच्यवत् ॥ ११८ ॥  
 पिप्पला जलपिप्पल्यां बोधिवृक्षे तु पिप्पलः ।  
 निरंशुले पक्षिभेदे पिप्पलः पिप्पलं जले ॥ ११९ ॥  
 वसनच्छेदभेदेऽपि कणायां तु च पिप्पली ।  
 पुद्गलः सुन्दराकारे देहे चात्मनि पुद्गलः ॥ १२० ॥  
 पेशलो रुचिरे दक्षे चारुशीलेऽपि वाच्यवत् ।  
 प्रस्खलो वाजिसन्नाहे त्रिषु ह्यन्तश्चले चले ॥ १२१ ॥

पिङ्गला-पक्षिणीभेद, वेश्याभेद, कु- मुदिनी ( स्त्री० )	पिप्पला-जलपीपल ( स्त्री० )
पिचुल-झाऊ-वृक्ष, जलवेतका भेद, जलकाग ( पुं० ) ॥ ११६ ॥	पिप्पल-पीपल-वृक्ष ( पुं० )
पिच्छिला-साल-वृक्ष, नदीभेद, सीसम-वृक्ष, शकुन-चिड़ी ( स्त्री० )	पिप्पल-कांतिहीन, पक्षिभेद, ( पुं० )
पिच्छिल-मंडयुक्त दधिआदि ( त्रि० ) ॥ ११७ ॥	पिप्पल-जल ( न० ) ॥ ११९ ॥
पिङ्गल-कुशाका पत्र ( न० ) पीला रंगवाला ( त्रि० )	वल्गु फटनेका भेद, ( पुं० )
पित्तल-पीतल-धातु, ( न० ) पि- तयुक्त ( त्रि० ) ॥ ११८ ॥	पिप्पली-पीपल-औषधि ( स्त्री० )
	पुद्गल-सुंदर आकारवाला, शरीर, आ- त्मा, ( पुं० ) ॥ १२० ॥
	पेशल-सुंदर, चतुर, अच्छे स्वभाव- वाला ( त्रि० )
	प्रस्खल-अश्वका कवच, ( पुं० ) अंतःकरणसे चलित, ॥ १२१ ॥

प्रतलः स्यात्संहतयोर्बामदक्षिणहस्तयोः ।

पाताललोके प्रतलस्तताङ्गुलिकरेऽपि च ॥ १२२ ॥

वीणादण्डे प्रवालोऽस्त्री विद्रुमे नवपलवे ।

फेनिलोऽरिष्टवृक्षे स्यात्फेनिलं बदरीफले ॥ १२३ ॥

मदनद्रुफले चैव सफेने फेनिलस्त्रिषु ।

बन्धलस्त्वामले पुञ्जे पल्वले मत्तकुञ्जरे ॥ १२४ ॥

बहुलं व्योम्नि बहुला त्वेलानीलिकयोर्भुवि ।

बहुलाः कृत्तिकासु स्युः कृष्णपक्षेऽनले पुमान् ॥ १२५ ॥

बहुलन्तु मतः प्राज्ये कृष्णवर्णेऽपि वाच्यवत् ।

वार्दलो दुर्दिने पुंसि मसीधानेऽपि वार्दलः ॥ १२६ ॥

मङ्गला श्वेतदूर्वायां मङ्गलन्तु महीमुते ।

मङ्गलं श्रेयसि क्लीवं तथा लब्धार्थरक्षणे ॥ १२७ ॥

प्रतल—बायें दायें दोनों हाथ मिले हुए, पाताललोक, फलीहुई अंगु- लियोंवाला हाथ ( पुं० ) ॥ १२२ ॥	बहुला—श्लायची, नीला ( नील ), पृथ्वी ( स्त्री० )
प्रवाल—वीणाका दंड, मूँगा, नवीन पल्लव ( पुं० )	बहुला—छहों कृत्तिका ( स्त्री० )
फेनिल—रीठाका वृक्ष, ( पुं० )	बहुल—कृष्णपक्ष, अग्नि ( पुं० ) ॥ १२५ ॥ बहुत, काला रंगवाला ( त्रि० )
फेनिल—बेरीका फल ( बेर ) ॥ १२३ ॥ मैनफल ( न० )	वार्दल—मेघोंसे छायादिन, दवात ( पुं० ) ॥ १२६ ॥
फेनिल—फेनों ( झागों ) वाला ( त्रि० )	मंगला—सफेद दूध, ( स्त्री० )
बन्धल—आँवला, समूह, छोटी ता- लाई, उन्मत्त हस्ती ( पुं० ) १२४	मंगल—मंगल-ग्रह ( पुं० )
बहुल—आकाश, ( न० )	मंगल—कल्याण, लब्धद्रव्यकी रक्षा ( न० ) ॥ १२७ ॥

मञ्जुलो जलरङ्गौ स्यान्मञ्जौ तु त्रिषु पेपलः ।  
 मलञ्जुं शैवले कुञ्जे बिम्बेषु त्रिषु मण्डलम् ॥ १२८ ॥  
 मण्डलं निकुरुम्बेऽपि देशे द्वादशराजके ।  
 कुष्ठाहिभेदे परिधौ चक्रवाले च मण्डलम् ॥ १२९ ॥  
 मण्डलं स्यान्मण्डलके सारमेये तु मण्डलः ।  
 महिला तु महेलायां महिलाऽभीरुगुन्द्रयोः ॥ १३० ॥  
 माचलो वन्दिचौरे स्यादामये ग्राहयादसोः ।  
 धत्तूरे सामके व्रीहौ मदनद्रौ च मातुलः ॥ १३१ ॥  
 समन्तात्तालमूल्याखुकर्ण्योस्तु मुसली स्त्रियाम् ।  
 मुसली गृहगोधायामयोम्रे मुसलं मतम् ॥ १३२ ॥  
 काष्ठ्यां शैलनितम्बे च खड्गबन्धे च मेखला ।  
 मेखला कटिदेशे च रसालः सरसे त्रिषु ॥ १३३ ॥

मंजुल-जलमृग, ( पुं० ) सुंदर, ( त्रि० )	महिला-स्त्री, शतावर, फूल प्रियंगू ( स्त्री० ) ॥ १३० ॥
चतुर-सुंदर ( त्रि० )	माचल-वन्दिचौर, रोग, ग्राह, जल-जतु ( पुं० )
मंजुल-सिवाल, कुंज, ( न० )	मातुल-धत्तूरा, सामक, व्रीहि, भैरव-फल-वृक्ष, ( पुं० ) ॥ १३१ ॥
मंडल-विव ( त्रि० ) ॥ १२८ ॥	मुसली-तालमूली, मूसाकत्री, छप-कली, ( स्त्री० )
मंडल-समूह ( न० ) बारह राजा-ओंके मध्यका देश, कुष्ठभेद, सर्प-भेद, कभी दीखनेवाला सूर्यका कुंडल, ( गोल घेरा ) ( पुं० ) १२९	मुसल-मूसल ( न० ) ॥ १३२ ॥
मंडल-गोल मंडल, ( न० ) कुत्ता ( पुं० )	मेखला-करधनी, पर्वतका नितंब, खड्गबंध, कटिदेश, ( स्त्री० )
	रसाल-रसवाला, ( त्रि० ) ॥ १३३ ॥

रसाल इक्षौ चूते च रसालं बेलिसिहयोः ।

रसाला मार्जितायां स्याज्जिह्वादूर्वाविदारिषु ॥ १३४ ॥

रामिलो रमणे कामे लाङ्गूलं पुच्छशेफयोः ।

लाङ्गली जलपिप्पल्यां लाङ्गलं कुसुमान्तरे ॥ १३५ ॥

गृहदारुविशेषे च सीरे ताले च लाङ्गलम् ।

लोहलः शृङ्खलाधार्ये त्रिषु त्वव्यक्तभाषिणि ॥ १३६ ॥

वण्टालः शूरयोर्युद्धे पुंसि नौकाखनित्रके ।

वातुलो वातसंघाते वातले मारुताऽसहे ॥ १३७ ॥

वातलं राजकूप्माण्डबीजकोलास्थिवीजयोः ।

वामिलो दाम्भिकेऽपि स्यात्त्रिषु वामेऽपि वामिलः ॥ १३८ ॥

विडालः पुंसि मार्जारे विडालो विहगान्तरे ।

विपुलः पृथुलेऽगाधे मेरुपश्चिमपर्वते ॥ १३९ ॥

रसाल—ऊस, आम, ( पुं० ) बोल, नेयोग्य) ( पुं० ) अप्रकट बोल-  
शिलारस ( न० ) नेवाला ( त्रि० ) ॥ १३६ ॥

रसाला—दही शहद खांड मिरच वण्टाल—शूर्वारोंका जुद्ध, नौका,  
अदरक आदिसे बनाई हुई चटनी, जमीन खोदनेका औजार ( पुं० )  
जीम, दूब, विदारीकंद ( स्त्री० ) वानूल—वायुका समूह ( पुं० ) वात-  
॥ १३४ ॥ वाला, वायुको नहीं सहनेवाला  
( त्रि० ) ॥ १३७ ॥

रामिल—रमण ( पति ), कामदेव, वातल—कोहलके बीज, बेरकी गुंठ-  
( पुं० ) ली, ( न० )

लांगूल—पूँछ, लिंग, ( न० ) वामिल—दंभी, सुंदर ( त्रि० ) १३८

लाङ्गली—जलपीपल, ( स्त्री० ) विडाल—बिलाव, पक्षिभेद ( पुं० )

लांगल—पुष्पभेद, ( न० ) ॥ १३५ ॥ विपुल—बडा, बिनाथाहवाला, सुमे-

गृहकाष्ठविशेष, हल, ताड—वृक्ष, ( न० ) लोहल—शृङ्खलाधार्य ( संकलसे रोक-  
रका पश्चिमपर्वत ( पुं० ) ॥ १३९ ॥

विमला शातलामूमिभेदयोर्निर्मले त्रिषु ।  
 विशालो वृक्षभेदे स्याद्विशाले विपुलेऽन्यवत् ॥ १४० ॥  
 विशाला त्विन्द्रवारुण्यामुज्जयिन्यां च दृश्यते ।  
 वृषलः पुंसि शूद्रे स्याच्चन्द्रगुप्तेऽपि राजनि ॥ १४१ ॥  
 शकलं बल्कले खण्डे रागवस्तुत्वचोरपि ।  
 क्लीबं पाथेयकुलयोर्मत्सरे त्रिषु शम्बलम् ॥ १४२ ॥  
 शयालुः शुन्यजगरे निद्राशीले तु वाच्यवत् ।  
 शरालं नीरसोपाने वास्तुपोतेऽपि पञ्जरे ॥ १४३ ॥  
 ऋजौ वक्रे च शीले च शार्दूलो राक्षसान्तरे ।  
 अष्टापदेऽपि व्याघ्रेऽपि श्रेष्ठे स्यादुत्तरस्थितः ॥ १४४ ॥  
 शाल्मलिस्तु द्वयोर्वृक्षभेदे द्वीपान्तरेऽपि च ।  
 शीतलं शैलजे पुष्पे काशीशे मलयोद्भवे ॥ १४५ ॥

विमला-शातला ( धूअर ) भेद, पृथ्वीभेद, ( क्ली० ) निर्मल, ( त्रि० )	शयालु-कुत्ता, अजगर, ( पुं० ) निद्राशील ( त्रि० )
विशाल-वृक्षभेद, ( पुं० ) बड़ा, बहुत, ( त्रि० ) ॥ १४० ॥	शराल-तालाबकी पैड़ी, गृहनौका, पीजरा, ( न० ) ॥ १४३ ॥
विशाला-इंद्रायण-औषधि, उज्जैन- नगरी ( क्ली० )	सरल, वक्र, शील, ( त्रि० )
वृषल-शूद्र, चंद्रगुप्त राजा ( पुं० ) ॥ १४१ ॥	शार्दूल-राक्षसभेद, अष्टापद ( धतूरा या सोना ) बघेरा, और दूसरे शब्दके आगे जुड़ा होनेसे श्रेष्ठ, ( पुं० ) ॥ १४४ ॥
शकल-वृक्षका बल्कल, टुकड़ा, रँग- नेकी वस्तु, चर्म ( न० )	शाल्मलि-वृक्षभेद, द्वीपभेद, ( पुं० क्ली० )
शम्बल-मार्गकी खरची, कुल, ( न० ) मत्सरी-पुरुषआदि ( त्रि० ) ॥ १४२ ॥	शीतल-पत्थरका फूल या भूरिछ- रीला, कसीस, मलयाचलमें होने- वाला ( चंदन ) ( न० ) ॥ १४५ ॥



शीते चासनपण्यां च शीतलः शीतले त्रिषु ।

शेवाले शीतलं क्लीबं शैलेयेऽपि च शीतलम् ॥ १४६ ॥

शृगाली तु शिवाभीत्योः शृगालः फेरुदैत्ययोः ।

शृङ्खला निगडेऽपि स्यात्पुंस्कटीवस्त्रबन्धने ॥ १४७ ॥

शेवाले पद्मकाष्ठेऽपि शैवलं मतमद्वयोः ।

शौष्कलः शुष्कमांसस्य पाणिके पिशिताशिनि ॥ १४८ ॥

इमामलस्त्वसितेऽस्वच्छे इयामवर्णे तु वाच्यवत् ।

श्रद्धालुर्दोहदिन्यां स्याद्वाच्यवच्छ्रद्धयान्विते ॥ १४९ ॥

श्रीफली नीलिकाधव्योर्म्माद्धरे श्रीफली पुमान् ।

षण्डाली तु सरोजिन्यां कामुकीतैलमानयोः ॥ १५० ॥

सङ्कुलं वाच्यवद्वचाप्तेऽस्पष्टार्थवचनेऽपि च ।

सन्धिला तु सुरङ्गायां नदीमदिरयोरपि ॥ १५१ ॥

शीतल—ठंड, रसुनिया घास या को- श्रद्धालु—दोहद ( इच्छा ) वाली  
यल, ( पुं० ) ठंडा, ( त्रि० ) स्त्री, ( स्त्री० ) श्रद्धायुक्त, ( त्रि० )  
शिलाजीत ( न० ) ॥ १४६ ॥ ॥ १४९ ॥

शृगाली—गीदडी, भीति, ( भय ) ( स्त्री० ) श्रीफली—नीली, ( नीलका पेड ), ऑ-  
शृगाल—गीदड, दैत्य, ( पुं० ) वला, ( स्त्री० )

शृङ्खला—वेडी, पुरुषकी कटिवस्त्रका श्रीफल—बेल-वृक्ष, ( पुं० )  
बन्धन ( स्त्री० ) ॥ १४७ ॥ ॥ १५० ॥

शैवल—सिवाल, पद्मास्त्र—औषधि च्छावाली स्त्री, तैलप्रमाण, ( स्त्री० )  
( न० ) ॥ १५० ॥

शौष्कल—सूखे मांसकी दुकानवाला, सङ्कुल—व्याप्त, ( त्रि० ) अस्पष्टार्थ-  
मांसभक्षी ( पुं० ) ॥ १४८ ॥ ॥ १५१ ॥

इयामल—नीलवर्ण, मलिनवर्ण ( पुं० ) सन्धिला—सुरंग, नदी, मदिरा,  
इयामवर्णवाला ( त्रि० ) ( स्त्री० ) ॥ १५१ ॥

लचतुर्थम् ।

बलाभेदे त्वातेबला प्रबलेऽतिबलस्त्रिषु ॥

अक्षमाला विजानीयादरुन्धत्यक्षसूत्रयोः ॥ १५२ ॥

उदूखलं गुग्गुलौ स्यादुदूखलमुदूखले ।

एकाष्टीला स्त्रियां पुंसि पापचेल्यां बुके क्रमात् ॥ १५३ ॥

कचमालो मरुद्वाहे नागभेदे जटान्तरे ।

कन्दरालः पुमान्गर्द्भाण्डेऽक्षप्लक्षवृक्षयोः ॥ १५४ ॥

अस्त्री कमण्डलुः कुण्ड्यां पर्कटीपादपे पुमान् ।

क्लीबं कर्मफलं कर्मरङ्गकर्मविपाकयोः ॥ १५५ ॥

पुंसि कोलाहले सर्जरसे कलकलः स्मृतः ।

कुतूहलं कौतुके स्यात्त्रिषु शस्ते कुतूहलम् ॥ १५६ ॥

कृताञ्जलिस्तु भैषज्ये विहितो येन चाञ्जलिः ।

खतमालः पुमान्धूमे खतमालो बलाहके ॥ १५७ ॥

लचतुर्थ ।	या बहेडा, पिलखनवृक्ष, (पुं०)
अतिबला-खरंहटीभेद ( पीलेरंगकी	॥ १५४ ॥
खरंहटी, ) ( स्त्री० )	कमण्डलु-कुंडी, पिलखन-वृक्ष, (पुं०)
अतिबल-प्रबल-पुरुष आदि ( त्रि० )	( पुं० न० )
अक्षमाला-अरुन्धती ( वसिष्ठकी	कर्मफल-कमरख-फल, कमौका फल,
स्त्री ), रुद्राक्षकी माला, ( स्त्री० )	( न० ) ॥ १५५ ॥
॥ १५२ ॥	कलकल-कोलाहल, ( हल्ला ), राल-
उदू(लू)खल-गूगल, ऊँखल, ( न० )	वृक्ष, ( पुं० )
एकाष्टीला-सोनापाठा, ( स्त्री० )	कुतूहल-कौतुक, श्रेष्ठ, ( न० )
एकाष्टील-गूमा-औषधि ( पुं० )	॥ १५६ ॥
॥ १५३ ॥	कृताञ्जलि-औषधि, जिसने अञ्जलि
कचमाल-....., नागभेद, जटाभेद	करी है वह, ( पुं० )
( पुं० )	खतमाल-धूवाँ, मेघ, ( पुं० ) १५७

गण्डशैलो गिरिभ्रष्टस्थूलोपलकपोलयोः ।

स्त्रियां गन्धफली फल्यां तथा चम्पककोरके ॥ १५८ ॥

गोलांगूलं तु गोपुच्छे गोलाङ्गूलः कपौ पुमान् ।

चक्रवालो गिरेर्भेदे चक्रवालं तु मण्डले ॥ १५९ ॥

जलाञ्चलं तु शैवाले स्वतः पानीयनिर्गमे ।

दलामलं मरुबके दमनेऽपि दलामलम् ॥ १६० ॥

ध्वनिनाला तु वीणायां वेणुकाहलयोरपि ।

भवेत्परिमलश्चित्तहारिगन्धविमर्दयोः ॥ १६१ ॥

रतामर्दसमुन्मीलदङ्गरागादिसौरभे ।

पीठकेलिः पीठमर्दे करकाकेशिरागयोः ॥ १६२ ॥

दौर्गतौ वारिवाहे च पीठकेलिपदाभिधा ।

स्त्रीपुंसयोर्बहुफला मलयूनीपयोः क्रमात् ॥ १६३ ॥

गण्डशैल—पर्वतसे गिराहुवा बडा  
पत्थर, कपोल ( गाल ), ( पुं० )

गन्धफली—फूलप्रियंगू, चंपाकी  
कली, ( स्त्री० ) ॥ १५८ ॥

गोलांगूल—गौकी पूंछ, ( न० ) बन्दर,  
( पुं० )

चक्रवाल—पर्वतभेद, ( पुं० ) मंडल,  
( न० ) ॥ १५९ ॥

जलाञ्चल—शिवाल, आपसे पानीका  
झिरना, ( न० )

दलामल—मरुवा, दौना, ( न० )  
॥ १६० ॥

ध्वनिनाला—बीणा, वेणु ( वंशी ),  
काहल, ( बडा ) नगारा, ( स्त्री० )

परिमल—चित्तको हरनेवाला गंध,  
( पुं० ) ॥ १६१ ॥

विशेषमर्दन, सुरतके मर्दनमें उत्पन्न  
हुवा अंगरागका गंध, ( पुं० )  
॥ १६२ ॥

पीठकेलि—अतिवृष्ट, ओला, नेत्ररं-  
जन, दुर्गतिवाला, मेघ, ( पुं० स्त्री० )

बहुफला—कदमर, ( स्त्री० )

बहुफल—कदंब-वृक्ष, ( पुं० ) ॥ १६३ ॥

बृहन्नलो गुडाकेशे महापोटगलेऽपि च ।  
 भद्रकाली तु पार्वत्यां गन्धोल्यामौषधीभिदि ॥ १६४ ॥  
 भस्मतूलं हिमे पांशुवर्षणग्रामकूटयोः ।  
 मणिमाला मता योषिद्दशनक्षतहारयोः ॥ १६५ ॥  
 मदकलः स्यान्मत्तेभे मदेनाऽव्यक्तवाचि च ।  
 महाकालो महादेवे किम्पाके प्रमथान्तरे ॥ १६६ ॥  
 महानीलो नागभेदे महानीलश्च मार्कवे ।  
 महाबलं सीसके च बलप्रौढे तु वाच्यवत् ॥ १६७ ॥  
 गोरक्षतण्डुलायां तु स्त्रियामेव महाबला ।  
 मुक्ताफलं तु मुक्तायां कर्णपूरे बले फले ॥ १६८ ॥  
 स्यात्कदल्यां मृत्युफली महाकालतरौ पुमान् ।  
 पुमान्यवफलो वेणौ कुटजे मांसिकौषधौ ॥ १६९ ॥

बृहन्नल—अर्जुन, बड़ा देवनल या काश, ( पु० )	महानील—नागभेद, कूकरभंगरा, ( पुं० )
भद्रकाली—पार्वती, छोटाकचूर, औषधिभेद, ( स्त्री० ) ॥ १६४ ॥	महाबल—महाबल शीशा, ( न० ) बहुतबलवान, ( त्रि० ) ॥ १६७ ॥
भस्मतूल—हिम ( ठंड ), गाँवका कुरइ, रजका बरसना,	महाबला—गंगेरन ( स्त्री० )
मणिमाला—स्त्रीके दांतोंसे काटनेका चिह्न, हार, ( स्त्री० ) ॥ १६५ ॥	मुक्ताफल—मोती, कर्णआभूषण, बल, फल, ( न० ) ॥ १६८ ॥
मदकल—उन्मत्त हस्ती, मदसे अव्यक्तवाणीवाला, ( पुं० )	मृत्युफली—केला, ( स्त्री० )
महाकाल—महादेव, महाकाललता, शिवगणभेद, ( पुं० ) ॥ १६६ ॥	कदल—महाकाल-वृक्ष, ( पुं० )
	यवफल—बांस, इंद्रजव, जटामांसी औषधि, ( पुं० ) ॥ १६९ ॥

रजस्वलस्तु महिषे पुष्पवत्यां रजस्वला ।  
 वातकेलिः कलालापे षिङ्गानां दन्तखण्डने ॥ १७० ॥  
 क्लीबं वायुफलं शक्रकार्मुके वर्षणोपले ।  
 पुमान्विचकिलो मल्लीभेदे दमनकेऽपि च ॥ १७१ ॥  
 उदुम्बरे स्कन्धफले नालिकेरे सदाफलः ।  
 हरिताली नभोरेखाखड्गद्वीप्सु दृश्यते ॥ १७२ ॥  
 हलाहलो ब्रह्मसर्पे ज्येष्ठिकायां विषान्तरे ।  
 ऐरावते हस्तिमल्लो हस्तिमल्लो विनायके ॥ १७३ ॥

लपंचमम् ।

आसुतोचलशब्दस्तु मतो यज्वनि शौण्डिके ।  
 भवेद्दुद्गण्डपालस्तु मत्स्यसर्पप्रभेदयोः ॥ १७४ ॥  
 राजराजेऽपि कालिन्दीभेदनेप्येककुण्डलः ।  
 गजपित्तज्वरे पाके पवने कूटपाकलः ॥ १७५ ॥

रजस्वल—भैसा, ( पुं० )  
 रजस्वला—कृतुधर्मवाली स्त्री, ( स्त्री० )  
 वातकेलि—सूक्ष्मशब्दसे आलाप, का-  
 मीपुरुषके दांतोंसे काटना, ( स्त्री० )  
 ॥ १७० ॥  
 वायुफल—इंद्रधनुष, वर्षाका पत्थर  
 ( ओला ), ( न० )  
 विचकिल—मल्लिकाभेद, रौंना, ( पुं० )  
 ॥ १७१ ॥  
 सदाफल—गूलर, ....., नालीर  
 ( पुं० )  
 हरिताली—आकाशरेखा, खड्ग, दूब,  
 ( स्त्री० ) ॥ १७२ ॥

हलाहल—ब्रह्मसर्प ( नागभेद ), जे-  
 ठीमधु, विषभेद ( पुं० )  
 हस्तिमल्ल—ऐरावत हस्ती, गणेश  
 ( पुं० ) ॥ १७३ ॥

लपंचम ।

आसुतोचल—यज्ञकरनेवाला, मदिरा  
 बेचनेवाला, ( पुं० )  
 उद्गण्डपाल—मच्छभेद, सर्पभेद, ( पुं० )  
 ॥ १७४ ॥  
 एककुण्डल—कुबेर, बलदेव, ( पुं० )  
 कूटपाकल—हस्तीका पित्तज्वर, पाक,  
 पवित्रकरण, ( पुं० ) ॥ १७५ ॥

कृपीटपालः पुंस्येव केनिपातसमुद्रयोः ॥ १७६ ॥

स्यात्पाण्डुकम्बलः श्वेतकम्बले प्रावदन्तरे ।

विवाहदिनसम्बन्धशिरोमाल्येऽपि सम्मता ॥ १७७ ॥

मता सुरतताली तु दूतिकामस्तकस्तजोः ।

मन्त्रचूर्णलमिच्छन्ति वशीकरणवेदिनि ॥ १७८ ॥

डाकिनीमोक्षमन्त्रे कुशाम्बुप्रोक्षणेऽपि च ॥ १७९ ॥

इति विश्वलोचनेऽपराभिधानायां मुक्तावल्यां लकारान्तवर्गः ॥

### अथ वान्तवर्गः ।

वैकम् ।

वः कुम्भे वरुणे व स्यादिवार्थे सांत्वनेऽव्ययम् ।

वा वाततातयोर्ग्रन्थौ विः खगाकाशयोः पुमान् ॥ १ ॥

स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं तु त्रिधात्मीये धनेऽस्त्रियाम् ।

कृपीटपाल-पतवार, समुद्र, ( पुं० ) इस प्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें  
॥ १७६ ॥ लान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

पाण्डुकम्बल-सफेद कम्बल, पत्थरभेद,  
( पुं० )

### अथ वान्तवर्गः ।

वैकम् ।

सुरतताली-विवाहदिनकी शिरकी  
माला, ( स्त्री० ) ॥ १७७ ॥

दूती, मस्तककी माला, ( स्त्री० )  
॥ १७८ ॥

मन्त्रचूर्णल-वशी करण जाननेवाला,  
डाकिनी छोड़नेका मन्त्र जाननेवाला,  
कुशाके जलसे प्रोक्षण (छींटादेना),  
( पुं० ) ॥ १७९ ॥

व-कुम्भ, वरुण, ( पुं० ) व-इव-अ-  
व्ययका अर्थ ( सादृश्यार्थ ),  
सांत्वना ( अव्यय ),  
वा-वायु, तात ( पिता पुत्र आदि ),  
( पुं० )

वि-पक्षी, आकाश ( पुं० ) ॥ १ ॥  
स्व-जाति, आत्मा ( पुं० ) स्व-  
आत्मीय ( अपना ), ( त्रि० )  
धन, ( पुं० न० )

वद्वितीयम् ।

कविः शुक्रेऽपि वाल्मीके सूरौ काव्यकरे पुमान् ॥ २ ॥

किण्वं पापे सुराबीजे क्लीबः पण्डेऽप्यविक्रमे ।

खर्वो ह्रस्वे न्यगर्थेऽपि खर्वः स्यादभिधेयवत् ॥ ३ ॥

ग्रीवा ग्रीवाशिरायां स्याद्ग्रीवा स्यात्कन्धराभिधा ।

छविः स्यादपि शोभायां घटावपि मतश्छविः ॥ ४ ॥

ओन्द्रूपुष्पे जवा वेगे जवो वेगिनि वाच्यवत् ।

जीवो वाचस्पतौ वृक्षप्रभेदे प्राणिमात्रयोः ॥ ५ ॥

जीवा जीवन्तिकामौर्वीक्षितिशिञ्जितवृत्तिषु ।

मता जीवा वचायां च जीवा जीवं च जीविते ॥ ६ ॥

तत्त्वं स्वरूपे नृत्यस्य प्रभेदे परमात्मनि ।

दवो दावश्च पुंस्त्वेव वनेऽपि वनपावके ॥ ७ ॥

दिवं स्वर्गेऽन्तरिक्षे च द्यौर्द्यौर्दिवि च खे स्त्रियाम् ।

देवो राशिं सुरे मेधे देवं स्यादिन्द्रिये मतम् ॥ ८ ॥

वद्वितीय ।

कवि—शुक्र, वाल्मीक, पंडित, काव्यको  
रचनेवाला, ( पुं० ) ॥ २ ॥

किण्व—पाप, मदिराका बीज, क्लीब  
(नपुंसक), पराक्रमरहित, (त्रि०)

खर्व—छोटा, ( बौना ), नीच, (त्रि०)  
॥ ३ ॥

ग्रीवा—गरदनकी नाड़ी, गरदन, (स्त्री०)

छवि—शोभा, दीप्ति, (स्त्री०) ॥ ४ ॥

जवा—गुडहरपुष्प, ( स्त्री० )

जव—वेग (शीघ्रता), वेगवाला, (त्रि०)

जीव—वृहस्पति, वृक्षभेद, प्राणी-  
मात्र, ( पुं० ) ॥ ५ ॥

जीव—जीवन्ती, मेंढासींगी, पृथ्वी,

भूषणोंका शब्द, वृत्ति ( जीविका ),

वच, ( स्त्री० ) जीव—जीवित,

( पुं० न० ) ॥ ६ ॥

तत्त्व—स्वरूप, नृत्यभेद, परमात्मा,

( न० )

दव—दाव—वन, वनअग्नि, ( पुं० )

॥ ७ ॥

दिव—स्वर्ग, अंतरिक्ष, ( पृथ्वी और

आकाशका मध्य ), ( न० )

दिव—स्वर्ग, आकाश, ( स्त्री० )

देव—राजा, देवता, मेघ, ( पुं० )

देव—इन्द्रिय, ( न० ) ॥ ८ ॥

देवी भट्टारिकायां च तेजनीपृक्कयोरपि ।  
 नाट्योक्त्यां चाभिषिक्तायां देवी देवी नृपस्त्रियाम् ॥ ९ ॥  
 द्रवः स्यान्नर्मणि रसे प्रद्रावे विद्रवे गतौ ।  
 द्वन्द्वं तु मिथुने युग्मे द्वन्द्वः कलहगुह्ययोः ॥ १० ॥  
 धवः पत्न्यौ पुमान्वृक्षभेदे धूर्ते नरेऽपि च ।  
 ध्रुवः क्लीवे शिवे शङ्कौ मुनौ योगे वटे वसौ ॥ ११ ॥  
 ध्रुवं तु निश्चिते तर्के नित्यनिश्चलयोस्त्रिषु ।  
 ध्रुवा मूर्वाशालिपर्णयोर्गीतिसुग्भेदयोरपि ॥ १२ ॥  
 नवः काके स्तुतौ पुंसि नवं नव्येऽभिधेयवत् ।  
 नीवी तु स्त्रीकटीवल्लग्रन्थौ मूलधनेऽस्त्रियाम् ॥ १३ ॥  
 मतं पक्वं परिणते विनाशाभिमुखे त्रिषु ।  
 पार्श्वे कक्षाऽघरे चक्रोपान्ते पशुगणाऽन्तिके ॥ १४ ॥

देवी-भट्टारककी स्त्री, बड़ी मालकांगनी,  
 असवरग, ( स्त्री० ) नाट्यमें अभि-  
 पेककरी हुई रानी, राजाकी रानी  
 ( स्त्री० ) ॥ ९ ॥

द्रव-ठड़ा, रस, क्षिरना, विद्रव  
 ( दौड़ना ), ( पुं० )

द्वन्द्व-द्वीपुरुषका जोड़ा, दो संख्या,  
 ( न० ) द्वन्द्व-कलह गोप्य, ( पुं० )  
 ॥ १० ॥

धव-पति, वृक्षभेद, धूर्त मनुष्य,  
 ( पुं० )

ध्रुव-नपुंसक, शिव, कीला, मुनि,  
 योगभेद, बड़वृक्ष, वसुभेद, ( पुं० )  
 ॥ ११ ॥

ध्रुव-निश्चित, तर्क, ( न० ) नित्य,  
 निश्चल ( त्रि० )

ध्रुवा-चुरनहार या मरोरफली, माष-  
 पर्णी या मषवन, गीतिभेद, सुक्-  
 भेद, ( स्त्री० ) ॥ १२ ॥

नव-काग, स्तुति, ( पुं० ) नव-  
 नवीन, ( त्रि० )

नीवी-स्त्रीके कटिवल्लकी प्रंथि ( बंधन ),  
 मूलधन, ( स्त्री० ) ॥ १३ ॥

पक्वं-परिणामको प्राप्तहुवा, नाशको  
 प्राप्त होनेवाला, ( त्रि० )

पार्श्वे-बगलके नीचे का भाग, ( पस-  
 वादा ), चक्र का अंतभाग, पाँसु-  
 बोका समूह, समीप, ( न० )  
 ॥ १४ ॥



पृथ्वी भुवि पृथौ हिङ्गुपत्रिकाकृष्णजीरयोः ।

प्राध्वं तु बन्धने प्रह्वेऽप्यतिदूरपथे तथा ॥ १५ ॥

प्लवः कारण्डवे भेके भेलके वारिवायसे ।

प्लक्षे छुतिगतौ शब्दे निषादे कुलके कपौ ॥ १६ ॥

क्रमनिम्नक्षितौ गन्धतृणेऽपि न द्वयोः प्लवम् ।

भवः श्रीकण्ठसंसारश्रेयःसत्ताप्तिजन्मसु ॥ १७ ॥

भावः स्वभावचेष्टाऽभिप्रायसत्त्वात्मजन्मनि ।

भावः क्रियायां लीलायां पदार्थेऽभिनयान्तरे ॥ १८ ॥

जन्तौ बुधे विभूतौ च नाट्योक्त्या पण्डितेऽपि च ।

रेवा जंबालिनीभेदे रेवा नीलीसरस्वियोः ॥ १९ ॥

मता लघ्वी तु ह्रस्वायां प्रकारे स्यन्दनस्य च ।

लट्ठा करंजभेदे स्यात्फले वाद्ये खगान्तरे ॥ २० ॥

पृथ्वी—भूमि, महती ( बड़ी ), हींगत्री  
या वंशपत्री, स्याहजीरा, ( स्त्री० )

प्राध्व—बंधन, प्रह्व ( ..... ), अति  
दूरमार्ग ( न० ) ॥ १५ ॥

प्लव—करडुवा पक्षी, मेंडक, छोटी  
नौका, जलकाग, पिलखन वृक्ष,  
कूदकर चलना, शब्द, निषाद  
( भील ), कुलक ( ..... ), बंदर,  
( पुं० ) ॥ १६ ॥

प्लव—क्रमसे नीची पृथ्वी, सुगंधितृण-  
विशेष ( शखान ), ( न० )

भव—महादेव, संसार, कल्याण, सत्ता,  
प्राप्ति, जन्म, ( पुं० ) ॥ १७ ॥

भाव—स्वभाव, चेष्टा, अभिप्राय,  
सत्त्व, ( सतो गुण ), जन्म, क्रिया,  
लीला, पदार्थ, अभिनय, ॥ १८ ॥  
जन्तु, पंडित, विभूति, नाट्योक्तिमें  
पंडित, ( पुं० )

रेवा—नदीभेद, नीली ( लील ), काम-  
देवकी स्त्री, ( स्त्री० ) ॥ १९ ॥

लघ्वी—छोटी, रथका भेद, ( स्त्री० )

लट्ठा—करंजुवाभेद, फल, बाजा, पक्षि-  
भेद, ( स्त्री० ) ॥ २० ॥

लवो लेशे विलासे च च्छेदने रामनन्दने ।  
 श्रीफलेऽपि फले बिल्वं विश्वे देवेषु नागरे ॥ २१ ॥  
 विश्वा विषायां सर्वस्मिन्विश्वं स्यादभिधेयवत् ।  
 विश्वं तु विष्टपे क्लीबं शिबिर्भूर्जे नृपान्तरे ॥ २२ ॥  
 शिवो हरे योगभेदे वेदे कीलेऽपि बालुके ।  
 गुगुले पुण्डरीकद्रौ शिवं मोक्षे सुखे जले ॥ २३ ॥  
 कुशलेऽपि शिवा तु स्याद्वैर्यामलकहेतुषु ।  
 शिवा झटामलापथ्याक्रोष्टीसक्तुफलासु च ॥ २४ ॥  
 सत्त्वं जन्तुषु न स्त्री स्यात्सत्त्वं प्राणात्मभावयोः ।  
 द्रव्ये बले पिशाचादौ सत्तायां गुणवित्तयोः ॥ २५ ॥  
 स्वभावे व्यवसाये च सत्त्वमित्यभिधीयते ।  
 सवं जलाढ्ययोः स्नाने सवः सन्धानयज्ञयोः ॥ २६ ॥

लव-लेश, ( थोड़ा ), विलास, छेदन,  
 रामचंद्रका पुत्र, ( पुं० )  
 बिल्व-बेलका वृक्ष, बेलका फल,  
 ( न० )  
 विश्व-विश्वेदेव, ( पुं० ) विश्व-सोंठ,  
 ( न० ) ॥ २१ ॥  
 विश्वा-अतीस, ( स्त्री० ) संपूर्ण, ( त्रि० )  
 विश्व-जगत्, ( न० )  
 शिबि-भोजपत्र, शिबि-राजा, ( पुं० )  
 ॥ २२ ॥  
 शिव-महादेव, ग्रहयोगभेद, वेद,  
 कीला, बालू ( रेती ), गुगुल,  
 पुण्डरीक-वृक्ष, ( पुं० )

शिव-मोक्ष, सुख, जल, ॥ २३ ॥  
 कुशल, ( न० )  
 शिवा-पार्वती, आँवला, हेतु, ( स्त्री० )  
 शिवा-भुईआँवला, हरद्व, गीदही,  
 जांट-वृक्ष, ( स्त्री० ) ॥ २४ ॥  
 सत्त्व-जन्तु, प्राण, आत्मभाव, द्रव्य,  
 बल, पिशाचआदि, सत्ता, गुण,  
 धन. ॥ २५ ॥ स्वभाव, निश्चय,  
 ( पु० न० )  
 सव-जल, धनी, स्नान, ( न० )  
 सव-सन्तान, यज्ञ, ( पुं० ) ॥ २६ ॥

सान्त्वं दाक्षिण्यमात्रेऽपि सांत्वं सामनि च स्मृतम् ।  
 सुवा सुग्भेदशलक्योर्मूर्वायां च मता सुवा ॥ २७ ॥  
 हवः स्यादध्वराह्वाननिदेशेषु मतः पुमान् ।  
 ह्रस्वः खर्वे न्यगर्थेऽपि राजिकायां क्षुते क्षवः ॥ २८ ॥  
 वतृतीयम् ।

अभावः स्यादसत्तायामभावो मरणेऽपि च ।  
 अक्षीवस्त्रिष्वमन्दे स्यादक्षीवोऽवसरे पुमान् ॥ २९ ॥  
 आर्त्तवं पुष्परजसोः समुद्भूते तु वाच्यवत् ।  
 आश्रवः स्यात्प्रतिज्ञायां क्लेशेऽपि वचनस्थिते ॥ ३० ॥  
 आहवस्तु पुमान्यागे सङ्गरेऽप्याहवस्तथा ।  
 उत्सवो मह उत्सेध इच्छाप्रसरकोपयोः ॥ ३१ ॥  
 उद्धवस्तुत्सवे कृष्णमातुले यज्ञपावके ।  
 कारवी दीप्यमधुरात्वक्पत्रीकृष्णजीरके ॥ ३२ ॥

सान्त्वं—चतुराई, साम (समज्ञाना), अक्षीव—अमंद (तेज), (त्रि०)  
 (न०)

सुवा—सुग्भेद (यज्ञपात्र), सेह—  
 प्राणी, चुरनहार-औषधि, (स्त्री०)  
 ॥ २७ ॥

हव—यज्ञ, बुलाना, आज्ञा, (पुं०)

ह्रस्व—बौना, नीच, (पुं०)

क्षव—छींक, (पुं०) ॥ २८ ॥

वतृतीय ।

व—असत्ता (नहींहोना), म-  
 रना, (पुं०),

आर्त्तव—पुष्प, स्त्रीका रजस्, (न०)  
 ऋतुमें उत्पन्नहुवा, (त्रि०)

आश्रव—प्रतिज्ञा, क्लेश, वचनमें  
 स्थित, (त्रि०) ॥ ३० ॥

आहव—यज्ञ, युद्ध (पुं०)

उत्सव—उत्सव, ऊँचाई, इच्छाका  
 फैलना, क्रोध, (पुं०) ॥ ३१ ॥

उद्धव—उत्सव, कृष्णका मामा, (उ-  
 द्भव), यज्ञका अग्नि, (पुं०)

कारवी—अजवायन, सौप, हींगपत्री,  
 कालाजीरा, (स्त्री०) ॥ ३२ ॥

कितवः पुंसि धुस्तूरे मत्तवच्चकयोरपि ।  
 पुत्रागे माधवे पुंसि केशाब्धे त्रिषु केशवः ॥ ३३ ॥  
 कैतवं तु छले द्यूते कैरवः शत्रुधूर्तयोः ।  
 कैरवं कुमुदे क्लीबं चन्द्रिकायां तु कैरवी ॥ ३४ ॥  
 कौट्टवी चण्डिकायां स्यात्तथा नमस्त्रियामपि ।  
 गाण्डीवगाण्डिवौ न स्त्री कार्मुकेऽर्जुनकार्मुके ॥ ३५ ॥  
 गालवस्तु मुनौ लोभ्रे ताण्डवं तृणनृत्ययोः ।  
 स्वर्गेऽन्तरिक्षे त्रिदिवस्त्रिदिवा सरिदन्तरे ॥ ३६ ॥  
 दीदिविस्त्रिदशाचार्ये भवेदन्नेऽपि दीदिविः ।  
 द्विजिह्वः पत्रगे पुंसि सूचके त्वभिधेयवत् ॥ ३७ ॥  
 निष्पावः शूर्पपवने पचने च कडङ्गरे ।  
 निष्पावो निर्विकल्पेऽपि शिम्बिकाराजमाषयोः ॥ ३८ ॥  
 अपलापेऽपि निकृतावविश्वासेऽपि निह्वः ।  
 पञ्चत्वं स्यात्तु पञ्चानां भावेऽपि निधनेऽपि च ॥ ३९ ॥

कितव-धतूरा, उन्मत्त, ठग, ( पुं० )	ताण्डव-तृण, नृत्य, ( न० )
केशव-पुत्राग-वृक्ष, विष्णु, ( पुं० )	त्रिदिव-स्वर्ग, आकाश, ( पुं० )
बहुतकेशोंवाला, ( त्रि० ) ॥ ३३ ॥	त्रिदिवा-नदी, ( स्त्री० ) ॥ ३६ ॥
कैतव-छल, जुवा, ( न० )	दीदिवि-बृहस्पति, अन्न, ( पुं० )
कैरव-शत्रु, धूर्त, ( पुं० ) कैरव- कमोदनी, ( न० )	द्विजिह्व-सर्प, ( पुं० ) जुगलखोर, ( त्रि० ) ॥ ३७ ॥
कैरवी-चांदकी चांदनी, ( स्त्री० ) ॥ ३४ ॥	निष्पाव-छाजका वायु, वायु, भूसा, ( पुं० ) निर्विकल्प, ( त्रि० )
कौट्टवी-बंडिका, नम स्त्री, ( स्त्री० )	फली, उडद, ( पुं० ) ॥ ३८ ॥
गाण्डीव-गाण्डिव-धनुष्, अर्जुनका धनुष्, ( पुं० न० ) ॥ ३५ ॥	निह्व-वचनको गोप्यकरना, शठ, ता, अविश्वास, ( पुं० )
गालव-मुनि ( गालव ), लोभ-वृक्ष, ( पुं० )	पञ्चत्व-पाँचोंका भाव, मृत्यु, ( पुं० ) ॥ ३९ ॥

पल्लवो विस्तरे खङ्गे शृङ्गरेलक्तरागयोः ।  
 चलेऽप्यस्त्री तु किसले विटपेऽपि च पल्लवः ॥ ४० ॥  
 तुगायां पार्थिवी भूपे पुमान्भूविकृतौ त्रिषु ।  
 पुङ्गवो वृषभे श्रेष्ठे गवोभेषजलान्तरे ॥ ४१ ॥  
 प्रभवो जन्महेतौ स्यादपांमूले पराक्रमे ।  
 प्रभवः किंवदन्तीनां सञ्चारगतिकारके ॥ ४२ ॥  
 आद्योपलब्धये स्थाने प्रभावः शक्तितेजसोः ।  
 प्रसवो गर्भमोक्षे स्याद्वृक्षाणां फलपुष्पयोः ॥ ४३ ॥  
 परंपराप्रसङ्गे च लोकोत्पादे च पुत्रयोः ।  
 प्रसेवो बलकीवाद्यकाष्ठे स्यूतेऽपि दृश्यते ॥ ४४ ॥  
 फेरवो राक्षसे फेरौ बल्लवः सूदगोपयोः ।  
 भीमसेनेऽप्यथ पुमान्बन्धौ सुहृदि बान्धवः ॥ ४५ ॥

पल्लव—शब्दविस्तार, खङ्ग, शृङ्गार, महावरका रंग, चल, कोमलपत्ता, वृक्षकी टहनी, ( पुं० ) ॥ ४० ॥	प्रभाव—प्रभाव (शक्ति), तेज, ( पुं० )
पार्थिवी—वंशलोचन, ( स्त्री० )	प्रसव—गर्भका छूटना, वृक्षोंके फल और पुष्प, ॥ ४३ ॥
पार्थिव—राजा, ( पुं० ) पृथ्वी—विकार, ( त्रि० )	परंपराका प्रसंग, मनुष्योंसे उत्पादन कियाहुवा, पुत्री-पुत्र, ( पुं० )
पुंगव—बैल, श्रेष्ठ, ( पुं० )... ॥ ४१ ॥	प्रसेव—वीणाके बाजनेके लिये तूबा या काष्ठ, सीयाहुवा, ( पुं० ) ॥ ४४ ॥
प्रभव—जन्म ( उत्पत्ति ), का हेतु, जलोंका मूल, पराक्रम, ( बल ) ( पुं० ) किंवदन्ती ( चुरावा ), का संचार व गति करनेवाला प्रथमदर्शनके लिये स्थान, ( पुं० ) ॥ ४२ ॥	फेरव—राक्षस, गीदड़, ( पुं० ) बल्लव—रसोईकरनेवाला, गोप, भीम-सेन, ( पुं० )
	बान्धव—बंधु, मित्र, ( पुं० ) ॥ ४५ ॥

भार्गवः शुक्रगजयोः परशुरामे सुधन्वनि ।  
 भार्गवी पार्वतीलक्ष्मीसितदूर्वासु सम्मता ॥ ४६ ॥  
 भैरवः पुंसि भर्गे स्याद्भैरवं भीषणे त्रिषु ।  
 माधवः केशवे राधे वसन्तेऽप्यथ माधवी ॥ ४७ ॥  
 मधूत्थशर्करामद्यकुट्टनीप्वतिमुक्तके ।  
 राघवस्तु महामीनप्रभेदे रघुवंशजे ॥ ४८ ॥  
 राजीवो मत्स्यमृगयोस्त्रिषु राजोपजीविनि ।  
 क्लीबं पद्मे रौरवस्तु नरके त्रिषु भैरवे ॥ ४९ ॥  
 वडवाऽश्वाकुम्भदास्योः स्त्रीविशेषे द्विजस्त्रियाम् ।  
 वाडवा वडवासङ्घे स्त्रीणां च करणान्तरे ॥ ५० ॥  
 पाताले न स्त्रियामौर्वं विप्रे च नरि वाडवः ।  
 पद्मवोऽपक्रमे बुद्धौ विभवो निर्वृतौ धने ॥ ५१ ॥

भार्गव-शुक्र, हस्ती, परशुराम, श्रेष्ठ,  
 धनुषवाला, ( पुं० )

भार्गवी-पार्वती, लक्ष्मी श्वेतदूर्वा,  
 ( स्त्री० ) ॥ ४६ ॥

भैरव-महादेव, ( पुं० ) भयंकर,  
 ( त्रि० )

माधव-विष्णु, वैशाख-मास, वसन्त-  
 ऋतु, ( पुं० ) ॥ ४७ ॥

माधवी-मधु ( शहद ) की शकर,  
 मदिरा कुट्टनी स्त्री, कस्तूर मोगरा  
 ( स्त्री० )

राघव-बडामच्छभेद, रघु-वंशमें होने-  
 वाला, ( पुं० ) ॥ ४८ ॥

राजीव-मच्छ, मृग ( पुं० ) राजासे

आजीविकावाला, ( त्रि० ) राजीव-  
 कमल ( न० )

रौरव-नरक, ( पुं० ) भयंकर, ( त्रि० )  
 ॥ ४९ ॥

वडवा-घोड़ी, जललानेवाली दासी,  
 स्त्रीभेद, ब्राह्मणकी स्त्री, ( स्त्री० )

वाडव-घोड़ियोंका समूह, स्त्रियोंका  
 करण ( हावादि ), ( न० ) ॥ ५० ॥

पाताल, ( पुं० न० ) वाडव-  
 जलानि ( वाडवानल ), ब्राह्मण,  
 ( पुं० )

पद्मव-उलटा जाना, बुद्धि, ( पुं० )

विभव-आनंद, धन, ( पुं० ) ॥ ५१ ॥

विभावः स्यात्परिचये कामस्योद्दीपनेऽपि च  
 शत्रूणां भावसंहत्योः शान्त्रवं शान्त्रवो द्विषि ॥ ५२ ॥  
 सुषवी कारवेले स्याज्जीरके कृष्णजीरके ।  
 षाडवस्तु रसे नागेऽप्याशुग्रीहिप्रसूनयोः ॥ ५३ ॥  
 नौकायां वासने चाथ सचिवो भृत्यमन्त्रिणोः ।  
 सम्भवः स्मृत उत्पत्तौ हेतौ सत्त्वे च मेलके ॥ ५४ ॥  
 आधारानतिरक्तत्वे आधेयस्य च सम्भवः ।  
 सुग्रीवो वानरपतौ चारुग्रीवे तु वाच्यवत् ॥ ५५ ॥  
 सैन्धवो माणिमन्थेऽश्वे सिन्धुदेशभवे त्रिषु ।

वचतुर्थम् ।

अनुभावः प्रभावे स्यान्निश्चये भावसूचके ।  
 अपह्ववोऽपलापेऽपि पुंसि स्नेहेऽप्यपह्ववः ॥ ५६ ॥

विभाव-परिचय (पहचान), कामको  
 उद्दीपन करनेवाला रस, ( पुं० )

शान्त्रव-शत्रुवोंका भाव और संहति  
 ( समूह ), ( न० )

शान्त्रव-शत्रु, ( पुं० ) ॥ ५२ ॥

सुषवी-करेला, जीरा, कालाजीरा,  
 ( स्त्री० )

षाडव-रस, सीसा, चावल, पुष्प,  
 ॥ ५३ ॥ नौका, वासना, ( त्रि० )

सचिव-नौकर, मंत्री, ( पुं० )

सम्भव-उत्पत्ति, हेतु ( कारण ), सत्त्व

( सत्य ), मिलना, ॥ ५४ ॥ आधे-  
 यकी आधारसे एकता, ( पुं० )

सुग्रीव-बंदरोंका पति, ( पुं० ) सुंदर-  
 ग्रीवावाला, ( त्रि० ) ॥ ५५ ॥

सैन्धव-सैधानमक, अश्व, ( पुं० )  
 सिन्धुदेशमें होनेवाला, ( त्रि० )

वचतुर्थ ।

अनुभाव-प्रभाव, निश्चय, भावको  
 सूचन करनेवाला, ( पुं० )

अपह्वव-छिपाहुवा वाक्य, स्नेह,  
 ( पुं० ) ॥ ५६ ॥

खानेऽपि मद्यसन्धाने यज्ञे चाभिषवः पुमान् ।  
 आदीनवस्तु दोषे स्यात्परिक्लिष्टदुरन्तयोः ॥ ५७ ॥  
 उत्पाते विप्लवे चैव सैहिकेयेऽप्युपप्लवः ।  
 वल्मीकजन्मनि नटे याचके च कुशीलवः ॥ ५८ ॥  
 एकयोक्त्या मतौ रामपुत्रयोश्च कुशीलवौ ।  
 जलविल्वो मतः कूर्मे कर्कटे जलचत्वरे ॥ ५९ ॥  
 जीवञ्जीवश्चकोरे स्यात्पक्षिभेदे द्रुमान्तरे ।  
 दोलाजीवो वार्द्धुषिके मिथ्याज्ञानप्रहर्षिते ॥ ६० ॥  
 धामार्गवस्त्वपामार्गे देवदाल्यामपि स्मृतः ।  
 चञ्चले व्याकुलेऽपि स्याद्वाच्यलिङ्गः परिप्लवः ॥ ६१ ॥  
 पराभवस्तिरस्कारे विनाशे च पराभवः ।  
 मतः पारशवः पारस्त्र्येण शूद्रामुते द्विजात् ॥ ६२ ॥

अभिषव-खान, मदिराका निकालना, यज्ञ ( पुं० )	जलविल्व-कछुवा, ककोडा-जंतु, जलका हौज, ( पुं० ) ॥ ५९ ॥
आदीनव-दोष, अति क्लेशित, अपार ( पुं० ) ॥ ५७ ॥	जीवञ्जीव-चकोर, पक्षिभेद, वृक्ष- भेद ( पुं० )
उपप्लव-उत्पात, विप्लव ( मनुष्यो की लड़ना आदि पीडा ) राहुग्रह ( पुं० )	दोलाजीव-व्याजसे जीनेवाला, झूठे ज्ञानसे हर्षित ( पुं० ) ॥ ६० ॥
कुशीलव-वाल्मीकि-ऋषि, नट, याचक ( पुं० ) ॥ ५८ ॥	धामार्गव-ऊँगा, देवदाली, ( पुं० ) पारिप्लव-चंचल, व्याकुल, ( त्रि० ) ॥ ६१ ॥
कुशीलव-एक बार बोलनेमें राम- चंद्रके पुत्र, ( पुं० द्वि० )	पराभव-तिरस्कार, विनाश ( पुं० ) पारशव-परस्त्रीका पुत्र, ब्राह्मणसे, उत्पन्न हुवा शूद्राका पुत्र, ॥ ६२ ॥



शस्त्रेऽप्यथ पुटग्रीवो गर्गरीताम्रकुम्भयोः ।  
 वार्द्धुषिके बलदेवः स्याद्बलदेवो बलेऽनिले ॥ ६३ ॥  
 रोहिताश्वो हरिश्चन्द्रतनये जातवेदसि ।  
 शैलेये सैन्धवे क्लीबं मिश्यां शीतशिवः पुमान् ॥ ६४ ॥  
 सहदेवा बलादण्डोत्पलयोः शारिवौषधौ ।  
 सहदेवी भुजङ्गाक्ष्यां सहदेवस्तु पाण्डवे ॥ ६५ ॥

वपंचमम् ।

स्यादाशितंभवस्तृप्तावन्नाद्ये त्वाशितंभवम् ॥ ६६ ॥

इति विश्वलोचनेऽपराभिधानायां मुक्तावल्यां वकारान्तवर्गः ॥

### अथ शान्तवर्गः ।

शैकम् ।

शः शतायुषि हिंसायां शं धर्मे शा तु मातरि ।

शी स्त्रीषु स्वपरस्त्रीषु शीः स्यात्सदननिद्रयोः ॥ १ ॥

शस्त्र ( पुं० )

वपंचम ।

पुटग्रीव-गगरी, तोंबाका कलश आशितंभव-तृप्ति ( पुं० )

( पुं० )

आशितंभव-अन्नादि ( न० ) ६६

बलदेव-व्याजको लेनेवाला, बलभद्र, इसप्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें  
 वायु ( पुं० ) ॥ ६३ ॥

वान्तवर्ग समाप्तहुवा ॥

रोहिताश्व-हरिश्चंद्रराजाका पुत्र,

अग्नि ( पुं० )

अथ शान्तवर्ग ।

शीतशिव-शिलाजीत, संधानमक,

शैक ।

( न० ) सौफ ( पुं० ) ॥ ६४ ॥

श-सौवर्षकी आयुवाला, हिंसा,

सहदेवा-खरहटीकी डंडी, कमल, ( पुं० )

सरिवन, ( स्त्री० )

श-धर्म ( न० )

सहदेवी-खरहटी, गडनी, ( स्त्री० )

शा-माता ( स्त्री० )

सहदेव-पंडु राजाका एक पुत्र ( पुं० )

शी-अपना, पराया, स्त्री, ( त्रि० )

॥ ६५ ॥

श-मकान, निद्रा ( न० ) ॥ १ ॥

शद्वितीयम् ।

आशा तृष्णादिशोराशुर्वीहौ क्लीबं तु सत्त्वरे ।  
 ईशा लाङ्गलदण्डे स्यादीशः स्यादीश्वरे प्रभौ ॥ २ ॥  
 अंशुस्त्विषि रवौ लेशे काशस्तु क्षवथौ तृणे ।  
 वाराणस्यां तु काशी स्यात्कीशो मर्कटनमयोः ॥ ३ ॥  
 कुशो रामसुते द्वीपे योक्त्रे दर्भे तु न स्त्रियाम् ।  
 कुशो मत्तेऽपि पापिष्ठे त्रिषु क्लीबे तु वारिणि ॥ ४ ॥  
 मता कुशा तु बलायां कुशी फाले प्रकीर्तिता ।  
 केशो बालेऽपि ह्रीवरे दैत्यभेदप्रचेतसोः ॥ ५ ॥  
 क्लेशो दुःखेऽपि रोगादौ व्यवसाये च दृश्यते ।  
 दर्शस्तु दशमे पुंसि दर्शः सूर्येन्दुसङ्गमे ॥ ६ ॥  
 पक्षान्तवैदिकविधौ दशा तु वसनांशुके ।  
 दशा कर्मविपाकेऽपि स्याद्दशा वर्त्यवस्थयोः ॥ ७ ॥

शद्वितीयम् ।

आशा-तृष्णा, दिशा ( स्त्री० )  
 आशु-त्रोहि ( धान ) ( पुं० )  
 आशु-शीघ्रता ( न० )  
 ईशा-हलका दंड ( हाल ) ( स्त्री० )  
 ईश-महादेव, प्रभु, ( पुं० ) ॥ २ ॥  
 अंशु-किरण, सूर्य, लेश ( पुं० )  
 काश-छींक, तृण ( काँस ) ( पुं० )  
 काशी-काशी-पुरी ( स्त्री० )  
 कीश-बंदर, नम ( नंगा ) ( पुं० )  
 ॥ ३ ॥  
 कुश-रामका पुत्र, कुश द्वीप, जोत  
 ( पुं० )  
 कुश-दर्भ ( डाम ) ( पुं० न० )

कुश-उन्मत्त-पापी, ( त्रि० )  
 कुश-जल ( न० ) ॥ ४ ॥  
 कुशा-खरहटी, ( स्त्री० )  
 कुशी-फाल ( हलकी कुश ) ( स्त्री० )  
 केश-बाल, नेत्रबाला, दैत्यभेद, वरुण  
 ( पुं० ) ॥ ५ ॥  
 क्लेश-दुःख, रोग आदि, व्यवसाय,  
 ( पुं० )  
 दर्श-दशवां पुरुष, सूर्यचंद्रमाका संग-  
 म ( अमावस्या ) ॥ ६ ॥ पक्षके  
 अंतकी वैदिकविधि ( पुं० )  
 दशा-कर्मफल, बत्ती, अवस्था, ( स्त्री० )  
 ॥ ७ ॥

हृग् दर्शने च नेत्रे स्त्री ज्ञातृदर्शकयोस्त्रिषु ।

दंशः सन्नाहवनमक्षिकयोर्भुजगक्षते ॥ ८ ॥

दोषेऽपि खण्डने दंशो दंशो मर्मणि च स्मृतः ।

नाशः पलायनेऽपि स्यान्निधनानुपलम्भयोः ॥ ९ ॥

स्यान्निशा निगडे कापि स्त्रियां रात्रिहरिद्रयोः ।

निशा दारुहरिद्रयां महापूर्वा निशार्द्धके ॥ १० ॥

पशुर्भगादौ च प्रमथे पशुर्मांसारिकात्मनि ।

अज्ञाने छागमात्रेऽपि पशु हव्यर्थमव्ययम् ॥ ११ ॥

पाशः पक्षादिबन्धे स्याच्चयार्थस्तु कचात्परः ।

छात्राद्यन्ते च निन्दार्थः कर्णति शोभनार्थकः ॥ १२ ॥

पांशुर्धूलिषु शस्यार्थचिरसञ्चितगोमये ।

पेशी पल्लपिण्ड्यां स्यान्मांसीखङ्गपिधानयोः ॥ १३ ॥

दृक्-दर्शन, नेत्र, ( स्त्री० ) जानने-  
वाला, देखनेवाला ( त्रि० )

पशु-देवताकी हविका दान, ( अ० )  
॥ ११ ॥

दंश-कवच, वनमक्खी, सर्पका डक  
॥ ८ ॥ दोष, खंडन, मर्म, ( पुं० )

नाश-भागना, मरना, नहीं प्राप्त-  
होना ( पुं० ) ॥ ९ ॥

निशा-बेड़ी, रात्रि, हलदी, दारु-  
हलदी, ( स्त्री० )

महानिशा-अर्धरात्रि ( स्त्री० ) १०

पशु-मृग आदि, शिवगण, मांसारि-  
का आत्मा, अज्ञानी, छागमात्र,  
( पुं० )

पाश-केशोंका बांधना, केशवाचक  
शब्दसे परे पाश-शब्द समूह अर्थ-  
वाला है जैसे 'केशपाश' अर्थात्  
केशममूह, छात्रआदिके अंतमें  
निदार्थक है जैसे 'छात्रपाश'  
कर्णके अंतमें सुंदरार्थक है जैसे  
'कर्णपाश' ( पुं० ) ॥ १२ ॥

पांशु-धूलि, खेतीके लिये बहुतदिन-  
का इकट्ठाकिया गोबर, ( पुं० )

पेशी-मांसकी पिंडी, जटामांसी,  
तलवारका म्यान, अच्छा पका-  
हुवा कणिक, मंडभेद, ( स्त्री० ) १३

सुपक्कणिके पेशी पेशी मण्डान्तरेऽपि च ।

राशिस्तु पुञ्जे पुंस्येव तथा मेघवृषादिषु ॥ १४ ॥

वशस्त्रिषु स्याद्विवशे वशं वाञ्छाप्रभुत्वयोः ।

वशा योषासुतावन्ध्यास्त्रीगवीकरिणीष्वपि ॥ १५ ॥

विट् पुंसि वैश्ये मनुजे प्रवेशे तु स्त्रियामियम् ।

वेशः प्रवेशे नेपथ्ये वेशो वेश्यागृहे गृहे ॥ १६ ॥

वंशो वेणौ कुले वर्गे पृष्ठसावयवास्थनि ।

नासाविवरदेशेऽपि वाद्यभाण्डान्तरेऽपि च ॥ १७ ॥

शशः पशौ गन्धर्से पुरुषान्तरलोभ्रयोः ।

मतः शश इति कापि शीतांशोरपि लाञ्छने ॥ १८ ॥

स्पर्शस्तु स्पर्शने दाने रुजायां स्पर्शकेऽपि च ।

स्पर्शः स्यात्पुंसि सङ्गामे प्रणिधौ च मतो ह्ययम् ॥ १९ ॥

राशि-समूह, मेघ वृष आदि राशि  
( पुं० ) ॥ १४ ॥

वश-वशमें होनेवाला, ( त्रि० )

वश-वाञ्छा, प्रभुत्व, ( न० )

वशा-स्त्री, पुत्री, वन्ध्या, स्त्री, गौ,  
हथिनी ( स्त्री० ) ॥ १५ ॥

विश(ट्) वैश्य, मनुष्य, ( पुं० )

विश(ट्) प्रवेश, ( स्त्री० )

वेश-प्रवेश, वेशबनाना, वेश्याका  
घर, घर, ( पुं० ) ॥ १६ ॥

वंश-बाँस, कुल, पीठका अवयवरूप  
अस्थि ( हाड ), नासिकाका छिद्र-  
देश, वाजेका पात्र ( वंशी ) ( पुं० )  
॥ १७ ॥

शश-ससा, वणिक्द्वयविशेष, मनु-  
ष्यभेद, लोभ, चंद्रमाका लाँछन,  
( पुं० ) ॥ १८ ॥

स्पर्श-स्पर्श करना, दान, रोग, स्पर्श  
करनेवाला, संग्राम ( युद्ध ) ( पुं० )

स्पर्श-गुप्त बातको कहनेवाला हल-  
कारा, ( पुं० ) ॥ १९ ॥

शतृतीयम् ।

आदर्शः पुंसि मुकुरे टीकायां प्रतिपुस्तके ।

उड्डीशः पार्वतीकान्ते ग्रन्थभेदे च स स्मृतः ॥ २० ॥

उपांशुर्जापभेदे स्यादुपांशु विजनेऽव्ययम् ।

माधव्यां कपिशः श्यावे त्रिषु पुंसि च सिंहके ॥ २१ ॥

कम्पिलकासमर्द्धशुक्रपाणे पुंसि कर्कशः ।

निर्दये परुषे क्रूरे दृढे साहसिके त्रिषु ॥ २२ ॥

कुलिशो मत्स्यभेदेऽस्थिसंहारे कुलिशं पशौ ।

गिरीशः शङ्करे वाचस्पतावद्रिपतावपि ॥ २३ ॥

तुङ्गीशस्तु हरे चन्द्रे दुःस्पर्शः स्याद्यवासके ।

कण्टकारी तु दुःस्पर्शा खरस्पर्शे तु वाच्यवत् ॥ २४ ॥

निदेशः स्यादुपान्तेऽपि शासने भाषणे पुमान् ।

निर्वेशो वेतने भोगे निर्वेशो मूर्छनेऽपि च ॥ २५ ॥

शतृतीयम् ।

कठोर, क्रूर, दृढ, साहसवाला (त्रि०)

॥ २२ ॥

आदर्श—दर्पण ( शीशा ), टीका,  
नकलपुस्तक ( पुं० )

कुलिश—मत्स्यभेद, अस्थियों ( हड्डि-  
यों ) का समूह, ( पुं० )

उड्डीश—महादेव, ग्रन्थभेद ( उड्डीश-  
तंत्र ) ( पुं० ) ॥ २० ॥

कुलिश—वज्र ( न० )

गिरीश—महादेव, बृहस्पति, पर्वतों-  
का पति. ( पुं० ) ॥ २३ ॥

उपांशु—जापभेद, ( पुं० )

तुङ्गीश—महादेव, चंद्रमा, ( पुं० )

उपांशु—एकांतस्थान ( अ० )

दुःस्पर्श—जवाँसा ( पुं० )

कपिश—माधवीलता, ( स्त्री० )

दुःस्पर्शा—कटेहली ( स्त्री० ) तीक्ष्ण  
स्पर्शवाला ( त्रि० ) ॥ २४ ॥

कपिश—बंदरकेसे रंगवाला, ( त्रि० )  
हीन ( पुं० ) ॥ २१ ॥

निदेश—समीप, शिक्षा, भाषण ( पुं० )

कर्कश—कमला, कसौंदी या परवल,  
ऊस, तलवार, ( पुं० ) दयाहीन,

निर्वेश—नौकरी, भोग, मूर्छा ( पुं० )  
॥ २५ ॥

निवेशः शिविरे पुंसि तथोद्वाहविनाशयोः ।  
 निस्त्रिंशो निर्दये खड्गे नीकाशो निश्चये समे ॥ २६ ॥  
 पलाशः किंशुके शब्दां पलाशो निकषात्मजे ।  
 क्लीबं पलाशं छदने पलाशो हरिति त्रिषु ॥ २७ ॥  
 पक्षीशो गरुडे कृष्णे पिङ्गाशं जात्यकाञ्चने ।  
 मत्स्ये पल्लीपतौ पुंसि पिङ्गाशी नीलकौषधौ ॥ २८ ॥  
 प्रकाशोऽतिप्रसिद्धे च प्रहासे चाऽऽतपे स्फुटे ।  
 प्रदेशो देशभित्तयोः स्यात्तर्जन्यङ्गुष्ठसम्मिते ॥ २९ ॥  
 बालिशस्तु शिशौ बाल्यलिङ्गे मूर्खेऽपि बालिशः ।  
 भूकेश्यवल्गुजेऽपि स्याद्भूकेशः शैवले वटे ॥ ३० ॥  
 लोमशस्तु पुमान्मेषे वाच्यवल्गोमसंयुते ।  
 शृगालीमर्कटीमांसीशूकशिविषु लोमशा ॥ ३१ ॥

निवेश-सेनास्थान, विवाह, नाश ( पुं० )	प्रकाश-अतिप्रसिद्ध, ठहा, धूप, प्रकट ( पुं० )
निस्त्रिंश-निर्दय, खड्ग ( पुं० )	प्रदेश-देश, दीवार, तर्जनी और अंगूठेका परिमाण ( पुं० ) ॥ २९ ॥
नीकाश-निश्चय, तुल्य ( पुं० ) २६	
पलाश-ढाक-वृक्ष, कचूर, राक्षस ( पु० )	बालिश-बालक, बालभावका चिह्न, मूर्ख ( पुं० )
पलाश-पत्र ( न० )	भूकेशी-बावची, ( स्त्री० )
पलाश-हरा रंगवाला ( त्रि० ) २७	भूकेश-सिवाल, वट ( बड़ ) ( पुं० )
पक्षीश-गरुड, कृष्ण, ( पुं० )	॥ ३० ॥
पिङ्गाश-सुवर्णभेद, ( न० ) मत्स्य, छोटा ग्रामका पति, ( पुं० )	लोमश-मेंढा ( पुं० ) लोमोवाला ( त्रि० )
पिङ्गाशी-नीलिका औषधि ( स्त्री० ) ॥ २८ ॥	लोमशा-गीदड़ी, बंदरी, जटामांसी-औषधि, कौच ( स्त्री० ) ॥ ३१ ॥

लोमशा काकजङ्घायां काशीशे शाकिनीभिदि ।  
 महामेदातिबलयोर्वीकाशस्तु विकाशवत् ॥ ३२ ॥  
 प्रकाशे स्याद्विकसने विजनेऽपि मतः पुमान् ।  
 विकोशः पटवर्त्तौ स्याद्विकाशे विकचे त्रिषु ॥ ३३ ॥  
 विपाशा तु नदीभेदे त्रिषु पाशसमुद्भूते ।  
 विवशो विह्वलेऽपि स्यादवश्यात्मनि च त्रिषु ॥ ३४ ॥  
 सङ्काशः सन्निधौ तुल्ये सदृशं तूचिते समे ।  
 सदेशः सन्निधौ देशे सदेशो देशवत्यपि ॥ ३५ ॥  
 सुखाशो राजतिनिशे वरुणे सुमनोरथे ।  
 आसनेऽपि च संवेशः संवेशः शयनेऽपि च ॥ ३६ ॥  
 हताशो वाच्यवत्कूरे निर्दये निर्वाञ्छिते ।

शचतुर्थम् ।

अपदेशः स्मृतो लक्ष्ये निमित्तव्याजयोरपि ॥ ३७ ॥

लोमशा—काकजंघा, काशीश, शाकिनीभेद, महामेदा, खरहटी-भेद, ( स्त्री० )	संकाश—समीप, तुल्य ( पुं० )
वीकाश—विकाश—प्रकाश, पुष्प आदिका खिलना, जनरहित स्थान, ( पुं० ) ॥ ३२ ॥	सदृश—उचित, तुल्य ( त्रि० )
विकोश—वक्रकी वृत्ती, विकाश, खिलना ( त्रि० ) ॥ ३३ ॥	सदेश—समीप देश, ( पुं० )
विपाशा—नदीभेद, ( स्त्री० ) पाशसे निकलाहुवा ( त्रि० )	सदेश—देशवाला ( त्रि० ) ॥ ३५ ॥
विवश—विह्वल, नहीं बद्ध करनेयोग्य आत्मावाला ( त्रि० ) ॥ ३४ ॥	सुखाश—बड़ा तिरिच्छ-वृक्ष, वरुण, अच्छा मनोरथ ( पुं० )
	संवेश—आसन, शय्या ( पुं० ) ३६
	हताश—कूर, निर्दय, आशारहित ( त्रि० )
	शचतुर्थम् ।
	अपदेश—लक्ष्य ( निशाना ), निमित्त, व्याज ( बहाना ) ॥ ३७ ॥

अपभ्रंशो दुष्पतने भाषाभेदापशब्दयोः ।

आश्रयाशो बृहद्भानौ त्रिष्वेवाश्रयनाशके ॥ ३८ ॥

उपदंशः पुमान्मेढ्रे पीडायां च विदंशने ।

उपस्पर्शस्तु संस्पर्शे स्नानाचमनयोरपि ॥ ३९ ॥

क्रूरदृक् स्यात्खले वक्त्रे खण्डपर्शुः पिनाकिनि ।

राहौ खण्डामलकयोर्लेपकृत्पर्शुरामयोः ॥ ४० ॥

जीवितेशो यमे कान्ते जीवातौ जीवितेश्वरे ।

नागपाशः स्मृतः स्त्रीणां करणे वरुणायुधे ॥ ४१ ॥

वसेत्पञ्चदशी पौर्णमास्यमावस्ययोर्मता ।

परिवेशः परिवृतौ भानोश्चाभ्यर्णमण्डले ॥ ४२ ॥

पलंकशा तु मुण्डीर्या लाक्षायां पुंसि गुग्गुले ।

पादपाशी चटुकायां शृङ्खलाकटुकेऽपि च ॥ ४३ ॥

अपभ्रंश—पङ्ना, भाषाभेद, बुरा श- ब्द ( पुं० )	जीवितेश—धर्मराज, पति, जिला- नेकी औषध, जीवितका स्वामी ( पुं० )
आश्रयाश—अग्नि, ( पुं० ) आश्र- यका नाश करनेवाला ( त्रि० ) ३८	नागपाश—त्रियोंका करण (हावादि), वरुणका अस्त्र ( पुं० ) ॥ ४१ ॥
उपदंश—लिंग—रोगभेद, बिच्छू आदिका डंक ( पुं० )	पंचदशी—पौर्णमासी, अमावास्या ( स्त्री० )
उपस्पर्श—स्पर्श करना, स्नान, आ- चमन ( पुं० ) ॥ ३९ ॥	परिवेश—घेरा, सूर्यके चारोंतरफका मंडल ( पुं० ) ॥ ४२ ॥
क्रूरदृक् ( श् ) खल, वक्त्र ( त्रि० )	पलंकशा—गोरखमुंडी, लाख, ( स्त्री० )
खंडपर्शु—महादेव, राहु, खंडामलक ( खौंड और आँवला ), लेप करने- वाला, पर्शुराम ( पुं० ) ॥ ४० ॥	पलंक ( व ) श—गूगल ( पुं० ) पादपाशी—....., संकलका कड़ा ( स्त्री० ) ॥ ४३ ॥



पुरोडाशो हविर्भेदे तथा सोमलतारसे ।

पिष्टकस्य चमस्यां च हुतशेषे च सम्मतः ॥ ४४ ॥

वार्ताहरे पुरोगे च सहाये च प्रतिष्कशः ।

भूमिस्पृक् सम्मतो वैश्ये भूमिस्पृग्मनुजेपि च ॥ ४५ ॥

इति विश्वलोचनेऽपराभिधानायां मुक्तावल्यां शान्तवर्गः ॥

### अथ षान्तवर्गः ।

षेकम् ।

ष—कारस्तु मतः श्रेष्ठेऽपि स्याद्गर्भविमोचने ।

षद्वितीयम् ।

उषा वाणसुतायां स्यात्प्रभातेऽपि विभावरौ ।

उषस्तु कामुके पुंसि गुग्गुलादावुषः पुमान् ॥ १ ॥

ऋषिश्छन्दे वसिष्ठादौ दीधितौ तु ऋषिः स्त्रियाम् ।

कर्षः पलचतुर्थांशे कर्षः स्यात्कर्षणेऽपि च ॥ २ ॥

पुरोडाश—हविर्भेद, सोमलताका रस

( पुं० ) पीठीकी चमसी, हवनसे

शेष रहा, ( पुं० ) ॥ ४४ ॥

प्रतिष्कश—हलकारा, आगे चलने-

वाला, सहायता करनेवाला ( पुं० )

भूमिस्पृ(श्) कू—वैश्यमात्र ( पुं० )

॥ ४५ ॥

इसप्रकार विश्वलोचनकोशकी भाषा

टीकामें शान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

अथ षान्तवर्गः ।

षेक ।

ष—श्रेष्ठ, गर्भका छुड़ाना, ( त्रि० )

षद्वितीय ।

उषा—वाणामुरकी पुत्री, प्रभात, रात्रि,  
( स्त्री० )

उष—कामी पुरुष, गुग्गुल आदि ( पुं० )  
॥ १ ॥

ऋषि—छन्द, वसिष्ठ आदि, ( पुं० )

ऋषि—किरण ( स्त्री० )

कर्ष—एक तोला प्रमाण, खेंचना  
( पुं० ) ॥ २ ॥

कर्षूः पुंसि करीषामौ कर्षूः कुल्याभिधायिनी ।  
 कोषोऽस्त्री कुञ्जले दिव्ये पेश्यां शब्दादिसङ्गहे ॥ ३ ॥  
 अर्थौघे जातिकोशे च पात्रखङ्गपिधानयोः ।  
 पनसादिफलस्यापि कोषः स्यान्मध्यवर्त्तिनि ॥ ४ ॥  
 घोषा तु शतपुष्पायां घोषः कांस्प्येम्बुदध्वनौ ।  
 घोषः स्याद्घोषकाभीरनिखनाभीरपल्लिषु ॥ ५ ॥  
 झषा नागबलायां स्याज्झषो वैसारिणि स्मृतः ।  
 पिपासालिक्षयोस्तर्षस्तुपो धान्यत्वगक्षयोः ॥ ६ ॥  
 तृट् तृषा च पिपासायां लिप्सायां च स्त्रियाभुमे ।  
 त्विट् कान्तौ रुचि भारत्यां व्यवसायजिगीषयोः ॥ ७ ॥  
 दोषस्तु दूषणे पापे दोषा रात्रौ भुजेऽपि च ।  
 पौषो मासविशेषे स्यात्पौषमुद्धवयुद्धयोः ॥ ८ ॥

कर्षू-करिष ( अरना ) की अग्नि,	झषा-गँगेरन-औषधि, ( स्त्री० )
कर्षू-अस्थि ( स्त्री० )	झष-मत्स्य आदि ( पुं० )
कोष(श)-फूलकली, दिव्य, धेली,	तर्ष-प्यास, बाँछा ( स्त्री० )
शब्द आदिका संग्रह ( पुं० ) ॥ ३ ॥	तुष-धान्यका तुष, बहेका-औषधि
द्रव्यका समूह, जातिकोष ( एक-	( पुं० ) ॥ ६ ॥
जातिका संग्रह ), पात्र, खङ्गका	तृट्(ष)-तृषा-प्यास, बाँछा, ( स्त्री० )
कोश ( म्यान ), चमेलीका कोश,	त्विट्(ष)-कान्ति, प्रभा, सरस्वती,
पनस आदिके फलका मध्यवर्ती	उद्यम ( वीर्यातिशय ), जीतनेकी
भाग ( पुं० ) ॥ ४ ॥	इच्छा ( स्त्री० ) ॥ ७ ॥
घोषा-सौफ ( स्त्री० )	दोष-दूषण, पाप, ( पुं० )
घोष-काँसी-धातु, मेघकी ध्वनि	दोषा-रात्रि, भुजा ( बाहु ), ( स्त्री० )
( शब्द ), घोषक ( गोपाल ) अ-	पौष-पौष-मास, ( पुं० )
हीरजाति, शब्द, अहीरोंका ग्राम,	पौष-उत्सव, युद्ध, ( न० ) ॥ ८ ॥
( पुं० ) ॥ ५ ॥	

पौषी तु पौषपौर्णम्यां पुष्ययुक्ता भवेद्यदि ।  
 प्रैषस्तु प्रेषणोन्मानमर्दनक्लेशवाचकः ॥ ९ ॥  
 भाषा गिरि सरस्वत्यां विकल्पार्थे विपूर्वके ।  
 माषो ब्रीह्यन्तरे माने मूर्खे त्वग्दूषणान्तरे ॥ १० ॥  
 मिषस्तु स्पर्द्धने व्याजे निमेषे तु निपूर्वकः ।  
 मेषः स्यादुरणे राशिभेदभैषज्यभेदयोः ॥ ११ ॥  
 मेष उत्पूर्वको वेधे वर्षाः स्युः प्रावृषि स्त्रियाम् ।  
 वर्षमस्त्री वर्षणेऽब्दे जम्बूद्वीपे घने पुमान् ॥ १२ ॥  
 विषा त्वतिविषायां स्याद्विषं तु गरले जले ।  
 विड् व्यापने पुरीषे च वृषो मूषकधर्मयोः ॥ १३ ॥  
 वृषभे वासके श्रेष्ठे राशौ शृङ्ग्यां च शुक्रले ।  
 शुके पुरुषभेदेऽपि व्रतिनामासने वृषी ॥ १४ ॥

पौषी—जो पुष्यनक्षत्रयुक्त होवे वह	उन्मेष—वीधना, ( पुं० )
पौषमासकी पूर्णिमा, ( स्त्री० )	वर्षा—वर्षाकृत ( स्त्री० ब० )
प्रैष—भोजना, उन्मान, मर्दन, क्लेश	वर्ष—वर्षा, वर्ष ( पु० न० ) जंबू-
( पुं० ) ॥ ९ ॥	द्वीप, मेष ( पु० ) ॥ १२ ॥
भाषा—वाणी, सरस्वती, ( स्त्री० )	विषा—अनास-औषधि ( स्त्री० )
विभाषा—विकल्प ( स्त्री० )	विष—गरल ( जहर ), जल ( न० )
माष—ब्रीहि ( उद्द ), तोल ( मासाभर ),	विट् ( वृ )—प्रविष्ट होना, विष्टा, ( स्त्री० )
मूर्ख, त्वचा-दोषभेद ( पु० ) ॥ १० ॥	वृष—मूसा, धर्म, ॥ १३ ॥
मिष—स्पर्द्धा ( ईर्ष्या ), बहाना, ( पुं० )	वैल, बाँसा, श्रेष्ठ, वृष—राशि, का-
निमिष—निमेष ( कालभेद ) ( पु० )	कडासींगी, वीर्यको बढ़ानेवाला
मेष—मेंढा, मेष—राशि, औषधिभेद	द्रव्य, वीर्य, पुरुषभेद ( पुं० )
( पुं० ) ॥ ११ ॥	वृषी—व्रतियोंका आसन, ( स्त्री० ) १४

वृषा मूषकपर्ण्या स्यात्कपिकच्छामपि स्मृता ।  
शुषिः शोषे विले ख्यातः शेषः सङ्कर्षणे वधे ॥ १५ ॥  
अनन्तेऽप्यवशिष्टेऽपि शेषा निर्माल्यभिद्यपि ।

षट्तीयम् ।

अभीषुः पुंसि मासि स्यादभीषुः प्रग्रहेऽपि च ॥ १६ ॥  
आकर्षस्त्विन्द्रिये ख्यातो द्यूताकर्षणयोरपि ।  
पाशके शारिफलके कोदण्डाभ्यासवस्तुनि ॥ १७ ॥  
क्लीवमामिषमुत्कोचे मांसे सम्भोगलोभयोः ।  
आमिषं सुंदराकाररूपादौ विषयेऽपि च ॥ १८ ॥  
उष्णीषं तु शिरोवेष्टे किरीटे लक्षणान्तरे ।  
कल्माषो राक्षसे कृष्णकृष्णपाण्डुरयोरपि ॥ १९ ॥  
कलुषं किल्बिषे क्लीवमाविले कलुषं त्रिषु ।  
किल्बिषं वृजिने रोगेऽप्यपराधेऽपि किल्बिषम् ॥ २० ॥

वृषा-मूसाकत्री, कौच ( स्त्री० )	आमिष-खिलना, मांस, संभोग,
शुषि-शोष, विल ( पुं० )	लोभ, सुंदर-आकाररूपआदि, वि-
शेष-बलदेव, वध ॥ १५ ॥ अनन्त	पय ( न० ) ॥ १८ ॥
( शेषनाग ), अवशिष्ट ( बाकीरहा )	उष्णीष-शिरपर बाँधनेका वस्त्र,
( पुं० )	मुकुट, लक्षणभेद ( न० )
शेषा-निर्माल्यभेद, ( स्त्री० )	कल्माष-राक्षस, काला रंग, काला
षट्तीय ।	और धौला रंग ( पुं० ) ॥ १९ ॥
अभीषु-किरण, अश्व आदिकी रस्सी	कलुष-पाप ( न० ) मलिन ( त्रि० )
( पुं० ) ॥ १६ ॥	दुःख रोग, ( न० )
आकर्ष-इन्द्रिय, जूवा, आकर्षण,	किल्बिष-पाप, रोग, अपराध,
पासा, चापट, धनुषके समीपकी	( न० ) ॥ २० ॥
वस्तु, ( पुं० ) ॥ १७ ॥	

कुल्माषो यवके पुंसि चणके यवषष्ठके ।

कुल्माषं काञ्जिके क्लीबं गण्डूषः प्रसृतोन्मिते ॥ २१ ॥

गण्डूषो मुखपूरेऽपि करिहस्ताङ्गुलावपि ।

जिगीषा जेतुमिच्छायां व्यवसायप्रकर्षयोः ॥ २२ ॥

तरीषः शोभनाकारे भेलेब्धिग्रवसाययोः ।

ताविषस्तु सरिन्नाथे कनकस्वर्गयोरपि ॥ २३ ॥

नहुषो राजभेदे स्यान्नहुषो भुजगान्तरे ।

निकषः कषपापाणे निकषा यातुमातरि ॥ २४ ॥

निमेषनिमिषौ कालभेदे नेत्रनिमीलने ।

परुषं कर्बुरे रूक्षे त्रिपु निष्ठुरवाच्यपि ॥ २५ ॥

पुरुषः पुत्रागमातङ्गे माधवे परमात्मनि ।

पौरुषं तेजसि क्लीबं पुंसो भावेऽपि कर्मणि ॥ २६ ॥

कुल्माष—जव, चना, आधा सीजाहुवा  
धान्य ( पुं० )

कुल्माष—कॉजी ( न० )

गण्डूष—एक अंजलि प्रमाण, ॥ २१ ॥

मुखका जल आदिमे पूरना, हाथी-  
की सूँड और अंगुली ( पुं० )

जिगीषा—जीतनेकी इच्छा, वीर्याति-

शय, उच्चपन ( स्त्री० ) ॥ २२ ॥

तरीष—सुंदर आकार, छोटी नाँका,

समुद्र, वीर्यातिशय ( पु० )

ताविष—समुद्र, सुवर्ण, स्वर्ग ( पुं० )

॥ २३ ॥

नहुष—राजा नहुष, सर्पभेद ( पुं० )

निकष—कर्मोटीपन्थर ( पु० )

निकषा—राक्षसोकी माता ( स्त्री ) २४

निमेष निमिष—कालभेद, नेत्रोंका

माँचना ( पुं० )

परुष—कबरा रंग, रूखा, ( न० )

कटोर बोलनेवाला ( त्रि० ) ॥ २५ ॥

पुरुष—पुनाग—वृक्ष, हस्ती, विष्णु, पर-

मात्मा ( पुं० )

पौरुष—तेज, पुरुषका भाव और कर्म

( न० ) ॥ २६ ॥

ऊर्द्धविस्तृतदोःपाणिनृमाने त्रिषु पौरुषम् ।

प्रत्यूषोऽहर्मुखे पुंसि प्रत्यूषो वसुदैवते ॥ २७ ॥

प्रदोषः पुंसि दोषे स्यान्नाट्योक्त्यार्ये च मारिषः ।

रौहिषं कर्तृणे पुंसि मृगभेदे तु रौहिषः ॥ २८ ॥

विशेषो भेदमात्रेऽपि विशेषस्तिलकेऽपि च ।

विश्लेषः स्याद्विघटने विश्लेषो विधुरे तथा ॥ २९ ॥

व्याकर्षः शारिफलके व्युत्ताक्षकर्षणेषु च ।

शुश्रूषा श्रोतुमिच्छायां परिचर्याकथानयोः ॥ ३० ॥

कुशीलवेपे शैलूषः शैलूषो वित्वपादपे ।

सङ्घर्षः स्पर्द्धने घर्षे प्रमोदेऽपि प्रमञ्जने ॥ ३१ ॥

पचतुर्थम् ।

अनुकर्षो रथस्याधोदारुण्यप्यनुकर्षणे ।

अनुतर्पः सुरापानपात्रे तृष्णाभिलाषयोः ॥ ३२ ॥

पौरुष-लंबी दोनों भुजाओंसे प्रमाण व्याकर्ष-चाँपड़, जूवा, पाशा, आ-  
( न० ) कर्षण ( पुं० )

प्रत्यूष-दिनका मुख ( प्रातःकाल ), शुश्रूषा-सुननेकी इच्छा, परिचर्या  
वसुदैवतावाला ( पुं० ) ॥ २७ ॥ ( टहल ), कथन ( पु० ) ॥ ३० ॥

प्रदोष-दोष ( पुं० ) शैलूष-नट, वित्वका वृक्ष ( पुं० )

मारिष-नाट्यकी उक्तिमें आर्य ( पुं० ) संघर्ष-ईर्ष्या, घिसना, आनंद, वायु  
( पुं० ) ॥ ३१ ॥

रौहिष-रोहिण तृण, ( न० )

पचतुर्थम् ।

रौहिष-मृगभेद ( पुं० ) ॥ २८ ॥ अनुकर्ष-रथके नीचेके भागका काष्ठ,

विशेष-भेदमात्र, तिलक ( पुं० ) अनुकर्षण ( पुं० )

विश्लेष-वियोग, अत्यंत वियोग अनुतर्प-मदिरापीनेका पात्र, तृषा,  
( पुं० ) ॥ २९ ॥ अभिलाषा ( पुं० ) ॥ ३२ ॥

सुरे मत्स्येऽप्यनिमिषः सुरे मत्स्येऽनिमेषवत् ।  
 अम्बरीषो रणे आष्ट्रेऽम्बरीषो भूमृदन्तरे ॥ ३३ ॥  
 मार्त्तण्डे खण्डपरशौ कपीतनकिशोरयोः ।  
 अलम्बुषः पुमानेव मतश्छर्दनपादपे ॥ ३४ ॥  
 अलम्बुषा तु मुण्डीरीत्वर्गवेश्याप्रभेदयोः ।  
 तुरङ्गवदने लोकभेदे किंपुरुषः पुमान् ॥ ३५ ॥  
 नन्दिघोषः पार्थरथे स्तुतिपाठकघोषणे ।  
 परिघोषस्त्ववाच्ये स्यान्निनादे वारिदध्वनौ ॥ ३६ ॥  
 पलङ्कषा गोकुरके लाक्षागुगुलकिङ्गुके ।  
 मुण्डीरीरास्त्रयोश्चैव राक्षसे तु पलङ्कषः ॥ ३७ ॥  
 श्रृङ्गीभेदे महाघोषा पुंसि हृष्टेऽतिघोषयोः ।  
 वातरूपस्तु वातूलेऽप्युत्कोचे शक्रकार्मुके ॥ ३८ ॥  
 इति विश्वलोचनेऽपराभिधानायां मुक्तावल्यां पान्तवर्गः ॥

अनिमिष-अनिमेष-मच्छ, देवता ( पुं० )	परिघोष-नहीं कहने योग्य शब्द, शब्द-मात्र, मेषका गर्जना ( पुं० ) ३६
अम्बरीष-रण, भाइ, एक राजा ३३ सूर्य, महादेव, अंवाडा-वृक्ष, कि- शोर ( जवान ) ( पुं० )	पलङ्कषा-गोखरू, लाख, गुगुल, केमू, गोरखमुंडी, रायसन ( स्त्री० )
अलंबुष-छर्दन ( वमन ) करनेका वृक्ष ( पुं० ) ॥ ३४ ॥	पलङ्कष-राक्षस ( पुं० ) ॥ ३७ ॥
अलंबुषा- गोरखमुंडी, स्वर्गवेश्या- भेद, ( स्त्री० )	महाघोषा-काकडासींगी, ( स्त्री० )
किंपुरुष-देवयोनिभेद ( किन्नर ), लोकभेद ( पुं० ) ॥ ३५ ॥	महाघोष-छाट, अतिशब्द ( पुं० )
नन्दिघोष-अर्जुनका रथ, स्तुतिकरने- वालाका शब्द ( पुं० )	वातरूप-वायुको नहीं सहनेवाला, विश्वत, इंद्रका धनुष ( पुं० ) ३८
	इसप्रकार विश्वलोचनकी भाषाटीकामें पान्तवर्ग समाप्त हुवा ॥

## अथ सान्तवर्गः ।

सैकम् ।

सा पुंस्यन्धौ रमायां स्याद्रत्यां से श्रीश्रुतेऽपि सः ।  
सोरच्युते तु पार्वत्यामसस्कन्धविभूषयोः ॥ १ ॥

सद्वितीयम् ।

कासूर्विकलवाचि स्यात्कासूः शक्तयायुधे स्त्रियाम् ।  
कंसो दैत्यान्तरे कांस्ये कांस्यभाजनमानयोः ॥ २ ॥  
स्याद्गुत्सः स्तबके स्तम्भे हारभिद्वन्धिपर्णयोः ।  
गोसः प्रभाते पुंस्येव गोसो गन्धरसेऽपि च ॥ ३ ॥  
चासः सुवर्णचूडे स्यात्प्रभेद इक्षुपर्वणः ।  
मणिदोषे भये त्रासो दासो भृत्येऽपि धीवरे ॥ ४ ॥  
शूद्रेऽपि दानपात्रेऽपि चेटीसिनकयोः स्त्रियाम् ।  
नासा तु नासिकायां स्यान्नासा द्वारोर्द्ध्वदारुणि ॥ ५ ॥

अथ सान्तवर्गः ।

सैक ।

स-कुँवा (पुं०) लक्ष्मी, रति (स्त्री०)  
श्रीश्रुत (.....) (पुं०)  
सो-विष्णु (पुं०) पार्वती (स्त्री०)  
कंधा, कंधोंके भूषण (पुं०) ॥१॥

सद्वितीय ।

कासू-विकलवाणी, शक्ति आयुध  
(स्त्री०)

कंस-कंस-दैत्य, कांसी-धातु, काँ-  
सीका पात्र, प्रमाण (पुं०) ॥२॥

२५

गुन्स-गुच्छा, तृणआदिका समूह,  
हारभेद, प्रंथिपर्णी (गठिवन) (पुं०)

गोस-प्रभात, बोल, (पुं०) ॥ ३ ॥

चास-पक्षिभेद, ऊसभेद, (पुं०)

त्रास-मणिदोष, भय (पुं०)

दास-भृत्य, धीवर (स्त्री०) ॥ ४ ॥

शूद्र, दानपात्र, (पुं०)

दासी-टहलनी (स्त्री०)

नासा-नासिका (नाक), द्वारके

ऊपरका काष्ठ (स्त्री०) ॥ ५ ॥



प्रसूमीतरि कन्दल्यामश्वयां पुंसि वीरुधि ।  
 वसुर्ना देवभेदे च योक्त्रे वह्नौ युधे त्रिषु ॥  
 वसु वृद्धौषधे रत्नेऽपि श्यामे हट्टके धने ॥ ६ ॥  
 वाच्यवन्मधुरेऽपि स्याद्भाः प्रभावे रुचि स्त्रियाम् ।  
 भासस्तु भासि गृध्रे च गोष्ठकुक्कुटेऽपि च ॥ ७ ॥  
 मांसं स्यादामिषे मांसी कक्कोलीजटयोः स्त्रियाम् ।  
 माः सुधीदीधितौ मासे चन्द्रे चन्द्रात्परोऽपि सः ॥ ८ ॥  
 मिसिः स्त्री मधुरीमांस्योः शतपुष्पाजमोदयोः ।  
 प्रसस्तु मुहिमूढे स्यान्मूसो मास्यामपि स्मृतः ॥ ९ ॥  
 रसः स्वादेऽपि तिक्तादौ शृङ्गारादौ द्रवे विषे ।  
 पारदे धातुवीर्याम्बुरागे गन्धरसे तनौ ॥ १० ॥  
 रसो वृतादावाहारपरिणामोद्भवेऽपि च ।  
 रसा जिह्वास्रवापाटाशलकीकङ्कषु स्त्रियाम् ॥ ११ ॥

प्रसू—माता, केला या कमलगटा, अ- श्वा ( घोड़ी ) ( स्त्री० )	मास्—पण्डित, किरण, मास, चंद्रमा, चंद्रमासे परेका लोक ( पुं० ) ॥८॥
प्रसू—बेल ( पुं० )	मिसि—मोआ, जटामांसी, माँफ, अ- जमोद ( स्त्री० )
वसु—देवभेद, जोता, अग्नि, युद्ध ( त्रि० )	प्रस—..... ( पुं० )
वसु—वृद्धि आपधि, रत्न, श्यामरंग, हाट, धन ( न० ) ॥ ६ ॥	मूस—जटामांसी ( पुं० ) ॥ ९ ॥
वसु—मधुर ( त्रि० )	रस—स्वाद, तिक्त आदि रस, शृंगार आदि रस, द्रव, विष, पारा, धातु, वीर्य, जल, राग ( अनुराग ), बोल, शरीर ॥ १० ॥ घृत-आदि, भोज- नका परिपाकद्रव, ( पुं० )
मास्—प्रभाव, प्रभा ( स्त्री० )	रसा—जिह्वा, स्रवा, मोना-पाटा, सा- ल-वृक्ष, मालकांगनी ( स्त्री० ) ॥ ११ ॥
मास—प्रभा, गृध्रपक्षी, गँवोके टानका मुर्गी ( पुं० ) ॥ ७ ॥	
मांस—मांस ( न० )	
मांसी—कंकोल, जटामांसी ( स्त्री० )	

रासस्तु गोपक्रीडायां भाषाशृङ्खलके ध्वनौ ।  
 पुत्रादौ तर्णके वर्षे वत्सो वत्सं तु वक्षसि ॥ १२ ॥  
 वासो गृहेऽप्यवस्थाने वासा स्यादाटरूपके ।  
 मुनिविस्तारयोर्व्यासः शंसा वचनवाञ्छयोः ॥ १३ ॥  
 हिंसा चौर्यादिवधयोः हंसः सूर्यमरालयोः ।  
 कृष्णेङ्गवाते निर्लोभनृपतौ परमात्मनि ॥ १४ ॥  
 योगिमन्त्रादिभेदे च मत्सरे तुरगान्तरे ।

सतृतीयम् ।

अलसा हंसपद्यां स्यादागः पापापराधयोः ॥ १५ ॥  
 आशीः स्त्री सर्पदंष्ट्रायां तथा स्त्री शुभशंसने ।  
 आख्यायिकापरिच्छेदेऽप्यावासो निर्वृतावपि ॥ १६ ॥  
 इप्वासः स्याद्धनुर्मात्रे स्यादिप्वासो धनुर्धरे ।  
 उच्छ्वासः शामनाश्वासगद्यबन्धगुणान्तरे ॥ १७ ॥

रास-गोपक्रीडा, भाषाकी शृङ्खला, ध्वनि, ( पुं० )	मात्मा, ॥ १४ ॥ योगिभेद, मंत्र आदि भेद, मन्मरी, अश्वभेद (पुं०)
वत्स-पुत्रआदि, बछड़ा, वष ( पुं० )	सतृतीय ।
वत्स-छाती ( न० ) ॥ १२ ॥	अलसा-लालरगका लजालू, (स्त्री०)
वास-घर, स्थिति ( पुं० )	आगम्-पाप, अपराध ( न० ) १५
वासा-अट्टसा ( स्त्री० )	आशिस्-सर्पकी डाढ, शुभका कथन ( स्त्री० )
व्यास-मुनि, विस्तार, ( पुं० )	आश्वास-वार्ताका विश्राम, आनन्द ( पुं० ) ॥ १६ ॥
शंसा-वचन, वांछा ( स्त्री० ) ॥ १३ ॥	इप्वास-धनुष, धनुष धारण करनेवाला ( पुं० )
हिंसा-चोरीआदि, प्राणीका मारना ( स्त्री० )	उच्छ्वास-शिक्षा, आश्वासना, गद्यबन्धका विश्राम ( पुं० ) ॥ १७ ॥
हंस-सूर्य, हंस-पक्षी, श्रीकृष्ण, शरीरका वायु, लोभरहित राजा, पर-	

उत्तंसश्चावतंसश्च वतंसश्चेत्यमी त्रयः ।

अस्त्रियामेव वर्तन्ते कर्णपूरेऽपि शेखरे ॥ १८ ॥

उरस्तु वक्षोरयोरुषः सन्ध्याप्रभातयोः ।

एनोऽपराधे कलुषेऽप्योकस्त्वाश्रयसन्नोः ॥ १९ ॥

ओजो दीप्तौ च सामर्थ्येऽप्यवष्टम्भप्रकाशयोः ।

ओजस्तेजसि धातूनामिति पञ्चसु दृश्यते ॥ २० ॥

कीकसः किमिजातौ स्यात्कीकसं क्लीबमस्थनि ।

चमसः पिष्टभेदे स्यात्पर्पटे चूर्णसंबले ॥ २१ ॥

छन्दः श्रुतीच्छयोः पद्ये स्वाच्छन्द्ये ना तु वर्तते ।

ज्यायांस्त्रिप्विति वृद्धे स्यादपि श्रेष्ठातिशस्तयोः ॥ २२ ॥

गुणे कोपेऽप्यभिमतं तरः स्याद्बलवेगयोः ।

तामसी चण्डिकायां स्यात्तामसः खलसर्पयोः ॥ २३ ॥

तेजः पराक्रमे दीप्तौ प्रभावे बलशुक्रयोः ।

धनुः शरासने राशौ धनुर्द्वन्विपियालयोः ॥ २४ ॥

उत्तंस, अवतंस, वतंस—मुकुट छन्दस्—वेद, इच्छा, पद्य, स्वच्छन्द-  
आदि, कर्णभूषण ( पुं०न० ) १८ ता ( पुं० )

उरस्—छाती, ध्रेष्ट, ( न० ) ज्यायस्—अतिवृद्ध, ध्रेष्ट, अतिप्रशं-

उपस्—संध्या, प्रभान ( न० ) सुनीय ( त्रि० ) ॥ २२ ॥

एनस्—अपराध, पाप ( न० ) तरस्—गुण, कोप, बल, वेग ( न० )

ओकस्—आश्रय, स्थान ( न० ) १९ तामसी—चण्डिका, ( स्त्री० )

ओजस्—दीप्ति, सामर्थ्य, गेकनेवाला, तामस—खल ( खोटा ), सर्प ( पुं० )  
प्रकाश, धातुओंका तेज, ( न० ) २० ॥ २३ ॥

कीकस—किमिजाति, ( पुं० ) तेजस्—पराक्रम, दीप्ति, प्रभाव, बल,  
कीकस—अस्थि ( दृष्टी ) ( न० ) वीर्य, ( न० )

चमस—पिष्टभेद, पापङ्ग, चूर्णलिपटाहु- धनुस्—धनुष, धन—राशि, ( पुं०न० )  
वा ( पुं० ) ॥ २१ ॥ धनुस्—चिरौजी, ( पुं० ) ॥ २४ ॥

धनुर्धनुर्धरेऽपि स्याद्धनुर्जुनमूखे ।

नभो व्योम्नि नभो मेघे विससूत्रे पतद्गहे ॥ २५ ॥

वर्षासु श्रावणे घ्राणे नभाः पलितमस्तके ।

पनसः कण्टकिफले कण्टके कपिरुग्निदोः ॥ २६ ॥

दुग्धे नीरे वटादीनां क्षीरेऽपि क्षीरवत्पयः ।

श्रीवासे पायसः पुंसि परमान्ने तु पायसम् ॥ २७ ॥

पुष्कसी कालिकानील्योः पुष्कसः श्वपचेऽधमे ।

प्रहासः स्यान्नटवटौ हास्यतीर्थविशेषयोः ॥ २८ ॥

पुनरर्थेऽव्ययं भूयो भूयांस्तु बहुषु त्रिषु ।

मनश्चित्ते मनीषायां महस्तूत्सवतेजसोः ॥ २९ ॥

मानसं स्वान्तसरसो रजः स्यादार्तवे गुणे ।

रजः परागे रेणौ तु रजवद्दृश्यते रजः ॥ ३० ॥

धनुर्धनुर्धरेऽपि स्याद्धनुर्जुनमूखे ।	पुष्कसी-कालिका, नील-वृक्ष(त्री०)
अर्जुन ( कोह ) वृक्ष ( पुं० )	पुष्कस-चांडाल, नीच ( पुं० )
नभस्-आकाश, मेघ, कमलभँसाडा- का तंतु, पीकदान ( न० ) ॥ २५ ॥	प्रहास-नटका लड़का, ठट्टासे हँसना, तीर्थविशेष ( पुं० ) ॥ २८ ॥
वर्षा-ऋतु, श्रावण-मास, नास्तिका, बुढापेसे सफेद मस्तकवाला ( पुं० )	भूयस्-पुनः ( दूसरीबार ) ( अ० ) भूयस्-बहुत ( त्रि० )
पनस्-फनस-वृक्ष, काँटा, वानरभेद, रोगभेद, ( पुं० ) ॥ २६ ॥	मनस्-चित्त, बुद्धि, ( न० ) महस्-उत्सव, तेज ( न० ) ॥ २९ ॥
पयस्( पय )-दूध, जल, बडआदि वृक्षांका दूध, ( न० )	मानस-मन, एक सरोवर, ( न० ) रजस्-स्त्रीका आर्तव, गुण, पुष्पधूलि ( न० )
पायस-देवदारुकी धूप, ( पुं० ) क्षी- रान्न ( खीर ) ( न० ) ॥ २७ ॥	रजस्(रज)-धूलिमात्र ( न० ) ३०

हर्षे वेगे च रभसस्तत्त्वे गुह्ये रते रहः ।

दंष्ट्रायां राक्षसी ख्याता राक्षसी राक्षसस्त्रियाम् ॥ ३१ ॥

रेतः शुके रसे रेफाः क्रूरेऽपि कृपणेऽधमे ।

रोदश्च रोदसी चैव दिवि भूमौ द्वयोरपि ॥ ३२ ॥

लालसस्तु द्वयोस्तृष्णाविष्टे चौत्सुक्ययाच्चत्रयोः ।

वपुर्नपुंसकं देहे वपुर्भव्याकृतावपि ॥ ३३ ॥

वयस्तु यौवने बाल्यप्रभृतौ विहगे वयाः ।

बर्हिस्तु पुंसि दहने बर्हिः पुंसि कुशेऽपि च ॥ ३४ ॥

वरासिः स्यादसिश्रेष्ठे वरासिः स्थूलशाटके ।

वर्चो दीप्तौ पुरीषे च वर्चो रूपेऽपि न द्वयोः ॥ ३५ ॥

श्रीवासे वायसः पुंसि बलिपुष्टेऽपि वायसः ।

काकोदुम्बरिकायां च काकमाच्यां च वायसी ॥ ३६ ॥

रभस—हर्ष ( आनन्द ), वेग ( पुं० )	वयस्—यौवन, बाल्यप्रभृतौ अवस्था ( न० )
रहस्—तत्त्व, गुह्य ( गोप्य ), मैथुन ( न० )	वयस्—पक्षी ( पुं० )
राक्षसी—डाढ, राक्षसकी स्त्री ( राक्षसी ) ( स्त्री० ) ॥ ३१ ॥	बर्हिस्—अग्नि, कुशा, ( पुं० ) ॥ ३४ ॥
रेतस्—वीर्य, रस ( न० )	वरासि—ध्रेष्टुवज्र, मोटी साडी या धोती ( पुं० )
रेफस्—क्रूर, कृपण, नीच ( त्रि० )	वर्चस्—दीप्ति, विष्टा, रूप, ( न० ) ॥ ३५ ॥
रोदस्—रोदसी—आकाश, पृथ्वी, ये दोनों एकबार ( आकाशभूमि ) ( स्त्री० ) ॥ ३२ ॥	वायस—श्रीवास—धूप, ( सरलवृक्षका गोंद ), कोयल—पक्षी ( पुं० )
लालस—लालसा—तृष्णाव्याप्त, उत्सुकता, यात्रा ( पुं० स्त्री० )	वायसी—कटूमर, मकोय, ( स्त्री० ) ॥ ३६ ॥
वपुस्—शरीर, सुंदर आकृति ( न० ) ॥ ३३ ॥	

वासस्तु वसने ख्यातमोष्ठे दशनपूर्वकम् ।  
 वाहसोऽजगरे वारिनिर्माणे सुनिषण्णके ॥ ३७ ॥  
 विद्वान्धीरात्मवित्प्राज्ञे विलासो हावलीलयोः ।  
 वीतंसो बन्धनोपाये मृगाणां पक्षिणामपि ॥ ३८ ॥  
 तद्विश्वासाय वस्त्रे च वीतंसमपि न द्वयोः ।  
 बीभत्सो नाऽर्जुने हिंस्रे विकृते सवृणे त्रिषु ॥ ३९ ॥  
 पितामहे बुधे वेधा वेधा दामोदरेऽपि च ।  
 शिरस्तु मस्तके सेनाग्रभागेऽय्यप्रधानयोः ॥ ४० ॥  
 श्रेयस्तु मङ्गले धर्मे श्रेयाऽशस्तेऽभिधेयवत् ।  
 श्रेयसी करिपिप्पल्यामभयाराहयोरपि ॥ ४१ ॥  
 श्रीवासो वृक्षधूपेऽपि श्रीवासो विष्णुपद्मयोः ।  
 स्रोतोऽम्बुलेशे कर्णे च स्रोतो देहशिरास्वपि ॥ ४२ ॥

वासस्-वस्त्र, ( न० )

दशनवासस्-होंठ ( न० )

वाहस्-अजगर-सर्प, जलका निकस-  
ना, अच्छीतरह स्थित हुवा ( पुं० )  
॥ ३७ ॥

विद्वस्-धैर्यवान्, आत्मवेत्ता, पंडित,  
( पुं० )

विलास-हाव, लीला ( पुं० )

वीतंस-मृग और पक्षियोंका बंधन-  
का उपाय, ( पुं० ) ॥ ३८ ॥

वीतंस-मृग और पक्षियोंके विश्वासके-  
लिये वस्त्र ( डरावा ) ( न० )

बीभत्स-अर्जुन ( पुं० ) हिंसाकरने-

वाला, विकारको प्राप्त हुवा, ग्लानि  
करनेवाला, ( त्रि० ) ॥ ३९ ॥

वेधस्-व्रद्धा, पंडित, श्रीकृष्ण ( पुं० )

शिरस्-मस्तक, सेनाका अग्रभाग  
( न० ) आगे होनेवाला, प्रधान  
( त्रि० ) ॥ ४० ॥

श्रेयस्-मंगल, धर्म ( न० )

श्रेयस्-श्रेष्ठ ( त्रि० )

श्रेयसी-गजपीपल, हरड, रायसन  
( स्त्री० ) ॥ ४१ ॥

श्रीवास-सरल वृक्षका गोंद, विष्णु,  
कमल ( पुं० )

स्रोतस्-जलका लेश ( थोडा जल ),  
कान, शरीरकी नाडी ( न० ) ४२

सङ्क्षेपेऽपि समासः स्यात्समासः स्यात्समर्थने ।  
 द्वन्द्वादौ च समासाख्या सरस्तोयतडागयोः ॥ ४३ ॥  
 सहो ज्योतिष्मति बले सहा हेमन्तमार्गयोः ।  
 सारसं पङ्कजे क्लीबं सारसः पक्षिचन्द्रयोः ॥ ४४ ॥  
 साहसं तु बलात्कारकरणे साहसं मदे ।  
 सुरसौषधिभेदेऽपि हविस्तु घृतहव्ययोः ॥ ४५ ॥

सचतुर्थम् ।

अगौकाश्च नगौकाश्च शरभे सिंहपक्षिणोः ।  
 अधिवासस्तु वसतौ संस्कारे धूपनादिभिः ॥ ४६ ॥  
 अवध्वंसस्तु निंदायां परित्यागावचूर्णयोः ।  
 उदर्चिः पुंसि दहने उदर्चिस्तूत्पभे त्रिषु ॥ ४७ ॥  
 कनीयाननुजेऽत्यल्पे त्रिषु स्यादतियूनि वा ।  
 कलहंसस्तु कादम्बे राजहंसे नृपोत्तमे ॥ ४८ ॥

समास—संक्षेप, समर्थन करना, द्वन्द्व

आदि—समास ( पुं० )

सरस्—जल, तालाब ( न० ) ॥ ४३ ॥

सहस्—ज्योति, अतिबल, ( न० )

साहस्—हेमन्त—ऋतु, मार्गशिर—मास ( पुं० )

सारस—कमल ( न० )

सारस—सारस—पक्षी, चंद्रमा ( पुं० )  
 ॥ ४४ ॥

साहस—जबरदस्ती करनी, मद(न०)

सुरसा—औषधिभेद ( तुलसी ),  
 ( स्त्री० )

हविस्—घृत, देवान्न ( न० ) ॥ ४५ ॥

सचतुर्थ ।

अगौकस् नगौकस्—साबर, सिंह,  
 पक्षी ( पुं० )

अधिवास्—बसना, धूप देना आदिसे  
 संस्कार ( पुं० ) ॥ ४६ ॥

अवध्वंस—निंदा, परित्याग, चूर्ण  
 करना ( पुं० )

उदर्चिस्—अग्नि ( पुं० )

उदर्चिस्—तीव्र प्रभावाला ( त्रि० )  
 ॥ ४७ ॥

कनीयस्—छोटा भ्राता, बहुत थोड़ा,  
 अतियुवा ( जवान ) ( त्रि० )

कलहंस—बतक, राजहंस ( जिसकी  
 चोंच और चरण रक्तहों ) राजाओंमें  
 श्रेष्ठ राजा ( पुं० ) ॥ ४८ ॥

कुम्भीनसो विषज्वालाकुलदृष्टिभुजङ्गमे ।  
 भुजङ्गमेऽप्यथो कुम्भीनसी लवणमातरि ॥ ४९ ॥  
 भवेद्घनरसो नीरे दक्षिणावर्त्तपारदे ।  
 सान्द्रनिर्यासकर्पूरपीलुपर्णीषु मोरटे ॥ ५० ॥  
 चन्द्रहासो दशग्रीवखङ्गे खङ्गे च दृश्यते ।  
 क्लीबं तामरसं ताम्रे काञ्चने जलजेऽपि च ॥ ५१ ॥  
 त्रिस्रोता जाह्नवीनद्योर्दिवौकाश्चातके सुरे ।  
 दीर्घायुः पुंसि मार्त्तण्डकाकशाल्मलिजीवके ॥ ५२ ॥  
 निःश्रेयसं शुभे शुक्ले पुंसि निःश्रेयसो हरे ।  
 नीलाञ्जसाऽप्सरोभेदे नदीभेदे तडित्यपि ॥ ५३ ॥  
 पुनर्वसुःस्त्रियामृक्षे कृष्णे कात्यायने पुमान् ।  
 पौर्णमासी तु पौर्णम्यां पौर्णमासः क्रतौ नरि ॥ ५४ ॥

कुम्भीनस-विषज्वालासे आकुल दृष्टि- वाला सर्प, सर्प, ( पुं० )	दिवौकस्-पपीहा-पक्षी, देवता(पुं०)
कुम्भीनसी-लवणासुरकी माता(स्त्री०) ॥ ४९ ॥	दीर्घायुस्-सूर्य, काग-पक्षी, शाल्म- लि ( साल ) वृक्ष, जीवक औषधि ( त्रि० ) ॥ ५२ ॥
घनरस-जल, दक्षिणावर्त्त पारा, स- घन, गोंद, कपूर, चुरनहार, क्षीर- मोरट, ( पुं० ) ॥ ५० ॥	निःश्रेयस-शुभ ( न० ) शुक्ल (ख- च्छ ), महादेव ( पुं० )
चन्द्रहास-रावणका खङ्ग, खङ्गमात्र, ( पुं० )	नीलाञ्जसा-अप्सराभेद, नदीभेद, बिजली ( स्त्री० ) ॥ ५३ ॥
तामरस-ताँबा, सुवर्ण, कमल,(न०) ॥ ५१ ॥	पुनर्वसु-पुनर्वसु-नक्षत्र ( स्त्री० ) कृष्ण, कात्यायन- मुनि ( पुं० )
त्रिस्रोता-गंगा, नदी, ( स्त्री० )	पौर्णमासी-पूर्णिमा तिथि, ( स्त्री० ) पौर्णमास-यज्ञ ( पुं० ) ॥ ५४ ॥



प्रचेताः पुंसि वरुणे मुनौ हृष्टे तु वाच्यवत् ।  
 योगे वरीयाञ् श्रेष्ठे च वरिष्ठे युवते त्रिषु ॥ ५५ ॥  
 मता मधुरसा मूर्वा द्राक्षादुग्धिकयोरपि ।  
 म्लाने मलीमसो लोहपुष्पकाशीशयोः पुमान् ॥ ५६ ॥  
 महारसस्तु खर्जूरं कोशकारे कसेरुणि ।  
 राजहंसस्तु कादम्बे कलहंसे नृपोत्तमे ॥ ५७ ॥  
 रासेरसस्तु रासे स्याद्रससिद्धिवलावपि ।  
 विभावसुर्वृहद्भानौ भानौ हारान्तरेऽपि च ॥ ५८ ॥  
 विभावसुः स्याद्गन्धर्वभेदे पुंसि निशि स्त्रियाम् ।  
 विहायाः पुंसि विहगे विहायः सुरवर्त्मनि ॥ ५९ ॥  
 श्वःश्रेयसं तु कल्याणे परानन्दे च शर्मणि ।  
 सप्तार्चिर्दहनेऽपि स्यात्सप्तार्चिः क्रूरलोचने ॥ ६० ॥

प्रचेतस्—वरुण, मुनि, ( पुं० ) प्रस- न्न ( त्रि० )	रासेरस—रास ( बहुतोंका नृत्य ), रससिद्धिकेलिये बलि ( पुं० )
वरीयस्—वरीयान्—योग, श्रेष्ठ, अति- श्रेष्ठ, जवान ( त्रि० ) ॥ ५५ ॥	विभावसु—अग्नि, सूर्य, हारभेद, ॥ ५८ ॥
मधुरसा—मरोरफली, दाख, दूधी ( स्त्री० )	गन्धर्वभेद ( पुं० ) रात्रि ( स्त्री० )
मलीमस—मलिन, लोहा, पुष्पकसीस ( पुं० ) ॥ ५६ ॥	विहायस्—पक्षी ( पुं० )
महारस—खर्जूर, ऊस ( ईख ), कसे- रु ( पुं० )	विहायस्—आकाश, ( न० ) ॥ ५९ ॥
राजहंस—बत्तक, कलहंस, राजाओं- में श्रेष्ठ ( पुं० ) ॥ ५७ ॥	श्वःश्रेयस—कल्याण, परम आनन्द, सुख ( न० )
	सप्तार्चिस्—अग्नि, ( पुं० ) क्रूर नेत्र- वाला, ( त्रि० ) ॥ ६० ॥

समञ्जसः स्यादुचितेऽप्यभ्यस्तेऽपि समञ्जसः ।  
 मतः सर्वरसो वीणाप्रभेदे धूनके पुमान् ॥ ६१ ॥  
 साधीयानतिसाधौ स्यादतिवादेऽपि वाच्यवत् ।  
 भवेत्सिद्धरसो व्याडिप्रभृतौ च रसेऽपि च ॥ ६२ ॥  
 सुमनाः पुष्पमालत्योः स्त्रियां धीरे सुरे पुमान् ।  
 सुमेधास्तु स्त्रियां ज्योतिष्मत्यां दिव्यमतौ त्रिषु ॥ ६३ ॥

सषष्ठमम् ।

दिव्यचक्षुः पुमानन्धे सुगन्धेऽपि सुलोचने ।  
 स्यान्नभश्चमसश्चित्रापूपे चन्द्रेन्द्रजालयोः ॥ ६४ ॥  
 हिङ्गुनिर्यासशब्दोऽयं निम्बे हिङ्गुरसे पुमान् ।

सषष्ठम् ।

हिरण्यरेताः सप्तार्चिःसप्तपण्योः पुमानयम् ॥ ६५ ॥

इति विश्वलोचनेऽपराभिधानायां मुक्तावल्यां सान्तवर्गः ॥

समंजस-उचित, अभ्यास किया हुआ  
 ( त्रि० )

सर्वरस-वीणाभेद, धुननेवाला, (पुं०)  
 ॥ ६१ ॥

साधीयस्-अत्यंत साधु, अतिवाद  
 ( त्रि० )

सिद्धरस-व्याडि आदि, रस, (पुं०)  
 ॥ ६२ ॥

सुमनस्-पुष्प, मालती, ( स्त्री० )  
 धीर, देवता ( पुं० )

सुमेधस्-मालकोगनी, ( स्त्री० ) श्रेष्ठ  
 बुद्धिवाला ( त्रि० ) ॥ ६३ ॥

सपंचम ।

दिव्यचक्षुस्-अन्धा, सुगंध, सुंदर  
 नेत्रोवाला ( पुं० )

नभश्चमस-.....चंद्रमा, इंद्रजाल  
 ( पुं० ) ६४ ॥

हिङ्गुनिर्यास-नींब, होंगका रस(पुं०)  
 सषष्ठ ।

हिरण्यरेतस्-अमि, लज्जावती औ-  
 षधि ( पुं० ) ॥ ६५ ॥

इसप्रकार विश्वलोचनकी भाषा  
 टीकामें सान्तवर्ग समाप्त हुआ ॥

## अथ हान्तवर्गः ।

हैकम् ।

सरोषवारणे हीरे हः स्यादीशात्मजे तु हिः ।

हद्वितीयम् ।

अहिर्वृत्राऽसुरे सर्पे स्यादीहा तूद्यमेच्छयोः ॥ १ ॥

नष्टेन्दुकलादर्शेपि पिकालापे स्त्रियां कुहः ।

गह्वरे सिंहपुष्पां च गुहा स्कन्दे गुहः पुमान् ॥ २ ॥

गृहाः पुंसि गृहे पत्न्यां ग्राहो जलचरे पुमान् ।

ग्रहः सूर्यादिनिर्बन्धोपरागेषु रणोद्यमे ॥ ३ ॥

ग्रहणे पूतनादौ च सैहिकेयेऽप्यनुग्रहे ।

नाहस्तु बन्धने कूटेऽप्युपाद्वैरानुबन्धने ॥ ४ ॥

ग्राहो निपुणतर्केऽपि प्रौहो हस्त्याग्निपर्वणोः ।

बहुः स्यात्र्यादिसंख्यासु बहुः स्याद्विपुलेऽन्यवत् ॥ ५ ॥

## अथ हान्तवर्गः ।

हैक ।

ह—क्रोधवालेका निवारण करना, हीरा ( पुं० )

हि—शिवपुत्र ( पुं० )

हद्वितीय ।

अहि—वृत्राऽसुर, सर्प, ( पुं० )

ईहा—उद्यम, वांछा ( स्त्री० ) ॥ १ ॥

कुह—नष्ट इंदुकलावाली अमावास्या, कोयलका शब्द ( स्त्री० )

गुहा—पर्वतकी गुफा, पिठवन या म-  
षवन औषधि, ( स्त्री० )

गुह—स्वामिकारिक ( पुं० ) ॥ २ ॥

गृह—घर, स्त्री ( पुं० बहु० )

ग्राह—ग्रहण करना, जलचर (ग्राहआ-  
दि) ( पुं० )ग्रह—सूर्यआदि ग्रह, दृढ, सूर्यचंद्रका  
ग्रहण, रणका उद्यम ॥ ३ ॥ ग्रहण  
करना, पूतना आदि बालग्रह, राहु,  
अनुग्रह ( पुं० )

नाह—बंधन, लोहा कूटनेका घन ( पुं० )

उपनाह—वैर, अनुबंधन, ( बीणाके  
तार बांधनेकी खंटी ) ( पुं० ) ४प्रौह—निपुण, तर्क, हस्तीका चरण,  
पर्व ( पोरी ) ( पु० )

बहु—तीन आदि संख्या, बहुत ( त्रि० )

॥ ५ ॥

वाहावाहौ हये वाहौ वाहः स्यादृषमानयोः ।  
 मही क्षितौ च नद्यां च मह उत्सवतेजसोः ॥ ६ ॥  
 मोहो मूढत्वमात्रेऽपि स्यादहम्भतिमूर्च्छयोः ।  
 लोहस्तु शस्त्रे लोहं तु जोङ्गके सर्वतैजसे ॥ ७ ॥  
 बर्ह मयूरपिच्छेऽपि दलेऽपि स्यान्नपुंसकम् ।  
 वहो गन्धवहे स्कन्धदेशे स्यादृषभस्य च ॥ ८ ॥  
 व्यूहस्तु बलविन्यासे वृन्दे निर्माणतर्कयोः ।  
 सहो बले च भूम्यां तु मुद्रणर्था नखौषधे ॥ ९ ॥  
 सहदेवाकुमार्योश्च सहः क्षान्तियुते त्रिषु ।  
 सिंहः कण्ठीरवे राशिभेदे श्रेष्ठे परस्थितः ॥ १० ॥  
 सिंही बृहत्यां वार्त्ताकौ राहुमातरि वासके ।

हृत्तीयम् ।

आरोहस्तु नितम्बे स्याद्दीर्घत्वे च समुच्छ्रये ॥ ११ ॥

वाहा, वाह-अश्व, भुजा, ( स्त्री० पुं० )	व्यूह-सेनारचना, समूह, रचना, तर्क
वाह-बैल, प्रमाणभेद ( १२८ सेर )	( पुं० )
( पुं० )	सह-बल ( पुं० न० )
मही-पृथ्वी, नदी ( स्त्री० )	सहा-पृथ्वी, मुगवन, नख ॥ ९ ॥
मह-उत्साह, तेज ( पुं० ) ॥ ६ ॥	सहदेई, गुवारपाठा, ( स्त्री० )
मोह-मूढतामात्र, अभिमान, मूर्छा	सह-क्षमावान् ( त्रि० )
( पुं० )	सिंह-शेर, राशिभेद, शब्दके आगे
लोह-शस्त्र ( पुं० )	जुड़ा-श्रेष्ठ, ( जैसे पुरुषसिंह ) ( पुं० )
लोह-अगर, संपूर्ण धातु ( न० )	॥ १० ॥
॥ ७ ॥	सिंही-कटेहली, बैंगन, राहु-ग्रहकी
बर्ह-मोरपंख, दल ( पत्ता ) ( न० )	माता, बाँसा ( स्त्री० )
बह-वायु, बैलका कंधा ( पुं० )	हृत्तीय ।
॥ ८ ॥	आरोह-नितम्ब ( चूतक ), लंबाई,
	उँचाई, ॥ ११ ॥

अवरोहे हस्तिपके मानारोहणयोरपि ।

उत्साहस्तूद्यमे सूत्रतन्तावपि पुमानयम् ॥ १२ ॥

कटाहो घृततैलादिपाकामत्रेऽपि कर्परे ।

दीपेऽपि कूर्मपृष्ठेऽपि कटाहो महिषीशिशौ ॥ १३ ॥

कलहो भण्डने युद्धे खड्गकोषे वराटके ।

दात्यूहः कालकण्ठेऽपि तथा वन्दिविहङ्गमे ॥ १४ ॥

नवाहो नूतनदिने नवाहः प्रतिपत्तिथौ ।

निग्रहो भर्त्सने बन्धे मर्यादायां च निग्रहः ॥ १५ ॥

निर्यूहो द्वारि निर्यासे शिखरे नागदन्तके ।

निरूहो वस्तिभेदे स्यात्तर्कनिश्चितयोरपि ॥ १६ ॥

पटहस्तु समारम्भे न स्त्री पटहमानके ।

प्रग्रहस्तु तुलासूत्रे बन्धे च नियमे भुजे ॥ १७ ॥

उतारना, फीलवान, प्रमाण-भेद, नवाह-नवीन दिन, प्रतिपदा तिथि  
चटना ( पुं० ) ( पुं० )

उत्साह-उद्यम, सूत्रतन्तु, ( पुं० ) निग्रह-शिङ्कना, बंधन, मर्यादा  
॥ १२ ॥ ( सीमा ) ( पुं० ) ॥ १५ ॥

कटाह-घृत तेल आदिमें पाक करनेका निर्यूह-दरवाजा, वृक्षका गोंद आदि,  
पात्र, घटआदिका खप्पर, दीप, शिखर, हाथीदांत ( पुं० )  
कलुवाकी पीठ, भैंसका छोटा बच्चा निरूह-वस्तिभेद, तर्क, निश्चित ( पुं० )  
( पुं० ) ॥ १३ ॥ ॥ १६ ॥

कलह-बहुत बोलना, युद्ध, खड्गको-पटह-समारंभ ( आरंभ ) ( पुं० )  
श, कौड़ी, ( पुं० ) ( पुं० न० )

दात्यूह-जलकाक, पपीहा ( पुं० ) प्रग्रह-तराजूका सूत्र, ( चोटिया )  
॥ १४ ॥ बंधन, नियम, भुजा ॥ १७ ॥

रश्मौ हयादिरश्मौ च बन्धां स्वर्णालुनीपयोः ।

प्रग्राहस्तु तुलासूत्रे वर्षादिप्रग्रहेऽपि च ॥ १८ ॥

प्रवाहो जलवेगे स्यात्पारंपर्यानुवर्त्तने ।

वराहः किरिमुस्ताद्रिविष्णुमेधेषु मानके ॥ १९ ॥

वाराही मातृकाबुद्धदेव्योर्गृष्ट्याख्यभेषजे ।

कायसङ्ग्रामविस्तारप्रविभागेषु विग्रहः ॥ २० ॥

विग्रहः स्यात्समासेऽपि विदेहो मिथिले पुमान् ।

विदेहा मिथिलायां स्याद्देहशून्येऽपि वाच्यवत् ॥ २१ ॥

वैदेही रोचनासीतावणिग्योषित्सु पिप्पलौ ।

सङ्ग्रहो बृहद्युत्तुङ्गे मुष्टौ सङ्ग्रहणेऽपि च ॥ २२ ॥

सुवहस्तु सुवाते स्यात्पुंसि सम्यग्वहे त्रिषु ।

एलापण्यां तु सुवहा सल्लकीरास्त्रयोरपि ॥ २३ ॥

किरण, अश्वआदिकी रस्सी, बंदी, अमलतास-वृक्ष, कदंब-वृक्ष (पुं०)	विग्रह-शरीर, संग्राम, ( युद्ध ), विस्तार, विभाग, ॥ २० ॥ पदोंका समास ( पुं० )
प्रग्राह-तराजूका सूत्र ( चोटिया ), वर्षा आदिका रुकना ( पुं० ) १८	विदेह-मिथिल-देश, ( पुं० )
प्रवाह-जलवेग, परंपरतासे अनुवर्त्तन ( पुं० )	विदेहा-मिथिलापुरी, ( स्त्री० )
वराह-सूकर, नागरमोथा, पर्वत, विष्णु, मेघ, मान ( प्रमाण ) भेद ( पुं० ) ॥ १९ ॥	विदेह-शरीररहित ( त्रि० ) ॥ २१ ॥
वाराही-मातृका, ( देवी ), बुद्ध भगवानकी देवी, वाराही कंद-औषधि ( स्त्री० )	वैदेही-गोरोचन, सीता, वणिककी स्त्री, पीपल ( स्त्री० )
	संग्रह-बडा, ऊंचा, खड्गकी मूँठि, पकड़ना ( पुं० ) ॥ २२ ॥
	सुवह-श्रेष्ठ वायु, ( पुं० ) अच्छी तरह चलनेवाला, ( त्रि० )
	सुवहा-रायसल ॥ २३ ॥

सुवहा वलकीहंसपदीशेफालिकासु च ।

हचतुर्थम् ।

अभिग्रहोऽभिग्रहणेऽप्यभियोगेऽपि गौरवे ॥ २४ ॥

अवरोहोऽवतरणे मतो मूलालतोद्गमे ।

शाखाशिफायां त्रिदिवेऽवग्रहस्तु गजालिके ॥ २५ ॥

वृष्टिरोधे प्रतिबन्धेऽप्यस्वातन्त्र्येऽप्यवग्रहः ।

अवग्रहो भवेद्वृष्टिरोधहस्तिललाटयोः ॥ २६ ॥

अश्वारोहाऽश्वगन्धायामश्वारोहोऽश्ववारके ।

पुमानुपग्रहो वन्द्यामुपयोगेऽनुकूलने ॥ २७ ॥

उपनाहस्तु वीणायां बन्धने व्रणलेपने ।

नासिकायां गन्धवहा वाते गन्धवहः पुमान् ॥ २८ ॥

तनूरुहं तु गरुति स्याल्लोमि च तनूरुहम् ।

तमोपहो जिने सूर्ये दहने मृगलक्ष्मणि ॥ २९ ॥

साल वृक्ष, नागदमनी,.....लाल

ललाट ( पुं० ) ॥ २६ ॥

रंगका लज्जाल, निर्गुडी ( स्त्री० )

अश्वारोहा—आसगंध-औषधि(स्त्री०)

हचतुर्थम् ।

अश्वारोह—घोड़ेका सवार ( पुं० )

अभिग्रह—चोरीकरना, लड़ाईमें पुका-

उपग्रह—वन्दी ( कैदखाना ), उप-

रना आदि, गौरव ( बडप्पन )

योग, अनुकूलता ( पुं० ) ॥ २७ ॥

( पुं० ) ॥ २४ ॥

उपनाह—वीणाका बंधन ( जहाँ तार

अवरोह—उतरना, वृक्षकी जड़से

बांधेजावे ), व्रणलेप ( पुं० )

बेलका ऊपरको चढना, शाखाकी

गंधवहा—नासिका, ( स्त्री० ) गंधवह

जड़, स्वर्ग ( पुं० )

वायु ( पुं० ) ॥ २८ ॥

अवग्रह—हस्तीका ललाट ॥ २५ ॥

तनूरुह—पक्षीका पंख, लोम ( रोम )

वर्षाका रुकना, प्रतिबंध, पराधी-

( न० )

नता ( पुं० )

तमोपह—जिनदेव, सूर्य, अग्नि,

अवग्रह—वृष्टिका रुकना, हस्तीका

चंद्रमा ( पुं० ) ॥ २९ ॥

सूतो देवसहो देवसहा दण्डोत्पलौषधौ ।  
 परिग्रहः परिजने पत्न्यां स्वीकारशापयोः ॥ ३० ॥  
 मूलेऽपि परिवर्हस्तु राजयोग्ये परिच्छदे ।  
 परीवाहो जलोच्छ्वासे भूपालोचितवस्तुनि ॥ ३१ ॥  
 पितामहः पितुस्ताते ब्रह्मण्यपि पितामहः ।  
 प्रतिग्रहः स्वीकरणे सैन्यपृष्ठे ग्रहान्तरे ॥ ३२ ॥  
 महज्यो विधिवदेये तद्गहे च पतद्गहे ।  
 वरारोहा कटौ नार्यां पुंसि सायवरोहयोः ॥ ३३ ॥  
 महासहा मासपर्ण्यामल्लानेऽपि महासहाः ।

हृष्यमम् ।

पितामहेऽपि तातस्य विधौ च प्रपितामहः ॥ ३४ ॥

इति विश्वलोचनेऽपराभिधानायां मुक्तावल्यां हान्तवर्गः ॥

देवसह-मूत (सारथि), देवसहा-  
 वृक्षविशेष डानिकुनिशाक ( वंग-  
 भाषा ) ( स्त्री० )

परिग्रह-परिजन ( परिवार ), पत्नी,  
 अंगीकार, शाप ॥ ३० ॥  
 मूल, ( जड़ ) ( पुं० )

परिवर्ह-राजाके योग्य द्रव्य, उपस्कर,  
 ( पुं० )

परीवाह-जलनिकसनेका मार्ग,  
 राजाके योग्य वस्तु, ( पुं० ) ॥ ३१ ॥

पितामह-पिताका पिता ( दादा ),  
 ब्रह्मा, ( पु० )

प्रतिग्रह-अंगीकार करना, सेनाकी

पीठ, ग्रहभेद ॥ ३२ ॥ बड़ोंको  
 विधिपूर्वक देनेयोग्य द्रव्य, उसी  
 द्रव्यका विधिपूर्वक ग्रहणकरना,  
 पीकदान, ( पुं० )

वरारोहा-कटि ( कमर ) स्त्री, ( स्त्री० )  
 वरारोह-घोड़ेका सवार, चढना,  
 ( पुं० ) ॥ ३३ ॥

महासहा-भाषर्पणी, कटैया, ( स्त्री० )  
 हृष्यमम् ।

प्रपितामह-पिताका पितामह ( पर-  
 दादा ), ब्रह्मा, ( पुं० ) ॥ ३४ ॥  
 इस प्रकार विश्वलोचनमें हान्तवर्ग  
 समाप्त हुवा ॥



कुबेरे गुह्यके यक्षो रक्षा रक्षणलाक्षयोः ।

रूक्षो वृक्षान्तरे प्रेमशून्यकर्कशयोस्त्रिषु ॥ १३ ॥

लक्षं न पुंसि सङ्ख्यायां क्लीबं छद्मशरव्ययोः ।

लक्षं वितस्तौ च क्लीबं वीक्षं दृश्येऽभिधेयवत् ॥ १४ ॥

क्षतृतीयम् ।

अध्यक्षः स्यादधिकृते प्रत्यक्षेऽप्यभिधेयत् ।

आरक्षं रक्षणीयेऽपि शिरोकर्मणि दन्तिनाम् ॥ १५ ॥

उत्प्रेक्षा तु मता काव्याऽलङ्काराऽनवधानयोः ।

गवाक्षी त्विन्द्रवारुण्यां पुंसि जालककीशयोः ॥ १६ ॥

गोरक्षो नागरङ्गे स्याद्गवां च परिरक्षके ।

मृगाक्षी मृगनेत्रायामिन्द्रवारुणिकामिनोः ? ॥ १७ ॥

रक्ताक्षः सैरिभे क्रूरे पारावतचकोरयोः ।

समीक्षा तत्त्वे बुद्धौ स्याद्ग्रन्थभेदे निभालने ॥ १८ ॥

यक्ष—कुबेर, गुह्यकमात्र, ( पुं० )

रक्षा—रक्षा करना, लाख, ( स्त्री० )

रूक्ष—वृक्षभेद ( पुं ) प्रेमशून्य, कठोर, ( त्रि० ) ॥ १३ ॥

लक्ष—लाख—संख्या, ( न० स्त्री० )

लक्ष—कपट ( बहाना ), बाणका निशाना, बालिस्त, ( न० )

वीक्ष—देखनेयोग्य, ( त्रि० ) ॥ १४ ॥

क्षतृतीय ।

अध्यक्ष—अधिकार कियाहुवा, प्रत्यक्ष, ( त्रि० )

आरक्ष—रक्षा करनेके योग्य, हस्ति-योंका कुंभस्थल, ( नि० ) ॥ १५ ॥

उत्प्रेक्षा—काव्यका अलंकारभेद, विस्मरण, ( स्त्री० )

गवाक्षी—गड़भेकी बेल, ( स्त्री० )

गवाक्ष—झरोखा, बंदर, ( पुं ) ॥ १६ ॥

गोरक्ष—नारंगी, गौबोंकी रक्षा करनेवाला, ( पुं० )

मृगाक्षी—मृग सदृशनेत्रोंवाली, स्त्री, गड़भेकी बेल, संधिनी, ( स्त्री० ) ॥ १७ ॥

रक्ताक्ष—भैंसा, क्रूर—मनुष्य, कबूतर, चकोर, ( पुं० )

समीक्षा—तत्त्व, बुद्धि, ग्रंथभेद, दर्शन ( देखना ); ( स्त्री० ) ॥ १८ ॥

क्षचतुर्थम् ।

देववृक्षः सप्तपर्णे मन्दारादिषु गुग्गुले ।  
 वीरवृक्षस्तु भलातपादपे ककुभद्रुमे ॥ १९ ॥  
 भूतवृक्षस्तु शाखोटयक्षश्योनाकपादपे ।  
 विख्यातो राजवृक्षस्तु सुवर्णालुपियालयोः ॥ २० ॥  
 विशालाक्षो हरे ताक्ष्ये विशालाक्षी वरस्त्रियाम् ।  
 सकटाक्षो धवद्रौ स्यात्कटाक्षसहिते त्रिषु ॥ २१ ॥  
 अणादितन्यादिगुणादियोगात्पदं बहुव्रीहिमतं च वीक्ष्य ।  
 अनुक्तलिङ्गं च समूहनीयं कृतं यदि कापि बहुत्वभीतेः ॥ २२ ॥

इति विश्वलोचनेऽपराभिधानायां मुक्तावल्यां क्षकारान्तवर्गः ॥

अचतुर्थम् ।

देववृक्ष—सानवण—वृक्ष, मन्दार आदि  
 देववृक्ष, गुग्गुल, ( पुं० )

वीरवृक्ष—मिलावा—वृक्ष, कोह—वृक्ष,  
 ( पुं० ) ॥ १९ ॥

भूतवृक्ष—सहोरा—वृक्ष, बड—वृक्ष, सो-  
 नापाठा वृक्ष, ( पुं० )

राजवृक्ष—सुवर्णालु—वृक्ष, चिरोंजी-  
 वृक्ष ( पुं० ) ॥ २० ॥

विशालाक्ष—महादेव, गरुड, ( पुं० )

विशालाक्षी—सुंदरनेत्रोंवाली स्त्री,  
 ( स्त्री० ) ( त्रि० )

सकटाक्ष—धव—वृक्ष, ( पुं० )

कटाक्षसहित, ( त्रि० ) ॥ २१ ॥

श्रीधरसेनजी कहते हैं—

अणादि—तन्यादि—प्रत्यय औरगुणादिके  
 योगसे बहुव्रीहिके मतको देखकर  
 कहीं मैंने लिंग नहीं कहा है वह  
 जानलेना क्यों कि प्रथं बहुत बड-  
 जाता ॥ २२ ॥

इस प्रकार विश्वलोचन अपराभिधाना

मुक्तावलीमें क्षकारान्तवर्ग

समाप्त हुआ ॥

अथाव्ययानि ।

अकारादिकमप्येवमिदानीं समनुक्रमात् ।

मया नानार्थकाण्डेऽस्मिन्विधीयन्तेऽव्ययानि च ॥ १ ॥

अः श्रीकण्ठेऽव्ययं तुल्याभावयोराः पितामहे ।

आ प्रगृह्यः स्मृतौ वाक्येऽत्यल्पेऽव्ययमथाऽव्ययम् ॥ २ ॥

आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमायां धातुयोगजे ।

सन्तापे च प्रकोपे च भवेदाः स्मृतमव्ययम् ॥ ३ ॥

इस्तु कामे पुमान्स्वेदे रुषोक्तौ चाव्ययं भवेत् ।

ई लक्ष्म्यामव्ययं त्वी स्यादुःखभावनकोपयोः ॥ ४ ॥

उः शिवे नाऽव्ययं तु स्यात्सम्बुद्धौ रोषभाषणे ।

ऊः स्यादनव्ययं रक्षारक्षसू त्रिषु रक्षके ॥ ५ ॥

सूतिक्रियायां सूतौ च वाक्यारम्भे त्वसङ्ख्यचक्रम् ।

ऋदेवमातरि स्त्री स्यादव्ययं वाक्यकुत्तयोः ॥ ६ ॥

श्री श्रीधरसेनजी कहते हैं—

अब हम नानार्थकांडमें अनुक्रमसे अका-

आः—संताप ( पांडा ), क्रोध, ( कोप )

( अ० ) ॥ ३ ॥

रादिक अव्यय विधान करताहूँ ॥ १ ॥

इ—कामदेव, ( पुं० ) ई—खेद, क्रोधमंग

अथाऽव्ययानि ।

बोलना, ( अ० )

अ—वासुदेव या शिव, ( पुं० ) तुल्य,

ई—लक्ष्मी, ( स्त्री० ) ई—दुःखहोना,

अभाव ( अ० ) ।

कोप ( क्रोध ), ( अव्यय ) ॥ ४ ॥

आ—ब्रह्मा, ( पुं० ) आ—स्मृति, वाक्य,

उ—महादेव, ( पुं० ) उ—संबोधन.

अतिअल्प ( अ० ) ॥ २ ॥

क्रोधसे भाषण, ( अ० )

आ( इ )—ईषत् ( थोडा ) अर्थ,

ऊ—रक्षा..... ( त्रि० ) ॥ ५ ॥

अभिव्याप्ति, सीमा, धातुयोगसे

ऋ—देवमाता, ( स्त्री० ) ऋ—वाक्य,

उत्पन्न अर्थ, ( अ० )

निंदा, ( अ० ) ॥ ६ ॥

ऋश्च स्त्री देवताम्बायां स्यादेः पुंसि चतुर्भुजे ।  
 स्मृतिसम्बोधनाह्वानेऽव्ययमैस्तु शिवे पुमान् ॥ ७ ॥  
 अव्ययं त्वै समाख्यातं स्मृत्यामन्नणहृतिषु ।  
 ओः पुमान्ब्रह्मणि ख्यातेऽव्ययमामन्नणाह्वयोः ॥ ८ ॥  
 और्नभस्यव्ययं तु स्यात्सम्बुद्ध्याह्वानयोर्मतम् ।  
 परब्रह्मण्यनुमतावः स्यादश्च तथाऽव्ययम् ॥ ९ ॥  
 अः पुंसि शङ्करे ख्यातः कादिख्यातमतोव्ययम् ।

क०

कु निन्दायामीषदर्थं क्लिब्षे वारणेऽपि च ॥ १० ॥

ग०

निर्भर्त्सनेऽपि निन्दायां धिग् मनागल्पमन्दयोः ।  
 अङ्ग सम्बोधने हर्षे पुनरर्थेऽपि दृश्यते ॥ ११ ॥

च०

चः पादपूरणे पक्षान्तरे चापि समुच्चये ।  
 अन्वाचये समाहारेऽप्यन्योन्यार्थेऽवधारणे ॥ १२ ॥

ऋ-देवमाता, ( स्त्री० )

क०

ए-विष्णु, ( पुं० ) ए-स्मृति, संबो-  
 धन, बुलाना, ( अ० )

कु-निन्दा, ईषत् ( थोडा ) अर्थ, पाप,  
 निवारणकरना, ( अ० ) ॥ १० ॥

ऐ-महादेव, ( पुं० ) ॥ ७ ॥ ऐ-  
 स्मृति, संबोधन, बुलाना, ( अ० )

ग०

धिक्-झिडकना, निन्दा ( अ० )

ओ-ब्रह्मा, ( पुं० ) ओ-संबोधन,  
 बुलाना ( अ० ) ॥ ८ ॥

मनाक्-अल्प, मंद, ( अ० )

औ-प्रावण-मास, ( पुं० ) संबोधन,  
 बुलाना ( अ० )

अंग-संबोधन, हर्ष, पुनः का ( बारबार )  
 अर्थ, ( अ० ) ॥ ११ ॥

च०

अ-परब्रह्म, अनुमति, ( पुं० अ० ) ॥ ९ ॥

च-पादपूरण, पक्षान्तर, समुच्चय, ॥ १२ ॥

अ-महादेव, ( पुं० ) इसके आगे  
 कादि अव्यय कहते हैं ।

अन्वाचय, समाहार, अन्योन्य अर्थ,  
 निश्चय, ( अ० )

किञ्चारम्भेऽपिसाकल्ये वस्तुहेतौ विनिश्चये ।  
 तिर्यक्तिरोर्थे च कुले विहगादिष्वनव्ययम् ॥ १३ ॥  
 ननुच प्रश्नदुष्टोक्त्योः प्राक् स्यादिगदेशकालतः ।  
 प्रागप्रातीतपूर्वेषु प्रभाते चाप्यनन्तरे ॥ १४ ॥  
 सम्यग् वाढे प्रशंसायां हिरुग् मध्यविनार्थयोः ।

अ०

नञभावे निषेधे च तद्विरुद्धतदन्ययोः ॥ १५ ॥  
 सादृश्ये चेषदर्थे च स्वरूपार्थेऽप्यतिक्रमे ।

ठ०

सुष्ठु प्रशंसनेऽत्यर्थेऽप्यु शोभानवद्ययोः ॥ १६ ॥

ण०

अन्तरेण विनामध्यार्थयोः ख्यातं त्वति स्तुतौ ।

त०

नितान्ताऽसंप्रतिक्षेपप्रकर्षे लङ्घनेप्यति ॥ १७ ॥

किञ्च—आरंभ, संपूर्णता, वस्तुहेतु, उमसे अन्य ॥ १५ ॥ सादृश्य,  
 निश्चय, ( अ० ) ईषन् ( थोडा ) अर्थ, स्वरूपार्थ,

तिर्यक्—तिरछापना ( अ० ) कुल, अतिक्रम ( उल्लंघन ), ( अ० )  
 पक्षी आदि, ( त्रि० ) ॥ १३ ॥ ठ०

ननुच—प्रश्न, दुष्ट उक्ति, ( अ० ) सुष्ठु—प्रशंसा, अत्यर्थ ( बहुत ), ( अ० )

प्राक् दिक्—देश—कालसे पूर्व, ( त्रि० ) अप्यु—शोभा, दोषरहित, ( अ० )

प्राक्—अगाडी, बदीत हुवा, पूर्व, ॥ १६ ॥

प्रभात, अनन्तर ( अंतररहित ),

( अ० ) ॥ १४ ॥

ण०

अन्तरेण—विनामर्थ, मध्यमर्थ, ( अ० )

सम्यक्—दृढ, प्रशंसा, ( अ० )

त०

हिरुक्—मध्य, विनार्थ, ( अ० ) ।

अति—स्तुति, निरंतर, अन्यकाल,

अ०

फेंकना, प्रकर्ष, लंघन, ( अ० )

नञ्—अभाव, निषेध, उससे विरुद्ध,

॥ १७ ॥

अतोऽपदेशे निर्देशे पञ्चम्यन्ते च कारणे ।  
 अन्ततः शासने पञ्चम्यर्थे सम्भावनाङ्गयोः ॥ १८ ॥  
 अस्तु स्यादभ्यनुज्ञानेऽप्यसूयामात्रयोरपि ।  
 अहोबत मतं खेदे सम्बुद्धौ चानुकम्पने ॥ १९ ॥  
 अहोबताद्भुतेऽपि स्यादारादूरसमीपयोः ।  
 इतस्तु पञ्चम्यर्थे स्यादिते नियमभागयोः ॥ २० ॥  
 इति हेतौ प्रकारे च प्रकाशाद्यनुकर्षयोः ।  
 इति प्रकरणेऽपि स्यात्समाप्तौ च निदर्शने ॥ २१ ॥  
 उत प्रश्ने वितर्कैर्हेऽप्युतात्यर्थविकल्पयोः ।  
 किन्तु स्यात्प्रश्नमात्रेऽपि किन्तु कामवितर्कयोः ॥ २२ ॥  
 किमुताऽतिशये प्रश्ने विकल्पार्थेऽपि कीर्तितः ।  
 कुतः स्यान्निहुते प्रश्ने पञ्चम्यर्थे कुतः स्मृतम् ॥ २३ ॥

अतः—बहाना, निर्देश ( दिखाना ), इति—हेतु, प्रकार, प्रकाश, अनुकर्ष,  
 पञ्चमी विभक्तिवाला कारण, (अ०) प्रकरण,समामि,निदर्शन (दिखाना)  
 अन्ततः—पञ्चमी विभक्तिवाली शिधा, ( अ० ) ॥ २१ ॥  
 संभावना, अंग, ( अ० ) ॥ १८ ॥ उत—प्रश्न, वितर्क, अतिअर्थ, विकल्प,  
 अस्तु—अभ्यनुज्ञान ( ... ), ईर्ष्या- ( अ० )  
 मात्र, ( अ० ) किन्तु—प्रश्नमात्र, काम इच्छा, (न०)  
 अहोबत—खेद, संबोधन, दया, ॥१९॥ वितर्क, ( अ० ) ॥ २२ ॥  
 अद्भुत, ( अ० ) किमुत—अतिशय, प्रश्न, विकल्प,  
 आरात्(दू)—दूर, समीप, ( अ० ) ( अ० )  
 इतः—पञ्चम्यर्थ, इते—नियम, विभाग, कुतः—गोप्य करना, प्रश्न, पञ्चमी-  
 ( अ० ) ॥ २० ॥ अर्थ, ( अ० ) ॥ २३ ॥

ते तवार्थे त्वयार्थे च मे च मममयार्थयोः ।  
 तु पादपूरणे भेदाऽवधारणसमुच्चये ॥ २४ ॥  
 पक्षान्तरे नियोगे च प्रशंसायां विनिग्रहे ।  
 तत आदौ परिग्रहे पञ्चम्यर्थे कथान्तरे ॥ २५ ॥  
 आनन्तर्येऽपि तावत्तु कार्त्तुर्मानावधारणे ।  
 परिच्छेदे तु पश्चात्तु प्रतीच्यां चरमेऽपि च ॥ २६ ॥  
 पुरस्तात्प्रथमे प्राच्यामग्रतोऽर्थपुरार्थयोः ।  
 प्रति स्यात्प्रतिदाने च प्रति प्रतिनिधावपि ।  
 प्रधाने सम्भवे वीप्सालक्षणादौ प्रयोगतः ॥ २७ ॥  
 मात्रार्थं चाभिमुख्ये च प्रकाशे च स्मृतं प्रति ।  
 वत खेदे कृपानिन्दासन्तोषाऽऽमन्त्रणाद्भुते ॥ २८ ॥  
 यतःशब्दस्तु नियमे पञ्चम्यर्थविभागयोः ।

ते—‘तव’का अर्थ, और ‘मया’का अर्थ, मे—‘मम’का अर्थ, और ‘मया’का अर्थ, ( अ० )	पुरस्तात्—प्रथम, पूर्वदिशा, अग्रत- म्का अर्थ ( आगाडी ), पुराका अर्थ ( पहले ), ( अ० )
तु—पादपूरण, भेद, निश्चय, समुच्चय ( इकट्ठा करना ), ॥ २४ ॥ पक्षां- तर (अन्यपक्ष), नियोग (जोड़ना), प्रशंसा, पकड़ना, ( अ० )	प्रति—प्रतिदान ( वापिसदेना ), प्रति- निधि ( बदला ), प्रधान, संभव, वीप्सा, व्याप्त होनेकी इच्छा, लक्षणा आदि, ( अ० ) ॥ २७ ॥ मात्रा- अर्थ, आभिमुख्य (संमुख करना), प्रकाश, ( अ० )
ततः—आदि, बारबार पृच्छना, पंचमीका अर्थ, अन्यकथा, ॥ २५ ॥ आनं- तर्य ( अनंतरभाव ), ( अ० )	वत—खेद, कृपा, निन्दा, सन्तोष, आमन्त्रण ( संबोधन ), अद्भुत. ( अ० ) ॥ २८ ॥
तावत्—संपूर्णभाव, मान (परिमाण)का निश्चय, परिच्छेद ( सामग्री ),	यतः—नियम, पंचमीका अर्थ, विभाग. ( अ० )
पश्चात्—पश्चिमदिशा, अन्तिमसमय, ( अ० ) ॥ २६ ॥	

यद्वत्प्रश्ने वितर्कं च यावन्मानेऽवधारणे ॥ २९ ॥

सीमि काल्मर्ष्ये परिच्छेदे शश्वत्पुनःसहार्थयोः ।

स्वित्प्रश्ने च वितर्कं च सकृत्सहैकवारयोः ॥ ३० ॥

युक्तार्थे बहुमात्रार्थेऽप्यधुनार्थेऽपि सम्प्रति ।

प्रत्यक्षवाचकः साक्षात्साक्षात्तुल्यार्थवाचकः ॥ ३१ ॥

स्वस्त्याशीःक्षेमपुण्येषु मतं स्वस्ति सुखादिषु ।

हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः ॥ ३२ ॥

विवादे शोभनार्थं च हन्तशब्दः प्रयुज्यते ।

थ०

अथाऽथो च शुभे प्रश्ने साकल्यारम्भसंशये ॥ ३३ ॥

अनन्तरेऽप्यन्यथात्वपरार्थवितथार्थयोः ।

तथा सादृश्यनिर्देशनिश्चयेषु समुच्चये ॥ ३४ ॥

यद्वत्-प्रश्न, वितर्क, ( अ० ) , स्वस्ति-आशीर्वाद, क्षेम ( कुशल ).

यावत्-मान(प्रमाण), निश्चय, ॥२९॥ पुण्य, सुखादि, ( अ० )

सीमा, संपूर्णता, परिच्छेद (इयत्ता), हन्त-हर्ष, दया, वाक्यका आरंभ,  
( अ० ) विषाद ( दुःख ), ॥ ३२ ॥ विवाद,  
शोभाअर्थ, ( अव्य० )

शश्वत्-पुनः अर्थ, सह अर्थ, (अ०) य०

स्वित्-प्रश्न, वितर्क, ( अ० ) अथ-अथो-शुभ, प्रश्न, संपूर्णता,

सकृत्-सहअर्थ, एकवारअर्थ (अ०) आरंभ, संदेह ॥ ३३ ॥ अनन्तर,  
॥ ३० ॥ ( अ० )

सम्प्रति-युक्तअर्थ, .....अधुनाअर्थ, अन्यथा-अपर अर्थ, वितथ (असत्य-  
( अ० ) अर्थ ) ( अ० ),

साक्षात्-प्रत्यक्ष, तुल्य, ( अ० ) तथा-सादृशभाव, दिखाना, निश्चय,  
॥ ३१ ॥ समुच्चय, (अ०) ॥ ३४ ॥



कारणस्योपपत्तावप्युद्देशप्रतिवाक्ययोः ।

यथाऽनुमाने सादृश्ये निर्देशोद्देशयोरपि ॥ ३५ ॥

कारणस्योपपत्तौ च वृथा तु विधिवर्जिते ।

वृथा निष्कारणे बन्धे सर्वथा हेतु वादयोः ॥ ३६ ॥

उत्प्राधान्ये प्रकाशे च मोक्षबन्धोर्द्वैकर्मसु ।

प्राबल्यलाभभावेषु विभागाऽस्वास्थ्यशक्तिषु ॥ ३७ ॥

तत्कारणे तदात्वे च हेतुयद्यर्थोस्तु यत् ।

न०

अनु त्वनुक्रमे हीने पश्चादर्थसहार्थयोः ।

आयामेऽपि समीपार्थे सादृश्ये लक्षणादिषु ॥ ३८ ॥

किन्तु प्रश्ने वितर्के च ननु प्रश्नावधारणे ।

नन्वनुज्ञावितर्कायमन्त्रेष्वनुनये ननु ॥ ३९ ॥

नाना विनार्थेऽपि मतं नानाऽनेकोभयार्थयोः ।

कारणकी उपपत्ति ( सिद्धि ), उद्देश, उत्तर, ( अ० )	यत्-हेतु ( कारण ), यदिका आर्थ, ( अ० ) न०
यथा-अनुमान, सादृश्य, निर्देश, उद्देश, ॥ ३५ ॥ कारणकी सिद्धि, ( अ० )	अनु-अनुक्रम, हीन, पश्चात्का अर्थ ( पीछे ), सहका अर्थ, ( सहित ), विस्तार, समीप, सदृशता, लक्षणादि, ( अ० ) ॥ ३८ ॥
वृथा-विधिसे वर्जित, निष्कारण, निष्फल, ( अ० )	किन्तु-प्रश्न, तर्कना, ( अ० )
सर्वथा-कारण, वाद, ( अ० ) ॥ ३६ ॥	ननु-प्रश्न, निश्चय, आज्ञा, प्रश्न, लाभ मंत्र ( सलाह ), नम्रता, ( अ० ) ॥ ३९ ॥
उत्-प्राधान्य, प्रकाश, मोक्ष, बन्ध, ऊर्ध्वकर्म, प्रबलता, लाभ, भाव, अस्वस्थता, शक्ति ( अ० ) ॥ ३७ ॥	नाना-विनाका अर्थ, अनेक, दोओंका अर्थ, ( अ० )
तत्-कारण, तदाका अर्थ, ( अ० )	

निः स्यान्नित्यभृशाश्चर्यविन्यासक्षेपराशिषु ॥ ४० ॥

अन्तर्भावेऽप्यधोभावे दर्शने दानकर्मणि

बन्धोपरमसामीप्यमोक्षकौशलसंयमे ॥ ४१ ॥

निवेशेऽप्यथ नु प्रश्नेऽतीतेऽनुनयवार्थयोः ।

स्थाने तु युक्तसादृश्यकारणार्थेषु दृश्यते ॥ ४२ ॥

प०

अप स्यादपकृष्टार्थे वर्जनार्थे विपर्यये ।

वियोगे विकृतौ चैर्ये हर्षनिर्देशयोरपि ॥ ४३ ॥

अपि सम्भावनाशङ्काप्रशङ्गार्हासमुच्चये ।

अपि युक्तपदार्थेषु कामकारक्रियास्वपि ॥ ४४ ॥

उप हीनेऽधिके व्याप्तौ शक्तौ चारम्भपूजयोः ।

आचार्यकरणे दाने दाक्षिण्ये व्यत्ययेऽपि च ॥ ४५ ॥

तद्योगे दोषकथने नरणार्थोद्यमार्थयोः ।

समासत्रेऽपि लिप्तायामुपशब्दः प्रकीर्तितः ॥ ४६ ॥

नि-नित्य, अत्यन्त आश्चर्य, विन्यास, विकार, चोरी, हर्ष, निर्देश, (अ०)

क्षेप, राशि ॥ ४० ॥ अतभाव, ॥ ४२ ॥

अधोभाव, दर्शन, दानकर्म, बन्धन, अपि-युक्तपदार्थ, कामकार, क्रिया,

उपराम, समीपता, मोक्ष, कौशल, ( अ० ) ॥ ४४ ॥

संयम, ( अ० ) ॥ ४१ ॥ उप-हीन, अधिक, व्याप्ति, शक्ति,

नु-निवेश, प्रश्न, अतीत ( बदीत ), आरम्भ, पूजा, आचार्यकरण,

नम्रता, 'वा'का अर्थ, दान, चतुराई, व्यत्यय ( उलट ),

स्थाने-युक्त, सादृश्य, कारण अर्थ, ( अ० ) ॥ ४५ ॥

( अ० ) ॥ ४२ ॥

प०

अप-अपकृष्ट, वर्जन, विपर्यय, वियोग, तिसका योग, दोषोका कहना,

मरना, उद्यम, समीपता, लब्ध होनेकी इच्छा, ( अ० ) ॥ ४६ ॥

व०

वशब्द उपमायां स्याद्वरुणे वः पुमानयम् ।

वा स्याद्विकल्पोपमयोरेवार्थेऽपि समुच्चये ॥ ४७ ॥

वै पादपूरणे सम्बोधनेऽप्यनुनये ध्रुवे ॥

भ०

अभीक्ष्णं भूतकथनेऽप्यतिवीप्साऽभिमुख्ययोः ॥ ४८ ॥

अभीक्ष्णं तु मुहुःशीघ्रप्रकर्षेऽप्यतिसन्तते ।

स्यादभीक्ष्णं तथा पौनःपुन्यसन्ततयोर्मतम् ॥ ४९ ॥

म०

अमा सहार्थाऽन्तिकयोरमावास्याममा स्त्रियाम् ।

अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणनिष्फले ॥ ५० ॥

यत्ने नित्येऽप्यवश्यं स्यादास्मृतावधारणे ।

इदानीं वाक्यभूषायां सम्प्रत्यर्थे च सम्मतम् ॥ ५१ ॥

इं दुःस्वभावने क्रोधे प्रत्यक्षे सन्निधावपि ।

व०

व—उपमा, ( अ० ) व—वरुण, ( पुं० )

वा—विकल्प, उपमा, एवका अर्थ,

समुच्चय, ( अ० ) ॥ ४७ ॥

वै—पादपूरण, संबोधन, नम्रता, ध्रुव,

( अ० ) भ०

अभि—इत्थंभूत कथन, अतिवीप्सा

( व्यासहोनेकी इच्छा ), आभि-

मुख्य, ( अ० ) ॥ ४८ ॥

अभीक्ष्णम्—मुहुस् ( बारबार ) अर्थ,

शीघ्र, प्रकर्ष, अतिनिरंतर, बारबार

निरंतर, ( अ० ) ॥ ४९ ॥

म०

अमा—सह अर्थ, समीप अर्थ, अमा-

अमावास्या तिथि, ( स्त्री० )

अलम्—आभूषण, पर्याप्ति ( सामर्थ्य ),

शक्तिनिवारण, निष्फल, ( अ० )

॥ ५० ॥

अवश्यम्—सबप्रकारसे स्मृति, निश्चय,

( अ० )

इदानीम्—वाक्यभूषण, संप्रति ( अब )

का अर्थ, ( अ० ) ॥ ५१ ॥

इम्—छोटा स्वभाव, क्रोध, प्रत्यक्ष,

सन्निधि ( समीपता ), ( अ० )

उं प्रश्नेङ्गीकृतौ रोषे उं प्रश्ने रोषभाषणे ॥ ५२ ॥

एवं प्रकारोपमयोरङ्गीकारेऽवधारणे ।

ओं स्यादनुमतौ प्रोक्तं प्रणवे चाप्युपक्रमे ॥ ५३ ॥

कं शिरःसुखनीरेषु कथं प्रश्नप्रकारयोः ।

सम्भ्रमे सम्भवे चाथ कामं त्वनुमतौ मतम् ॥ ५४ ॥

प्रकामानुगमाऽमूयास्वथ किं प्रश्नकुत्सयोः ।

जोषं तु तूष्णींसुखयोः प्रशंसायां च लङ्घने ॥ ५५ ॥

तद्दिनं दिनमध्ये स्यात्तद्दिनं प्रतिवासरे ।

तूष्णीकां मौनमात्रे स्यात्तूष्णीकं त्रिषु मौनिनि ॥ ५६ ॥

नाम प्राकाश्यसम्भाव्यकुत्साऽभ्युपगमे क्रुधि ।

नूनं तर्के तु विख्यातं नूनं स्यादर्थनिश्चये ॥ ५७ ॥

उम्-प्रश्न, अंगीकार, क्रोध, ( अ० ) किम्-प्रश्न, निदा, ( अ० )

ऊम्-प्रश्न, क्रोधसे भाषण, ( अ० ) जोषम्-तूष्णी ( मौन ) अर्थ, सुख,  
॥ ५२ ॥ प्रशंसा, लंघन, ( अ० ) ॥ ५५ ॥

एवम्-प्रकार, उपमा, अंगीकार, तद्दिनम्-दिनमध्य, प्रतिदिन, ( अ० )  
निश्चय, ( अ० )

ओम्-अनुमति, ऊंकार, प्रथम, तूष्णीकाम्-मौन-मात्र, ( अ० )  
प्रारंभ, ( अ० ) ॥ ५३ ॥ तूष्णीक-मौनधारण करनेवाला,  
( त्रि० ) ॥ ५६ ॥

कम्-शिर, मुख, जल, ( अ० न० ) नाम-प्राकाश्य, संभावना, निदा,  
कथम्-प्रश्न, प्रकाश, संभ्रम, संभव ( अ० ) अंगीकार, क्रोध, ( अ० )

( सम्यक् प्रकारसे होना ), ( अ० ) कामम्-अनुमति, ॥ ५४ ॥ प्रकाम, नूनम्-तर्क, अर्थका निश्चय, ( अ० )  
अनुगम, निदा, ( अ० ) ॥ ५७ ॥

प्राध्वं नर्मेऽनुकूलेऽपि प्रकर्षार्थयोर्भृशम् ।

शं कल्याणे सुखे चाथ स्माऽतीते पादपूरणे ॥ ५८ ॥

सं सङ्गार्थे शोभनार्थे प्रहृष्टार्थसमार्थयोः ।

सामि निन्दाद्वयोर्युक्तेऽप्यधुनार्थेऽपि साम्प्रतम् ॥ ५९ ॥

हं रुषोक्तावनुनये हुं स्यात्प्रश्नवितर्कयोः ।

हं विक्रमे चानुमतौ तज्जनेऽपि कचिन्मतम् ॥ ६० ॥

य०

अये स्मृतौ विषादे स्यादये सम्भ्रमकोपयोः ।

अयि काकुकुलालापसम्बोधप्रेमभाषिते ॥ ६१ ॥

अयि प्रश्नानुनययोः समयाऽन्तिकमध्ययोः ।

र०

अन्तरा तु विनार्थे स्यान्मध्यार्थनिकटार्थयोः ॥ ६२ ॥

प्राध्वम्—नर्म ( दृष्टा ), अनुकूल, ह्रस्व—पराक्रम, अनुमति ( अ० ) कहीं  
( अ० ) पराक्रम और अनुमतिवाला मनुष्य,

भृशम्—प्रकर्ष ( उत्कृष्टता ), अत्यंत, ( त्रि० ) ॥ ६० ॥  
( अ० )

य०

शम्—कल्याण, सुख, ( अ० )

अये—स्मृति, विषाद, संभ्रम, कोप,  
( अ० )

सम्—बदीत होना, श्लोककं चरणकी  
पूर्ति, ( अ० ) ॥ ५८ ॥

सम्—संग अर्थ, शोभन ( सुंदर ) अर्थ,  
प्रहृष्ट अर्थ, सम अर्थ, ( अ० )

अयि—काकु ( भाषणभेद ), आलाप  
( रागका स्वर ), संबोधन, प्रेमसे भा-  
षण, ॥ ६१ ॥ प्रश्न, नम्रता, ( अ० )

सामि—निन्दा, अर्द्ध, ( अ० )

समया—समीप, मध्य, ( अ० )

साम्प्रतम्—युक्तार्थ, अधुना ( अब ),  
अर्थ, ( अ० ) ॥ ५९ ॥

र०

ह्रस्व—कोपसे बोलना, नम्रता, ( अ० )

अन्तरा—विना अर्थ, मध्य अर्थ, स-  
मीप अर्थ, ( अ० ) ॥ ६२ ॥

हुम्—प्रश्न, वितर्क, ( अ० )

अन्तः प्रान्तार्थमध्याथस्त्रीकारार्थे तु वर्जने ।  
 उर्युरुरीवदूरी विस्तारेऽङ्गीकृतौ त्रयम् ॥ ६३ ॥  
 तुर्निषेधेऽपि कष्टेऽपि गताद्यर्थाऽप्रकर्षयोः ।  
 निर्निःशेषे निषेधे च क्रान्ताद्यर्थे च निश्चये ॥ ६४ ॥  
 परा गतौ वधे प्रातिलोम्यप्राधान्यधर्षणे ।  
 आभिमुख्ये विमोक्षे च भृशार्थे विक्रमेऽपि च ॥ ६५ ॥  
 परि स्यात्सर्वतोभावे वीप्सायां लक्षणादिषु ।  
 आलिङ्गने निरसने व्यापने व्याधिशोकयोः ॥ ६६ ॥  
 पूजोपरमभूषासु दोषाख्यानेऽपि वर्जने ।  
 पुनर्भिदाऽप्रथमयोः पुरा भाविपुराणयोः ॥ ६७ ॥  
 प्रबन्धे निकटेऽतीते स्वः स्वर्गपरलोकयोः ।

ल०

किल त्वरुचौ वार्त्तायां सम्भाव्यानुनयाथयोः ॥ ६८ ॥

अन्तर्-समीप अर्थ, मध्य अर्थ, अं- गीकार अर्थ, वर्जन अर्थ ( अ० )	परि-चारों तरफ, दो बार, लक्षण आदि, मिलना, दूर करना, व्याधि, शोक, ॥ ६६ ॥ पूजा, उपशम ( शांति ), आभूषण, दोषकथन, वर्जना ( अ० )
उररी १, उरुरी २, ऊरी ३, वि- स्तार, अंगीकार, ( अ० ) ॥ ६३ ॥	पुनर्-भेद, दूसरी बार ( अ० )
दुर्-निषेध, कष्ट, गतआदि अर्थ, अप्रकर्ष ( अ० )	पुरा-भावि ( होनेवाला ), पुराना, ॥ ६७ ॥ प्रबंध, समीप, बदीत- हुवा ( अ० )
निर्-निःशेष, निषेध, क्रान्तआदि ( उल्लंघनआदि ) अर्थ, निश्चय ( अ० ) ॥ ६४ ॥	स्वर्-स्वर्ग, परलोक ( अ० )
परा-गमन, वध, प्रातिलोम्य ( उलटा पन ), प्राधान्य, धर्षण ( तिरस्कार ), संमुख करना, छुटना, अति अर्थ, पराक्रम ( अ० ) ॥ ६५ ॥	ल० किल-अरुचि, वार्त्ता, संभावना अर्थ, नम्रता अर्थ ( अ० ) ॥ ६८ ॥

खलु स्याद्वाक्यभूषायां खलु वीप्सानिषेधयोः ।

निश्चिते सान्त्वने मौने जिज्ञासादौ खलु स्मृतम् ॥ ६९ ॥

व०

अव न्यासौ परिभवे वियोगालम्बशुद्धिषु ।

ईषदर्थेऽपि विज्ञानेऽप्येवौपम्येऽवधारणे ॥ ७० ॥

वस्तु युष्माकमित्यर्थे वर्त्तते भेदने तु वि ।

वि स्यादतीते नानार्थे श्रेष्ठे विस्तु खगे पुमान् ॥ ७१ ॥

ष०

उषाऽसङ्ख्यं ससङ्ख्यं च निशान्तनिशयोर्मतम् ।

दोषा रात्रिमुखे रात्रावत्रानव्ययमप्यसौ ॥ ७२ ॥

निकषा त्वन्तिके मध्ये रक्षोमातर्यनव्ययम् ।

विभाषा तु स्त्रियां कापि विकल्पार्थे समुच्चये ॥ ७३ ॥

स०

अग्रतः प्रथमेऽग्रे स्यादञ्जसा तत्त्वतूर्णयोः ।

खलु—वाक्यभूषण, वीप्सा, (दो या  
तीन बार कहना), निषेध, निश्चित,  
सान्त्वन, मौन, जाननेकी इच्छा  
आदि (अ०) ॥ ६९ ॥

व०

अव—व्याप्ति, तिरस्कार, वियोग,  
आलम्बन, शुद्धि, ईषत् (थोड़ा)  
अर्थ, जानना (अ०)

एव—सदृशता, निश्चय (अ०) ॥ ७० ॥

वस्—‘तुम्हारा’ यह अर्थ, (अ०)

वि—भेदन, बदीतहुआ, नाना अर्थ,

श्रेष्ठ (अ०) वि—पक्षी (पुं०) ॥ ७१ ॥

ष०

उषा—प्रातःकाल, रात्रि (अ० स्त्री०)

दोषा—सायं(संध्या)काल, रात्रि  
(अ० स्त्री०) ॥ ७२ ॥

निकषा—समीप, मध्य (अ०)

निकषा—राक्षसोंकी माता (स्त्री०)

विभाषा—विकल्प अर्थ, समुच्चय (इ-  
कठा) करना (अ० स्त्री०) ॥ ७३ ॥

स०

अग्रतस्—प्रथम, अग्र (अ०)

अञ्जसा—तत्त्व, शीघ्रता (अ०)

अभितोऽन्तिकसाकल्यसम्मुखोभयतो द्रुते ॥ ७४ ॥  
 तिरोऽन्तर्द्वौ तिर्यगर्थे निस् निश्चयनिषेधयोः ।  
 साकल्यातीतयोश्चाथ नीचैः स्वैराल्पयोर्ममतम् ॥ ७५ ॥  
 पुरोऽग्रे प्रथमे च स्यात्पुरतः प्रथमाग्रयोः ।  
 प्रातर्दिनेऽपि पूर्वद्युः पूर्वद्युर्द्धमवासरे ॥ ७६ ॥  
 पूर्वत्रार्थेऽपि पूर्वद्युर्भूयस्तु स्यात्पुनःपुनः ।  
 अनव्ययं प्रभूतार्थे मिथोन्योन्यं मिथो रहः ॥ ७७ ॥  
 प्रादुः स्यात्प्रकटीभावे प्रादुः सम्भाव्यमात्रके ।  
 शनैः शनैश्चरे ख्यातं स्वैरेऽपि च शनैरिति ॥ ७८ ॥  
 सु पूजायां भृशार्थाऽनुमतिकृच्छ्रसमृद्धिषु ।  
 तत्कालमात्रे सहसा सहसाऽऽकस्मिकेऽपि च ॥ ७९ ॥

ह०

अहा शोके धिगर्थे च विषादकरुणार्थयोः ।

अभितस्-समीप, संपूर्णता, संमुख, उभयतस् (दोनों तर्फ), शीघ्र (अ०) ॥ ७४ ॥	भूयस्-बारबार (अ०) भूयस् बहुत (त्रि०)
तिरस्-ढकना, तिरछा (अ०)	मिथस्-परस्पर, एकांत (अ०) ॥ ७७ ॥
निस्-निश्चय, निषेध, साकल्य (संपूर्णता), बदीतहुवा (अ०)	प्रादुस्-प्रकटीभाव, संभावनामात्र (अ०)
नीचैस्-यथेच्छता, अल्प (अ०) ॥ ७५ ॥	शनैस्-शनैश्चर, यथेच्छा (पुं० अ०) ॥ ७८ ॥
पुरस्-अग्र (आगे), प्रथम, (अ०)	सु-पूजा, अत्यंत, अनुमति, कृच्छ्र (कष्ट), समृद्धि (अ०)
पुरतस्-प्रथम, अग्र (अ०)	सहसा-तत्कालमात्र, अकस्मात् होना (अ०) ॥ ७९ ॥
पूर्वद्युस्-प्रातःकाल, धर्मदिन ॥ ७६ ॥ पूर्वार्थ (अ०)	ह० अहा-शोक, धिक्कृअर्थ, विषाद, दया (अ०)



अहो प्रश्ने विचारे स्यादहहाद्भुतखेदयोः ॥ ८० ॥

अहह स्यादनुशये परिक्लेशप्रकर्षयोः ।

आह क्षेपनियोगार्थेऽप्युताहो प्रश्नतर्कयोः ॥ ८१ ॥

सहशब्दस्तु साकल्ययौगपद्यसमृद्धिषु ।

सादृश्ये विद्यमानेऽपि सम्बन्धेऽपि सह स्मृतम् ॥ ८२ ॥

ह पादपूरणे सम्बोधने हीरे त्वनव्ययम् ।

हा विषादेऽपि दुःखेऽपि शोके हाहा तु खेदने ॥ ८३ ॥

गन्धर्वेऽनव्ययं हाहा हि विशेषेऽवधारणे ।

हि पादपूरणे हेतौ ही विस्मयविषादयोः ॥ ८४ ॥

ही हर्षे दुःखहेतौ च हीही विस्मयहास्ययोः ।

हूहू हर्षेऽपि गन्धर्वे गन्धर्वे किन्त्वनव्ययम् ॥ ८५ ॥

हेहे व्यस्तौ समस्तौ च संस्मृत्यामात्रहूतिषु ।

हो च हौ च समस्तौ च सम्बुद्ध्याध्यानयोर्मतौ ॥ ८६ ॥

अहो—प्रश्न, विचार ( अ० )

अहह—अद्भुत, खेद, ॥ ८० ॥ बहुत

दिनका बैर या पिछताना, क्लेश,

प्रकर्ष ( अ० )

आह—आक्षेप, नियोग ( ... ) ( अ० )

उताहो—प्रश्न, विचार ( अ० ) ॥ ८१ ॥

सह—सकलभाव, एक बार, समृद्धि,

सादृशता, विद्यमान, सम्बन्ध,

॥ ८२ ॥

ह—पादपूरण, सम्बोधन ( अ० ) ह—

हीरा ( न० )

हा—विषाद, दुःख, शोक ( अ० )

हाहा—खेद ( अ० ) ॥ ८३ ॥ हाहा—

एक गन्धर्व ( पुं० )

हि—विशेष, निश्चय, पादपूरण, हेतु

( अ० )

ही—आश्चर्य, विषाद ॥ ८४ ॥ हर्ष,

दुःखकारण, ( अ० )

हीही—आश्चर्य, हँसना ( अ० )

हूहू—हर्ष ( अ० ) गन्धर्व ( पुं० ) ॥ ८५ ॥

हे, हे, हे—संस्मृति, आमन्त्रण,

निमंत्रण, बुलाना ( अ० )

हो—हौ—होहौ—संबोधन, स्मृति ( अ० )

॥ ८६ ॥

क्ष०

मङ्गु शीघ्रे भृशार्थेऽपि मङ्गु तत्त्वेऽपि कुत्रचित् ॥ ८७ ॥

इति विश्वलोचनेऽपराभिधानायां मुक्तावल्यामव्ययानेकार्थवर्गः ॥

इति श्रीपण्डितश्रीश्रीधरसेनविरचिते विश्वलोचनेऽपराभिधानायां  
मुक्तावल्यां नानार्थकाण्डः समाप्तः ॥ श्री ॥ श्री ॥ विक्रम संवत् १९६९ ॥

क्ष०

मङ्गु-शीघ्र, अत्यर्थ, तत्त्व ( अ० )  
॥ ८७ ॥

इस प्रकार विश्वलोचन अपराभिधान-  
मुक्तावलीमें अव्ययअनेकार्थवर्ग  
समाप्त हुवा ॥

इति श्री पण्डित श्री श्रीधरसेन विरचित विश्वलोचनकोश  
अपर नाम मुक्तावलीमें नानार्थकाण्ड समाप्त ।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥



सब प्रकारके सब जगहके छपे हुए जैन  
ग्रन्थ हमेशह तयार मिलते हैं । सूचीपत्र  
मंगाकर देखिये ।

पता—

श्रीजैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय

हीराबाग, पो० गिरगांव-बंबई ।

